

'संगीत' का विशेष प्रकाशन

भातखण्डे संगीत-शास्त्र

[भाग १]

'हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति' थ्योरी मराठी के प्रथम भाग का
हिन्दी अनुवाद

★

मूल लेखक
पं० विष्णुनारायण भातखंडे ('विष्णु शर्मा')

 ★

अनुवादक
श्री विश्वम्भरनाथ भट्ट एम० ए० "संगीत विशारद"
श्री सुदामाप्रसाद दुबे संगीताचार्य व 'साहित्यरत्न'

★

प्रकाशक—
प्रभूलाल गर्ग
संगीत कार्यालय, हाथरस

प्रथम संस्करण सितम्बर १९५१	द्वितीय संस्करण अप्रैल १९५६	मूल्य सजिल्द पांच रुपया

भातखण्डे संगीत-शास्त्र

[हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति]

भाग १

पाठ्यक्रम में स्वीकृत

भातखण्डे यूनिवर्सिटी आफ़ इन्डियन म्यूज़िक, लखनऊ
माधव सङ्गीत महाविद्यालय, ग्वालियर
भारतीय सङ्गीत विद्यापीठ, बम्बई
आर्य सङ्गीत विद्यापीठ, कलकत्ता
ऑल इण्डिया म्यूज़िक कालेज फ़ॉर गर्ल्स, कलकत्ता
सङ्गीत समाज कालेज, मेरठ
नेशनल स्कूल आफ़ इन्डियन म्यूज़िक, कानपुर
बंगाल म्यूज़िक कालेज, कलकत्ता
चतुर सङ्गीत महाविद्यालय, नागपुर
भातखण्डे सङ्गीत विद्यालय, जबलपुर

आदि विभिन्न सङ्गीत संस्थाओं के पाठ्यक्रम में यह पुस्तक स्वीकृत है।

Printed By B. S. Verma at the SANGEET PRESS, HATHRAS and
Published By P. L. Garg Sangeet Karyalaya, HATHRAS (INDIA)

अपनी ओर से—

भाषा के विकास के पश्चात् व्याकरण की सृष्टि हुई है और व्याकरण का रूपान्तर भाषा के परिवर्तनों पर आश्रित रहता है। इसी प्रकार "संगीत पद्धति" का जन्म और रूपान्तर हुआ है, अतः संगीत में पद्धति की अनिवार्यता होने पर भी इसकी "रचना" पद्धति के आश्रित नहीं की जा सकती।

पद्धति परिवर्तनमय होती है और उससे केवल रूप रेखा मात्र का आभास कराया जा सकता है। संगीत का सम्बन्ध आंखों की बनिस्बत कानों से अधिक है, अतः जीवित कला का दर्शन पद्धति ग्रन्थ में आंखों द्वारा नहीं, वरन् कानों से प्रत्यक्ष सुन कर ही किया जा सकता है।

संगीत के तीनों अङ्ग गीत वाद्य और नृत्य में अभिन्नता है। गीत भावाभिव्यक्ति का आंगिक रूप है, वाद्य गीत का पूरक क्षेत्र है और नृत्य भावोन्माद का गठित स्वरूप है। इस प्रकार गीत में वाद्य और नृत्य के मूल तत्व सन्निहित रहते हैं, अतः उसकी प्रधानता स्पष्ट हो जाती है।

संगीत पद्धति में प्रधानतः गीत और उसकी स्वर रचना पर एवं ध्वनि क्षेत्र की ऊंचाई-नीचाई पर ही विचार किया जाता है इस ध्वनि क्षेत्र के स्थायित्व पर ही संगीत भवन खड़ा हुआ है और ध्वनि (स्वर) विचार को ही अनेक रूपों में विभागीकरण द्वारा भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ देकर इस योजना को विस्तृत किया है सम्पूर्ण रूप से यदि संगीत पर विचार किया जाय तो पद्धति ग्रन्थों में ताल और नृत्य का विधान भी दिया जाना आवश्यक होना चाहिए, किन्तु प्रायः पद्धतिकारों द्वारा ऐसा नहीं किया गया। ताल और नृत्य का साहित्य स्वतन्त्र रूप से अलग ही पाया जाता है। इस प्रकार सामान्य रूप से 'संगीत पद्धति' का अर्थ केवल स्वर रचना और राग रचना ही माना गया है।

हमारी संगीत पद्धति के क्रमिक रूप से ऐतिहासिक आधार ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं। 'सामवेद' की ऋचाओं को आदि स्रोत माना जाता है, परन्तु इसके पश्चात् यह पयस्विनी जिन अगणित अज्ञात स्थलों में घूमती फिरती आज हमारे सामने प्रस्तुत है; वह रूप इसके प्राचीन उन्नत स्वरूप से बिल्कुल ही भिन्न है। शास्त्रकारों की उपलब्ध रचनाओं से जितना ज्ञात हो सकता है वह ऐतिहासिक क्रमबद्धता की दृष्टि से बहुत अपूर्ण है। प्राप्य रचनाओं में भी मतैक्य प्राप्त नहीं होता, कई स्थल अस्पष्ट भी हैं। स्वरलिपि जैसी कोई सुविधा भी प्राप्त नहीं होती, जिससे इन प्राचीन राग रूपों एवं विधानों को समझा जा सके। सचमुच ही हमारे पुरातन को पढ़ सकने का एक मात्र साधन स्वरांकन ही हो सकता था जो कि दुर्भाग्य वश हमें प्राप्त नहीं है। आज हम भरत, कृष्ण और हनुमत् मतों के मूल ग्रन्थ ही नहीं पा रहे हैं, तब इन मतों की दुहाई देना एक ऐतिहासिक वस्तु मात्र कहा जा सकता है। शार्ङ्गदेव, सोमनाथ, विद्यापति, और

अहोबल के विवेचन से हम उन्हें समझ ही कितना सके हैं? इन महोदयों द्वारा यदि तत्कालीन रागों की स्वरलिपि भी दी गई होतीं, तो आज हमें उन चमत्कृत राग स्वरूपों का पता चल सकता जो कि इनके द्वारा आदरणीय हुए थे। मतभेद के सघनवन से एक निर्णय पथ पर आ जाना कितना कठिन है, यह इन रचनाओं के अध्येता जान सकेंगे।



परन्तु यह मतभेद और मतान्तर का चक्र जहां समय के साथ—साथ परिवर्तन का द्योतक है, वहां हमारी भारतीय भावना का पोषक भी है। भारतीय विचारकों ने विचार स्वातंत्र्य को जो महत्व दिया है उसके दर्शन, आपको उपनिषद्, पुराण, स्मृति, न्याय, सांख्य सभी रचनाओं में दिखाई पड़ेंगे। प्रत्येक मनीषी ने अपने अनुभव अपने विचार मुक्तकण्ठ से कहे हैं और उसके स्वतन्त्र स्वर को सदैव हमारे यहाँ सम्मान प्राप्त हुआ है। यह विचारधारा भी इस धर्म-प्राण और आस्तिक देश की विशेषता है कि प्रायः सभी कलाएँ और विद्याएँ अत्यन्त पावन रूप से देवी और देवताओं से सम्बन्धित मानी गई हैं, उनमें सप्राण शक्ति का, जीवन का निवास माना है, और उन्हें मोक्ष मार्ग का साधन तक माना है। मोक्ष भारतीय विचारकों का चरम लक्ष्य रहा है, और उससे एवं ईश्वरी शक्ति से सम्बन्धित करने में उनका उद्देश्य कला के उपासकों को कठोर साधना, एकाग्रता एवं तन्मयता, स्नेह, आदर आदि अनिवार्य हेतुओं के लिये आदेश देना माना जा सकता है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अब हमारे पास न प्राचीन स्वर ही हैं; और न रागरूप ही हैं। हमारे रागों के नाम यदि प्राचीन नामों से मिल भी जाते हों, तो पुरातन के नाम पर सिवा नाम सादृश्य के हमारे पास कुछ नहीं है। श्रुति स्थानों के अनिश्चय, एवं स्वर स्थानों के विकृत रूप से हमारे प्रचलित राग रूप सभी आधुनिक हैं। इस प्रकार से हम एक नवीन प्रणाली के संगीत पर विचार करते समय उन प्राचीन उल्लेखों को इन प्रचलित रूपों के लिये कदापि ठीक नहीं मान सकते हैं। जबकि हमारे स्वर ही नहीं हैं, (श्रुति स्थान के अन्तर के कारण) तब इन स्वरों के उपयोग से जो स्वरूप उत्पन्न होगा, वह किसी भी दृष्टि से हमारे प्राचीन स्वरूप का प्रतिबिंब नहीं कहा जा सकता। संगीत शास्त्र में श्रुतियों का स्थान सूक्ष्म माना गया है; और प्राचीन काल में इनके उपयोग द्वारा ही राग स्वरूप सिद्ध किया जाता था। इस समय इनकी संख्या २२ से घटकर १२ रह गई है, या की जा चुकी है। यह संक्षिप्तीकरण सुगमता की दृष्टि से बहुत अच्छा कहा जा सकता है, परन्तु शेष १० श्रुतियों के अभाव ने प्राचीन रागों का तो अन्त ही कर दिया, इन १२ श्रुतियों में भी कुछ स्थान प्राचीन श्रुतियों के सूक्ष्म अन्तर पर अवस्थित हैं। सारांश में; इस समय प्राप्त प्रचलित स्वरूप नवीन हैं और इन नव परिवर्तित स्वरूपों के लिये प्राचीन विवेचकों के विवेचन से सहायता चाहना सर्वथा गलत चीज है।



इस परिवर्तन के कारण का पता देश के इतिहास से सहज ही जाना जा सकता है मुसलमानों के आगमन के पूर्व हमारे सङ्गीत का चरम श्रेणी का

विकास हो चुका था। विदेशी शासकों और हमलावरों के कारण उत्तर भारत की शांति सैकड़ों वर्षों तक नष्ट रही। इस सङ्गीत लता के क्रमशः मुरझाने का समय यही था। मुगलों के राज्यकाल में अकबर जैसे सम्राट ने धार्मिक आदेश ठुकरा कर भी संगीत का सम्मान, "तानसेन" के रूप में किया। यह पुरातन सङ्गीत प्रदीप की अन्तिम प्रकाशवान लौ थी। इसके पश्चात् यह प्रदीप ज्योति-हीन हो गया। ऐय्याश बादशाहों और नवाबों ने सङ्गीत को विलासिता का साधन बनाया। आर्थिक प्रलोभनों और दरबारी नियमों की दृष्टि से मुसलमानों ने इस कला को अपने हाथ में लिया, और मनमाने स्वरूपों से तोड़-मोड़ कर एक जलसों की चीज बनाली। शाही सम्मान के गौरव से इसे अपने खान्दान तक ही सीमित रखना आरम्भ कर दिया। हिन्दुओं का प्रवेश न तो राज दरबार में ही था, और न उनका महत्व सच्चे कलाकार होने पर भी-मुस्लिम गायकों के सम्मुख स्वीकार किया जाता था। फलतः हिन्दू लोग इस उत्साहहीन दशा में इसे छोड़ बैठे. और परिणाम स्वरूप बिना शास्त्र ज्ञान के, सुने सुनाये ज्ञान के फल स्वरूप, तत्कालीन मुस्लिम गायकों ने सङ्गीत का जो स्वरूप उत्पन्न किया, व बाद में उनके घरानों में जिस स्वरूप का संवर्धन होता रहा; वह रूप हमें प्राप्त होता है।

यह रूपान्तर पिछले पांच सौ वर्षों से होते हुए आज इस दशा में प्राप्त होता है। निरक्षर गायकों के आश्रित भारतीय सङ्गीत, पद्धति और शृंखला विहीन हो गया था। आश्चर्य यह था कि ये गायक प्राचीन नामों में अपना नवीन रूप सुनाते रहते थे जिससे एक अध्येता को बड़ी कठिनाई होती थी। इन उस्तादों की उस्तादी का प्रदर्शन स्वनिर्मित स्वरूपों में भी हुआ है। इस प्रकार प्राचीन सङ्गीत का भ्रष्ट उच्छिष्ट इन खां साहबों की कृपा कोर से प्राप्त हुआ और उसी को स्वर्गीय पं० भातखण्डे ने तरतीबवार धो-पोंछ और सजाकर एक थाल में जमा दिया है। यह भग्नावशेष भी हमारे आँसू पोंछने के लिये काफी हैं; अन्यथा हमारे पास इस समय अपना कहा जा सकने वाला कुछ भी नहीं है। अस्तु:—

स्वर्गीय पं० भातखण्डे, उत्तर भारतीय सङ्गीत के लिये एक उद्धारक, पोषक एवं संवर्धक सिद्ध होते हैं। उनकी विशाल कर्तृत्व शक्ति, महान परिश्रम और ज्वलंत प्रतिभा का प्रमाण उनकी रचनाओं से स्पष्ट दिखाई देता है। सङ्गीत जिज्ञासु के रूप में समस्त देश का भ्रमण करने, प्राप्य हो सकने वाले समस्त ग्रन्थों का गहन अध्ययन करने एवं देश के चोटी के गायकों के सहवास तथा शिष्यत्व में रहकर सहस्रों राग गीतों का संग्रह करने के पश्चात उन्होंने इस विषय पर अपनी लेखनी उठाई है। "लक्ष्यसङ्गीत" उनका पद्धति ग्रन्थ है जिसकी विवेचना विस्तृत रूप से "हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति" के चार बड़े-बड़े भागों में की है। 'लक्ष्य संगीत' की पूरक रचना "अभिनव राग मंजरी" है। पद्धति के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त उदाहरण स्वरूप अनेक रागों की लगभग १८७५ चीजें अपनी सरल और सुबोध स्वरलिपि पद्धति में बांधकर "क्रमिक पुस्तक मालिका" के ६ भागों में प्रस्तुत की हैं। रागों के आरंभिक अध्ययन की स्वर मालिका व स्वरबोध नामक रचनाएँ भी अनुपम हुई हैं। इस प्रकार स्वर्गीय भातखण्डे का सम्पूर्ण साहित्य, एक सम्पूर्ण चित्र

जैसा है जो आज उत्तर भारत की शिक्षण संस्थाओं और शिक्षार्थियों के लिये पूजनीय हो रहा है। इस सम्पूर्ण रचना में जहां प्रचलिति राग रूपों का स्पष्ट चित्रण हुआ है, वहां रचनाकार की प्रतिभा का दर्शन, थाट पद्धति, स्वरलिपि, रागों के लक्षणगीत आदि के द्वारा होता है। इस समय के सङ्गीत विद्यालयों में ये रचनाएँ ही आधार ग्रन्थ मानी गई हैं और स्वर्गीय भातखण्डे जी का चित्रित किया हुआ पद्धति स्वरूप ही सभी के द्वारा ग्रहणीय माना गया है। उनका यह कार्य सङ्गीत संसार में उनके श्रेय को सदैव बनाये रखेगा।

कुछ घरानेदार गायकों और सङ्गीत विवेचकों ने प्रस्तुत पद्धति के लिये अपने इस प्रकार विचार भी प्रकट किये हैं कि—इस पद्धति में कम थाटों में अधिकाधिक रागों को रख देने के प्रयत्न में कुछ रागों के साथ अन्याय हुआ है। इसी प्रकार रागों के स्वरूप, वादी-विवादी एवं गायन समय आदि में भी ज्यादती हुई है। स्वरलिपि की अपूर्णता एवं एक दो बार सुनकर ही स्वरलिपि बना देने के प्रयत्न में घरानेदार बन्दिशों का रूप विकृत हो गया है। पाश्चात्य स्वरों के अनुकरण पर स्वर स्थान निश्चित करने से श्रुत्यंतर के कारण रागों में भी अन्तर आगया है, इत्यादि। परन्तु ये सब तर्क इस रत्नराशि को नगण्य सिद्ध नहीं कर सकते। यदि ये कमियां रह भी गई हों तो भी उनका संस्कार इसी भवन के आधार पर किया जाना युक्ति-सङ्गत होगा। लेखक तो अपनी रचना को वर्तमान का एक चित्र मात्र कहता है और भविष्य में आगे बढ़ने वालों के लिये एक सुसङ्गत मार्ग मात्र ही मानता है। उसका कथन उसी के शब्दों में है कि:—

"लक्ष्य सङ्गीतकाराचे वेली संस्कृत ग्रन्थ होते व ते त्यानें पावलें होतें, परन्तु प्रत्यक्ष उपयोगांतलें सङ्गीत ग्रन्थाना सोडून परिवर्तन पावलें होतें, म्हणून "लक्ष्य प्रधानानि-शास्त्राणि" या न्यायाने त्याने प्रचारांतलें सङ्गीत आपल्या ग्रथांत सामील केलें"—और—"आणखी शेंपन्नास वर्षांनी जर पण्डित आपल्या या कालचें सङ्गीत कसें होतें, ते शोधूं लागले तर या लक्ष्यसङ्गीताची त्यांस मदत होईल."

इससे अधिक संयमित और विनम्र अभिलाषा क्या हो सकती है?

× × × ×

अब कुछ बातें प्रस्तुत अनुवाद के विषय में कह देना चाहता हूँ। मूल पुस्तिका "हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति" मराठी में है। यह देश के सम्पूर्ण सङ्गीत विद्यालयों में थ्योरी के नाम से पाठ्य ग्रन्थों में नियत है। मूल ग्रन्थ चार बड़े-बड़े भागों में है। प्रस्तुत प्रथम भाग का हिन्दी भाषान्तर हिन्दी ज्ञाता, एवं मराठी न जानने वाले शिक्षार्थियों के हेतु किया गया है। इस ग्रन्थ की उपयोगिता विद्यार्थियों और शिक्षकों, गायकों और सङ्गीत प्रेमियों, सभी के लिये समान है। यह आज के सङ्गीत का एक मात्र पद्धति ग्रन्थ है, अतः इसका महत्व सर्वमान्य हो ही जाता है। आशा है कि सङ्गीत प्रेमीजन इस हिन्दी भाषान्तर से लाभान्वित होंगे।

सङ्गीत प्रेमियों के सम्मुख इस लाभदायक एवं उपयोगी भाषान्तर को प्रस्तुत करने का सम्पूर्ण श्रेय "सङ्गीत" के सञ्चालक—श्री० प्रभूलाल जी गर्ग को ही है। श्रीमान् गर्गजी द्वारा की जाने वाली सङ्गीत सेवाओं का महत्व सङ्गीत संसार में चिर-स्मरणीय रहेगा। आपने ही आज से १७-१८ वर्ष पूर्व से हिन्दी का एक मात्र सङ्गीत सम्बन्धी मासिक पत्र "सङ्गीत" निकाल कर एवं सङ्गीत सागर, राग-दर्शन, सङ्गीत सीकर, सङ्गीत अर्चना, सङ्गीत कादम्बिनी आदि ग्रन्थ प्रकाशित करके तथा सङ्गीत के संस्कृत ग्रन्थ सङ्गीत पारिजात, सङ्गीत दर्पण, स्वरमेल कलानिधि आदि की हिन्दी टीका तथा उर्दू के मारिफुन्नग़मात का हिन्दी अनुवाद कराकर सहस्त्रों नर-नारियों को सङ्गीत प्रेमी बनाया है। उन्हीं की प्रेरणा के फल स्वरूप यह भाषांतर पाठकों के सम्मुख आरहा है।

इस भाषान्तर में यथासम्भव बोलचाल की और सरल भाषा का ही प्रयोग किया है, जिससे सर्व साधारण लाभान्वित हो सकें। ग्रन्थकार द्वारा दिए हुए संस्कृत और इङ्गलिश के प्रमाणों को मूल रूप में ही रख दिया है, ताकि पाठक प्रमाण का उद्धरण प्रमाण दाता के शब्दों में ही जान सकें। यथासम्भव मेरा प्रयत्न मूल ग्रन्थकार के प्रत्येक भाव, विचार और तर्क की स्पष्टता ही रहा है; और यह भाषान्तर पूर्ण सावधानी से ही किया है, फिर भी दृष्टिदोष से होने वाली भूलों का मैं उत्तरदायी हूं।

अन्त में इस भाषान्तर कार्य में सहयोग देने वाले बन्धुओं के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। कुछ मित्रों ने अपना अमूल्य समय देकर इसकी प्रतिलिपि तैयार करने में जो सहायता दी है उसके लिये मैं उनका आभारी रहूंगा।

खातेगाँव
(मध्यभारत)
मार्गशीर्ष १५ सं० २००६

किमधिकम्:—

सुदामाप्रसाद दुबे



प्रकाशक का वक्तव्य

—·०·—

आज के संगीत समाज में ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसने सङ्गीत के पंडित श्री विष्णुनारायण भातखंडे का नाम न सुना हो ? इस सङ्गीताचार्य ने अपने जीवनकाल में देश-देशान्तर का भ्रमण करके संगीत के अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था, जिनमें से हिन्दी भाषी सङ्गीत विद्यार्थियों तक उनकी "क्रमिक पुस्तक मालिका" की पहुंच तो हो सकी, शेष ग्रन्थ संस्कृत या मराठी में होने के कारण, हिन्दी विद्यार्थी उनके पठन-पाठन से लाभान्वित न हो सके।

यद्यपि क्रमिक पुस्तकें भी आरम्भ में मूल रूप से मराठी भाषा में ही थीं, किन्तु उनकी स्वरलिपियों से तो हिन्दी वालों ने लाभ उठाया ही, शेष राग वर्णन या शास्त्रीय विवेचन इन पुस्तकों में भी मराठी में होने के कारण हिन्दी विद्यार्थियों की समझ से दूर ही रहा। कुछ समय बाद जैसे-तैसे इसका प्रथम भाग हिन्दी में प्रकाशित हुआ। यह भाग तो एक छोटी सी पुस्तिका के रूप में था, अतः आसानी से प्रकाशित होगया, किन्तु कई वर्ष तक अन्य भागों के हिन्दी भाषान्तर के लिये विद्यार्थी तड़पते रहे, और कोई सुनवाई न हुई, अन्त में हमारी बहुत कोशिशों के फलस्वरूप इनका हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ और तब विद्यार्थियों ने संतोष की सांस ली।

"हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका' के कुल ६ भाग हैं, जिनमें अनेक रागों की स्वरलिपियां दी गई हैं, थ्योरी या शास्त्रीय विवेचन तो इनमें संक्षिप्त रूप से थोड़ा-थोड़ा दिया गया है! सङ्गीत के शास्त्रीय विवेचन पर तो श्री भातखंडे जी ने एक स्वतन्त्र ग्रंथ का निर्माण अलग ही किया था। जिसका नाम है:—

—"हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति" (थ्योरी मराठी)। इसके बड़े-बड़े चार भाग हैं। प्रथम भाग में ३६४, दूसरे में ५०० तीसरे में ४७८ और चौथे भाग में ११२० पृष्ठ हैं! जिनमें सङ्गीत कला का भण्डार भरकर यह महान् व्यक्ति सङ्गीत विद्यार्थियों के लिये रख गया है, किन्तु दुर्भाग्यवश सङ्गीत के हिन्दी भाषी विद्यार्थी उनके दर्शन तक नहीं कर सके, क्योंकि मूल ग्रन्थ के चारों भाग मराठी भाषा में थे! इनकी लोकप्रियता मराठी जनता तक ही सीमित रही, और वे ही इनका लाभ भी उठा सके।

इन पुस्तकों की विशेषता का इससे अधिक और क्या प्रमाण होगा कि लखनऊ की प्रसिद्ध भातखंडे यूनिवर्सिटी तथा सङ्गीत की अनेक शिक्षण संस्थाएँ जो कि हिंदी के गढ़ उत्तर प्रदेश, मध्यभारत, राजस्थान और बिहार आदि में हैं, उक्त मराठी ग्रन्थों को ही अपने पाठ्यक्रम (कोर्स) में रखने पर मजबूर हुई। इसका कारण सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि हिंदी भाषा में सङ्गीत की थ्योरी की अन्य कोई पुस्तक उस समय नहीं थी और उक्त ग्रंथों को हिन्दी में अनुवाद

करके प्रकाशित करने का किसी भी प्रकाशक ने साहस नहीं किया ! विद्यार्थियों के लिये तो कुछ रखना ही था, अतः हम तो यही समझते हैं कि विवश होकर ही उन शिक्षा संस्थाओं को हिंदी प्रदेशों में मराठी के उक्त ग्रन्थ अपने कोर्स में रखने पड़े ।

प्रकाशकों की इस उदासीनता का भी एक कारण है, वह यह है कि सङ्गीत का क्षेत्र सीमित होने के कारण तत्सम्बन्धी पुस्तकों की खपत बाजार में आसानी से इतनी नहीं हो पाती कि प्रकाशकों को अपनी पूंजी सुरक्षित रूप से कुछ मुनाफा सहित वापिस मिलने की आशा हो। इसलिये हम देखते हैं कि हिन्दी के प्रकाशक जहां अन्य विषयों की पुस्तकों के लिये शिक्षा विभाग के चक्कर काटा करते हैं, वहां सङ्गीत सम्बन्धी पुस्तकों के प्रकाशन से बचते रहने में ही अपना कल्याण समझते हैं। सङ्गीत या साहित्य प्रचार की अपेक्षा इन प्रकाशकों को अपने लाभ की ही चिंता विशेष रूप से रहती है। लेकिन उक्त परिस्थिति में सङ्गीत के हिंदी विद्यार्थियों को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है।

'सङ्गीत कार्यालय' इस ओर प्रयत्नशील था और उस अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था कि विद्यार्थियों की यह कठिनाई दूर हो जाय। हमने निश्चय कर लिया कि कार्यालय को चाहे इन पुस्तकों के प्रकाशन में घाटा ही क्यों न उठाना पड़े, किंतु ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों को हम अंधकार में विलीन नहीं होने देंगे। इस शुभ संकल्प के बाद, तलाश करने पर मालुम हुआ कि उक्त ग्रन्थ के मराठी भाग भी अब किसी भी मूल्य पर बाजार में नहीं मिल सकते। तब हमनें 'सङ्गीत' मासिक पत्र में एक विज्ञापन छापकर दुगने-तिगुने-मूल्य पर भी इन पुस्तकों की एक-एक प्रति खरीदनें की इच्छा प्रकट की ! सौभाग्य से हमारे एक आदरणीय सङ्गीत ग्राहक श्री० बी. ऐच. देवकरन (गुलबर्गा) ने मराठी के तीनों भाग हमारे पास बिना मूल्य भेज दिये और हमने अनुवाद कार्य का श्री गणेश कर दिया। यदि इन महोदय का हमें उस समय यह सहयोग प्राप्त न हुआ होता, तो यह हिन्दी अनुवाद जो इस समय हम उपस्थित कर रहे हैं, शायद अभी न कर सके होते। अतः इस महती कृपा के लिये हम श्री देवकरन जी के अत्यंत आभारी हैं।

प्रथम भाग के इस अनुवाद का कुछ अंश जब हमने "सङ्गीत" मासिक पत्र में निकालना आरम्भ किया तो उसे पढ़कर हमारे पाठक अत्यन्त प्रभावित हुए और जोरदार शब्दों में पुस्तक के प्रकाशन की मांग करने लगे। प्रसन्नता की बात है कि उनकी इच्छा के साथ ही साथ सङ्गीत के हिंदी विद्यार्थियों की भी इच्छा पूर्ण करने में हमें सफलता मिली है, और "हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति" के प्रथम भाग का यह हिंदी अनुवाद "भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र" के नाम से हम सङ्गीत प्रेमियों के सम्मुख उपस्थित कर सके हैं।

मूल पुस्तक के नाम में परिवर्तन करने के कारण का उल्लेख भी यहां कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रायः अनेक व्यक्ति इस भेद को नहीं समझते कि "हिंदुस्तानी सङ्गीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका" यह अलग पुस्तक है और

"हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति" यह एक दूसरा ही ग्रंथ है, बहुत से ग्राहक पुस्तक मंगाते समय प्रायः यह लिख देते हैं कि हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति भेज दीजिये। ऐसी स्थिति में पुस्तक विक्रेता का इस विचार में पड़जाना स्वाभाविक है कि ग्राहक क्रमिक पुस्तक चाहता है या थ्योरी की पुस्तक मांग रहा है। इसी अड़चन से बचने के लिये प्रस्तुत पुस्तक का नाम "भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र" रखना हमने उचित समझा है, जिससे कोई भ्रम न रहे और पाठकों की इच्छानुसार उन्हें पुस्तक प्राप्त हो जाय।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रारम्भिक ७६ पृष्ठ तक का हिन्दी अनुवाद 'सङ्गीत' के सम्पादक श्री० विश्वम्भर नाथ जी भट्ट 'सङ्गीत विशारद' ने किया है और शेष संपूर्ण अन्श का अनुवाद श्री सुदामा प्रसाद जी दुबे द्वारा हुआ है। अनुवादक द्वय ने जिस परिश्रम और लगन से यह कार्य किया है, उसके लिये हम उन्हें धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आगे भी इनका सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा।

इस पुस्तक की बिक्री सन्तोषजनक रूप से होगी या नहीं, इसका विचार छोड़कर हम अपने निश्चय पर अटल हैं, अतः आगे के भागों का हिन्दी अनुवाद भी आरम्भ करा दिया गया है, आशा है सङ्गीत प्रेमियां का प्रेम और सहयोग हमें प्राप्त होता रहेगा और हम अपने उद्देश्य में सफल होंगे।

जन्माष्टमी
२००७ वि०

प्रभूलाल गर्ग



भातखण्डे संगीतशास्त्र (हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति) भाग १

विषय-सूची



ग्रन्थकार—कै० श्री विष्णुनारायण भातखंडे
बी० ए०, एल-एल० बी०

जन्म—१० अगस्त १८६० ✣ मृत्यु—१६ सितम्बर १६३६

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति

(थ्योरी मराठी प्रथम भाग का हिन्दी अनुवाद)

प्रिय मित्रो ! मैंने बहुत दिनों से यह निश्चय कर रखा था कि, एक बार तुम्हें योग्य स्वरज्ञान होजाने पर, अपनी आधुनिक सङ्गीत पद्धति, जिसे प्रचार में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति भी कहते हैं, तुम्हें सविस्तार तथा स्पष्ट रूप से समझा दूंगा। मेरा अनुमान है कि स्वरबोध, स्वरमालिका इत्यादि पुस्तकों का तुमने भली भांति अध्ययन कर लिया है, तथा स्वरज्ञान भी तुम्हें अच्छा हो गया है। अतः जितना संभव हो सकता है, उतनी सरल रीति से, मैं उस पद्धति को तुम्हें समझाने का प्रयत्न करता हूं। तथापि मेरा अनुमान है कि, ऐसा करने के पूर्व दो एक बातों का स्पष्टीकरण कर देना उचित होगा। मैं अभी, जिस पद्धति का उल्लेख करने वाला हूँ, उसमें यद्यपि "हिन्दुस्तानी"—यह विशेषण जुड़ा हुआ है, तथापि इससे यह न समझना चाहिये कि आजकल यह हमारे संपूर्ण देश में समान रूप से प्रचलित है। सङ्गीत की दृष्टि से, सुविधा के लिये हमारे देश के दो भाग किये जा सकते हैं। पहिला उत्तर भाग तथा दूसरा दक्षिण भाग। हम दक्षिण भाग से मद्रास प्रान्त का आशय समझेंगे, तथा शेष संपूर्ण देश को उत्तर भाग कहेंगे। दक्षिण में कर्णाटकी पद्धति प्रचलित है। इस समय मैं तुम्हें उसे न सिखाऊँगा। मैं जानता हूं कि उस पद्धति के आधार ग्रन्थों के विषय में, अथवा उसकी राग-रचना के तत्वों के विषय में मुझे थोड़ा बहुत बोलना पड़ेगा, परन्तु वह हमारा आज का विषय नहीं है। यदि तुम यही मानकर चलो कि उत्तर भाग में सर्वत्र हिन्दुस्तानी पद्धति प्रचलित है, तब भी हर्ज नहीं है। जगह-जगह विशिष्ट कारणों से राग रूपों के सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं, और यह भी मैं मानता हूँ कि मतभेद हैं, परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है, कि संगीत पद्धति सर्वत्र एक ही है। तुम्हें अब भली भांति स्वरज्ञान हो गया है अतः मैं जो कुछ कहूंगा वह तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ सकेगा। योग्य स्वरज्ञान हुए बिना सङ्गीत का औत्पत्तिक अथवा शास्त्रीय भाग समझ में नहीं आता।

स्वरज्ञान उत्तम हो जाने की पहिचान यह है कि यदि कोई यह कहे कि अमुक स्वर गाओ, तो तत्काल वह स्वर गले से निकाला जा सके, इसी प्रकार यह पूछने पर कि अमुक ध्वनि का स्वर क्या है, तुरन्त उस ध्वनि का स्वर नाम लिया जा सके। एक बार ऐसा स्वर-ज्ञान हो जाने पर, फिर आगे का संपूर्ण मार्ग सरल है। दक्षिण में स्वर ज्ञान की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। खेद की बात है कि हमारे यहां इस विषय पर योग्य परिश्रम नहीं किया जाता। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि हमारे यहां संगीत से ही अपना पेट पालने वाले अनेक ऐसे लोग निकलेंगे जिन्हें स्वरज्ञान, अथवा रागनियमों का यथोचित ज्ञान नहीं है। इस विषय पर यहां आलोचना करना मेरा उद्देश्य नहीं है तथापि मैंने वस्तुस्थिति का उल्लेख मात्र कर दिया है। मेरा तो कहना यह है कि स्वर-ज्ञान के बिना न तो पद्धति का वास्तविक

रहस्य समझ में आता है, और न सच्चा आनन्द ही प्राप्त होता है। एक अन्य बात तुम्हें यह बताये दे रहा हूं कि, मैं जिस पद्धति को तुम्हें अभी सिखाने वाला हूँ, उसे कुछ नवीन ही ढङ्ग से सिखाऊँगा। वह ढङ्ग यह है कि तुम में से कोई एक, हरबार मुझसे प्रश्न पूछता चले, और मैं उस प्रश्न का उत्तर देते हुए तुम्हारा समाधान करता चलूँ। जिसे जो प्रश्न सूझे उसे वह अवश्य पूछले। मेरा अनुमान है कि इस प्रकार तुम्हें शीघ्र तथा उत्तम ज्ञान हो जायेगा। तुम लोग शिक्षित हो, अतः तुम्हें भी यह ढङ्ग पसन्द आयेगा। मैं जानता हूं, कि पहिले तो यह सुनकर तुम कुछ असमञ्जस में पड़ोगे। तुम सोचोगे कि सङ्गीत जैसे अज्ञात विषय पर प्रश्न कैसे पूछे जा सकेंगे, परन्तु ऐसी अड़चन लेशमात्र भी नहीं है। एक बार तुमने प्रश्न शुरू किया नहीं कि फिर एक पर एक, अनेक प्रश्न तुम्हें अपने आप ही सूझने लगेंगे। यह भी मैं जानता हूं कि पहले-पहल तो तुम्हें बहुत से प्रश्न पूछने पड़ेंगे, परन्तु जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान बढ़ता जायेगा वैसे-वैसे वे अपने आप ही कम होते जायेंगे। सम्भवतः कुछ प्रश्न अनर्गल भी होंगे, परन्तु उन्हें पूछने में लज्जित न होना! तुम्हारे प्रश्न चाहे जैसे क्यों न हों, परन्तु मुझे उनसे कभी क्षोभ न होगा। मेरी तो यही हार्दिक इच्छा है, कि इस हिन्दुस्तानी पद्धति को जिस प्रकार मैंने समझा है, प्रमाणिक रूप से उसी प्रकार तुम्हें भी समझादूं। प्रश्नोत्तर के इस ढङ्ग का मैंने कोई नवीन आविष्कार किया हो, यह बात नहीं है, तथापि इस पद्धति में इस शैली का उपयोग मैंने कहीं देखा नहीं, इसी कारण मैंने इसे नवीन कहा है। हमारी प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति प्राचीन ग्रन्थों को छोड़कर अत्यधिक भिन्न हो गई है। अतः उसे अब ग्रन्थों की सहायता से नहीं सिखाया जा सकता। इसी से मैं तुम्हें ग्रन्थों के खटराग में नहीं डालता। यह ठीक है कि वे भी तुम्हें पढ़ाये जायेंगे, परन्तु यह फिर देखा जायगा। कहीं-कहीं यदि प्राचीन ग्रन्थों के वाक्यों का मैंने प्रयोग किया भी, तब भी प्रत्येक सिद्धान्त पर ग्रन्थों का प्रमाण देने का मैं वचन नहीं देता। हमारी प्रचलित पद्धति का समर्थन करने वाले ग्रन्थ भी हैं, परन्तु वे किस प्रकार तथा किस सीमा तक सहायक हैं? यह तुम्हें आगे चलकर विदित होगा। हां, तो अब हम अपने हिन्दुस्तानी सङ्गीत के विवेचन में अग्रसर होते हैं। पहिले तुम्हें सङ्गीत शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये।

प्र०—सङ्गीत शब्द का क्या कोई विशेष अर्थ माना जाता है?

उ०—हां, सङ्गीत समुदायवाचक नाम माना जाता है। इस नाम से तीन कलाओं का बोध होता है, ये कलायें गीत, वाद्य तथा नृत्य हैं। इन तीनों कलाओं में गीत का प्राधान्य है, अतः केवल "सङ्गीत" नाम ही चुन लिया गया है।

प्र०—इन तीनों कलाओं में से आप हमें कौनसी कला सिखायेंगे?

उ०—मुझे तुम्हें 'गायन' कला सिखानी है।

प्र०—"गायन" कला में आप हमें क्या सिखायेंगे?

उ०—"गायन" पूर्णरूपेण अपनी राग रचना पर अवलम्बित रहता है, अतः गायन सिखाने का अर्थ उसके अन्तर्गत राग सिखाना होगा। यह स्पष्ट ही है कि कभी राग स्वरों पर अवलम्बित रहते हैं। तुमने जिन पुस्तकों का अध्ययन किया है, उनमें स्वरों के नामों तथा रागों के नामों को देखा ही है, अब तुम्हें उन रागों की रचना के

तत्व इत्यादि निश्चित पद्धति से सीखने हैं। हमारे यहां उत्तम गायक हैं, परन्तु यह नहीं कि वे सभी पद्धति को जानने वाले हों। मैं समझता हूं कि तुम्हें पद्धति का महत्व समझाने की आवश्यकता नहीं है।

प्र०—हमने जो स्वर सीखे हैं, वे ही इस हिन्दुस्तानी पद्धति में प्रयुक्त होंगे; अथवा कुछ दूसरे ही स्वरों का प्रयोग होगा ? इन सभी को आप एक बार शुरू से अच्छी तरह समझा दें तो बड़ा अच्छा हो।

उ०—तुमने जिन स्वरों को सीखा है, उन्हें ही इस हिन्दुस्तानी पद्धति में प्रयुक्त होने वाले स्वर समझो। उन्हीं की सहायता से तुम्हें अपनी पद्धति सीखनी है। यद्यपि उन स्वरों के विषय में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है, तथापि मुझे यह उचित प्रतीत होता है कि चलते-चलाते उनके विषय में भी कुछ बातें कह कर आगे बढ़ा जाय। इसमें पुनरुक्ति हो तब भी हर्ज नहीं है। हम अपने शास्त्र का आरम्भ ही तो कर रहे हैं, अतः स्वरों पर भी थोड़ा सा विचार करलें।

प्र०—अवश्य ऐसा ही कीजिए, यह बड़ा उपयोगी होगा।

उ०—मुख्य स्वर तो सात ही हैं, अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध, नि, गायक री के बदले रे का उच्चारण करते हैं, इसीलिये यहां 'रे' कहा गया है। ग्रन्थों में इन सात स्वरों के नाम ये हैं:—षड्ज, रिषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। ये स्वर अच्छी तरह से तुम्हारे पहिचाने हुए हैं। स्वरों के शुद्ध तथा विकृत ये दो भेद माने जाते हैं। हिन्दुस्तानी पद्धति में तीव्र तथा कोमल ये नाम हैं। शुद्ध स्वरों को गायक तीव्र कहते हैं। केवल मध्यम को उपरोक्त संज्ञा प्राप्त नहीं है। इसका कारण आगे बताया जायेगा। हारमोनियम वाद्य पर शुद्ध स्वर सफेद पट्टियों पर दिखाये जाते हैं। हमारे यहां नवीन शिक्षार्थियों को पहिले-पहल बहुधा ये ही सातों शुद्ध स्वर सिखाए जाते हैं। अब यह समझाता हूं कि विकृत स्वर किस प्रकार माने जाते हैं। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि हारमोनियम का उदाहरण मैंने केवल सुविधा की दृष्टि से लिया है। उसके स्वरों से हमारे स्वर बहुत कुछ मिलते हैं, यही सोच कर इस वाद्य का उदाहरण रखा है। कहा जाता है कि हारमोनियम के स्वरों में तथा हमारे प्रचलित बारह स्वरों में कहीं-कहीं अन्तर है। स्वरों को विकृत करने का अर्थ है, उन्हें उनके निश्चित स्थान से विचलित कर देना। पण्डितों ने इसकी यही व्याख्या की है। हम भी इसी व्याख्या को स्वीकार करेंगे। हमारी पद्धति में षड्ज तथा पंचम ये दो स्वर कभी विकृत नहीं होते। उन्हें अचल स्वर कहते हैं। ग्रन्थों में उनके विषय में यह कहा गया है। "हिन्दुस्तानीयपद्धत्यां तौ स्वरौत्वचलौ मतौ" विकृत स्वरों के विषय में आगे चल कर ग्रन्थ-वर्णन उत्तम है। उसे याद रखो:—

"स्वरस्तु प्रच्युतः श्रुत्या नियताया यदा भवेत्।
तदातस्य विकृतत्वमंगीकुर्वन्ति पण्डिताः॥
रिगमधनयो लक्ष्ये विकृताः संभवंतियत्।
अथतेषां विकारांस्तान्वर्णयामि सविस्तरम्॥

षड्जर्षभयोश्च मध्ये कोमलो रिषभः स्थितः ।
कोमलोधैवतश्चापि पधयोरंतरे पुनः ॥
गांधारो रिगयोर्मध्ये संमतः कोमलाभिधः ।
निषादोपि धनीमध्ये मृदुसंज्ञः सुसस्थितः ॥
तीव्रमध्यमस्तु प्रोक्तो ह्यंतरे मपयोरपि ।"

प्रत्येक सप्तक में रि, ग, म, ध, नि ये पांच स्वर विकृत हो सकते है, इनमें से रि ग, ध नी, इन्हें कोमल, तथा मध्यम को तीव्र संज्ञा प्राप्त होती है।

प्र०—'सप्तक' शब्द से किस वस्तु का बोध होता है ?

उ०—सप्तक का अर्थ सातों समुदाय-स्पष्ट ही है। सातों स्वरों का क्रम से उच्चारण किया, और सप्तक बना। रि ग म ध नि इन पांच स्वरों को उपरोक्त कथनानुसार सप्तक में स्वीकार कर लेने से कुल बारह स्वरों की उपलब्धि होगी। इसी प्रकार प्रत्येक सप्तक में हम बारह स्वर मानेंगे। इस कथन से तुम्हें किंचित् विरोध का आभास दिखाई देगा। तथापि ऐसा मानने में कुछ नुकसान नहीं है। इस प्रकार यद्यपि स्वर तो बारह हो जायेंगे, परन्तु उनके नाम हम सात ही रखेंगे। सप्तक को ग्रन्थों में मेल, संस्थिति इत्यादि नामों से पुकारा गया है। प्रचार में गायक इसे थाट कहते हैं। इस अन्तिम नाम को भली भांति याद रखना। यह नाम तुम्हें अत्यधिक सुनाई देगा।

प्र०—तब तो इस थाट के विषय में आप हमें पूर्ण अभिज्ञान करादें तो अच्छा हो ?

उ०—मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि हमें अपनी सङ्गीत रचना को एक अर्थ में राग रचना ही समझना चाहिए। इस राग रचना का सम्बन्ध थाट रचना से है। थाट ही राग का उत्पत्ति स्थान माना जाता है। प्रत्येक राग किसी न किसी नियमित स्वर-सप्तक से निकलता है। इस विधान में ऐसा कोई रहस्य नहीं है, जो समझ में न आ सके। प्रत्येक राग को गाते समय, तुम कतिपय स्वरों को (सभी शुद्ध स्वर, अथवा कुछ शुद्ध तथा विकृत स्वरों को) व्यवहृत करोगे ही। और जहां तुमने ऐसा किया कि अपने आप ही कोई न कोई थाट उत्पन्न हो जायेगा। इसलिये प्रत्येक राग की जो आवश्यक स्वर रचना है, उसी का नाम थाट समझो।

प्र०—इसे हम समझ गए। जितने राग हैं, क्या उतने ही थाट भी हैं ? आपके कथन से तो यही प्रकट होता है कि प्रत्येक राग में एक थाट प्रयुक्त होगा।

उ०—नहीं-नहीं ! तुम्हें आगे चल कर यह मालूम होगा कि एक थाट से अनेक राग उत्पन्न हो सकते हैं। यह विषय क्रम से आगे आने वाला ही है।

प्र०—तब फिर हमें ऐसी स्वर रचना अथवा रागोत्पादक-थाट कितने सीखने हैं ?

उ०—आजकल गायक प्रचार में जितने राग गाते हैं, वे सभी भिन्न-भिन्न प्रकार से हमारे दस मुख्य थाटों से उत्पन्न किये जाते हैं। इसलिये तुम्हें वे ही दस थाट सीखने हैं। तुमने "स्वरमालिका" नामक पुस्तक का अध्ययन किया है, उसमें इन थाटों के नाम तुम्हें दृष्टिगत हुए ही होंगे। उन थाटों की रचना किस प्रकार की जाती है, इन बातों को अब तुम्हें बताया जायगा। अब तुम इस विषय को एक पद्धति से सीख रहे हो।

प्र०—मालूम होता है कि थाटों की कुल संख्या दस से भी अधिक है।

उ०—हां, थाटों की कुल संख्या तो बहुत अधिक है। इसे तुम आसानी से समझ लोगे। यों समझो कि "सा रे ग म प ध नी" इन शुद्ध स्वरों को क्रम से कहते ही, तुरन्त एक थाट बन जाता है। क्या यही 'स्वरमालिका' नामक पुस्तक का बिलावल थाट नहीं है ? इन्हीं में से कोई स्वर विकृत किया नहीं कि थाट बदला। दो स्वर विकृत होने से कोई और नवीन थाट बन जायेगा।

प्र०—यह हम समझ गए। परन्तु एक शंका है। हमारी इस पद्धति में शुद्ध स्वर सात, तथा विकृत स्वर पांच हैं। यदि थाटों की रचना करने में इतने ही स्वरों का प्रयोग होता है, तथा प्रत्येक थाट में स्वरों का क्रम सा रे ग म प ध नि यही रखना पड़ता है, तो हर बार इन बारह स्वरों में से सात-सात स्वर लेकर जो थाट बनाये जायेंगे, क्या इनकी संख्या गणित शास्त्र से निर्धारित हो सकती है ?

उ०—तुम्हारी कल्पना यथार्थ है। इस प्रकार की संख्या अवश्य निर्धारित हो सकती है। प्रस्तुत प्रसङ्ग में हम दक्षिण पद्धति पर विचार नहीं कर रहे हैं, इसलिये मैं अधिक कुछ नहीं कहता, परन्तु उधर के पण्डितों ने जैसे तुम कह रहे हो उसी तरह, मुख्य बारह स्वरों से रागजनक ७२ थाट निश्चित किये हैं। कहा जाता है कि लगभग तीन सौ वर्ष पूर्व दक्षिण में व्यंकटमखी नामक सङ्गीत के एक प्रसिद्ध पण्डित ने इन ७२ जनक मेलों की व्यवस्था की थी। इस पण्डित के ग्रन्थ का नाम "चतुर्दण्डि-प्रकाशिका" है। उन्होंने पहिले तो शुद्ध स्वर, सप्तक के सा रे ग म प ध नि सा ये दो बराबर के भाग किये। इसके बाद पहले भाग में रे, ग ये दो स्वर कोमल जोड़ कर उस भाग को छः स्वरों का बना लिया। अर्थात् सा, रे (कोमल), रे (शुद्ध), ग (कोमल), ग (शुद्ध), म। इसी प्रकार ध, नि, इन दो स्वरों को कोमल विकृत जोड़ कर उसे भी छः स्वरों का बना लिया। अब पहिले भाग के छः स्वरों में से प्रत्येक बार चार स्वर (सा रे ग म) लेने से, परस्पर भिन्न केवल छः ही मेलार्ध बनने शक्य हैं। यह बात तुम आसानी से समझ लोगे। इसी प्रकार उत्तर भाग में भी छः ही मेलार्ध बनने शक्य हैं। पहिले भाग के प्रत्येक मेलार्ध अथवा प्रकार से अगर दूसरे भाग के छः-छः मेलार्ध जोड़ दिए जायें, तो ३६ थाट उत्पन्न होंगे। परन्तु तुमने जो ये ३६ मेल सिद्ध किये हैं, उनमें मध्यम स्वर शुद्ध ही था। तीव्र मध्यम का प्रयोग अभी तक नहीं किया था। बाकी के मेल स्वरों को उसी तरह कायम करके, जहां शुद्ध म है, वहां केवल तीव्र मध्यम कर देने से तुम्हें अन्य ३६ मेल प्राप्त हो सकते हैं। ठीक है न ? व्यंकटमखी पण्डित ने भी इसी रीति से अपने ७२ जनक मेल स्थापित किए थे।

तुम्हें इन सभी ७२ मेलों के खटराग में पड़ने की लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। वह दक्षिणी पद्धति है। तुम्हें तो केवल दस मेल ही सीखने हैं। ये सब इन ७२ मेलों के अन्तर्गत आ ही जायेंगे–बस यही समझने की बात है। यह भी मत सोचना कि दक्षिण में ये सभी ७२ मेल प्रचलित हैं। "लक्ष्यसङ्गीत" में यह कहा है:—

एतावती यदि संख्या रागाणां शास्त्रनिश्चिता।
लक्ष्यमार्गे नतेसर्वे प्रतीता इति प्रस्फुटम्॥
मेलसंख्या ग्रन्थकृद्भि र्महत्योऽपि प्रपंचिताः।
लक्ष्ये प्रसिद्धिवैधूर्या द्वहवस्ता ह्युपेक्षिताः॥"

प्रश्न—तब तो हमारे वे दस मेल ही हमें समझा दीजिए, वे ही काफी हैं?

उत्तर—मैं अब ऐसा ही करने वाला हूँ। अपनी पद्धति के ये दस थाट एक बार तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ जायें, तो फिर एक-एक थाट से जन्य राग कैसे-कैसे उत्पन्न किये जाते हैं, यह समझा देना आसान होगा। रचना के तत्वों को समझ लेने पर तुम्हारे समान सुशिक्षित लोग सहज में तथा अच्छी तरह से अपनी बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं।

प्रश्न—यदि सभी थाटों में जन्य राग उत्पन्न करने का तत्व समान रूप से प्रयुक्त होता है, तो किसी थाट में उसका प्रयोग करके हमें अभी समझा दीजिये। यदि हम एक बार इसे भली भांति समझ गये तो फिर अन्यान्य थाटों में इसका प्रयोग करना हमारे लिये सरल होगा। इसे समझाने में यदि और कोई आपत्ति न हो तो यह बात हमें अभी बता दीजिये?

उत्तर—इसमें कोई हर्ज नहीं है। बड़ी खुशी से यह बात मैं तुम्हें अभी बताता हूँ। भली भांति ध्यान दो कि सा रे ग म प ध नि इस प्रकार शुद्ध स्वरों को ग्रहण करते ही तुम्हारा पहिला थाट बन जायेगा। इसे मान कर आगे चलो। अब मुझे यह कहना है कि इन सात स्वरों में से प्रत्येक बार हम एक या दो स्वर कम करदें तो पहले जो सात स्वरों का थाट था, वह भिन्न प्रकार का हो जायगा। ठीक है न? मैं समझता हूँ कि एक आध उदाहरण लेकर यह बात तुम्हें समझाऊँ तो जल्दी समझ सकोगे।

प्रश्न—हां, हम भी आपसे ऐसा ही करने की प्रार्थना करने वाले थे।

उत्तर—अच्छा तो देखो शुद्ध स्वरों का तुम्हारा प्रकार यह है "सा रे ग म प ध नि" गाते समय बहुधा इसके दो रूप अपने आप हो जाते हैं, और वे हैं आरोह तथा अवरोह। तुम्हारे शिक्षक ने ये दोनों शब्द तुम्हें सिखाए ही हैं। 'सा' से ऊपर की तरफ-'नि' स्वर की ओर गाते चले जाने का अर्थ है आरोह करना, तथा इसी प्रकार 'नि' से नीचे की ओर 'सा' की तरफ़ उतरते जाने को अवरोह कहते हैं। थाटों से राग कैसे उत्पन्न होते हैं। यह बात समझाने में हमें इन दोनों शब्दों का बारम्बार प्रयोग करना पड़ेगा। इसी से इन शब्दों को उनके अर्थ के सहित मैंने यहां पुनः समझा दिया है। यह कभी न भूलना कि प्रत्येक राग में आरोह तथा अवरोह, दोनों ही की अपेक्षा होती है। अब हम कुछ और आगे बढ़ें। मुख्य स्वर सात ही हैं। इसलिए जिस समुदाय में ये

सभी स्वर होते हैं उसे 'सम्पूर्ण' संज्ञा प्राप्त होती है। जिस समुदाय में छः स्वर होते हैं उसे 'षाड़व' तथा जिसमें पांच स्वर होते हैं, उसे 'औड़व' प्रकार कहते हैं। इन नामों को तुम याद रखना क्योंकि ये तुम्हें बारम्बार दृष्टिगत होंगे। मैंने तुम्हें पहिले ही बताया था कि सात स्वरों के थाट में एक या दो स्वर कम करते जावे से भिन्न-भिन्न प्रकार बनते हैं। यह बात तुम्हें याद ही होगी। इन प्रकारों को ही हम षाड़व तथा औड़व इन नवीन नामों से पुकारेंगे। अब इन शब्दों का आरोह तथा अवरोह इन दो शब्दों से सम्बन्ध स्थापित कर देना शेष है. और ऐसा करते ही तुम्हारे इस शुद्ध स्वरों के थाट के अनेक प्रकार बन जायेंगे।

प्रश्न—हां, हां, इसे हम अब समझे। एक बार सम्पूर्ण आरोह तथा सम्पूर्ण अवरोह, फिर सम्पूर्ण आरोह और षाड़व अवरोह, पुनः सम्पूर्ण आरोह तथा औड़व अवरोह, इस तरह करते जायें, ऐसे ही न ?

उत्तर—ठीक समझे। यों नौ प्रकार हो सकते हैं। अर्थात्—१ संपूर्ण-संपूर्ण, २ सम्पूर्ण-षाड़व, ३ सम्पूर्ण-औड़व, ४ षाड़व-सम्पूर्ण, ५ औड़व-सम्पूर्ण, ६ षाड़व-षाड़व, ७-षाड़व-औड़व, ८ औड़व-षाड़व, ९ औड़व-औड़व, यह भी समझ लो कि इनके अतिरिक्त और अधिक बन भी नहीं सकते।

प्रश्न—यह तो जान गए, लेकिन अभी इतना ही समझ सके हैं कि, हम यदि इस रीति से शुद्ध थाट के प्रकार बनाने लगें, तो वे ९ बनेंगे। फिर इसके बाद ?

उत्तर—इन नौ प्रकारों का उपयोग तुम्हारी समझ में भली भांति नहीं आया। यह भाग उदाहरण लेकर ही समझाता हूँ। पहिला सम्पूर्ण-सम्पूर्ण प्रकार है। यानी इसका आरोह सात स्वरों का और अवरोह भी सात ही स्वरों का होना चाहिए। इस तरह का प्रकार एक ही होगा। यानी सा रे ग म प ध नि, नि ध प म ग रे सा। लेकिन संपूर्ण आरोह तथा षाड़व अवरोह, इस तरह के प्रकार, तुरन्त छः बनेंगे, क्योंकि पहिले सा स्वर के अतिरिक्त अन्य छः स्वरों में से हर बार एक-एक स्वर छोड़ देना होगा। यानी:—

	आरोह	अवरोह
(१)	सा रे ग म प ध नि	× ध प म ग रे सा
(२)	"	नि × प म ग रे सा
(३)	"	नि ध × म ग रे सा
(४)	"	नि ध प × ग रे सा
(५)	"	नि ध प म × रे सा
(६)	"	नि ध प म ग × सा

सातवां प्रकार शक्य ही नहीं है, क्योंकि सा कभी नहीं छोड़ा जाता, इसी तरह षाड़व-सम्पूर्ण प्रकार भी छः ही होंगे। क्योंकि वे ही छः स्वर आरोह में क्रम से छूट जायेंगे।

प्रश्न—यह तो बड़ी मनोरंजक बात है। इस रीति से तो षाड़व-षाड़व प्रकार ६×६=३६ होंगे क्योंकि प्रत्येक षाड़व आरोह से छः षाड़व अवरोह जोड़ दिये जायेंगे।

उत्तर--हां, है तो ऐसा ही। षाड्व-षाड्व प्रकार ३६ ही हैं। कदाचित् संपूर्ण-औड़व प्रकारों को तुम तुरन्त न समझ सको, इसलिए समझाता हूँ।

	आरोह							अवरोह						
(१)	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	×	×	प	म	ग	रे	सा
(२)		”						×	ध	×	म	ग	रे	सा
(३)		”						×	ध	प	×	ग	रे	सा
(४)		”						×	ध	प	म	×	रे	सा
(५)		”						×	ध	प	म	ग	×	सा
(६)		”						नि	×	×	म	ग	रे	सा
(७)		”						नि	×	प	×	ग	रे	सा
(८)		”						नि	×	प	म	×	रे	सा
(९)		”						नि	×	प	म	ग	×	सा
(१०)		”						नि	ध	×	×	ग	रे	सा
(११)		”						नि	ध	×	म	×	रे	सा
(१२)		”						नि	ध	×	म	ग	×	सा
(१३)		”						नि	ध	प	×	×	रे	सा
(१४)		”						नि	ध	प	×	ग	×	सा
(१५)		”						नि	ध	प	म	×	×	सा

इस तरह ये १५ प्रकार बनेंगे। पुनः औड़व-सम्पूर्ण प्रकारों को देखो तो वे भी पन्द्रह ही होंगे, यह तो समझ ही लोगे।

प्रश्न- तब तो फिर मेरा अनुमान है कि बाकी के प्रकार यों बनेंगे। षाड्व-औड़व=९०, औड़व-षाड्व ९०, औड़व-औड़व=२२५ और इसी न्याय से आपके बताये हुए ९ प्रकारों में से ये प्रकार निकल सकेंगे:--

संपूर्ण--संपूर्ण=१
संपूर्ण--षाड्व=६
संपूर्ण-औड़व=१५
षाड्व--संपूर्ण=६
षाड्व--षाड्व=३६
षाड्व--औड़व=९०
औड़व--संपूर्ण=१५
औड़व--षाड्व=९०
औड़व--औड़व=२२५

योग ४८४

उत्तर--तुम बिलकुल ठीक समझे। तुम्हारे इस शुद्ध ७ स्वरों के थाट से ही इतने प्रकार बने हैं, इसी रीति से यदि बारह स्वरों से उत्पन्न होने वाले ७२ थाटों से हम प्रकार संख्या निकालने लगें तो ७२ × ४८४=३४८४८ होगी। ये सब कहने का मतलब इतना ही है कि ये जो औड़व, षाड्व, संपूर्ण, प्रकार हैं, वे सब एक अर्थ में राग ही माने जाते हैं।

प्रश्न—क्या ये सभी राग हमें सीखने हैं ? ये कैसे शक्य होंगे ?

उत्तर—नहीं-नहीं यह बात नहीं है। यद्यपि गणित द्वारा इतने राग सिद्ध होते हैं, परन्तु वे सभी रागत्व प्राप्त नहीं करते। 'राग"—इस शब्द की व्याख्या ग्रन्थों में इस प्रकार की गई है:—

"योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥"

भावार्थः—एक विशिष्ट स्वर समुदाय जो स्वर या वर्ण से सुशोभित होकर मनुष्यों के हृदयों का रंजन करता है उसे पण्डित जन राग कहते हैं। उपरोक्त विस्तृत राग संख्या को इस व्याख्या की कसौटी पर कसने से वास्तविक रागों की संख्या नितान्त मर्यादित हो जाती है।

प्रश्न—उपरोक्त व्याख्या में वर्ण शब्द आया है उसका क्या अर्थ है ?

उत्तर—ग्रन्थों में इसकी व्याख्या यह है "गानक्रियोच्यते वर्णः" अगर हम कुछ भी गाने लगें, तो उसमें ये आरोह, अवरोह अपने आप ही बनने लगेंगे। यदि यह कहा जाय कि इन्हीं की संज्ञा वर्ण है, तब भी काम चल सकता है। वर्ण चार हैं:— १-स्थायी, २-आरोही, ३-अवरोही, ४-संचारी। जहां एक-एक स्वर रुक-रुक कर उच्चरित होता है, वहां स्थायी वर्ण होता है। आरोह तथा अवरोह तो तुम जानते ही हो। बीच ही में आरोह तथा अवरोह इत्यादि करने को संचारी वर्ण मानते हैं। अब तुम्हारे शुद्ध शंकराभरण थाट की ओर हम पुनः अग्रसर हों!

प्रश्न—यह नाम हमारे लिये नया है। शुद्ध स्वरों के थाट को हम बिलावल थाट समझे हुए थे।

उत्तर—तुम्हारा कहना ठीक है। हमारी हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में शंकराभरण थाट को ही बिलावल थाट माना गया है। यह नाम बड़ा पुराना है।

प्रश्न—इन थाटों के नामकरण का भला क्या उद्देश्य है ?

उत्तर—ऐसा करना अतीव सुविधाजनक होता है। किसी थाट का नाम लेते ही फिर उसमें अमुक स्वर तीव्र है, अमुक कोमल है, इस प्रकार के विवरण की आवश्यकता नहीं रहती। यह मालूम होते ही कि, अमुक राग अमुक थाट का है, तुरन्त यह पता चल जाता है कि, उसमें कौन से स्वर लगेंगे। रागों में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को हमारे ग्रन्थों में इसी रीति से समझाया गया है। दूसरी, याद रखने योग्य बात यह है कि इन थाटों के नाम प्रायः रागों के ही नामानुसार हैं। यदि तुम शंकराभरण थाट का अर्थ वह थाट मान लो जिससे शंकराभरण राग उत्पन्न होता है, तब भी काम चल सकता है। निदान यह स्पष्ट है कि, यह तत्व हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति में भी ग्रहीत है। हमने अपने दस थाटों को, जिन दस रागों के नामों से पुकारा है, वे हमारे यहां के नितान्त साधारण राग हैं। यह न समझना कि ग्रन्थोक्त थाटों के भी ये ही नाम दृष्टिगोचर होंगे।

प्रश्न—तब तो फिर यह प्रतीत होता है कि, पुराने नामों में तथा हिन्दुस्तानी नामों में भेद दिखाई देना सम्भव है।

उत्तर—हाँ, वैसे भेद तो दिखाई देगा परन्तु इससे कोई खास अड़चन नहीं है। एक थाट के दो-दो नाम भी हों तो क्या हुआ ?

हमें तो थाट के स्वरों की आवश्यकता है, "लक्ष्य सङ्गीत" में इस प्रकार के दो-दो नाम का स्पष्ट उल्लेख है। इन श्लोकों को तुम कंठाग्र ही कर डालो। देखो—

"कल्याणी मेलको लक्ष्ये ग्रन्थेष्वपि तथैवच।
भवेद्बिलावलीमेलः शंकराभरणाभिधः ॥
खंमाजी मेलकोऽस्माकं ग्रन्थे कांभोजिनामकः।
लक्ष्यज्ञानां भैरवो यस्तत्र मालवगौडकः ॥
भैरव्यासावरीमेलौ तोड़ीभैरविनामकौ।
तोडिव्यपदिष्टमेलो वरालीनामकः पुनः ॥
लक्ष्येऽत्र पूर्विसंज्ञो यस्तत्र स्यात्कामवर्धनः।
मारवाख्यो लक्ष्यगतो ग्रन्थेषु गमनश्रमः ॥
काफिनामाऽऽधुनिकोऽपितत्र श्रीरागमेलकः।
एवं जनकमेलानां संज्ञाःस्यु र्ग्रन्थसंमताः ॥"

ये श्लोक तुम्हें याद रहें तो अच्छा होगा। थाटोल्लेख करते समय इन सभी नामों को मैं फिर से कहूँगा, परन्तु श्लोकों की सहायता से ये नाम शीघ्र याद हो सकेंगे। रागों के थाटों के नामों के विषय में ग्रन्थों में अनेक मतभेद दृष्टिगोचर हो सकते हैं। इन नामों के विषय में अभी विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है। राग शब्द की व्याख्या तुम देख ही चुके हो। राग की पूरी परीक्षा उसके रंजकत्व पर निर्भर है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों ने भिन्न-भिन्न शब्दों में अपनी-अपनी व्याख्या की है, परन्तु उन सभी को उपरोक्त कसौटी स्वीकार है। कौन सा स्वर समुदाय रंजक है, तथा कौनसा नहीं, इसका निर्णय समाज पर अवलम्बित है। इसे तुम समझ ही सकते हो, तथापि पर्याप्त अनुभव से हमारे पण्डितों ने कतिपय बड़े चमत्कार पूर्ण नियमों को निश्चित् किया है।

प्र०—उनमें से कुछ हमें भी बता दें तो अच्छा हो ?

उत्तर—ऐसे दो एक नियमों का यहां उल्लेख करता हूँ। किसी भी राग में पांच से कम स्वर नहीं लगेंगे, यह पहिला नियम समझो। पहिले मैंने रागों के, तीन ही प्रकार किये थे, अर्थात् औड़व, षाड़व, तथा सम्पूर्ण। वे प्रकार इसी नियम के अनुसार थे। हमारी पद्धति में तीन या चार स्वरों के समुदाय को राग नहीं मानते। दूसरा एक नियम यह याद रखो कि किसी भी राग में मध्यम तथा पंचम ये दोनों स्वर वर्जित नहीं किये जाते।

प्र०—यहां, बीच में ही मैं एक अप्रासंगिक प्रश्न पूछता हूँ। रागों के विषय में, हम प्रायः छः राग तथा उनकी तीस अथवा छत्तीस रागिनियों, उनके पुत्रों इत्यादि की बातें सुना करते हैं। इस रचना के विषय में भी क्या आप दो शब्द कहेंगे ?

उ०—इस विषय पर आगे चलकर बहुत कुछ कहना है तथापि अभी Capt. Willard साहेब के "Treatise on the music of Hindustan" इस ग्रन्थ के पृष्ठ ५१ पर इस विषय में क्या लिखा है, यह तुम्हें पढ़कर सुनाता हूँ।

"A that comes nearest to what with us is implied by a mode, and consists in determining the exact relative distances of the several sounds which constitute an octave, with respect to each other, while the Raginee disposes of those sounds in a given succession, and determines the principal sounds. The same That may be adapted to several Raginees by a different order of succession; whereas no Raginee can be played but in its own proper That. It is likewise not a song, for able performers can adapt the words of a song to any Raginee; nor does a change of time destroy its inherent quality, although it may so far disguise the Raginee before an experienced ear as to appear a different one.

After the ancients had made pretty good observations on the firmament of fixed stars, and had as nearly as they could ascertained their respective situations, they thought of reducing them into constellations under the representations of certain familiar objects, in oader to assist the memory to retain them better and easier. To connect a variety of heterogeneous subjects that have no relation with each other under one common head, in order to preserve a concatenation, has been a practice common amongst the oriental nations, and subsists to this very day. The Arabian Nights, the Tooteenamah, the Bahardanish, and a variety of works in all Languages of the east are proofs known to every person who has trod the paths of oriental literature.

It seems probable, therefore, that the author of the Rags and Raginees, having composed a certain number of tunes resolved to form some sort of fable in which he might introduce them all in a regular series. To this purpose, he pretended, that there were six Rags, or a species of divinity, who presided over as many peculiar tunes or melodies, and that each of them had agreeably to Hanuman Five or as Kallinath says, six wives, who also presided each one over her tune. Thus having arbitrarily, and according to his fancy distributed his compositons among them, he gave the names of those pretended divinities to the tunes.

It is also probable that the pootras and Bharyas are not the compositions of the same but some subsequent genius, who

apprehending that their number would be greatly increased by this additional acquisition, or dreading an innovation in the number established by long usage might not be well received, or that some time or other it might cause a rejection of the supernumerary tunes as not genuine, contrived the story that the Rags and Raginees had begotten children. This opinion is strengthened by its being asserted that fortyeight new modes were added by Bhurut."

ये Willard साहेब के उद्‌गार हैं। ये समीचीन हैं अथवा नहीं, इस पर हम अभी विचार नहीं कर रहे हैं। रागरागिनी की रचना को भली भांति समझ चुकने पर तुम उपरोक्त मत पर स्वयं विचार कर सकोगे। मैं सोचता हूँ कि अब हम अपने थाटों की ओर अग्रसर हों तो अच्छा है।

प्रश्न—हां ऐसा ही कीजिए। पहिला थाट तो हमें बताया ही जा चुका है। उसमें सब स्वर शुद्ध ही हैं।

उत्तर—यह ठीक है। तुमने 'स्वरमालिका' का अध्ययन किया है। वह अपने दस थाटों के अनुरोध से लिखी गई है। उसमें थाटों के नामों का उल्लेख दृष्टिगोचर होगा। अब हम यहां उनके विषय में अधिक स्पष्टीकरण कर रहे हैं। तुम्हारे इसी शुद्ध थाट को ग्रन्थों में शंकराभरण कहा गया है, यह मैं बता ही चुका हूँ।

प्रश्न—इस थाट को हम समझ गये, अब अगला समझाइये ?

उत्तर—यह तुम देख ही चुके हो कि पहले थाट में जो ७ स्वर थे वे शुद्ध स्वर थे। दूसरा थाट भी बहुत कुछ वैसा ही है, परन्तु इसमें केवल एक मध्यम स्वर को बदला जाता है। पहले थाट में वह शुद्ध था, यहाँ उसे 'तीव्र' कर दिया जाता है। पहिले मैंने तुमसे यह कहा था कि स्वरों के दो भेद किये जाते हैं, १ शुद्ध तथा २ विकृत। अब इस थाट में हम मध्यम बदल देते हैं, यानी उसे विकृत कर देते हैं। मध्यम की इस विकृति के सम्बन्ध में थोड़ा सा स्पष्टीकरण कर देना उचित है। मैंने तुमसे कहा था कि स्वर को उसके स्थान से विचलित करने से वह विकृत हो जाता है। स्वर दो प्रकार से विचलित हो सकता है; अर्थात उस स्वर को या तो कुछ ऊँचा कर दिया जाय या कुछ नीचा कर दिया जाय। स्वर को उसके शुद्ध स्थान से ऊंचा करने पर उसे तीव्र किया हुआ मानते हैं, यदि उसे नीचा करदें, तो उसे कोमल किया हुआ कहते हैं। यह मैं कह ही चुका हूँ कि षड्ज और पंचम ये दो स्वर विकृत नहीं होते। अब तुम दूसरी महत्वपूर्ण बात यह याद रखो कि हमारी इस हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति में रे, ग, ध, नि इन स्वरों की 'तीव्र' विकृति नहीं मानी जाती। ये स्वर केवल कोमल होते हैं, यह बात तुम्हें कुछ विचित्र सी प्रतीत होगी।

प्रश्न—वस्तुतः विचित्र ही प्रतीत होती है; क्योंकि अभी तो आपने यह कहा था कि स्वर को अपने शुद्ध स्थान से विचलित करने से वह विकृत हो जाता है तथा यह कृत्य दो प्रकार से हो सकता है, अर्थात् उसे कुछ ऊंचा करके अथवा कुछ नीचा करके। यह होते हुए भी अब आप यह कहते हैं कि रे, ग, ध, नि ये 'तीव्र' नहीं होते,

केवल कोमल ही होते हैं। यह तो हम भली भांति नहीं समझे। यह बताइये कि क्या तीव्र रे, तीव्र ग, तीव्र नि, तीव्र ध इत्यादि का प्रयोग नहीं हो सकता ?

उत्तर—इसमें कुछ निराला ही रहस्य है। अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में उपरोक्त तीव्र ग इत्यादि के प्रयोग तुम्हें अवश्य दृष्टिगोचर होंगे, परन्तु तुम्हें यह भी दिखाई देगा कि ये तीव्र स्वर वे ही हैं जिन्हें तुम अभी तक शुद्ध मानते आये हो।

प्रश्न—हमें तो यह सुनते ही भ्रम होता है। एक बार स्पष्ट रूप से यह कहकर कि शुद्ध स्वर को ऊंचा करने से वह तीव्र हो जाता है, फिर तुरन्त ही यह कहना कि शुद्ध स्वर को ही तीव्र स्वर माना जाता है, कदापि सुसंगत नहीं हो सकता।

उत्तर—तुम्हारी शंका बिलकुल ठीक है। किसी सीमा तक इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि जिन्हें हम अभी तक शुद्ध स्वर मानते आये हैं वे प्राचीन ग्रन्थों के शुद्ध स्वर नहीं हैं। यदि तुम दक्षिण की ओर गये और वहाँ तुमने किसी गायक से केवल सात शुद्ध स्वर बजाने के लिये कहा, तो सुनने पर वे तुम्हें बहुत कुछ नवीन से ही प्रतीत होंगे।

प्रश्न—भला यह क्यों ? क्या वह इस बिलावल थाट के ही स्वरों को शुद्ध स्वर मान कर नहीं बजायेगा ? और यदि नहीं तो कौनसे शुद्ध स्वर बजायेगा ?

उत्तर—"सा, म, प" ये तो तुम्हारे ही बजायेगा, लेकिन "रे, ग, ध, नि" ये स्वर तुम्हें अवश्य भ्रम में डाल देंगे। जिन्हें तुम हिन्दुस्तानी पद्धति में कोमल रे, ध मानोगे, उन्हीं को दक्षिण में "शुद्ध रे, ध" माना जायेगा। इतना ही नहीं प्रत्युत जिन स्वरों को तुम अपनी पद्धति में शुद्ध रे, ध, मानते हो, वे ही वहां क्रम से शुद्ध "ग, नि" होंगे।

प्रश्न—अरे ! अरे ! सङ्गीत के सम्बन्ध में उधर कैसा अज्ञान है, परन्तु उन लोगों की ऐसी अनर्गल धारणा कैसे हो गई ?

उत्तर—ठहरो, उतावली में तुम अपना ऐसा मत निश्चित न करो। यह न समझना कि दक्षिण में जो ये स्वर नाम हैं, वे निराधार ही हैं। उन्हें संस्कृत ग्रन्थों का उत्तम आधार प्राप्त है। वे लोग तो उलटे हमारे यहां के नामों को दूषण देते हैं। किन्हीं अन्शों में उनका कहना ठीक ही है।

प्रश्न—तब क्या फिर आपको भी यही प्रतीत होता है कि हमारे इन शुद्ध स्वरों को शास्त्राधार प्राप्त नहीं हैं ? हमारी पद्धति जिन मुख्य सात स्वरों पर अवलंबित है, वे ही यदि निराधार होगए तब फिर हमारे सङ्गीत की सशास्त्रता ही क्या रही ? क्या हमारी पद्धति का समर्थन करने वाले ग्रन्थ कोई नहीं हैं ?

उत्तर—तुम्हें निराश होने का कोई कारण नहीं है। यह बात ठीक है कि जो ग्रन्थ प्राचीन कहे जाते हैं, उनके स्वर—अर्थात् शुद्ध स्वर बिलावल थाट के नहीं हैं, परन्तु यह नहीं है कि हमारी पद्धति को बिलकुल ही आधार उपलब्ध न हो। चतुर पण्डित कृत "लक्ष्यसङ्गीत" नामक जो ग्रन्थ है, वह तुम्हारी ही पद्धति का समर्थन करने वाला है। प्राचीन ग्रन्थों में ही मतैक्य कहां दिखाई देता है ? संगीत पारिजात, संगीत रागतरंगिणी इत्यादि ग्रन्थों के स्वर दक्षिण की पद्धति के स्वरों से भी निराले हैं। मैं तो यह समझता हूँ कि देश-देश के भिन्न-भिन्न भागों में पद्धति का भिन्न-भिन्न होना बिलकुल स्वाभाविक है। भाषा, क्या भिन्न-भिन्न नहीं होती ? ऐसा होते हुए

भी क्या हम इसके लिये दुखी होते हैं ? तात्पर्य यह है कि एक सप्तक में जो १२ स्वर माने गये हैं वे यदि सर्वत्र एक से ही हों, तो उनके नाम गांव के भेद से हमें भ्रम में न पड़ना चाहिये। अस्तु, हमारा विचार-बिन्दु यह था कि हमारे शुद्ध स्वरों का तीव्र, यह नाम किस प्रकार उचित होगा ? अब तुम्हीं देखो कि यदि शुद्ध "रे, ग, ध, नि" स्वर दक्षिण के मत के अनुसार ठीक हुए तो क्या उन स्वरों का तुम्हारा वर्तमान स्थान तीव्र नहीं है ? इस बात पर भली भांति विचार करके देखना—भला ? यह न भूलना कि तुम्हारा "लक्ष्य सङ्गीत" नामक ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है, यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वह पारिजात के बाद का है।

प्र०—बिलकुल ठीक है। आपका कथन संयुक्तिक दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टिकोण से देखने के हमारे स्वर तीव्र ही होंगे, तथा जो इस प्रमाण के पूर्व ही तीव्रत्व प्राप्त कर चुके हैं उनका पृथक तीव्रत्व न मानना चाहिये, यही बात है ना ?

उ०—ठीक समझे ! अब 'मध्यम' यह स्वर पुराना तथा नवीन एक ही है। यह समझकर चलो कि इसके दो नाम हैं। पहिला शुद्ध "म" तथा दूसरा कोमल म। हिन्दुस्तानी पद्धति में कुछ लोग "कोमल म" नाम भी व्यवहृत करते हैं। "तीव्र म" यह स्वर उस "कोमल म" से भी ऊँचा है, इसलिये उसका "तीव्र" यह नाम ठीक ही है। "शुद्ध म" तथा "कोमल म" ये भिन्न स्वर नहीं हैं, यह समझ कर आगे बढ़ना उचित होगा।

प्र०—ठीक है। अब अपने थाटों का वर्णन कीजिये।

उ०—हां, मैं दूसरा थाट समझा रहा था। इस दूसरे थाट में केवल मध्यम तीव्र लिया जाता है, बाकी के छः स्वर बिलावल थाट के ही लिये जाते हैं।

प्र०—इस थाट के कौन से दो नाम रखे जायँगे ?

उ०—इस थाट को कल्याण थाट कहते हैं। यहां दो विभिन्न नाम नहीं हैं। मैं दो नाम बताता हूं, इसका कारण कदाचित् तुम समझ ही गये होगे, तथापि मैं पुनः समझाता हूँ। आगे चलकर तुम्हें ग्रन्थों को भी पढ़ना है। उनमें भी थाट रचना है। उनमें भी थाटों के नाम दिए हुए हैं। यहां हम जिन दस थाटों को स्वीकार करने वाले हैं वे भी ग्रन्थों में उपलब्ध होंगे, परन्तु यह नहीं है कि वहां वे अपनी पद्धति के नामों के अनुसार हों। तथापि यह समझकर कि ग्रन्थों में आए हुए नामों को आजकल के नवीन प्रचलित नामों के साथ बताते जाना सुविधाजनक होगा, मैं उन्हें भी कहता जा रहा हूँ।

प्र०—हां, ऐसा करना उचित होगा। इन्हें इसी प्रकार कहते चलिये। हम उन सबको याद रखेंगे। ग्रन्थों में इस दूसरे थाट का नाम कल्याण है, यह हम समझ गए, अब तीसरा थाट बताइये ?

उ०—तुम्हारे जो मूल सात शुद्ध स्वर हैं, उन्हीं को लेकर, उनमें जो "निषाद" स्वर है उसे "कोमल" कर देना है। इस थाट को हम हिन्दुस्तानी पद्धति में "खमाज" थाट कहते हैं। ग्रन्थों में यह थाट "कांभोजी" नाम से उपलब्ध होगा।

प्र०—इस नाम को हम याद रखेंगे। अब अगला बताइये। आप यह पहले ही बता चुके हैं कि ये थाट हमारी पद्धति के आधार स्तम्भ कहे जाते हैं, क्यों कि आगे चलकर इन्हीं से हमारे अनेक राग निकलेंगे।

उ०—यह तो है ही! ग्रन्थों में इन थाटों का बहुत महत्व माना जाता है। उन्हें राग-जनक मेल कहा जाता है। मैं समझता हूँ कि यह व्यवस्था केवल सङ्गीत की ही नहीं है। इतर शास्त्रों को भी देखो—वनस्पति शास्त्र अथवा प्राणि-शास्त्र ही लो, तो क्या वहां भी मुख्य Orders अथवा वर्ग नहीं माने गये हैं? उत्तम पद्धति को इसी प्रकार सुव्यवस्थित होना चाहिये। दक्षिण में इन मेलों का महत्व अभी तक वैसा ही है, उधर यद्यपि ग्रन्थाध्ययन करने वाले अधिक उपलब्ध नहीं हैं, तथापि यह प्राचीन क्रम अभी तक अव्याहत रूप से वैसा ही चला आ रहा है।

उद्भ्रम तो केवल हमारे उत्तर में ही होता है। जैसा चाहा वैसा मनः पूत गायन, दुर्दैव से आगे चलकर सरल तथा उत्तम पद्धति का भी लोप होता चला गया। कुछ लोग इस स्थिति का कारण यह बताते हैं कि मुसलमानों के हाथ में हमारे सङ्गीत के चले जाने से ही यह दशा हुई है। उनका यह कथन अर्थ शून्य नहीं है। मुसलमानी शासन में मुसलमान गायकों को अधिक प्रोत्साहन, तथा महत्व मिला हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। उन गायकों को संस्कृत ग्रन्थ तथा उनकी सुसंगत पद्धति कौन सिखाता? वे लोग किसी सीमा तक स्वधर्माभिमानी भी थे, अतः शांन्तिपूर्वक हिन्दू संस्कृत पंडितों से इस शास्त्र को सीख लेना संभव भी न था। यह भी कहा जा सकता है कि वह समय इस विषय के लिये अधिक अनुकूल न था। हमारे वर्तमान शासक जिस प्रकार हमारी पुरानी विद्या सीखने की आस्था दिखाते हैं, वैसे मुसलमानी शासक न थे। आज-कल तो विलायत में भी हमारी धर्म पुस्तकों का उत्तम अध्ययन किये हुये अनेक विद्वान मिलेंगे। बादशाही जमाने में ऐसे उदाहरण सुनाई न देते थे। संस्कृत ग्रन्थ लिखने वाला कोई मुसलमान पंडित मुझे तो इतिहास में दिखाई दिया नहीं। मुसलमान गायकों की सङ्गीत में रुचि थी। यह भी कहना पड़ेगा कि उनमें अलौकिक बुद्धि थी। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों को सीखने की उनमें वैसी उत्कंठा न थी। स्वयं तानसेन इत्यादि बड़े-बड़े लोगों को ही लो, उन्होंने ही हमारे आगे कौन से स्मारक ग्रन्थ रखे हैं? यदि हम लोगों में से कोई यह सिद्ध करने को कहें कि उन्होंने सभी ग्रन्थ भली भांति समझ लिये थे तो मानना पड़ेगा कि उसे प्रमाण उपस्थित करने में बड़ी कठिनता होगी। अब कोई यह कहेगा कि हमारे पुराने गीतों में "सप्तसूर, तीनग्राम, एकईस मूरछान, बाईस श्रुति, बारा बिकरत, उनंचास कोट तान' इत्यादि क्या हिन्दी भाषा में दिखाई नहीं पड़ते? यह ठीक है, परन्तु ग्रन्थों को पढ़ने से तुम्हारी समझ में आ जायेगा कि यह ग्रन्थों को समझ लेने का पर्याप्त प्रमाण नहीं है। अस्तुः वे अप्रतिम गायक थे, तथा अब हमें उनके द्वारा रूपान्तरित किया हुआ सङ्गीत ही प्रचार में अधिक मिलेगा, यह बात प्रमाणिक रूप से माननी पड़ेगी। मेरी इच्छा तुम्हें विषयान्तर में ले जाने की नहीं है। ऐसे विषय बड़े विवादग्रस्त होते हैं। जनक थाट तथा उनसे उत्पन्न जन्य राग, यह पद्धति सीखने सिखाने के लिये उत्तम है, इस विषय पर मैं बोल रहा था। इतना ही कहना था कि यह पद्धति अत्यन्त प्राचीन है, और उसी को मैं भी स्वीकार कर रहा हूं।

प्र०—यह हम समझ गए। हमारी समझ में यह भली भांति आ गया है कि यह थाट रचना बड़ी ही कौशलपूर्ण है। क्या हमारे सभी गायक थाटों की

इस पद्धति को भली भांति समझ कर गाते हैं। यदि ऐसा हो तो उनकी बड़ी प्रशंसा ही करनी होगी।

उत्तर—जो तन्तुवाद्यों के बजाने वाले हैं, उन्हें बारम्बार थाट शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, क्योंकि अपने वाद्यों पर भिन्न-भिन्न राग बजाने के लिये उन्हें विभिन्न स्वर रचनायें करनी पड़ती हैं, परन्तु जो लोग केवल गायक ही हैं, वे थाटों के इस झमेले में नहीं पड़ते। वे लोग जिन रागों को गाते हैं, वे अपने आप समुचित थाट के अन्तर्गत आ जाते हैं, लेकिन यदि तुम उन गायकों से इस थाट पद्धति के बारे में कुछ पूछने लगो, तो तुम्हें बहुधा समाधान कारक उत्तर न मिलेगा। इसका कारण केवल यही है कि वे पद्धति के अनुसार सीखे हुये नहीं हैं। अस्तु ! अब तुम्हें चौथा थाट बताता हूं। इस थाट का प्राचीन नाम "मालवगौड़" है। अपनी पद्धति में हम इसे भैरव थाट कहेंगे। ध्यान रखने के लिये ही मैं तुम्हें थाटों के ये दो-दो नाम बता रहा हूं। इससे एक और भी लाभ होगा। यह बात प्रसिद्ध ही है कि हमारा प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थों में वर्णित है। हिन्दुस्तानी सङ्गीत तो नया ही है। अर्थात् पिछले दो ढाई सौ वर्षों में, विद्वान अथवा अज्ञान गायकों ने उसमें बड़ा उलट फेर कर डाला है, यह बात अब प्रायः सभी को स्वीकार है। अतः स्पष्ट है कि हमारे नवीन सङ्गीत का प्राचीन सङ्गीत से मेल बैठना बहुत कम संभव है। तथापि मेरा विचार है कि यदि किसी के मन में इस नवीन सङ्गीत की पुराने सङ्गीत से तुलना करने की इच्छा हुई तो इन थाटों के पुराने तथा नये काम जानना उपयोगी होगा।

प्रश्न—यह बिलकुल ठीक है, यह बात पहले ही हमारी समझ में आ गई थी। ये नाम बड़े उपयोगी होंगे। इसका ज्ञान होने से यह तुरन्त पता चल जायेगा कि हमारी प्रचलित पद्धति में जो रागस्वरूप हैं, उन्हें प्राचीन ग्रन्थों में कहां ढूंढ़ा जा सकता है। यही बात है न ?

उत्तर—ठीक समझे। इस भैरव थाट के "रे" और 'ध' केवल ये दो स्वर कोमल हैं। बाकी के सब शुद्ध ही हैं। इस थाट के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पांचवे थाट का स्वरूप भी कुछ इसी की तरह है, इसलिये उसे भी यहीं कह देता हूँ। भैरव थाट में जिस प्रकार हमने रे, ध, इन स्वरों को कोमल लिया है, उसी तरह इस पांचवे थाट में भी वे कोमल हैं। भैरव में केवल मध्यम स्वर कोमल अथवा शुद्ध है, और इस थाट में वही तीव्र है। यह बात नहीं है कि इस थाट को उत्पन्न करने के लिये पहले भैरव थाट की स्थापना करनी पड़े। शुद्ध स्वरों का थाट लेकर उसमें रे, ध, कोमल और 'म' तीव्र करने से यह पांचवां थाट बनता बनता है। इसका यही वर्णन ठीक होगा। इस थाट के प्राचीन नाम 'रामक्रिया' 'कामवर्धनी' हैं। हमारी अर्वाचीन पद्धति में इसे पूर्वी थाट कहते हैं। हमारी पद्धति में भैरव और पूर्वी थाट बड़े महत्व पूर्ण माने जाते हैं। इस थाट को कुछ लोग दीपक थाट भी कहते हैं। दक्षिण में इस थाट को कामवर्धनी नाम से पहिचानते हैं। यहां मैंने दो से भी अधिक नाम बताये हैं। इससे भ्रम में न पड़ना।

प्रश्न—नहीं-नहीं, हमें तो इस प्रकार का अभिज्ञान महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। अब अगला थाट बताइये ?

उत्तर—पांचवें थाट में तुमने रे, ध कोमल और मध्यम तीव्र लिये थे। छटवें थाट में रे कोमल तथा म तीव्र लेना है। धैवत शुद्ध ही रहने देना है। इस थाट को प्राचीन नाम से 'गमनश्रम" अथवा "गमकक्रिय" कहेंगे, तथा हिन्दुस्तानी पद्धति में इसका नाम "मारवा" मानेंगे। मैं जिन छः थाटों का उल्लेख कर चुका हूँ, उनमें से पहिले तीन, अर्थात् बिलावल, कल्याण तथा खमाज में रे, ध ये स्वर तीव्र थे, और ग, तो तीनों ही थाटों में तीव्र था। अगले तीन थाटों में "रे" कोमल है, इस बात को ध्यान में रखना। इसका उपयोग आगे चल कर शनैः-शनैः विदित होगा। यह ठीक है कि तुमने स्वरमालिका का अध्ययन किया है, उसमें थाटों का क्रम कुछ भिन्न है, परन्तु यहाँ हम इसी क्रम से आगे चलेंगे।

प्रश्न—ठीक है। इन अन्तिम तीन थाटों में ग, नि ये स्वर तीव्र थे, यह हमने देखते ही ध्यान में रख लिया था। अब सातवां थाट लीजिये।

उत्तर—सातवां थाट हम भैरवी का ही मानेंगे। इसमें सभी स्वर कोमल हैं, सब स्वर कोमल कहने से यह न समझना कि सा और प भी कोमल हैं। ये तो अचल माने गये हैं। यह तुम्हें विदित ही है कि मध्यम कोमल का अर्थ शुद्ध से भिन्न नहीं है। यदि तुम इस थाट की ग्रन्थों में खोज करो तो तुम्हें "तोड़ी" नाम दृष्टिगोचर होगा। यहाँ तुम्हें एक बात ध्यान में रखनी होगी। अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में हम जो दस थाट कायम कर रहे हैं। उनमें भी "तोड़ी" नाम का एक थाट है। वह भैरवी थाट से भी अलग है। ग्रन्थों में तोड़ी थाट में रे ग ध नि ये स्वर कोमल हैं। प्रचलित तोड़ी थाट में ऐसा नहीं है। सारांश, इस बात को न भूलना कि ग्रन्थ गत थाट तथा प्रचलित थाट इन दोनों में भेद है। यहां यह कह देना चाहता हूँ कि दाक्षिणात्य पद्धति में ग्रंथोक्त तोड़ी थाट अभीतक प्रचलित है।

प्रश्न—तब क्या आपके कहने का तात्पर्य यह है कि उधर का सङ्गीत बहुतांश में ग्रंथों के अनुसार है? आपने यह भी कहा था कि ग्रन्थोक्त स्वर उधर यथायोग्य रीति से प्रचार में हैं। यदि यही बात है तो उधर के लोगों का सशास्त्र होने का दावा अथवा अभिमान निराधार नहीं कहा जा सकता।

उत्तर—उनका यह दावा किन्हीं अन्शों में न्यायपूर्ण ही कहा जायगा, तथापि यह न समझना कि हमारे यहां का सङ्गीत बिलकुल ही कम कीमत का है। यह बात नहीं है कि हमारे सङ्गीत के समर्थक पर्याप्त ग्रन्थ न हों। रागतरंगिणी, पारिजात, लक्ष्य सङ्गीत, इत्यादि हमारे लिये उपयोगी होंगे। इसी प्रकार भावभट्ट पण्डित के ग्रन्थ भी तुम्हारी ही तरफ के हैं। जब दक्षिण के लोगों की भाषा उनके आचार-विचार इत्यादि सभी बातें अलग हैं, तो फिर उनका सङ्गीत भी अलग हो, तो इसमें नवीनता कैसी? यदि उनके सङ्गीत की कुछ बातें हमारे लिये ग्रहण करने योग्य हैं तो हमारे सङ्गीत की बहुत सी बातें उनके लिये भी ग्रहण करने योग्य हैं।

प्रश्न—यह ठीक है। अब हमें आठवां थाट बताइये?

उत्तर—आठवां थाट हम आसावरी का मानेंगे। बहुमत के कारण ही हम इस नाम को पसन्द कर रहे हैं। आसावरी को भैरवी थाट का राग मानने वाले

लोग भी हैं। यथापि भैरवी और आसावरी के स्वरों में भेद मानने वाले लोग भी दिखाई देते हैं। इन दोनों थाटों में रिषभ स्वर का भेद है। आसावरी में रिषभ तीव्र मानते हैं तथा भैरवी में उसे ही कोमल मानते हैं। इस थाट के विषय में यदि तुम ग्रन्थों में खोज करने लगो तो वहां हमारे आसावरी थाट का भैरवी अथवा नटभैरवी नाम दिखाई देगा। यहां तुम्हें इतना ही याद रखना है कि हमारे प्रचलित आसावरी थाट में, रे तीव्र तथा ग, नि ध ये स्वर कोमल माने गये हैं। यह आसावरी थाट बड़े महत्व का है तथा वैसा ही यह लोकप्रिय भी है।

प्र०—यह समझ गये। अब अगला लीजिये। आसावरी थाट की स्वरमालिका हमारी समझ में भली भांति आ गयी है।

उ०—नवें थाट में निषाद तथा गन्धार ये स्वर कोमल हैं। यदि आसावरी थाट से इस थाट को उत्पन्न करना हो तो यह करना होगा कि वहां जो धैवत स्वर कोमल था उसे शुद्ध अथवा तीव्र ही रहने दो, तो यह थाट बन जायेगा। ऐसा करने से इस थाट में "ग, नि" केवल ये ही दो स्वर कोमल, तथा बाकी के सब शुद्ध रहेंगे। हमें इस थाट के अनेक राग प्रचार में मिलेंगे। इसे "काफी" का थाट कहते हैं। ग्रन्थों में इस थाट को "श्री" राग का थाट अथवा कुछ ग्रन्थों के अनुसार 'हरप्रिय' थाट कहा है। दक्षिण की ओर यही नाम प्रचलित है।

प्र०—यह थाट हमारी समझ में भलीभांति आ गया, अब दसवां बताइये?

उत्तर—दसवां थाट "तोड़ी" का है। इसके विषय में मैं पहिले भी कुछ कह चुका हूँ। इस थाट में भैरवी थाट की तरह "रे, ग, ध" ये तीन स्वर कोमल हैं, तथा "म" और "नि" ये स्वर तीव्र हैं। इसका गाना कुछ कठिन पड़ता है। तुम्हें इस थाट का अनुभव हो ही गया है। स्वारमालिका में इस थाट की स्वरमालिका सीखते समय तुम्हें अधिक प्रयास पड़ा होगा। है कि नहीं?

प्र०—हां वह हमें कठिन ही प्रतीत हुई। "तीव्र म" तो बड़ा कठिन लगा। आश्चर्य यह है कि "कल्याणी" पूर्वी इत्यादि थाटों में यही "तीव्र म" हमें इतना कठिन प्रतीत न हुआ था, परन्तु "तोड़ी" के थाट की स्वरमालिका गाते समय हमारे शिक्षक हमारी अनेक भूलें बताते थे। यह तो हम न समझ सके कि इस थाट के स्वरों को गाना इतना कठिन क्यों प्रतीत होता है, परन्तु यह चमत्कारपूर्ण तो अवश्य ही है। यह भी समझ गये हैं कि इस थाट का अर्वाचीन नाम तोड़ी है, परन्तु इसका प्राचीन नाम क्या है?

उ०—प्राचीन नाम "वराली" अथवा "पन्तुवराली" है। यह नाम ग्रन्थों में तथा दक्षिण में अभी तक प्रचलित है। अब यह मान कर कि ये दस थाट तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आ गए हैं, मैं आगे चलूंगा। इन "थाटों" को हम अपनी प्रचलित हिन्दुस्तानी पद्धति में संगृहीत रागों के जनक मानेंगे। यह व्यवस्था प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार हो या न हो, परन्तु तुम्हें इसे स्वीकार करके ही आगे बढ़ना है।

हिन्दुस्तानी पद्धति के प्रचलित सभी राग भली भांति समझ लिये जांय यही तुम्हारा अन्तिम साध्य है। यह उत्तम तथा शीघ्र समझ में आ जाने वाली पद्धति से हो जाय तो कार्य भाग को पूरा हुआ समझना चाहिये। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में भिन्न-भिन्न पद्धति होती ही हैं। जब तुम प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करोगे तो तुम्हें ऐसी अनेक पद्धतियां दृष्टिगोचर होंगी। तथापि प्रत्येक ग्रन्थकार का हेतु अपने समय के सङ्गीत को पद्धति से उपस्थित करना होता है। बस यही तुम्हें सब जगह मिलेगा। अब आगे मैं तुम्हें यह बताने वाला हूं कि इन प्रत्येक थाटों से राग कैसे उत्पन्न होते हैं, यह कुछ निराला ही तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है।

प्र०—यह क्या आपने हमें भलीभांति समझा नहीं दिया है? प्रत्येक थाट को लेकर उसके स्वरां में से एक या दो निकाल कर आरोह तथा अवरोह करते जाने से, हजारों राग बनना सम्भव है, यह हम बहुत अच्छी तरह समझ गये हैं।

उ०—यह ठीक है, परन्तु इन रागों के महत्व के विषय में कुछ अन्य बातों का ज्ञान भी तुम्हें होना चाहिये। थाटों के स्वरों को निकाल कर ऊपर, तथा ऊपर से नीचे कहने से ही से राग तैयार न होंगे। यह तो निर्विवाद है कि स्वरों को वर्जित करने के नियमों का सदैव पालन करना पड़ता है, परन्तु यही सब कुछ नहीं है। यह मैंने कहा ही था कि राग में रंजकत्व आना चाहिये, इस बात का तुम्हें स्मरण ही होगा। यह भी मैं बता चुका हूं कि गणित से जो राग सिद्ध होते हैं, उनमें से सभी वास्तविक अर्थ में राग नहीं हैं। यद्यपि रागों के बीज ये ही हैं, परन्तु खमाज में खरे राग थोड़े से ही हैं। यह निश्चित करना बड़ी कुशलता का काम है कि कौन से स्वर समुदाय लोकप्रिय होंगे, और फिर वे किस रीति से गाये जाने पर लोकप्रिय होंगे, यह मालूम होना भी बड़ा महत्वपूर्ण है। अब मैं तुम्हें इसी विषय में कुछ बताने वाला हूँ। ग्रन्थों में राग उत्पन्न करने के भिन्न-भिन्न ढंग बताए गए हैं। जैसे:—

"हिन्दुस्थानीयपद्धत्यां मार्गाः स्युरपरा अपि।
निरूपिता लक्ष्यविद्धी रागोत्पादनहेतवः॥
आरोहणे चालितास्ते स्वरा नस्युर्विलोमके।
अथवा तद्विपर्यासो जनयेद्रागभेदकम्॥
स्याद्रागोचितस्वरेषु विशिष्टा वक्रतापुनः।
समानस्वरेष्वथवा वादिभेदाद्भवेद्भिदा॥
नरागाणां नतालाना मंतः कुत्रापिविद्यते।
इति यच्छ्रूयते लोके केवलं तद्यथार्थकम्॥"

थाट तो तुम्हें केवल यह बताता है कि राग में कौन से स्वर लगेंगे। इसके बाद स्वर कैसे लगाये जांय यह बात आरोह-अवरोह से विदित होगी। फिर आरोह-अवरोह के भी शुद्ध और वक्र इस प्रकार भेद किये जाते हैं। क्रमशः स्वर कहते हुए

आगे चलें तो उसे शुद्ध आरोह कहते हैं। कुछ स्वरों को कहते जाने पर कुछ पीछे लौट कर फिर आगे बढ़ कर आरोह पूरा करें तो उसे वक्र आरोह समझते हैं। यही न्याय अवरोह के विषय में समझना चाहिये। तुम्हें आगे चल कर विदित होगा कि ये कृत्य बड़े महत्वपूर्ण हैं।

प्रश्न--इस तरह से देखें तब तो असंख्य राग होंगे, है कि नहीं ?

उत्तर—इसी से तो ऊपर के अन्तिम श्लोक में कहा है "न रागाणां" यह केवल आरोह व अवरोहों की वक्रता से ही है, परन्तु स्वर एक से ही होने पर वादी-संवादी स्वरों की सहायता से दो राग प्रथक हो सकते हैं, यह तुम आगे चलकर समझोगे। इसलिये अब मेरे ध्यान में यह आया है कि वादी. सम्वादी, अनुवादी, विवादी ये नाम तुम्हें अच्छी तरह से समझा दूं। इसका कारण यह है कि आगे राग वर्णन समझाने में इन नामों का बारम्बार उपयोग किया जायेगा।

प्रश्न--यह बात है तब तो अच्छी तरह समझा दीजिये। ये कैसे नाम हैं ?

उत्तर—ये संज्ञायें स्वरों की ही हैं। स्वरों के ये चार प्रकार अथवा वर्ग हैं। विकृत व शुद्ध, ऐसे जो तुमने बारह स्वर सीखे हैं, उन्हीं में ये चार और जोड़ दिये जायेंगे, ऐसा न समझना। ये वर्ग कुछ भिन्न ही धारणा पर हैं। ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में यह कहा है:—

प्रतिरागे लक्षितव्या श्चतुर्विधाः स्वरा बुधैः।
वादिसंवाद्यनुवादिविवादिनश्च नित्यशः ॥
वादीस्वरस्त्वेक एव संवाद्यपि तथैव च।
शेषाणामनुवादित्वं विवादी वर्जितस्वरः ॥

प्रत्येक राग में चार प्रकार के स्वरों की ओर सदैव ध्यान देना चाहिये। ये वादी, सम्वादी, अनुवादी तथा विवादी हैं। प्रत्येक राग का वादी एक ही होता है। इसी प्रकार संवादी स्वर भी एक ही होता है। इन दोनों स्वरों को छोड़कर शेष सब अनुवादी स्वर समझने चाहिये। राग में न लगने वाले स्वर विवादी स्वर हैं। ऊपर के श्लोक का यही भावार्थ हुआ। उपर्युक्त प्रत्येक स्वर के विषय में अब हमें विचार करना है। राग में कम से कम पांच स्वर तो होने ही चाहिये, यह हमारे संगीत का एक नियम है। यह मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि रागों के तीन वर्ग औड़व, षाड़व, तथा सम्पूर्ण माने गये हैं। अभी मैं यह भी बता चुका हूँ कि एक राग का वादी स्वर भी एक ही होगा। अब इससे तुम सरलता पूर्वक समझ लोगे कि राग में लगने वाले पांच, छैः अथवा सात स्वरों में से कोई एक वादी स्वर हो जायेगा। वादी का अर्थ दावा करने वाला नहीं है "वदतीति वादी" मैं अमुक राग हूँ यह बात जो स्वर बतलाता है, वह वादी है। यह अर्थ समझना चाहिये। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की मुख्य परख निर्भर है। ऐसा मानते हैं कि वह पूरे राग का राजा है। अनेक बार

उसे अंश स्वर भी कहते हैं। जब वादी स्वर का इतना अधिक महत्व है तो राग में जहाँ तहाँ उसका प्राधान्य दिखाई देना स्वाभाविक ही है। इस महत्व को कुशल गायक कैसे-कैसे प्रगट करते हैं, इसे ध्यान में रखना चाहिये। ऐसा वे अनेक युक्तियों से प्रगट करते हैं, प्रयोग में वादी स्वर अनेक बार लाया जाता है। कभी बड़ी देर तक उसे लम्बा कर देते हैं, कभी-कभी उसे गीत के महत्वपूर्ण भाग में लाते हैं, ऐसी अनेक युक्तियों से वादी प्रदर्शित किया जाता है। भिन्न-भिन्न राग गाते समय, मैं वादी कैसे दिखाता हूँ, इसे अच्छी तरह देखने से तुम्हें ज्ञान हो जायेगा। जिस गायक को इस वादी स्वर के महत्व विदित नहीं होते, उसे अपने राग में रंजकत्व का संभालना नहीं आता। ऐसे भी बहुत से गायक तुम्हें देखने में आयेंगे। ऐसा नहीं है कि यह कृत्य कठिन हो, तुम्हारे समान सुशिक्षितों की यह तुरन्त समझ में आ जायेगा। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में वादी स्वर की व्याख्या भिन्न-भिन्न शब्दों से की गई है, वह यह है।

"प्रयोगे बहुलः स्वरः;" "वादी राजाऽत्र गीयते"।
"सप्तस्वराणां मध्येऽपि स्वरे यस्मिन्सुरागता" ॥
स जोवस्वर इत्युक्तो ह्यंशो वादीति कथ्यते।
"प्रयोगे बहुधावृत्तः स्वरो वादीति नामकः ॥
रागस्य जीवभूतोऽसौ मन्यते गानकोविदैः।
"प्रत्येकस्मिंस्तु रागेऽसौ वादी ह्यति महत्ववान्" ॥
निश्चायको रागनाम्नः समयस्यापि व्यंजकः।

इस व्याख्या का मर्म एक ही है, केवल भाषा का भेद है।

प्रश्न—अब हमें वादी स्वर की अच्छी कल्पना हो गई है। आप संवादी के विषय में समझावें।

उत्तर—सम्वादी स्वर का अर्थ है—राग में लगने वाला एक ऐसा स्वर जो महत्व में केवल वादी की अपेक्षा ही कम हो, परन्तु उस राग के अन्य सभी स्वरों की अपेक्षा अधिक महत्व का हो। प्रत्येक राग के वादी और सम्वादी ये दो बड़े आधार स्तम्भ मानें तब भी ठीक है। इसी पर सम्पूर्ण राग की स्थिति है। राग में लगने वाले थाट के यदि दो भाग किये जायें, तो ये दो स्वर इसके दो भागों में रहेंगे। एक दूसरे की बड़ी ही मदद करता है। यह बात प्रत्यक्ष करके दिखाने से तुम्हारी समझ में अच्छी तरह आयेगी। जब मैं ये बातें करके दिखाऊंगा तब तुम्हारी बुद्धि अधिक विकसित होगी। वादी व सम्वादी इन स्वरों का एक दूसरे के निकट होना कभी शोभनीय नहीं है, अतः हमारे विद्वान पण्डितों ने एक नियम बना दिया है, और वह यह है कि वादी से सम्वादी बहुधा पांचवां होना चाहिए।

प्रश्न—वाहवा, ये कैसा सरल नियम बताया! इस प्रकार से 'सा' का संवादी 'प', 'रे का ध', 'ग का नि', यह निश्चित होगा। है न यही बात?

उत्तर—बिलकुल ठीक है। नियम ऐसा ही है। कहीं-कहीं इसका चाहे अपवाद हो, पर तुम नियम ठीक समझ गये हो।

प्रश्न—इस नियम में अपवाद कैसे होंगे, यह समझ में नहीं आया।

उत्तर—तो समझो, 'सा रे ग प ध' इस प्रकार तुम्हारा पांच स्वरों का औड़व राग है। अब मानलो तुम्हें इसमें ग स्वर को वादी करना है, अब तुम इसमें अपना नियम लगाओ तो देखूँ।

प्रश्न—ठीक है, "सम्वादी के लिये हमें नि' स्वर चाहिये लेकिन वह वर्जित है यहां क्या करना चाहिए ?

उत्तर—यही मैं अभी बताने वाला था। ऐसे प्रसङ्ग में नियमानुसार आने वाले स्वर के निकट का, अर्थात् वादी से चौथा अथवा छटवां सम्वादी समझो। यद्यपि ये किसी ने स्पष्ट नहीं कहा है कि इन दोनों में से कौनसा लिया जावे। तथापि वादी से सम्वादी दूर होना चाहिए, इस तत्व को याद रखो तब भी काम चल सकता है। अभी मैंने वादी-सम्वादी स्वरों के विषय में दो नियम बताए हैं, उन्हें साधारण समझना। प्रचार में तो ऐसे भी प्रकार तुम्हें दिखाई देंगे कि धैवत का सम्वादी रिषभ, रिषभ का पंचम, षड्ज का मध्यम, मध्यम का षड्ज, इत्यादि २।

प्रश्न—यह हम समझ गए, अब अनुवादी के विषय में बताइए ?

उत्तर—हां ! औड़व, षाड़व व सम्पूर्ण ये राग के तीन वर्ग माने गये हैं। अर्थात् प्रत्येक राग में कम से कम पांच स्वर आने चाहिये, ये तुम्हें मालुम ही है। इन पांच स्वरों में से दो स्वरों की व्यवस्था तो तुमने करली अर्थात् एक को वादित्व प्रदान किया और दूसरे को सम्वादी माना, तथापि बाकी के स्वर रह जाते हैं। ठीक है न ? उन्हीं को अनुवादी स्वर कहते हैं। केवल वादी और सम्वादी स्वरों से राग शक्य नहीं है। हीरे के लिये जिस प्रकार कुन्दन होता है तथा उसके योग से जिस प्रकार उसकी शोभा बढ़ती है, उसी प्रकार यह अनुवादी स्वर भी वादी और सम्वादी इन मुख्य स्वरों की शोभा बढ़ा देते हैं। गायक वर्ग वादी अथवा संवादी के साथ भिन्न-भिन्न अनुवादी स्वरों के समुदायों को जोड़कर राग विस्तार करते हैं तथा ऐसा करके श्रोताओं के हृदय को आल्हादित करते हैं।

प्रश्न—विवादी स्वर का हम क्या अर्थ समझें ?

उत्तर—यह न समझना कि यह स्वर राग में नियामानुसार लगता है। रागमंजरी में विवादी स्वर की व्याख्या स्पष्ट इस प्रकार दी हुई है:—"विवादी तु सदा त्याज्यः" यह अर्थ आजकल भी प्रचार में है, इसमें सन्देह नहीं। तुम भी इसे ऐसे ही स्वीकार करलो। "संगीतसार कलिका" नामक ग्रन्थ में वादी-सम्वादी इत्यादि स्वरों के विषय में यह कहा है:—

"रागानुरागसंपत्तिं वादी वदति राजवत् ।" संवादी
स्वरः संवादात् मंत्रीवत्, रागसंपत्तिं वदति; अनुवादी
तुभृत्यवत्; विसम्वादाय रागेषु शत्रुतुल्याः विवादिनः;

प्राचीन ग्रन्थों से यह प्रकट होता है कि इन अनुवादी तथा विवादी स्वरों के विषय में प्राचीनकाल में कुछ निराली ही धारणा थी, जिस उद्देश्य से अभी हम ग्रन्थों के विषय में कुछ नहीं कह रहे हैं, उसी अर्थ से इस विषय में भी हम नहीं जांयगे। जब मैं तुम्हें रत्नाकर इत्यादि ग्रन्थों को समझाऊंगा, तब इस विषय पर भी जरूर कहूंगा। "लक्ष्यसङ्गीत" कार को देखो तो उसने भी ऐसा ही कहा है:—

"विवादिस्वरव्याख्याने रत्नाकरप्रपंचितम् ।
रहस्यं किंचिदप्यासीत् भिन्नं मर्मविदां मते ॥

उसका यह कहना युक्तियुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि रत्नाकर में विवादी स्वर का वर्णन करते हुए शार्ङ्गदेव पण्डित ने यह कहा है कि:—

"श्रुतियो द्वादश अष्टौवा ययोरंतरगोचराः ।
मिथः सवादिनौ तौ स्तो, निगावन्यविवादिनौ ॥
रिधयोरेव वा स्यातां तौ, तयोर्वा रिधावपि ।
शेषाणामनुवादित्वं वादी राजाऽत्र गीयते ॥

प्र०—तब तो फिर प्राचीनकाल में रागों में विवादी स्वर दिखाया जाना सम्भव रहा होगा ?

उ०—यद्यपि इस प्रश्न का पूर्ण समाधानकारक उत्तर देना सम्भव नहीं है, तथापि तुम्हें ग्रन्थों के दो एक मत बताता हूँ।

"विदग्धा गायका गीते विवादिनमपिस्वरम् ।
ईषत्स्पर्शचालनेन प्रदर्शयंति लक्ष्यके ॥
प्रायः स्वरं विवादिनं योजयंत्यवरोहणे ।
न तच्छास्त्रेपि दोषार्हं ग्रन्थेषु नियमो ह्यसौ ॥
सुप्रमाणयुतो मन्ये विवाद्यपि सुरक्तिदः ।
यथेषत्कृष्णवर्णेन शुभ्रस्यातिविचित्रता" ॥

योरोपियन संगीत के विषय में मेरा ज्ञान मर्यादित है, परन्तु Prof. Blasserna की Theory of Sound नामक पुस्तक पढ़ते हुए मैंने एक जगह यह पढ़ा है:—

Up to this point only the case of consonant chords has been considered, but music would be very poor if it were limited to these, and to the few rotes that compose them. It may be further said that music formed only of consonant chords would be extremely monotonus and quite without vigour; it would be a sort of lullably only intended to catch the ear without touching the mind, and without expressing anything.

To increase their resources, and to acquire greater vigour and strength in the expression of their ideas, musicians have been obliged to have recurse to dissonant notes and chords.

Strictly speaking, much greater satisfaction is felt when a dissonant chord is resolved into a consonant chord than when nothing but consonant chord has been heard. It is the force of contrast which produces these sensations in us, just as we doubly appreciate a calm after a storm. This is exactly the idea which has unconsciously guided music up to our time, Its strength lies in dossonances, if they do not last too long and they be at last resolved into consonant chords.

योरोपियन सङ्गीत में Harmony नामक जो भाग है, वैसा हमारे यहां नहीं है, ये ठीक है, तथापि प्रयोग में विवादी स्वर का क्वचित उपयोग हो सकता है या नहीं ? इस प्रश्न पर, मेरा अनुमान है कि उपर्युक्त उद्धरण पर्याप्त प्रकाश डालेगा । आजकल हमारे गायक विवादी स्वर का बहुत ही थोड़े परिमाण में प्रयोग करते हैं और हम कभी-कभी उनके इस कृत्य की लोगों के द्वारा की हुई प्रशन्सा भी देखते हैं। परन्तु यहां हमें इतना गहरे में जाने की आवश्यकता नहीं है। इन वादी-सम्वादी स्वरों के महत्व को सरल घरेलू उदाहरण के द्वारा समझाने के हेतु से यह कहा जा सकता है कि जैसे किसी सभ्य कुटुम्ब में घर का बड़ा जिस प्रकार सभी में श्रेष्ठ होता है तथा उसका बड़ा लड़का उसकी अपेक्षा महत्व में कम परन्तु घर के इतर लोगों की अपेक्षा अधिक ही होता है; इसी प्रकार इस राग रूपी घर में वादी-सम्वादी इत्यादि स्वरों की स्थिति समझनी चाहिये। घर में जिस प्रकार नौकरों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमें इन अनुवादी स्वरों की अपेक्षा है। यह नौकर सदैव ऐसे होने चाहिये जो गृहपति के इष्ट कार्य को पूरा कर सकें, यही बात अनुवादी स्वरों के लिये है। चुगलखोर अथवा वाचाल नौकर से काम नहीं चलता। ऐसे ही विवादी स्वर को समझना चाहिये। विवादी स्वर अत्यन्त ही थोड़े प्रमाण में ग्रहण करने पर शोभित होता है, इस मत को स्वीकार करके यदि हम अपने उदाहरण में इस तत्व का समावेश करें तो यह कहेंगे कि हिन्दू कुटुम्ब में कहीं-कहीं मुसलमान नौकर भी होते हैं, परन्तु उन्हें कहां रहना चाहिये

तथा कितनी स्वतन्त्रता दी जानी चाहिये, यह नियमित करना पड़ता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह उदाहरण वैसे ही रख दिया है। तुम्हें स्वरों के चार वर्ग समझ में आ जांय, बस ! काम पूरा हुआ।

प्रश्न—यह हम अच्छी तरह समझ गये। रागों के विषय में तो हमें बहुत सी बातें विदित हो गई हैं। आपने दस थाटों की योजना अच्छी की, इन थाटों से उत्पन्न होने वाले आप हमें कुल कितने राग सिखायेंगे ?

उत्तर—तुम्हें यह विदित होगा कि हमारे यहां प्रचार में डेढ़सौ से अधिक राग कोई नहीं गाता, इससे मैं तो यही समझता हूँ कि इतने राग यदि तुमने समझ लिये तो बहुत हैं।

प्रश्न—पहिले आपने आरोह व अवरोह की सहायता से रागों की संख्या बहुत अधिक बनादी थी, तब भी प्रचार में रागों की संख्या इतनी थोड़ी है ? "रंजयतीतिरागः" इस नियम के अनुसरण से ही सम्भवतः यह कमी हो गई है।

उत्तर—तुमने ठीक कारण समझा एक थाट में ४८४ राग ! इस दृष्टि से केवल १० थाटों के ही चार हजार से ऊपर राग होंगे। परन्तु हमारे विद्वान पण्डितों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के नियम लगा दिए हैं इससे समाज का रंजन करने वालों की संख्या बहुत ही थोड़ी हो गई है। लक्ष्यसङ्गीत ग्रन्थ भी हिन्दुस्तानी पद्धति का ही है उसमें भी डेढ़सौ से अधिक राग नहीं हैं।

प्रश्न—मैं तो कहता हूँ कि डेढ़ सौ रागों की संख्या भी बहुत बड़ी है। इतने ही राग हमें आजायें तो बहुत हैं। यदि कभी इनसे भी अधिक रागों के स्वरूपों को जानने की लालसा हुई तो हमें राग उत्पन्न करने के तत्वों का पता तो चल ही गया है। परन्तु विवादी स्वर के विषय में आप पहले जो कह रहे थे, उसे सुनकर मन में सहज ही एक प्रश्न उत्पन्न होता है, और वह यह है कि, हम गायकों के गाने तो प्रायः सुनते हैं परन्तु उन गायकों को देखो तो उनमें से बेचारे बहुत से बिलकुल अशिक्षित दिखाई देते हैं। आप आरम्भ से ही हमें नाना प्रकार के नियम इत्यादि बता रहे हैं तथा दावे के साथ यह कह रहे हैं कि उनका भली भांति पालन किये बिना राग उत्तम रीति से नहीं सध सकते। तब फिर इन बेचारे अज्ञ गायकों ने उन कठिन नियमों का अभ्यास किस तरह किया होगा, यह बड़ी विचित्र बात है। उन्हें रागों के इन तत्वों को किसने तथा किस प्रकार समझा दिया ? गाते-गाते, वादी-सम्वादी स्वरों के परिमाण को भली प्रकार संभालना, वैसे ही योग्य अनुवादी स्वरों की योजना कर देना, विवादी स्वर का योग्य स्थान पर योग्य रीति से उपयोग करना, इत्यादि काम क्या कठिन नहीं है ? वे यह सब कैसे करते हैं ?

उत्तर—तुमने यह पूछकर बड़ा अच्छा किया। देखो ! हमारी तरफ क्या सभी लोग मराठी भाषा नहीं बोलते ? उनके बोलते समय क्या व्याकरण के बड़े-बड़े प्रयोग नहीं आ जाते ? तथापि इन लोगों ने विद्यालयों में जाकर व्याकरण कहां

सीखा है ? इसी प्रकार केवल अभ्यास के बल पर गायक लोग इन बातों को सीख लेते हैं। इन सभी को राग-तत्वों का ज्ञान हो यह बात नहीं है। यह भी स्पष्ट है कि जिन्हें इनका ज्ञान है, वे उच्चकोटि के गायक हैं। तुम अपना ही उदाहरण लो न। स्वरमालिका गाते समय तुम्हारी दृष्टि भी उसमें कहे हुये राग तत्वों पर उत्तम रीति से पड़ती ही थी, परन्तु तुम्हें शास्त्रीय ज्ञान कहां था ? हमारे छोटे-छोटे बालक भी भराभर बोलते हैं, परन्तु उनमें विद्या भला कहां है ? ऐसे ही इन अशिक्षित गायकों के विषय में समझो। नित्य कसरत करके वे अपने गले तैयार करते हैं, फिर धीरे-धीरे उन्हें यह भी विदित होने लगता है कि समाज का रंजन किस प्रकार होगा। वे लोग अपने गुरु के पास जिन गीतों को सीखते हैं वे भी नियमों को भली-भांति सँभाल कर रची हुई होती हैं। इसीसे वे गीत तुरन्त लोकप्रिय हो जाते हैं। गायक, उन्हें सीखकर, उन्हीं के आधार पर अपने गीतों को रचते हैं। मुझे विश्वास है कि कुछ और आगे बढ़ने पर यह सब तुम्हें भी अत्यन्त सरल प्रतीत होगा।

प्रश्न—यह सब अब हम अच्छी तरह समझ गये। इस विवादी स्वर को नितान्त त्याज्य मानना अधिक सुविधाजनक हो गया है, परन्तु उसका थोड़ा सा उपयोग होना भी संभव है। अतः मन में यह शंका होती है कि रागों को पहिचानने में बड़ी अड़चन पड़ेगी।

उत्तर—यह ठीक है ! यदि गायक कसबी न हुआ तो उसके गाने में हमें अनेक दोष दृष्टिगोचर होंगे। कारण यही है कि उसे विवादी स्वर प्रयोग करना आने से रहा। अगर यह नहीं सधा तो उसके राग की शुद्धता भी नहीं रहेगी। यह स्पष्ट है, तथापि यह सब हो तो उसका इलाज ही क्या है ? ग्रन्थकार इन नियमों का वर्णन कर देते हैं, परन्तु उनके प्रयोग में आने के लिये योग्य शिक्षण की अपेक्षा है। गाते समय एक आध जगह ऐसी अड़चन आ जाती है कि वहां विवादी स्वर का स्पर्श किये बिना गाना भली-भांति सधता ही नहीं है। ऐसी ही जगह ऐसे स्वर का स्पर्श करना पड़ता है। परन्तु यह स्पर्श गायक लोग ऐसी सफाई से तथा ऐसी शीघ्रता से कर जाते हैं कि श्रोताओं को कहीं कोई बात विसङ्गत दिखाई नहीं देती। ऐसी अड़चनों को देखकर ही ग्रन्थकारों ने विवादी स्वर की व्याख्या बड़ी खूबी से की है। 'सङ्गीतसमयसार' ग्रन्थ में "प्रच्छादनीयो लोप्यो वा" इस प्रकार इस स्वर की व्याख्या की है। तथा प्रच्छादन शब्द का अर्थ "मनाक स्पर्शः" किया है। राग विबोध ग्रन्थ में यह कहा है कि "वर्ज्यस्वरोऽवरोहे द्रुतगीतो नरक्तिहृदः" यह भी विवादी स्वर को प्रयुक्त करने की एक युक्ति है। सारांश, विवादी स्वर को जान बूझकर, योग्य रीति से प्रयोग करना आता हो तो कुशलता का काम है, यदि ऐसा करना न आया तो मूर्खता दिखाई देगी। इस विषय पर मैं अभी अधिक नहीं कहता।

प्रश्न—आपने पहले हमें दस थाट समझा दिये हैं। आपने इन सबको याद रखने का आदेश प्रदान किया था। ग्रन्थों में श्लोकों में इन थाटों के नाम बताये गये हों, तो आप वे श्लोक हमें बतादें। उनका पाठ कर लेने से सरलता हो जायगी।

उत्तर—ऐसे श्लोक हैं; तथा तुम्हें उनकी आवश्यकता है तो बताता हूँ।

"कल्याणीमेलकस्त्वाद्यो बिलावल्या द्वितीयकः।
खंमाजाख्यस्तृतीयः स्याद्भैरवस्य चतुर्थकः॥
पंचमो भैरवीनामा षष्ठस्त्वासावरीरितः।
सप्तमस्तोडिकाख्योऽपि पूर्व्यभिधोष्टऽमःस्मृतः॥
नवमो मारवाभिज्ञो दशमः काफिसंज्ञितः।
इत्येते दशमेलास्ते रागोत्पादन हेतवः॥

ये ही तुम्हारे हिन्दुस्तानी दस थाट अथवा मेल हैं। इनका क्रम कुछ भिन्न है, परन्तु ये दसों हैं तुम्हारे ही।

प्रश्न—इसमें कोई हर्ज नहीं है। हम इन श्लोकों को याद ही कर डालेंगे। हमारी समझ से तो अब आप जन्य रागों की ओर अग्रसर हों तो अच्छा हो। सबसे पहले कौनसा थाट तथा उसके अन्तर्गत कौनसा राग लिया जायगा?

उत्तर—पहले हम कल्याणी थाट को ही लेंगे। इस थाट से उत्पन्न होने वाले, कुल तेरह राग मैं तुम्हें समझाऊँगा। उनके नाम याद रखने के लिये तुम्हारे लिये ये दो श्लोक अच्छे हैं:—

यमनः शुद्धकल्याणो भूपाली हंमिराव्हयः।
केदारश्च्छायनाटश्च कामोदः श्यामसंज्ञितः॥
हिंदोलो गौडसारंगो मालश्रीर्यमनी तथा।
चंद्रकांतादिका एते रागाः कल्याणमेलजाः॥

इन श्लोकों में जो तेरह राग कहे गये हैं वे ये हैं। १-यमन, २-शुद्धकल्याण, ३-भूपाली, ४-हंमीर, ५-केदार, ६-छायानट, ७-कामोद, ८-श्याम, ९-हिंडोल, १०-गौड-सारङ्ग, ११-मालश्री, १२-यमन, १३-चन्द्रकांत। अभी इतने ही बहुत हैं। रागों के नाम हम प्रचार के अनुसार ही मानेंगे। यद्यपि ग्रन्थगत नामों में से कुछ का अपभ्रन्श हो गया है, तथापि हम प्रचार का ही अनुसरण करते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करेंगे। रागों का नामकरण भिन्न-भिन्न धारणाओं के आधार पर हुआ है। कहीं-कहीं तो हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों (के नामों) के अनुसार ही ये नाम रखे गये दिखाई देते हैं। यह हमारा देशी सङ्गीत है।

प्रश्न—देशी सङ्गीत से हम क्या समझें?

उत्तर—यही मैं आगे कहने वाला था। ग्रन्थों में सङ्गीत के दो भेदों का उल्लेख मिलता है। १-मार्ग, २-देशी। वहां इन शब्दों की व्याख्या इस प्रकार है:—

"मार्गो देशीतितद्वेधा तत्रमार्गः स उच्यते ।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥
देवस्य पुरतः शंभोर्नियताभ्युदयप्रदः ॥
देशे देशे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम् ।
गानं च वादनं नृत्यं तद्देशीत्यभिधीयते ॥
अबलाबालगोपालैः क्षितिपालै निजेच्छया ।
गीयते यानुरागेण स्वदेशे देशिरुच्यते ॥

इन श्लोकों का वास्तविक सार इतना ही समझो कि जो सङ्गीत अत्यन्त प्राचीन तथा कठोर संस्कृत नियमों से जकड़ा हुआ है वह मार्गी है, तथा देश के विभिन्न भागों में छोटे बड़े सभी लोग जिसे प्रेम से, नियमों की ओर बहुत अधिक ध्यान न देते हुए गाते हैं, वह देशी है। महादेव के बाद भरत ने जिसका प्रयोग करके दिखाया, तथा जिसे सर्व प्रथम ब्रह्मदेव ने शोध करके उत्पन्न किया, वह मार्गी सङ्गीत है, इत्यादि व्याख्या हमारे विशेष काम की नहीं हैं। लक्ष्यसङ्गीतकार ने इस सम्बन्ध में यह कहा है:—

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीत मुच्यते ।
मार्गदेशी विभागेन संगीतं द्विविधं मतम् ॥
मार्गितं प्रथमाचार्यैर्यत्रितं नियमोत्तमैः ।
अतिशुद्धरूपमपि सांप्रतं नैवगोचरम् ॥
अधुनालक्ष्यमार्गे यत् स्वरूपं परिदृश्यते ।
तत्सर्वं देशिसंज्ञं स्यादित्याहुर्लक्ष्यवेदिनः ॥

यदि तुम यह मान कर भी चलो कि मार्ग सङ्गीत अब उपलब्ध नहीं है, तथा आजकल हम जिस सङ्गीत को सर्वत्र देखते हैं वह देशी है, तब भी कोई भारी दोष नहीं है। महादेव के पश्चात भरत के द्वारा गाया हुआ सङ्गीत मार्गी है, ऐसा कहने से तुम्हारे जैसे चौकस जिज्ञासू का समाधान कैसे हो सकता है? तुम तुरन्त ही पूछोगे कि यह ब्रह्मदेव कौन? उनके शिष्य भरत कौन? वह कब हुआ? तब फिर ऐसे प्रश्नों का उत्तर मैं क्या दे सकता हूं? ऐसी बातों पर अधिक ध्यान न दिया जाय यही अच्छा है। अब जब कि हमें मार्ग सङ्गीत गाना ही नहीं है तथा वह कहीं सुनाई भी देने से रहा, तो हम यह व्यर्थ का खटराग क्यों करें? ग्रन्थकार ऐसे ही कहीं-कहीं लिख देते हैं, परन्तु इसका स्पष्टीकरण नहीं होता। यह भी न समझना कि इन्हें भी सदैव इन बातों का ज्ञान होता है। सर्वत्र यही समझा जाता है कि सङ्गीत सामवेद से उत्पन्न हुआ है, परन्तु यह किस प्रकार हुआ तथा दोनों का मेल कहां और कैसे हुआ इसका स्पष्टीकरण किसी ने नहीं किया है।

प्रश्न—हम सुनते हैं, कि रत्नाकर नामक ग्रन्थ हजारों वर्षों से ऊपर का है। क्या उसमें भी इसका स्पष्टीकरण नहीं है ?

उत्तर—अभी यह ग्रन्थ हजारों वर्ष पुराना नहीं हुआ है, यह निश्चित किये जाने योग्य है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने प्रारम्भ में ही कुछ राजाओं के नाम दिये हैं। ये नाम इतिहास में मिलते हैं। तथा उनकी सहायता से इस ग्रन्थ का काल बहुत कुछ निश्चित होता है। रत्नाकर में भिल्लम राजा का नाम आया है। अगर तुम Vincent Smith. साहेब की Early History of India' नामक पुस्तक को देखो तो पता चलेगा कि भिल्लम, यादव घराने का एक राजा हो गया है। इस राजा का राज्य देवगिरि (दौलताबाद) तथा नासिक के बीच में था। यह राजा ई० स० ११६१ में मारा गया। यादव घराने में सिंघण नाम का एक दूसरा राजा भी बड़ा प्रतापी हो गया है। उसका नाम भी रत्नाकर में है। उसका घराना ई० स० १२६४ में नाश को प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ से ऐसा विदित होता है कि रत्नाकर के कर्त्ता का दादा काश्मीर से आकर दक्षिण के उपर्युक्त राजा के पास रहा था। इसी से तो Dr. Wilson रत्नाकर का काल तेरहवीं शताब्दी निश्चित करते हैं, और यह त्रुटिपूर्ण नहीं है। रत्नाकर के कर्त्ता ने पूर्व प्रसिद्ध कुछ राजाओं के नाम दिये हैं। इनमें भोज, सोमेश्वर, परमर्दी ये भी हैं। ये सभी नाम Early History में दिखाई देते हैं। भोज का समय ई० स० १०५३ है। सोमेश्वर ई० स० ११८३ में हुआ। परमर्दी का राज्यकाल ई० स० ११६५ से १२०३ दिया हुआ है। ये सब प्रमाण सिद्ध करते हैं कि रत्नाकर ई० स० १२०० के बाद का है। इस ग्रन्थ पर कल्लीनाथ पंडित ने टीका की है। वह स्वतः देवराज के पास था। देवराज, तुङ्गभद्रा नदी के पास विजयनगर का राजा था। Early History के आधार पर देवराज का समय १४०२ से १४२५ तक निश्चित होता है। हम विषयान्तर में अधिक नहीं जाते, परन्तु इन सब बातों से यही अनुमान निकलता है कि रत्नाकर के कर्त्ता का मार्ग सङ्गीत का ज्ञान सुना सुनाया ही था। ऐसा कैसे ? यह स्वतः भी अपने राग अध्याय में प्राचीन प्रसिद्ध तथा अधुनाप्रसिद्ध नाम से रागों के दो भेद करता है। और उसके ये अधुनाप्रसिद्ध राग अभी तक हमारे यहां प्रचार में हैं। रत्नाकर को आजकल सभी पुराना ग्रन्थ समझते हैं। इसका कारण यह है कि अवशिष्ट अनेक-ग्रन्थकारों ने उसके उद्धरण अपने ग्रन्थों में दिये हैं। नारदसंहिता, मतङ्गसंहिता, भरतशास्त्र इत्यादि इसकी अपेक्षा अधिक पुराने हैं, परन्तु वे, सङ्गीत की पूर्वस्थिति कैसी थी, इस प्रश्न का स्पष्टीकरण क्या करते हैं, यह जानने का साधन अब नहीं है। आजकल सब जगह देशी सङ्गीत ही है। कहने का उद्देश्य यही है। रत्नाकर के कर्त्ता ने सङ्गीत की उत्पत्ति इस प्रकार कही है। "सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः" केवल इतने ही से तुम्हारा समाधान कैसे होगा ? टीकाकार कल्लिनाथ ने एक अन्य युक्ति निकाली, वह यह कि:—

"सामनित्युत्कृष्टप्रथम द्वितीयतृतीयचतुर्थमंद्रादिस्वाथाख्याः सप्तस्वराः।
इहतु त एव यथायोगं षड्जादिव्यपदेशभाज इति ॥"

मैं समझता हूँ, इस पंडित पर टीका करने का काम हमें यहां नहीं करना है। कुछ ग्रन्थों में यह भी मिलेगा कि सबसे पहले महादेव जी ने राग उत्पन्न किये। उनके पांच मुखों से पांच राग उत्पन्न हुए तथा छटवां पार्वती ने उत्पन्न किया, यह लिखा हुआ है। अब यह जरूरी तो नहीं है कि, इन वचनों का गूढ़ अर्थ शोधकर निकालने का काम हमें यहीं कर डालना चाहिये।

प्र०—सो तो है ही। हमें (अपने) प्रस्तुत विषय की ओर बढ़ना चाहिये। सङ्गीत की उत्पत्ति का विषय ऐतिहासिक है, वह यहां नहीं है। मार्ग तथा देशी सङ्गीत का भेद हमारी समझ में यह आया कि सङ्गीत अत्यंत प्राचीन है तथा जिसके नियम धार्मिक नियमों के अनुसार पालन किये जाते हैं; वह मार्गी है, तथा जो जन-रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप ग्रहण कर सकता है, वह देशी है। हम यह भी मानकर चल रहे हैं कि, आजकल हम जो कुछ सुनते हैं, वह सब देशी (सङ्गीत) है।

उ०—ठीक है। अब हम जन्य रागों के विषय में विचार करेंगे। कल्याण थाट तो हमने लिया ही है। इसमें से प्रथम "यमन" यह जन्य राग हाथ में लेंगे।

प्र०—ऐसा प्रतीत होता है कि "यमन" संस्कृत नाम नहीं है।

उ०—"यमन" नाम के ऊपर थोड़ा सा मतभेद है। कुछ लोग कहते हैं कि यह फारसी भाषा का "इमन" नाम है। वे यह भी कहते हैं, कि इस राग को अमीर खुसरो नाम के एक सङ्गीत विद्वान ने प्रचलित किया है। यह बात ठीक है, कि सुल्तान अलाउद्दीन के राज्य-काल में अमीर खुसरो नाम का एक प्रसिद्ध विद्वान हुआ था। यह भी प्रसिद्ध है, कि उसने कुछ नवीन राग स्वरूप प्रचलित किये थे। यह विद्वान गोपाल नायक का समकालीन था। दक्षिण के पंडित कहते हैं कि यह राग हमारे "यमुना कल्याण" का ही एक प्रकार है। यह भी सच है कि दक्षिण के कुछ ग्रन्थों में यमुना कल्याण नाम मिलता है। हम समझते हैं, कि हमें इस विवाद में न पड़ना चाहिए। हम उस राग को समझलें, बस बहुत है। हमारी तरफ यह राग अत्यंत साधारण तथा लोकप्रिय है। प्रचार में इस राग को यमनकल्याण नाम से भी पहिचानते हैं। यमन तथा यमनकल्याण का भेद क्वचित ही मानते हैं। कुछ लोग इसका यह समाधान निकालते हैं कि यदि केवल तीव्र स्वरों से यह राग गाया जाय, तो उसे "यमन" कहेंगे और उसी में यदि दोनों मध्यमों का प्रयोग किया जाय तो उसे "यमन कल्याण" समझना चाहिये। इस मत के लिये ग्रन्थाधार तो है नहीं, तथापि यह सुविधाजनक प्रतीत होता है। यदि ग्रन्थों में कल्याण थाट का वर्णन देखा जाय तो वहां केवल एक-तीव्र मध्यम ही है। यदि पहिले की कल्याण राग की व्याख्या भी तीव्र मध्यम की ही है, तो 'यमन' इस नाम में 'कल्याण' शब्द जोड़ देने से उसमें शुद्ध मध्यम कहां से आया? हमारी समझ में तुम इसे यों समझकर चलो कि ग्रन्थों में जिसका कल्याण नाम से उल्लेख हुआ है, उसी में किसी ने थोड़ा सा शुद्ध मध्यम समन्वित करके—यह फिर चाहे अमीर खुसरो हो अथवा कोई और हो—यमन कल्याण का स्वरूप तैयार किया है। ग्रन्थगत रागों को लेकर, उनमें एक आध स्वर बदलकर

अथवा बढ़ाकर नवीन राग बना लेने के उदाहरण तुम्हें प्रचार में अनेक मिलेंगे। इस समय तो हम यमन तथा यमनकल्याण को एक ही मानकर चलेंगे। यह मैं जानता हूं, कि यमन में एक ही मध्यम तथा यमनकल्याण में दोनों मध्यम मानने से दोनों रागों को भिन्न माना जाता है, ऐसा तुम्हें प्रतीत होगा, तथापि इस पर विचारणीय एक अन्य बात भी है। यमनकल्याण में जो शुद्ध मध्यम लिया जाता है, उसकी स्थिति ही विलक्षण है। एक आध राग में यदि विवादी स्वर को अवरोह में अल्प परिमाण में लगा दिया जाय, तो उससे विशेष राग हानि नहीं होती। मैंने तुम्हें पहले भी एक ऐसा ही नियम बताया था, तुम्हें उसकी याद होगी। इस यमन कल्याण में लगने वाले शुद्ध मध्यम की स्थिति एक विवादी स्वर के समान है, यह कहा जाय, तब भी काम चल सकता है। इस स्वर का उपयोग यमन में बहुत थोड़ा, केवल गन्धार स्वर के साथ होता है। यदि यह शुद्ध मध्यम एक नवीन स्वर की स्थिति में, इस राग में नियमानुसार लिया गया होता तो ऐसा न होता। जहां-जहां गायक इस स्वर को लगाते हैं, वहां-वहां सदैव पहले गन्धार को गाकर, फिर उसे लगाते हैं तथा पुनः गन्धार पर लौट जाते हैं। यह प्रत्यक्ष उदाहरण से स्पष्ट होगा।

प्र०—बीच में ही एक प्रश्न पूछता हूँ। यमन का थाट कल्याण है, यह तो अब हमें मालूम ही है। आपने कहा कि ग्रन्थों में कल्याणी थाट के वर्णन में मध्यम तीव्र कहा है। क्या आप हमें यह समझा देंगे कि ग्रन्थों में थाट का वर्णन कैसे होता है। ऐसा करने में कोई आपत्ति न हो तो हमारी इसे जानने की इच्छा है।

उ०—ग्रन्थों में तुम्हारे प्रचलित (बारह) स्वरों के नाम कहीं-कहीं भिन्न हैं, यह पहले कह देना पड़ेगा। दूसरी कोई अड़चन नहीं है। उन नामों को यदि तुम ध्यान में रखो तो मेरी तरफ से बताने में कोई आपत्ति नहीं है।

प्र०—हम उन्हें ध्यान में रखेंगे। स्वरों के नाम समझ लें तो फिर कदाचित् हम ग्रन्थों में राग वर्णन देखकर उनका अर्थ भी समझ सकेंगे।

उ०—अच्छा तो देखो "चतुर्दंडिप्रकाशिका" नामक ग्रन्थ में तुम्हारे हिन्दुस्तानी सा, म, प, शुद्ध स्वरों के शुद्ध सा, म, प, ये ही नाम हैं, तुम्हारे शुद्ध रि ध स्वरों के नाम उस ग्रन्थ में पंचश्रुति रि तथा पंचश्रुति ध हैं। तुम्हारे कोमल रि तथा ध स्वरों को उस ग्रन्थ में कोमल न कहकर शुद्ध रि ध कहा है। ऐसा क्यों किया? इस प्रश्न का उत्तर देने की हमें आवश्यकता नहीं है। उस ग्रन्थ की यही परिभाषा है, इसे मानकर तुम्हें आगे बढ़ना है। तुम्हारी हिन्दुस्तानी पद्धति में कोमल तथा तीव्र गंधार हैं। उस ग्रन्थ में इनके क्रमानुसार साधारण तथा अन्तर गंधार ये नाम हैं। तुम्हारे कोमल तथा तीव्र निषाद, उस ग्रन्थ में कैशिक निषाद तथा काकली निषाद, इन नामों से पहिचाने जाते हैं।

प्र०—ये कैसे चमत्कारिक नाम हैं! क्या सभी ग्रन्थों में ये ही नाम दृष्टिगोचर होते हैं?

उत्तर—ये दक्षिण के सभी ग्रन्थों में मिलेंगे। रत्नाकर, दर्पण, रागविबोध स्वरमेलकलानिधि, सारामृत इत्यादि सभी में स्वरों के ये ही नाम मिलेंगे। दक्षिण में आजकल ये प्रचार में भी हैं, अतः कुछ लोग यह भी मानते हैं कि उपरोक्त ग्रन्थ दक्षिण के ही हैं।

प्रश्न—तब फिर यह तीव्र कोमल संज्ञा कहां दृष्टिगोचर होती है ?

उत्तर—रागतरङ्गिणी, पारिजात, लक्ष्यसङ्गीत इत्यादि ग्रन्थों में ये नाम दृष्टिगोचर होते हैं। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न नाम हुए तब भी क्या हुआ ? स्वर तो तुम्हारे ही हैं न ? लक्ष्य सङ्गीत के नाम तो हूबहू हमारे ही हैं। कारण यह है कि वह प्रत्यक्ष हमारी ही पद्धति का ग्रन्थ है। पारिजात के सा, म, प शुद्ध का अर्थ हमारे शुद्ध सा, म, प, हैं। रि और ध को देखो तो वे भी हमारे ही हैं। कोमल रि ध भी हमारे ही हैं। हम जिन्हें शुद्ध ग, नि, कहते हैं, उन्हें वहां तीव्र ग, नि, कहा गया है। हमारा तीव्र म पारिजाति का तीव्रतर म था। अधिक अन्तर हम जिन्हें कोमल ग नि कहते हैं, उन स्वरों में है। पारिजात में वे शुद्ध स्वर माने गये हैं। अर्थात् उस ग्रन्थ में शुद्ध स्वरों का थाट काफी का माना गया है। पारिजात के राग वर्णन में कहीं-कहीं हिन्दुस्तानी शुद्ध रि, ध स्वरों को पूर्व ग तथा पूर्व नि ये नाम भी दिये गये हैं।

प्रश्न—यह कैसे ? रि तथा ध इन स्वरों के "ग" और "नि" ये नाम !

उत्तर—इसमें तुम्हें कुछ नवीनता प्रतीत होने का कारण नहीं है। इस बात से किन्हीं अन्शों में यह सिद्ध हो सकता है कि पारिजातकार को दक्षिण की पद्धति का ज्ञान था।

प्र०—तब क्या दक्षिण के रि, ध के हमारे स्वरों जैसे ही नाम हैं ?

उ०—हां, तुम्हारे शुद्ध रि, ध (हिन्दुस्तानी), उनके शुद्ध ग नि स्वर हैं।

प्र०—यदि ऐसा है तो उनके शुद्ध रि, ध ?

उ०—ये तुम्हारे कोमल रि, ध, हैं। यह मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ।

प्र०—हमारा तीव्र म दक्षिण का कौन सा स्वर है ?

उ०—उसके अलग-अलग नाम हैं। जैसे चतुर्दण्डिकार उसे "वराली म" कहेगा। राग विबोध में उसके मृदु प, तीव्रतम म इत्यादि नाम आयेंगे। रत्नाकर वा दर्पण में जो कैशिक प है, उसकी जगह भी यही कहनी पड़ेगी, लेकिन अभी हम उन ग्रन्थों के झगड़ों में क्यों पड़ें ? ग्रन्थों में कल्याणी थाट का का वर्णन किस प्रकार है, प्रथम यही जानने की तुम्हारी इच्छा थी, ठीक है न ?

प्र०—हां, यह ठीक है। उसका वर्णन कीजिये ?

उ०—पारिजात में यह कहा है कि:—

"मस्तु तीव्रतरो यस्मिन् गनीतीव्रावितीरितौ ।"
"गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयंगृह्णाति, निषादश्च षड्जस्य ।
श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमः पंचमस्यश्रुतिद्वयं गृह्णाति तदा ॥"
"इमनसंस्थानम्"

यह वर्णन राग तरङ्गिणी में है। इसमें श्रुतियों के विषय में लिखा है। यहां तुम्हें उसे समझने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु उस वर्णन में कहा हुआ थाट तुम्हारे यमन का ही है।

"षड्जस्वर श्चरिषभः पंचश्रुतिसमन्वितः ।
गांधारोंतरसंज्ञश्च वरालीमध्यमस्तथा ॥
शुद्धश्च पंचमः पंचश्रुतिको धैवतस्तथा ।
काकल्याख्यनिषादश्च कल्याणीमेलके स्वराः ॥"

प्रश्न—इसे अब हम समझ गये। आप कल्याण का उदाहरण देकर यह दिखा रहे थे कि गायक, उसमें गांधार की संगति से शुद्ध मध्यम किस प्रकार लेते हैं। उसी को लेकर अब हमें दिखाइये। ग्रन्थों में कही हुई स्वरों के बारे में ये बातें हमें चलते-चलाते बतादीं गईं, यह बड़ा अच्छा हुआ। इससे अब हम ग्रन्थों में दिए हुए राग वर्णन को थोड़ा बहुत समझ सकते हैं ?

उत्तर—ठीक है, ऐसा ही करता हूँ। परन्तु इस राग वर्णन में प्रवेश करने से पहिले एक संकेत बताता हूँ। जहां तीव्र मध्यम होगा, वहां म इस अक्षर के ऊपर एक खड़ी रेखा लगायेंगे। यदि यह न हो तो यही समझना कि शुद्ध मध्यम है। मेरे बताये हुए स्वरों को इसी रीति से तुम्हें लिखना आना चाहिए।

प्रश्न—तब फिर कोमल स्वरों के विषय में भी यदि संकेत निर्धारित करदें तो क्या ठीक न होगा ? यह एक प्रकार की स्वरलिपि ही होगी ?

उत्तर—हां, आगे चलकर ऐसा ही करना होगा। कोमल स्वर लेना हो, तो उस स्वर के नीचे आड़ी लकीर लगादो, जैसे <u>रे</u>, <u>ग</u> इत्यादि। स्वरमालिका में "ती" और "को" यह दो अक्षर लिये थे; यहां ये नये चिन्ह याद रक्खो। गाने में लगने वाली तीन सप्तकों का ज्ञान तुम्हें है ही, सप्तक के चिन्ह तुम्हें याद होंगे ही।

प्रश्न—स्वर के सिर पर बिन्दु हुआ तो वह तार स्वर, तथा नीचे बिन्दु हो तो वह मन्द्र स्वर होगा, यह हमने सीखा है ?

उत्तर—हम भी इसी चिन्ह का प्रयोग करेंगे, चिन्ह जितने थोड़े होते हैं, उतना ही अधिक अच्छा होता है; इस प्रसंग में हम स्वरलिपि के विषय पर नहीं बोल रहे हैं।

एक बार तुम्हें इन रागों का पर्याप्त ज्ञान करा दिया जाय, तब फिर आगे सङ्गीत Notation के विषय में कहेंगे। गायक लोग इस यमनकल्याण राग में शुद्ध मध्यम कैसे लेते हैं, इस विषय पर हम बात कर रहे थे, है कि नहीं? यह महत्वपूर्ण बात है। अब इस प्रयोग को देखो ग म ग, सा रे ग, प मं ग रे ग, ग म ग, रे सा, ग मं प मं ग, रे ग म ग, रे सा। तुम्हारे शुद्ध मध्यम का प्रयोग कहां कैसे किया गया है; इस पर भलीभांति ध्यान दो। यह स्वर आरोह में आता है, यह नहीं कहा जा सकता, कारण गमप इस प्रकार का प्रयोग नहीं होता। अवरोह में देखो तो प म ग इस तरह का प्रयोग नहीं करते। यदि एक आध बार शुद्ध मध्यम लगाना ही हो, तो प मं ग, म ग, ऐसा इस भांति करते हैं। क्या इसे देखकर यह नहीं कहा जायगा कि यमन में कोमल मध्यम का प्रयोग विलक्षण है? यह बात बिलकुल सही है कि इसे कभी-कभी ही लगाते हैं। ख्याल नामक गीतों को गाने वाले लोग इस स्वर को प्रायः लगाते हुए दिखाई देंगे।

प्र०—यह हमारी समझ में आ गया, हम यही मान कर चलें कि, शुद्ध मध्यम इस राग के नियमित स्वरों में से नहीं है; परन्तु उसे लेना ही तो विवादी स्वर के नियम से लेना चाहिये। लेकिन यहां एक स्वाभाविक शंका मन में उठी है, उसे पूछता हूँ। विवादी स्वर राग में मनोरंजन के लिये लिया जाता है। एक बार यदि यह बात निश्चित हो जाती है, तो फिर यमन में कोमल ग, कोमल रे इत्यादि स्वर कोई लगाने को तैयार हो, तो क्या ऐसा हो सकता है?

उ०—तुम दूसरा एक नियम भूल गये 'रंजयतीति रागः' यह हमारे रागों की कसौटी है न? तुम जिस स्वर को पसन्द करो वह उस राग में सुसंगत होना चाहिये न? वादी स्वर कुशलता से पसन्द किया जाना चाहिये। ऐसा करना न आया, तो गाने वाला नासमझों में गिना जायेगा। किस राग में कौन सा स्वर चल सकता है, यह परम्परा व लोकरुचि के अनुसार निर्धारित होता है। नितान्त नवीन स्वरूप उत्पन्न करके; उसे लोकप्रिय बना देना, यह सरल काम नहीं है। गायक सदैव समाज रुचि का अनुसरण करके चलते हैं। समाज को नादशास्त्र के तत्व विदित होते हों, यह बात नहीं है; वे तो केवल इतना ही देखते हैं कि, कानों को प्रिय लगता है कि नहीं। हमारे संगीत में कहीं-कहीं स्वरसमुदाय नादशास्त्र की दृष्टि से ठीक नहीं है, योरोपियन पंडित हमारे सङ्गीत में इस प्रकार का दोष लगाते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु अगर वह स्वर लोकप्रिय हुआ तो गायकों को उसे सदैव प्रयुक्त करना पड़ता है। यह खरी बात है कि यमन में शुद्ध मध्यम के सिवाय इतर विवादी स्वर खप ही नहीं सकता। यह बात नहीं है कि यमन का थाट लेकर उसमें कोमल रे अथवा कोमल ध लेशमात्र भी गाया नहीं जा सकता। ऐसा तो सहज में ही किया जा सकता है; परन्तु वह यमन राग नहीं हो सकता, वह कोई दूसरा ही कल्याण का प्रकार अथवा अन्य कोई राग होगा।

प्र०—क्या कल्याण के और भी प्रकार माने जाते हैं? यदि ऐसा ही है तो उनका नामकरण कैसे करते हैं?

उ०—हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति में ऐसे प्रकार भी माने जाते हैं। दो एक राग एकत्रित करके, यदि उनका सुन्दर समन्वय हो सका तो, उसे एक नवीन राग कह कर स्वीकार कर लिया जाता है।

प्र०—लेकिन फिर उसका नाम ?

उ०—जिन दो रागों का मिश्रण होता है, उन रागों के नाम कभी-कभी जोड़ दिये जाते हैं; नहीं तो, उस प्रकार का बिलकुल नवीन ही नाम रख देते हैं। भावभट्ट कृत "सङ्गीतानुपांकुश" ग्रन्थ में कल्याण के ऐसे ही भेद बताये गये हैं, देखोः—

शुद्धकल्याणरागश्च ततः कल्याणनाटकः।
हंमीरपूर्वकः पूर्याभूपाली पूर्वकस्ततः॥
जयश्रीपूर्वकल्याणः क्षेमकल्याणनामकः।
ततः कामोदिकल्याणः श्यामकल्याणकस्तथा॥
ऐमनादिककल्याणश्चाहीर्यादिस्ततः परम्।
ततस्तिलककामोदकल्याणस्ते त्रयोदश॥

इसमें तुम्हें बहुत से संयुक्त नाम दृष्टिगोचर होंगे, अब यह मिश्रण कौनं से तत्व पर किये जायेंगे ? एक-एक राग का प्रमाण कितना हो ? इत्यादि प्रश्न कठिन हैं, यह बात बिलकुल सत्य है। साधारण नियम ऐसा समझो कि जिन दो रागों का मिश्रण हो, वे दोनों राग इस मिश्रण कों सुनने पर, उत्तम रीति से एक में एक मिले हुए दिखाई दें। पहले कौनसा तथा बाद में कौनसा आवे, इस विषय में मतभेद सुना जाता है। Capt. Willard साहिब अपने ग्रन्थ के पृष्ठ ५७ पर इस प्रकार लिखते हैं:—

"The rule for determining the names of the mixed rags, is agreeably to some authorities, to name the principal one last, and that which is introduced in it, first; as Poorea Dhanasree; others, more naturally say, that that which is introduced, in the first part of the song or tune should be mentioned first, and the other or others subjoined to it, in regular succession; e. g. suppose Shyam and Ramculee to be compounded with each other, if Shyam forms the commencement, and Ramculee is afterwards introduced into it, it should be called Shyam Ram; but if on the contrary, it commence with Ramculee, and Shyam be afterwards, introduced, the whole should be denominated Ram Shyam.

इस प्रमाण के अनुसार संयुक्त नामों के विषय में मतभेद है, इतना ही तुम्हारी समझ में आ जाना पर्याप्त है। मैंने जो यह कल्याण के प्रकार अभी बताये हैं उनका

अलग वर्णन अभीष्ट नहीं है; परन्तु मिश्रित होने वाले जो राग हैं, वह सब तुम सीखोगे ही। हमारे ग्रन्थों में शुद्ध, छायालग व संकीर्ण, इस प्रकार रागों के तीन वर्ग किये गये हैं। वे इस मिश्रण के ही आधार पर हैं।

प्रश्न—इन वर्गों का उल्लेख किस प्रकार हुआ ?

उत्तर—ग्रन्थों में ऐसा कहा है कि:—

"शुद्धरागत्वं नाम शास्त्रोक्तनियमाद्रंजकत्वम्"।
छायालगत्वं नामान्यच्छायालगत्वेनरक्तिहेतुत्वम्"॥
"शुद्धच्छायालगमुख्यत्वेन रक्तिहेतुत्वम् संकीर्णत्वम्॥

यह विषय विवादग्रस्त है। इस कारण तुम्हें इस प्रसङ्ग में अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं है। अपने ग्रन्थकारों को देखो तो उन्होंने भी इस पर मौन धारण कर रक्खा है। शुद्ध राग कौनसे ? छायालग व संकीर्ण कौन से ? यह ठहराना सरल नहीं है। इस वर्गीकरण का यहां दिग्दर्शन मात्र किया गया है। इतना ही बहुत है। Capt. Willard साहब ने पृष्ठ ६ पर इस सम्बन्ध में कुछ चर्चा की है। हो सका तो आगे चलकर मैं तुम्हें यह पुस्तक पढ़ने को दूंगा। रागों के औड़व षाडव इत्यादि वर्ग पहिले किये ही थे और अब शुद्धादिक यह तीन नये सुन रक्खो, बस बहुत है।

प्रश्न—ऐसा प्रतीत होता है कि वे वर्ग तो रागों में लगने वाली स्वर संख्या के अनुसार थे, और ये किसी निराले ही तत्व पर हैं ?

उत्तर—ठीक समझे ! अब हम अपने प्रस्तुत यमन की तरफ बढ़ें। यमन राग सम्पूर्ण है। इस "राग" शब्द को प्रयुक्त करते ही मन में ऐसा आता है, कि तुम्हें एक और बात बतादें। गायकों के मुंह से हम अनेक राग, रागिनी, पुत्र, भार्या इत्यादि के नाम सुनते रहते हैं। इससे मन में सहज ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि, राग और रागिनी का अन्तर किस प्रकार माना जाता है ? ऐसा प्रचार होने से यह प्रश्न नितान्त स्वाभाविक ही है। हम यह भी मान लें कि ऐसा अन्तर प्राचीन काल में भी था, तब भी हमारे प्रचलित संगीत में ऐसा कोई अन्तर अब माना जाता है या नहीं, इसी प्रश्न पर हमें विचार करना है। जो लोग बुद्धिमान हैं, वे भिन्न-भिन्न कारण बतलाते हैं। जैसे राग, यह पुरुष है, वह गम्भीर प्रकृति का होगा व सावकाश तथा प्रशस्त रूप से गाया जायेगा और सम्पूर्ण होगा। इतर स्वरूपों में उसका अन्श दिखाई देगा, लेकिन उसका निजी स्वरूप शुद्ध व स्वतन्त्र होना चाहिये। रागिनी में राग की प्रकृति थोड़ी सी दिखाई देगी, उसका चलन जरा चपल होगा। उसका उपयोग शृङ्गार की ओर अधिक होगा। यह धारणा युक्तिसंगत है, यही कहना पड़ेगा, परन्तु क्या इसे ग्रन्थाधार प्राप्त है ? यह प्रश्न है ? इसका उत्तर कुछ इस प्रकार देना पड़ेगा कि ग्रन्थों में राग और रागिनियों के ध्यान का जो उल्लेख किया गया है, उसीसे यह अनुमान लगाया जाता है।

यदि तुम्हें यह भेद मानने योग्य प्रतीत हो तो मानो, परन्तु हमारे प्रचार में तो राग और रागिनी में तात्विक अन्तर समझ कर गाना तो अलग रहा, उसे समझाने वाले गायक भी तुम्हें नहीं मिलेंगे। यह बिलकुल सच है। यही नहीं प्रत्युत यह मानने वाले भी मिलेंगे कि पुल्लिंगी नाम हो तो राग तथा स्त्रीलिंगी हो तो रागिनी, इसके सिवाय उन्हें दूसरा कारण पता नहीं है। हमारे सामने एक दूसरी महत्वपूर्ण अड़चन भी खड़ी रहती है कि यदि हमारा प्रचलित सङ्गीत, ग्रन्थों को छोड़ गया है, अर्थात् उसका रूपान्तर होगया है तो उसका प्राचीन वर्गीकरण यथायोग्य रीति से किस प्रकार लागू हो सकता है? जब आजकल प्राचीन रागस्वरूप नहीं हैं, तो हमें प्रचलित रागों का उनके गुणावगुण के प्रमाणों से क्या नवीन वर्गीकरण नहीं करना चाहिये? मान लो ऐसा ही करें, तो देश के मतभेद की ओर देखते हुए, क्या वह सर्वमान्य हो सकेगा? इस कठिन समस्या को देखकर हमारे चतुर पण्डितों ने अब राग और रागिनी में अन्तर मानना छोड़ दिया है। प्राचीनकाल के राग रूपों की धारणा के लिए चाहे यह वर्गीकरण उस युग में ठीक होगा, परन्तु मेरा अनुमान है कि वह अब नवीन रूपों पर लागू नहीं हो सकता। Capt. Willard कहते हैं कि:—

"It seems probable, therefore, that the author of the Rags and Raginees having composed a certain number of tunes resolved to form some sort of fable in which he might introduce them all in a regular series. To this purpose, he pretended, that there were six Rags, or a species of divinity who presided over as many peculiar tunes or melodies & that each of them had, agreeably to Hanuman five, or as Callinath says, six wives who also presided each one over her tune. Thus having arbitrarily & according to his own fancy distributed his compositions amongst them, he gave the names of those pretended divinities to the tunes. It is also probable that the Pootras & Bharyas, are not the composition of the same but some subsequent genius who apprehending that their number would be greatly increased by the additional acquisition or dreading an innovation in the number established by usage * * * * contrived the story that the Rags & Raginees had begotten children.

That the name of any one of the Rags or Raginees was arbitrarily assigned by the author to any one of his compositions, is as probable as the often whimsical names given by our country-dance & reel composers to their productions. This is further probable from there being very little or no similarity between a Rag & his Raginees. The disparity is so great that sometime

the Hindoo authors disagree with regard to the Rag to which several of the Raginees, Pootras or Bharyas belong.

मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि यह वर्गीकरण प्राचीन स्वरूपों के लिए ठीक होगा, परन्तु अब उसकी आवश्यकता नहीं है। अब हमारे गायक राग व रागिनी इन शब्दों को यों ही अर्थात् उनमें परस्पर भेद न मानते हुए प्रयुक्त करते हैं। यह अनुभव की बात है। निदान मैं तुम्हें अब जो सिखाऊँगा उसमें यह भेद नहीं माना जायगा।

प्र०—आपका कहना हमें उचित प्रतीत होता है। इस प्रकार का भेद नवीन रूपों पर नहीं लग सकता। आगे चलिये?

उ०—अब चलते-चलाते तुम्हें दो अन्य शब्द 'ग्रह' और 'न्यास' बताये देता हूँ। यह सच है कि इन स्वरों का हमारे प्रचलित सङ्गीत में अधिक महत्व नहीं है; परन्तु प्राचीन सङ्गीत में ये महत्वपूर्ण हैं। जिस स्वर से गीत का आलाप आरम्भ होता है, उसे ग्रह स्वर कहते हैं तथा ऐसे ही जिस पर गीत समाप्त होता है उसे न्यास स्वर कहते हैं। अन्श स्वर के विषय में, मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूं। अन्श और वादी को हम एक ही समझेंगे। प्राचीनकाल में बहुधा जो स्वर वादी होता था, वही ग्रह तथा न्यास भी होता था। ग्रह की व्याख्या इस प्रकार मिलती है:—

"गीतादिनिहितस्तत्र स्वरोग्रह इतीरितः।"

न्यास की व्याख्या यह है:—

"गीते समाप्तिकृन्यासः।"

इन स्वरों के झमेले में हमें अधिक पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थों के समय में ही देखें तो इन स्वरों के नियम नहीं पाले जाते थे; तब फिर अपनी बात तो दूर ही रही। ये कठोर नियम मार्ग सङ्गीत के थे। देशी सङ्गीत में नियमों का उलंघन होता है, ऐसा स्पष्ट कहा है, जैसे:—

"येषां श्रुतिस्वरग्रामजात्यादि नियमो नहि।
नानादेशगतिच्छाया देशीरागास्तुते मताः॥

यह उद्धरण कल्लिनाथ की टीका में से तुम्हें पढ़ कर सुना रहा हूं:—कल्लिनाथ का कथन है कि, उसने इसे आंजनेय अर्थात् हनूमान के ग्रन्थ से लिया है। यदि यह हनूमान रामायण के समय के पण्डित हैं, तब तो यदि कोई यह कहे कि प्राचीन काल में ही मार्ग सङ्गीत में अन्तर उपस्थित हो गया था, तो उसे अनुचित कैसे कहा जा सकता है? सारांश यह है कि हमारे आजकल के सङ्गीत में अमुक राग अमुक स्वर

से ही शुरू होगा, तथा अमुक स्वर पर ही समाप्त होगा, इत्यादि नियमों का उल्लेख नहीं किया जा सकता। यह तो कोई भी कहेगा कि, राग के जितने नियम हों, उतना अच्छा ही है, परन्तु अब वे प्राचीन नियम नष्ट हो गये हैं; अतः अब इसका इलाज ही क्या है? वादी स्वर प्राचीनकाल का ग्रह न्यास है। यह बात बहुतों ने कही है। इस नियम के उदाहरण आजकल भी हमें क्वचित् दृष्टिगोचर होंगे; परन्तु नियमों के परिवर्तित किये जाने के उदाहरण सदैव दिखाई देंगे। ग्रन्थों में हमारे प्रचलित रागों के नाम मिलते हैं; तथा वहां देखें तो, ग्रह अन्श न्यास भी लिखे हुए हैं, परन्तु हम जो राग स्वरूप गाते हैं, उन्हें प्रायः ग्रन्थों के रूपों से भिन्न ही गाते हैं। फिर ग्रन्थों के ग्रह, अन्श और न्यास भला हमारे किस काम के हैं? हमारी आजकल की पद्धति के अनुकूल एक स्वतन्त्र ग्रन्थ होना चाहिये। 'लक्ष्य सङ्गीत' कुछ ऐसा ही ग्रन्थ है, यह तुम्हें आगे पता लगेगा। आगे चलकर मैं यह ग्रन्थ तुम्हें पढ़ाने वाला भी हूं। प्राचीन ग्रन्थों की पद्धति अब बहुतांश में नष्ट हो गई है इसके लिए हमें क्षुब्ध होने की आवश्यकता नहीं है। यह तो सृष्टि का क्रम ही है। ऐसा तो प्रायः होता ही रहा है। इसी से तो भिन्न-भिन्न समय में विभिन्न ग्रन्थकारों ने अपने-अपने युग के सङ्गीत का अनुसरण करके, पृथक-पृथक ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रन्थों में देखो तो मतभेद अनेक हैं। हमारी हिन्दुस्तानी पद्धति के राग प्राचीन ग्रन्थों से बहुत कुछ अलग हो गये हैं। इसी से 'लक्ष्यसङ्गीत' ग्रन्थ बना है। हां—तो अब यमन पर आगे विचार करें। गायक लोग तुम्हारे इस यमन राग में (ग) तथा (नि) इन दो स्वरों को महत्वपूर्ण मानकर अनुवादी स्वरों की सहायता से मधुर आलाप करते हैं।

प्र०—"आलाप" किसे कहते हैं? यह तो नया ही शब्द है!

उ०—ठीक है, इसके विषय में भी दो शब्द कहे देता हूँ। हमारे गायक कोई भी गीत गाने के पहले उस गीत में लगने वाले राग-स्वरूप का थोड़ा सा दिग्दर्शन कराते हैं। यदि तुम यह मान कर भी चलो कि इसी को प्रचार में आलाप कहते हैं, तब भी कोई हर्ज नहीं। आलाप में ताल तथा गीत के शब्दों की आवश्यकता नहीं, केवल राग में लगने वाले स्वरों को लेकर श्रोताओं के सम्मुख, गायक राग-स्वरूप को स्थापित करते हैं। यह कृत्य भला प्रतीत होता है। आलाप करने में बड़ी कुशलता चाहिये। कोई-कोई गायक पहले अपने गीत को ही केवल 'आ' कार में गाकर दिखाते हैं। इसके अनन्तर उसी के शब्द ताल सहित कहते हैं। ऐसे प्रकार को आलाप नहीं कहते। ग्रन्थों में रागालाप, रूपक, आलप्ति, आक्षिप्तिको इत्यादि प्रकार कहे गये हैं, परन्तु यह सच है कि प्रचार में अब उनका यथा योग्य महत्व नहीं है। तथापि उनमें कहा गया है, यह तदनुसार यहां कहता हूँ। सङ्गीत रत्नाकर में आलाप की व्याख्या इस प्रकार की गई है, इसे तुम्हें पाठ करने की आवश्यकता नहीं है:—

"ग्रहांशतारमंद्राणां न्यासापन्यासयोस्तथा।
अल्पत्वस्य बहुत्वस्य षाडवौडुवयोरपि॥
अभिव्यक्तिर्यत्र दृष्टा स रागालाप उच्यते"॥

इसका भावार्थ यह है कि राग के आलाप में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होनी चाहिये। ग्रह, अन्श, न्यास, अपन्यास, तारस्थानावधि, मन्द्रस्थानावधि स्वरों का अल्पत्व तथा बहुत्व। राग का औडुवत्व तथा षाडवत्व इत्यादि। यदि गायक इतनी बातें दिखादे, तो आलाप पूरा हुआ समझो। यह बात वर्णन द्वारा नहीं समझाई जा सकती, परन्तु पृथक रूप से यह भी कहने की आवश्यकता नहीं है कि लोगों के सम्मुख गाते-गाते इन बातों का मंडन करना ही पड़ता है। देखा, प्राचीन नियम कैसे उत्तम हैं। परन्तु आजकल देखो तो, अधिकांश गायकों को यह पता ही नहीं है कि आलाप के कुछ नियम भी हैं या नहीं। यहां अपन्यास शब्द तुम्हारे लिये नवीन ही है, परन्तु उसका अर्थ न्यास सरीखा ही है। न्यास गीत के बिलकुल अन्त में आता है और अपन्यास गीत के एक भाग के अन्त में आता है। अब, जब न्यास का ही नियम नहीं रहा, तब फिर अपन्यास की क्या चलाई? मेरी समझ में तो मैं तुम्हें ग्रन्थों को सिखाते समय ही इन प्राचीन बातों का सविस्तार ज्ञान कराऊँगा। सुदैव से अब रत्नाकर, दर्पण, स्वरमेल, रागविबोध और पारिजात इत्यादि का भाषान्तर भी हो गया है। यह भी तुम्हारे लिये उपयोगी होगा। रागों में कुछ स्वर अल्प तथा कुछ बहुल होते हैं, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। उपर्युक्त व्याख्या से तुम्हें यह विदित होगा कि राग के आलाप में गीत के शब्दों की, ताल की अथवा गीत के भाव, अस्ताई (स्थायी), अन्तरा इत्यादि भागों की आवश्यकता नहीं है। अमुक थाट, अमुक स्वर, अमुक वादी, इत्यादि दिखाये नहीं कि आलाप हुआ। आलाप के और भी भिन्न-भिन्न प्रकार करने से, उनके नाम भी भिन्न-भिन्न हो जाते है। जिसमें अस्ताई, अन्तरा इत्यादि भाग बिना शब्द तथा बिना ताल के अलग-अलग दिखाये जाते हैं, उस प्रकार को रूपक कहते हैं। इसे आलाप की अगली स्थिति कहना चाहिये। जिसमें पद, स्वर, ताल इत्यादि सर्व सामग्री हो, उसे आक्षिप्तिका कहते हैं। कल्लीनाथ ने अपनी टीका में आलाप व रूपक के भेद को इस प्रकार कहा है:—

"पृथग्भूता विच्छिद्य विच्छिद्य प्रयुक्त विदार्यो गीतखंडानि
यस्मिन्निति रूपकम्। अपन्यासेषु अविरम्यैकाकारेण
प्रवृत्तः आलापः"

हम इस विषय में अधिक गहराई में न जायेंगे। इस समय इतना ही याद रखना पर्याप्त होगा कि आलाप में गीत के शब्द व ताल नहीं होते। कुछ चतुर गायक यह कहते हैं कि आलाप में अ, न, ने, ता, ने, री इत्यादि जो अक्षर हैं वे 'अनन्तहरि' इन शब्दों के भाग हैं। कल्पना ठीक है। इसे ऐसा ही समझने में तुम्हारी क्या हानि है? परन्तु यह भी ठीक है कि कल्पना के अतिरिक्त इसमें कोई अन्य रहस्य नहीं है।

प्र०—अभी आपने अस्ताई, अन्तरा इत्यादि का नाम लिया है, हमने स्वर मालिका सीखी थी, उसमें भी इन शब्दों का प्रयोग हुआ था। क्या आप इनके विषय में भी कुछ विवेचना करेंगे?

उ०—इन शब्दों के विषय में अधिक कुछ नहीं कहना है। प्रत्येक गीत के कुछ नियमित भाग किये जाते हैं। ऐसा किया हुआ तुमने अपनी स्वरमालिका में देखा ही है। यह विभाजन किस तरह पर किया जाता है, इसे बताता हूं।

तुम एक साधारण नियम यह याद रक्खो कि 'अस्ताई' नामक जो भाग होता है, उसमें मन्द्र तथा मध्य इन दो स्थानों के स्वर होते हैं। प्रायः इन दो स्थानों के स्वरों से ही अस्ताई का भाग पूरा होता है। 'अन्तरा' नामक भाग में तार सप्तक के स्वर शामिल होते हैं। हम साधारण नियम यह मानेंगे कि अन्तरे में मध्य तथा तार यह दो स्थान मिले रहते हैं। उत्तम गायक अपने राग का विस्तार बहुधा मन्द्र तथा मध्य इन दो स्थानों से ही करके दिखलाते हैं। तार स्थान के स्वर सदैव ऊँचे होते हैं। इससे उनका बारम्बार उपयोग करना कठिन सा होता है तथा ऐसा करने से राग वैचित्र्य भी भलीभांति नहीं सँभलता। आजकल हमारे समाज की यह धारणा हो गई है कि सभी रागों का उत्तम मण्डन अस्ताई में ही होना चाहिये। यह ठीक है कि कुछ राग उत्तरांग के भी हैं। इनके विषय में, मैं आगे चलकर अधिक बताता जाऊँगा। जिनमें तार स्थान के ही स्वर अधिक महत्व प्राप्त करते हैं, तथापि साधारण नियम, वही है जो मैंने अभी बताया है; और इसी को तुम्हें याद रखनी चाहिए।

प्र०—आपने अभी उत्तरांग राग के विषय में कहा। इन रागों को किस आधार पर ऐसा माना जाता है ?

उ०—मेरे मन में यह था कि जब आगे चलकर ऐसे राग आवें तब तुम्हें उनके बारे में बताऊँ, परन्तु जिस उद्देश्य से हम भिन्न-भिन्न बातों के विषयों पर वार्तालाप कर रहे हैं उसी उद्देश्य से पहले यही भाग हाथ में लेते हैं। यह विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है अतः जो मैं कहता हूं, उसे सावधानी से समझकर याद रखना। यह तो तुम जानते ही हो कि, हमारे सात स्वर "सा, रे, ग, म, प, ध, नि" हैं। इन्हीं में एक ऊपर का सां जोड़ देने से आठ स्वरों का समुदाय, जिसे अंग्रेजी में Octave (औक्टेव) कहते हैं, तैयार होगा। इसको अगर हम दो भाग करें तो, "सा, रे, ग, म तथा प, ध, नि, सां" यह होंगे। इसमें से पहले भाग अर्थात् "सा, रे, ग, म" को पूर्वाङ्ग कहते हैं, तथा दूसरे "प, ध, नि, सां" को उत्तरांग कहते हैं। यह स्वर चाहे तीव्र हों चाहे कोमल, अङ्गों के नाम यही रहेंगे। अब यह बताता हूं कि अङ्गों का महत्व क्या है। यह प्रसिद्ध ही है कि हम आठ प्रहरों का अथवा चौबीस घण्टों का पूरा एक दिन मानते हैं। सम्पूर्ण दिवस के "दिन" तथा "रात्रि" नामक दो भाग किये जाते हैं। हमारे आठ प्रहरों के दिन में दो समय ऐसे आते हैं, जब प्रकाश तथा अन्धकार की सन्धि होती है। इस बेला से प्रातःकाल तथा सायंकाल का आशय है, यह बात तुम समझ ही गये होगे। सङ्गीत में इस बेला को "सन्धिप्रकाश" बेला कहते हैं। यह भी मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ कि, प्रत्येक राग में वादी स्वर अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। अब तुम एक साधारण नियम यह याद रक्खो कि पूर्वाङ्ग राग का अर्थ वे राग हैं, जिनमें 'सा, रे, ग, म'

इन पूर्वाङ्ग स्वरों में से कोई एक स्वर वादी होता है, तथा इसी प्रकार उत्तरांग राग का अर्थ वे राग हैं, जिनमें उत्तरांग का कोई एक स्वर वादी होता है। सन्धिप्रकाश के जो राग प्रचार में हैं उनके विषय में बताते समय, मैं तुम्हें इस नियम के उदाहरण भली-भांति दिखा दूंगा, तथा उनके विषय में अधिक स्पष्टीकरण भी करूंगा। तथापि इतना तो मैं तुम्हें बता ही देना चाहता हूँ कि सायंकालीन रागों में तुम्हें पूर्वाङ्ग का स्वर अनेक स्थलों पर वादी बना हुआ मिलेगा, तथा इसी प्रकार प्रातःकालीन रागों में उत्तरांग का स्वर वादी होगा। रात्रि के रागों को देखने पर तुम्हें ऐसे राग मिलेंगे, जिनमें पूर्वाङ्ग का स्वर वादी है, तथा जैसे—जैसे रात्रि बीतती जायगी वैसे-वैसे वादित्व क्रमानुसार उत्तरांग में होता जायगा। दिन के रागों में बहुधा उलटा क्रम दृष्टिगोचर होता है। मेरा अनुमान है कि, इस प्रसङ्ग में इस विषय की ओर अधिक चर्चा नहीं है। तुम्हारे सामने आगे चलकर जैसे—जैसे राग आते जायें वैसे—वैसे इस तत्व की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता रहूँ, तो अच्छा होगा।

प्रश्न—आपका कहना बिल्कुल ठीक है। वास्तविक तत्वों को इसी समय ध्यान में रखने की अपेक्षा उदाहरणों की सहायता से उन्हें समयानुसार समझते रहने पर ही यह अच्छी तरह समझ में आते हैं। पहले आपने आलाप के विषय में प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या बताई थी, वह मैं समझ गया। परन्तु आपके कहने से कुछ ऐसा मालूम होता है कि उस व्याख्या के नियमानुसार अब नहीं गाया जा सकता। तब फिर प्रचलित रीति के अनुसार, यदि कोई राग गाना पड़े तो हमें वह किस प्रकार गाना चाहिये? क्या आप इस विषय में भी कुछ बतायेंगे?

उत्तर—तुम्हारे इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर देना कठिन है। जैसे-जैसे तुम उत्तम गाने सुनते जाओगे वैसे ही वैसे तुम्हारे प्रयत्नानुसार, उसकी रूप-रेखा अपने आप ही बनती जायगी, नियमानुसार सीखे सिखाये उत्तम वक्ता कम ही होते हैं। यही हाल गायक का है। शिक्षक थोड़ी बहुत शिक्षायें बता सकता है, अर्थात् वह थोड़ी सूचना दे सकता है, परन्तु भली-भाँति गा सकना सीखने वाले के स्वभाव पर ही अधिक अवलम्बित रहता है। बारम्बार गाने सुनकर बुद्धिमान लोग उनका अनुकरण कर सकते हैं। तुम निराश न हो; यद्यपि तुम्हारे प्रश्न का समाधान-कारक उत्तर देना कठिन है, तथापि कुछ परिमाण में तुम्हारे उपयोग में आने वाली कुछ बातें मैं बताता हूँ, उनकी ओर ध्यान दो। यदि कोई भी राग गाने के लिये कहा जाये तो उसके दो भाग करने की योजना करनी पड़ती है। पहला भाग स्थाई का और दूसरा अन्तरे का। इन भागों के विषय में, मैं बता ही चुका हूँ। रत्नाकर के चौथे अध्याय में प्रबन्धविषयक विवेचना में ऐसे भागों का थोड़ा सा वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उसमें पहले, गीत के दो भेद बताये गये हैं अर्थात् "गान्धर्व" और "गान"। गान्धर्व की व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

"अनादिसंप्रदायं यग्दंधर्वैः संप्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसो हेतु स्तग्दांधर्वं जगुर्बुधाः॥

गान की व्याख्या इस प्रकार है:—

यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम् ।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरंजनम् ॥

टीका में कल्लिनाथ कहते हैं "गांधर्व मार्गः, गांनतुदेशी" गांधर्व गीत अनादि सम्प्रदाय का होने से वेदों के अनुसार अपौरुषेय है, ऐसा समझा जाता है। "गान" यह वाग्गेयकारों के ऊपर अवलम्बित होने से पौरुषेय ही है। जाति, ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, इत्यादि सभी को गांधर्व गीत समझना चाहिये। 'रत्नाकर' में गाने के दो भेद किये गये हैं। १ निबद्ध २ अनिबद्ध। पहले जो आलप्ति नामक प्रकार समझाया गया है, उसे "अनिबद्ध" गान का उदाहरण समझना चाहिये। प्रबन्धादिक प्रकार निबद्ध के उदाहरण हैं। प्रबन्ध के अवयव ये बताये गये हैं:—

"प्रबंधावयवोधातुः सचतुर्धा निरूपितः ।
उद्ग्राहः प्रथमस्तत्र ततो मेलापकध्रुवौ ॥
आभोगश्चेति तेषां च क्रमाल्लक्ष्माभिदध्महे ॥
उद्ग्राहः प्रथमोभागस्ततो मेलापकः स्मृतः ।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वंतिमो मतः ॥
ध्रुवाभोगांतरे जातो धातुरन्योन्तराभिधः ।
सतुसालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते ॥

उपर्युक्त श्लोक में प्रबन्ध के धातु, अर्थात् भाग अथवा अवयव समझाये गये हैं। ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि कुछ प्रबन्धों के दो ही धातु होते हैं। हमारी पद्धति में अस्ताई, अन्तरा, आभोग इत्यादि हैं; वे भी इस प्राचीन सम्प्रदाय के ही आधार पर हैं। ऊपर 'आभोग' शब्द आया है। टीकाकार ने उसका अर्थ 'पूर्णता' किया है:—

"अन्तिमो धातुः प्रबन्धगस्य परिपूर्णता हेतुत्वात् आभोगः।"

इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है। रत्नाकर के लेखक ने अपने ग्रन्थ में गीतों के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है। तुम्हें उनकी आवश्यकता नहीं है। वे आजकल दिखाई भी नहीं देते। हमारी पद्धति के गीत निराले ही हैं। इनके विषय में आगे कहा जायगा। 'अन्तरा' शब्द से यह विषयान्तर हो गया था।

प्रश्न—निबद्ध और अनिबद्ध का भेद तो हमारे सङ्गीत पर भी लागू होता ही है। प्रबन्ध में जिस प्रकार धातु हैं, वैसे ही हमारे यहां भी हैं। इतना ही सार

याद रखना ठीक है न ? प्राचीन पण्डितों ने इस शास्त्र पर कितना सूक्ष्म विचार किया है ?

उ०—यह सत्य है। उनकी प्रशंसा भी यथार्थ है। दुर्दैव से ग्रन्थावलोकन पीछे छूट गया। यह भी कहना पड़ेगा कि हमारे युग में तो प्राचीन सङ्गीत का अधिकांश नष्ट-प्रायः होगया है। उन पण्डितों ने अपने शास्त्र को कितना सुव्यवस्थित कर दिया था। ऊपर मैंने गीतों के जो निबद्ध इत्यादि भेद बताये हैं, उन्हें रागतरंगिणी में कैसे स्पष्ट रूप से समझाया है। यह देखो। "ग्रंथकार कहता है:—"

"निबद्धमनिबद्धं च गीतंद्विविधमुच्यते।
अनिबद्धंभवेद्गीतं वर्णादिनियमैर्विना॥
यद्वागमकधात्वंगवर्णादिनियमैर्विना।
निबद्धंच भवेद्गीतं तालमानरसांचितम्।
छंदोगमकधात्वंगवर्णादिनियमैः कृतम्॥"

टीका:—

गमकाः कम्पितादयः धातुर्नादः, अङ्गानि पदानि, तेनविरुदादीनि,
तालाश्चचच्चत्पुटचाचपुटादयः, मानंतुप्रसिद्धं, रसाः श्रृङ्गारादयः।

प्र०—यह रागतरंगिणी ग्रन्थ किसने और कब लिखा ?

उ०—इसे विद्यापति नामक पण्डित ने लिखा है। ग्रन्थ में इस पण्डित का समय "भुजवसुदशमितशाके" दिया हुआ है, अर्थात् शाक संवत् १०८२। इस ग्रन्थ में कुछ मुसलमानी रागों के नाम भी दिखाई देते हैं। यह मिथला देश का ग्रन्थकार है (कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा साहेब टैगोर कहते हैं कि बिहार प्रान्त के राजा शिवसिंह के पास १४ वीं शताब्दी में विद्यापति पण्डित थे) अस्तु, जो कुछ भी हो, अब हम अपने प्रस्तुत 'आलाप' विषय की ओर अग्रसर होते हैं।

प्र०—हाँ, ऐसा ही कीजिए। आपने कहा था कि गाने में राग के स्थायी (अस्ताई) तथा अन्तरा ये दो भाग किये जाते हैं।

उ०—ठीक है। इन दोनों भागों में से पहले 'अस्ताई का भाग' हाथ में लेंगे। जहाँ तक हो सकता है, अस्ताई में तार सप्तक के स्वर नहीं मिलाये जाते। तार सप्तक अन्तिम सीमा है। मैं यह पहले ही कह चुका हूं कि वास्तविक आनन्द मुख्यतः मन्द्र तथा मध्य इन दो स्थानों में ही है। गाते-गाते आगे चलकर मध्य रात्रि के उत्तर में जो राग आते हैं, उनमें तार स्वरों का प्राबल्य दृष्टिगोचर होने लगता है। यह सत्य है कि उस बेला में तार स्थान के स्वर अतीव मधुर प्रतीत होते हैं। अस्ताई का भाग यथेच्छ गाकर फिर तार सप्तक के स्वर लेने चाहिये। यह न समझना चाहिए कि एक बार तार सप्तक में प्रवेश करके पुनः नीचे के स्थान के स्वर नहीं लिए जाते। केवल तार सप्तक में, भला कितनी देर तक गाया जा

सकता है ? उस स्थान में पंचम से ऊपर के स्वर तो क्वचित् ही प्रयुक्त होते हैं। गला उतना ऊंचा नहीं जाता। यदि येनकेन प्रकारेण गायक वैसे स्वरों का प्रयोग करता है, तब भी उसका गाना प्रायः दूषित हो जाता है। ऐसे गाने में रक्तिगुण की कमी होने का भय रहता है। यदि यह देखना हो कि हमारे प्राचीन पण्डित गीत के रंजकत्व की ओर कितना लक्ष्य रखते थे, तो रत्नाकर के तीसरे अध्याय में गायकों के जो गुण दोष बताये गए हैं, उन्हें देखने से ठीक कल्पना हो सकेगी। उसमें गायकों के २५ गुण तथा २५ दोष बताये गये हैं।

प्रश्न—क्या आप उन्हें अभी बतायेंगे ? हम इस समय गायन के विषय पर ही तो विचार कर रहे हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अभी बताया जाना ठीक ही होगा।

उत्तर—मुझे तो यह भान होने लगा है कि, हमारा संभाषण किसी अंश तक हितोपदेश की कथाओं जैसा रूप ग्रहण करने लगा है। बीच में ही भिन्न-भिन्न विषय निकालकर उन पर चर्चा करना विषयान्तर सा प्रतीत होता है। है कि नहीं ? तथापि तुम्हारी इच्छा ही है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न—नहीं, नहीं ! आपकी बताई हुई सभी बातें हमें भली भांति स्मरण हैं। मुझे विदित है कि आप यमन के विषय पर विवेचन कर रहे हैं। आलाप की बात निकली, तो फिर उसमें से गीत की बात निकलती ही। और जब गीत की चर्चा चली तो गायकों के गुणावगुणों की बात भी ठीक ही है। इन गुणावगुणों को आप संक्षेप में ही बता दें तो पर्याप्त है। हम भी तो अभी गाना सीख ही रहे हैं; अतः हमें उनका ज्ञान होना उपयोगी होगा।

उत्तर—यह ठीक है, इसका ज्ञान होना उचित ही है। अच्छा तो देखो वाग्गेयकार—जिसे अंग्रेजी में Music Composer कहते हैं। कैसा होना चाहिये ? रत्नाकरकार कहता है कि उसमें इतने गुण होने चाहियेः—

(१) शब्दानुशासन-ज्ञान, (२) अभिधान प्रावीण्य, (३) छंदःप्रभेद-ज्ञान (४) अलंकारकुशलता, (५) रसभाव परिज्ञान, (६) देशस्थिति, अर्थात् कलाशास्त्र में प्रवीणता, (७) तुर्यत्रितय चातुर्य (८) हृद्यशारीरशालिता (९) लयतालकलाज्ञान (१०) अनेककाकुज्ञान (११) प्रभूतप्रतिभा (१२) सुभगगेयता (१३) देशीरागाभिज्ञता (१४) समाजयवाक्पटुत्व (१५) रागद्वेषपरित्याग (१६) सार्द्रत्व (१७) उचितज्ञता (१८) अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्ध (१९) नवीनधातुविनिर्मित (२०) परचित्तपरिज्ञान (२१) प्रबंधप्रगल्भता (२२) द्रुतगीत विनिर्माण (२३) पदांतरविदग्धता (२४) त्रिस्थानगमकप्रौढि (२५) आलप्तिनैपुण्य (२६) अवधान—इतने गुण उत्तम वाग्गेयकार में होने चाहिये। इन गुणों में कमी होने पर उनके मध्यम, अधम इत्यादि वर्ग हो जाते हैं। अब गायकों के गुण सुनोः—

(१) हृद्यशब्द (२) सुशारीर (३) ग्रहन्यास नियमज्ञ (४) रागांगादिरागज्ञ (५) प्रबंधगानचतुर (६) आलप्तितत्त्ववित् (७) सर्व-स्थानों में गमक ले सकने वाला (८) आयत्तकंठ (९) तालज्ञ (१०) सावधान (११) जितश्रम (१२)

इन पूर्वाङ्ग स्वरों में से कोई एक स्वर वादी होता है, तथा इसी प्रकार उत्तरांग राग क अर्थ वे राग हैं, जिनमें उत्तरांग का कोई एक स्वर वादी होता है। सन्धिप्रकाश के जो राग प्रचार में हैं उनके विषय में बताते समय, मैं तुम्हें इस नियम के उदाहरण भली भांति दिखा दूंगा, तथा उनके विषय में अधिक स्पष्टीकरण भी करूंगा। तथापि इतन तो मैं तुम्हें बता ही देना चाहता हूँ कि सायंकालीन रागों में तुम्हें पूर्वाङ्ग का स्वर अने स्थलों पर वादी बना हुआ मिलेगा, तथा इसी प्रकार प्रातःकालीन रागों में उत्तरांग क स्वर वादी होगा। रात्रि के रागों को देखने पर तुम्हें ऐसे राग मिलेंगे, जिनमें पूर्वा का स्वर वादी है, तथा जैसे—जैसे रात्रि बीतती जायगी वैसे-वैसे वादित्व क्रमानुसा उत्तरांग में होता जायगा। दिन के रागों में बहुधा उलटा क्रम दृष्टिगोचर होता है। मे अनुमान है कि, इस प्रसङ्ग में इस विषय की ओर अधिक चर्चा नहीं है। तुम्हारे साम आगे चलकर जैसे—जैसे राग आते जायें वैसे—वैसे इस तत्व की ओर मैं तुम्हारा ध्या आकर्षित करता रहूँ, तो अच्छा होगा।

प्रश्न—आपका कहना बिल्कुल ठीक है। वास्तविक तत्त्वों को इसी समय ध्या में रखने की अपेक्षा उदाहरणों की सहायता से उन्हें समयानुसार समझते रहने पर यह अच्छी तरह समझ में आते हैं। पहले आपने आलाप के विषय में प्राचीन ग्रन्थों व्याख्या बताई थी, वह मैं समझ गया। परन्तु आपके कहने से कुछ ऐसा मालूम होता कि उस व्याख्या के नियमानुसार अब नहीं गाया जा सकता। तब फिर प्रचलित रीति अनुसार, यदि कोई राग गाना पड़े तो हमें वह किस प्रकार गाना चाहिये? क्या आ इस विषय में भी कुछ बतायेंगे?

उत्तर—तुम्हारे इस प्रश्न का समाधानकारक उत्तर देना कठिन है। जैसे- तुम उत्तम गाने सुनते जाओगे वैसे ही वैसे तुम्हारे प्रयत्नानुसार, उसकी रूप—रेखा आ आप ही बनती जायगी, नियमानुसार सीखे सिखाये उत्तम वक्ता कम ही होते हैं। व हाल गायक का है। शिक्षक थोड़ी बहुत शिक्षायें बता सकता है, अर्थात् वह थो सूचना दे सकता है, परन्तु भली-भाँति गा सकना सीखने वाले के स्वभाव पर अधिक अवलम्बित रहता है। बारम्बार गाने सुनकर बुद्धिमान लोग उनका अनुक कर सकते हैं। तुम निराश न हो; यद्यपि तुम्हारे प्रश्न का समाधान—कारक उत्तर दे कठिन है, तथापि कुछ परिमाण में तुम्हारे उपयोग में आने वाली कुछ बातें मैं बताता उनकी ओर ध्यान दो। यदि कोई भी राग गाने के लिये कहा जाये तो उसके दो भ करने की योजना करनी पड़ती है। पहला भाग स्थाई का और दूसरा अन्तरे का। भागों के विषय में, मैं बता ही चुका हूँ। रत्नाकर के चौथे अध्याय में प्रबन्धविष विवेचना में ऐसे भागों का थोड़ा सा वर्णन दृष्टिगोचर होता है। उसमें पहले, गीत दो भेद बताये गये हैं अर्थात् "गान्धर्व" और "गान"। गान्धर्व की व्याख्या प्रकार की गई है:—

"अनादिसंप्रदायं यग्दंधर्वैः संप्रयुज्यते।

नियतं श्रेयसो हेतु स्तग्दांधर्वं जगुर्बुधाः॥

गान की व्याख्या इस प्रकार है:—

यत्तु वाग्गेयकारेण रचितं लक्षणान्वितम् ।
देशीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरंजनम् ॥

टीका में कल्लिनाथ कहते हैं "गांधर्वं मार्गः, गांनतुदेशी" गांधर्व गीत अनादि सम्प्रदाय का होने से वेदों के अनुसार अपौरुषेय है, ऐसा समझा जाता है। "गान" यह वाग्गेयकारों के ऊपर अवलम्बित होने से पौरुषेय ही है। जाति, ग्रामराग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, इत्यादि सभी को गांधर्व गीत समझना चाहिये। 'रत्नाकर' में गाने के दो भेद किये गये हैं। १ निबद्ध २ अनिबद्ध। पहले जो आलप्ति नामक प्रकार समझाया गया है, उसे "अनिबद्ध" गान का उदाहरण समझना चाहिये। प्रबन्धादिक प्रकार निबद्ध के उदाहरण हैं। प्रबन्ध के अवयव ये बताये गये हैं:—

"प्रबंधावयवोधातुः सचतुर्धा निरूपितः ।
उद्ग्राहः प्रथमस्तत्र ततो मेलापकध्रुवौ ॥
आभोगश्चेति तेषां च क्रमाल्लक्ष्माभिदध्महे ॥
उद्ग्राहः प्रथमोभागस्ततो मेलापकः स्मृतः ।
ध्रुवत्वाच्च ध्रुवः पश्चादाभोगस्त्वंतिमो मतः ॥
ध्रुवाभोगांतरे जातो धातुरन्योन्तराभिधः ।
सतुसालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते ॥

उपर्युक्त श्लोक में प्रबन्ध के धातु, अर्थात् भाग अथवा अवयव समझाये गये हैं। ग्रन्थों में यह भी कहा गया है कि कुछ प्रबन्धों के दो ही धातु होते हैं। हमारी पद्धति में अस्ताई, अन्तरा, आभोग इत्यादि हैं; वे भी इस प्राचीन सम्प्रदाय के ही आधार पर हैं। ऊपर 'आभोग' शब्द आया है। टीकाकार ने उसका अर्थ 'पूर्णता' किया है:—

"अन्तिमो धातुः प्रबन्धगस्य परिपूर्णता हेतुत्वात् आभोगः।".

इस प्रकार स्पष्टीकरण किया गया है। रत्नाकर के लेखक ने अपने ग्रन्थ में गीतों के अनेक प्रकारों का उल्लेख किया है। तुम्हें उनकी आवश्यकता नहीं है। वे आजकल दिखाई भी नहीं देते। हमारी पद्धति के गीत निराले ही हैं। इनके विषय में आगे कहा जायगा। 'अन्तरा' शब्द से यह विषयान्तर हो गया था।

प्रश्न—निबद्ध और अनिबद्ध का भेद तो हमारे सङ्गीत पर भी लागू होता ही है। प्रबन्ध में जिस प्रकार धातु हैं, वैसे ही हमारे यहां भी हैं। इतना ही सार

याद रखना ठीक है न ? प्राचीन पण्डितों ने इस शास्त्र पर कितना सूक्ष्म विचार किया है ?

उ०—यह सत्य है। उनकी प्रशंसा भी यथार्थ है। दुर्दैव से ग्रन्थावलोकन पीछे छूट गया। यह भी कहना पड़ेगा कि हमारे युग में तो प्राचीन सङ्गीत का अधिकांश नष्ट-प्राय: होगया है। उन पण्डितों ने अपने शास्त्र को कितना सुव्यवस्थित कर दिया था। ऊपर मैंने गीतों के जो निबद्ध इत्यादि भेद बताये हैं, उन्हें रागतरंगिणी में कैसे स्पष्ट रूप से समझाया है, यह देखो। "यह ग्रन्थकार कहता है:—

"निबद्धमनिबद्धं च गीतं द्विविधमुच्यते।
अनिबद्धं भवेद्गीतं वर्णादिनियमैर्विना॥
छंदोगमकधात्वंगवर्णादिनियमैर्विना।
निबद्धं च भवेद्गीतं तालमानरसांचितम्।
छंदोगमकधात्वंगवर्णादिनियमैः कृतम्॥"

टीका:—

गमका: कम्पितादय: धातुनाद:, अङ्गानि पदानि, तेनविरुदादीनि, तालाश्चचच्चत्पुटचाचपुटादय:, मानंतुप्रसिद्ध, रसा: श्रृंगारादय:।

प्र०—यह रागतरंगिणी ग्रन्थ किसने और कब लिखा ?

उ०—इसे विद्यापति नामक पण्डित ने लिखा है। ग्रन्थ में इस पण्डित का समय "भुजवसुदशमितशाके" दिया हुआ है, अर्थात् शाक संवत् १०८२। इस ग्रन्थ में कुछ मुसलमानी रागों के नाम भी दिखाई देते हैं। यह मिथिला देश का ग्रन्थकार है (कलकत्ते के प्रसिद्ध राजा साहेब टैगोर कहते हैं कि बिहार प्रान्त के राजा शिवसिंह के पास १४ वी शताब्दी में विद्यापति पण्डित थे)। अस्तु, जो कुछ भी हो, अब हम अपने प्रस्तुत 'आलाप' विषय की ओर अग्रसर होते हैं।

प्र०—हाँ, ऐसा ही कीजिए। आपने कहा था कि गाने में राग के स्थायी (अस्ताई) तथा अन्तरा ये दो भाग किये जाते हैं।

उ०—ठीक है। इन दोनों भागों में से पहले अस्ताई का भाग हाथ में लेंगे। जहाँ तक हो सकता है, अस्ताई में तार सप्तक के स्वर नहीं मिलाये जाते। तार सप्तक अन्तिम सीमा है। मैं यह पहले ही कह चुका हूं कि वास्तविक आनन्द मुख्यत: मन्द्र तथा मध्य इन दो स्थानों में ही है। गाते-गाते आगे चलकर मध्य रात्रि के उत्तर में जो राग आते हैं, उनमें तार स्वरों का प्राबल्य दृष्टिगोचर होने लगता है। यह सत्य है कि उस बेला में तार स्थान के स्वर अतीव मधुर प्रतीत होते हैं। अस्ताई का भाग यथेच्छ गाकर फिर तार सप्तक के स्वर लेने चाहिये। यह न समझना चाहिए कि एक बार तार सप्तक में प्रवेश करके पुन: नीचे के स्थान के स्वर नहीं लिए जाते। केवल तार सप्तक में, भला कितनी देर तक गाया जा

सकता है ? उस स्थान में पंचम से ऊपर के स्वर तो क्वचित ही प्रयुक्त होते हैं। गला उतना ऊंचा नहीं जाता। यदि येनकेन प्रकारेण गायक वैसे स्वरों का प्रयोग करता है, तब भी उसका गाना प्रायः दूषित हो जाता है। ऐसे गाने में रक्तिगुण की कमी होने का भय रहता है। यदि यह देखना हो कि हमारे प्राचीन पण्डित गीत के रंजकत्व की ओर कितना लक्ष्य रखते थे, तो रत्नाकर के तीसरे अध्याय में, गायकों के जो गुण दोष बताये गए हैं, उन्हें देखने से ठीक कल्पना हो सकेगी। उसमें गायकों के २५ गुण तथा २५ दोष बताये गये हैं।

प्रश्न—क्या आप उन्हें अभी बतायेंगे ? हम इस समय गायन के विषय पर ही तो विचार कर रहे हैं, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अभी बताया जाना ठीक ही होगा।

उत्तर—मुझे तो यह भान होने लगा है कि, हमारा संभाषण किसी अंश तक हितोपदेश की कथाओं जैसा रूप ग्रहण करने लगा है। बीच में ही भिन्न-भिन्न विषय निकालकर उन पर चर्चा करना विषयान्तर सा प्रतीत होता है। है कि नहीं ? तथापि तुम्हारी इच्छा ही है तो मुझे भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्न—नहीं, नहीं ! आपकी बताई हुई सभी बातें हमें भली भांति स्मरण हैं। मुझे विदित है कि आप यमन के विषय पर विवेचन कर रहे हैं। आलाप की बात निकली, तो फिर उसमें से गीत की बात निकलती ही। और जब गीत की चर्चा चली तो गायकों के गुणावगुणों की बात भी ठीक ही है। इन गुणावगुणों को आप संक्षेप में ही बता दें तो पर्याप्त है। हम भी तो अभी गाना सीख ही रहे हैं; अतः हमें उनका ज्ञान होना उपयोगी होगा।

उत्तर—यह ठीक है, इसका ज्ञान होना उचित ही है। अच्छा तो देखो वाग्गेयकार—जिसे अंग्रेजी में Music Composer कहते हैं। कैसा होना चाहिये ? रत्नाकरकार कहता है कि उसमें इतने गुण होने चाहिये:—

(१) शब्दानुशासन-ज्ञान, (२) अभिधान प्रावीण्य, (३) छंदःप्रभेद-ज्ञान (४) अलंकारकुशलता, (५) रसभाव परिज्ञान, (६) देशस्थिति, अर्थात् कलाशास्त्र में प्रवीणता (७) तुर्यत्रितय चातुर्य (८) हृद्यशारीरशालिता (९) लयतालकलाज्ञान (१०) अनेककाकुज्ञान (११) प्रभूतप्रतिभा (१२) सुभगगेयता (१३) देशीरागाभिज्ञता (१४) समाजयवाक्पटुत्व (१५) रागद्वेषपरित्याग (१६) सार्द्रत्व (१७) उचितज्ञता (१८) अनुच्छिष्टोक्तिनिर्बन्ध (१९) नवीनधातुविनिर्मिति (२०) परचित्तपरिज्ञान (२१) प्रबंधप्रगल्भता (२२) द्रुतगीत विनिर्माण (२३) पदान्तरविदग्धता (२४) त्रिस्थानगमकप्रौढि (२५) आलप्तिनैपुण्य (२६) अवधान—इतने गुण उत्तम वाग्गेयकार में होने चाहिये। इन गुणों में कमी होने पर उनके मध्यम, अधम इत्यादि वर्ग हो जाते हैं। अब गायकों के गुण सुनो:—

(१) हृद्यशब्द (२) सुशारीर (३) ग्रहन्यास नियमज्ञ (४) रागांगादिरागज्ञ (५) प्रबंधगानचतुर (६) आलप्तितत्ववित् (७) सर्व स्थानों में गमक ले सकने वाला (८) आयत्तकंठ (९) तालज्ञ (१०) सावधान (११) जितश्रम (१२)

शुद्धच्छायालगाभिज्ञ (१३) सर्व काकुविशेषज्ञ (१४) अपारस्थाय संचार (१५) दोषवर्जित (१६) क्रियापर (१७) अजस्रलय (१८) सुघट (१९) धारणान्वित (२०) प्रसरवेगवान् (२१) श्रोतृजन-मोहक (२२) सुसंप्रदाय इत्यादि। ऐसा गायक होना चाहिये।

इसके आगे गायकों के दोष बताता हूं, उन्हें भी सुनलो। (१) सदष्ट (२) उद्घृष्ट (३) सूत्कारी (४) भीत (५) शंकित (६) कंपित (७) कराली (८) विकल (९) काकी (१०) विताल (११) करभ (१२) उद्भड (१३) झोंबक (१४) तुम्बकी, (१५) वक्री (१६) प्रसारी (१७) विनिमीलक (१८) विरस (१९) अपस्वर (२०) अव्यक्त (२१) स्थान भ्रष्ट (२२) अव्यवस्थित (२३) मिश्रक (२४) अनवधान (२५) अनुनासिक—ये हीन गायक हैं।

स्पष्ट है कि इससे हमें अपने पण्डितों पर बड़ी श्रद्धा हो जाती है। परन्तु तुम्हें यह भी कल्पना हो सकती है कि, निर्दोष गायन कितना कठिन है। इन सभी दोषों का निराकरण सम्भव नहीं है, तथापि उनका ज्ञान होना अच्छा ही है। इस दृष्टि से हमारे आज के गायक कितने हीन ठहरते हैं। तथापि है ऐसा ही। अब हम प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। राग कैसे गाना चाहिये ?

इस विषय का तुम्हें साधारण ज्ञान प्राप्त करना है। मैंने तुम्हें यह बताया था कि तार सप्तक के स्वर एक दम न होने चाहिये। गाना शुरू करते ही पहले मध्य स्थान का षड्ज स्पष्ट तथा दीर्घ गाना चाहिये। ऐसा करने से गले के दोष निकल जाते हैं, और वह साफ हो जाता है। यही नहीं, प्रत्युत इससे एक अन्य बात भी स्वमेव ही सिद्ध हो जाती है। श्रोतृसमूह तुम्हारा गाना सुनने के लिये शान्त होकर बैठ जाएगा। कुशल गायक अपना गाना एकदम से शुरू नहीं कर देते। कुछ अन्शों में इसका कारण यही है। यह याद रखना कि आजकल जो रीति प्रचलित है, मैं केवल उसी का उल्लेख कर रहा हूँ। कुछ गायक इतने कुशल होते हैं कि केवल मधुर तथा दीर्घ षड्ज स्वर को ही लगाकर सुनने वालों का मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। स्पष्ट है कि यह कृत्य गला उत्तम सध जाने पर ही संभव हो सकता है। षड्ज स्वर उत्तम सध जाने पर जो राग गाना हो, उसके वादी स्वर का दीर्घ उच्चारण करके उससे षड्ज पर जाकर मिलना चाहिये। यदि पूर्वांग का कोई स्वर वादी हुआ तो यह कृत्य निश्चय ही बड़ा सुशोभित होगा। इसके बाद शनैः शनैः मन्द्र स्थान के स्वर लेने चाहिये। जहां तक हो सके, वादी स्वर से आगे जल्दी न जाना चाहिये। यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि पुनरुक्ति उकताने वाली न हो। हमारे अनेक नवोदित गायकों में यह दोष दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक बार नवीन स्वर-रचना अथवा तान उत्पन्न करनी चाहिये। अर्थात् प्रत्येक तान में कोई न कोई नवीन स्वर रखकर, अथवा पहले प्रयुक्त किये हुए स्वरों को उलट-पलट कर गाना चाहिये। (कुछ लोग ऐसी ही तानों को कूटतान कहते हैं)। इसे समझ लेना अधिक कठिन नहीं है। यदि "सा रे ग म" ये चार स्वर हमारे पास हों, तो गणित की दृष्टि से उन्हें उलट पलट कर २४ प्रकार बनाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—सा रे ग म, रे सा ग म, ग सा रे म इत्यादि। यह आवश्यक नहीं है कि ये सभी प्रकार गाते समय

आने ही चाहिये। प्रस्तुत राग में इनमें से जो उचित हों केवल उन्हीं को लेना चाहिये। कूटतान का अर्थ है ऐसी तान, जिसमें स्वरों का क्रम भङ्ग हो गया हो। ग्रन्थ इन तानों का जहां तक सविस्तार वर्णन करते हैं, वहां तक मैं भी तुम्हें समझाऊँगा। इस समय मैं तुम्हें इस खटराग में नहीं डालना चाहता। पण्डितों ने गणित की सहायता से ऐसी तानों को नियमित कर दिया है। प्रत्येक राग गाते समय यह याद रखना चाहिये कि उसका मुख्य अङ्ग, अर्थात् उसकी पकड़ अथवा उसका स्वरूप किन स्वरों पर अवलम्बित है। एक थाट में से अनेक राग निकल सकते हैं; तथा इसी कारण एक दूसरे से उनके मिल जाने का भय रहता है। ऐसा न होने पाये, इसी से श्रोताओं के सामने धीरे-धीरे राग के मुख्य भाग का मण्डन करना पड़ता है। यह कृत्य हमारे प्रसिद्ध गायक किस प्रकार करते हैं, इसे देखकर सीख लेना चाहिये। गुरु से प्रत्येक राग के अङ्ग को समझ लेना पड़ता है। यमन में "ग रे सा, नि़ रे, गरेसा" इन स्वरों को भली-भांति याद रखना चाहिये। इस थाट के कुछ ही रागों में ये स्वर इस प्रकार दिखाई देंगे, और जहां दिखाई भी देंगे, वहां यमन का स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई देगा। यदि हम शनैः शनैः यमन का विस्तार करें तो वह इस तरह होगा:—ग रे सा, नि़ रे सा, नि़ रे ग, रे ग, रेसा, नि़ रे, नि़ ध़, रे नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ ध़, रे, नि़ रे, नि़ ग रे, सा, नि़ रे ग रे सा, नि़ रे, प़ ध़ नि़, ध़ नि़, रे, नि़ रे, नि़ ग रे सा, प़ प़ ध़ ध़ प़, ध़ प़, मं ग, मं ध, नि़ ध, मं ध नि़ रे, ग रे, नि़ रे ग रे सा, नि़ रे, ध़ नि़, प़ ध़, मं प़, ग रे, नि़ रे, नि़ ग रे, नि़ रे, सा। इसी रीति से तुम भी राग विस्तार करने का अभ्यास करते जाओ। कहीं तीन स्वरों के प्रकार, तो कहीं चार स्वरों के, कहीं उनसे भी न्यूनाधिक स्वरों के प्रकार सुनाने की योजना करनी चाहिये। माधुर्य की ओर सदैव लक्ष्य रखना चाहिये। बनने वालों के मन से राग का स्वरूप अदृश्य न होने पावे, यही चमत्कारिक विशेषता है। यह याद रखना चाहिये कि, श्रोताओं के मन में राग विषयक भ्रांति उत्पन्न होते ही तुम्हारे गाने का मूल्य (महत्व) कम होने लगेगा। तानें शनैः-शनैः बढ़ी होती जानी चाहिये। यदि तुमने उन्हें औंधे सीधे ढङ्ग से लेना शुरू किया, तो यह दिखाई देगा कि तुमने पद्धति के अनुसार शिक्षण ग्रहण नहीं किया है। कहा जाता है कि गाना एक प्रकार की मोहनी (विद्या) है, यह कथन असत्य नहीं है। सुनने वालों को यह दिखाई देना चाहिये कि तुम अपने गाने में कतिपय नियमों का पालन कर रहे हो। गाने का अभ्यास करते समय इस पर सदैव पूर्ण ध्यान रखना चाहिये कि हमारी आवाज का स्वाभाविक माधुर्य नष्ट न होने पाये। आजकल आवाज का माधुर्य बिगाड़ लेने वाले कितने ही गायक दिखाई देते हैं। छोटी आयु में मन्द्र सप्तक के स्वरों का उत्तम साधन नहीं हो पाता, फिर भी किसी न किसी तरह उन्हें लगाने की हठ करने से गला बिगड़ जाता है। गाते समय अपनी मुद्रा पर बड़ा ही ध्यान रखना चाहिये। तथा इसी प्रकार गाने के अनुकूल हाव-भाव (जितना उचित हो उतना) भी रखने चाहिये। ऐसा न होने पर लोग तुम्हारे ऊपर हँसेंगे। इस सम्बन्ध में 'लक्ष्यसङ्गीत' में यह कहा है:—

सङ्गीतं मोहिनीरूपमित्याहुः सत्यमेवतत्।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः ॥

गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत्फलम् ॥
अस्मदीयेष्वाधुनिकगायकेषु समंततः ।
यथोक्तनियमान् ज्ञात्वा गायंतो विरला जनाः ॥
भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतीयंते विसंगताः ।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलंकर्कशामताः ॥
एतादृग्गायनाभ्यस्यात्परिणामोऽभीप्सितः ।
ततो हास्यरसस्यैव केवलं स्यात्समुद्भवः ॥
अर्थं विना हावभावा वीररसस्य ये सदा ।
दर्शयंते गायकेऽतेभ्यः कथंस्यादुत्तमंफलम् ॥
अनुसृत्यैव शब्दार्थं ध्वनेः संक्रमणंभवेत् ।
गायकास्तादृशा दुष्टाः स्वपद्यार्थं न ये विदुः ॥

यदि हम अपने गायकों की ओर दृष्टिपात करें, तो यही प्रतीत होगा कि, उपर्युक्त कथनों में बहुत कुछ तथ्य है। बीच-बीच में, जो ग्रन्थ वाक्य मैं कहता जा रहा हूँ, तुम्हें उन्हें पाठ कर लेने की आवश्यकता नहीं है। उनका तत्व ध्यान में आजाना ही पर्याप्त है। मैंने बारम्बार जिस "तान" शब्द का प्रयोग किया है, उसका कोई गूढ़ अर्थ नहीं है। यह शब्द "तन्"=तानना धातु से निकला है। निराले-निराले स्वर समुदायों से राग का विस्तार करने का अर्थ उस राग में तानें लेना मानो जाता है। अन्य एक बात यह याद रखो कि पहले गाना सावकाश शुरू करना चाहिये। इससे गाने का परिणाम उत्तम होता है। सावकाश गा चुकने पर अपनी गति बढ़ानी चाहिये। अत्यन्त द्रुत गति से गाना तीसरी स्थिति है। गाने की गति को "लय" कहते हैं। लय के तीन प्रकार माने गए हैं। (१) विलंबित (२) मध्य (३) द्रुत। तेज चाल (गति) को द्रुत कहते हैं। विलंबित गति का गायन उच्च श्रेणी का तथा कठिन भी है। ऊपर कही हुई सभी बातों पर ध्यान देते हुए तुम गाने लगो, तो मेरा तो यही विश्वास है कि, तुम्हारा राग उत्तम प्रतीत होगा। इस समय, राग के आलाप के सम्बन्ध में तुम्हारे लिये इतनी ही बातें पर्याप्त होंगी। प्रत्यक्ष गाते समय ताल की अतीव आवश्यकता है। इस विषय को स्वतन्त्र तथा सविस्तार रीति से मैं तुम्हें अन्य प्रसंग में समझाने वाला हूँ। गाने के आलाप-क्रम के विषय में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में उल्लेख है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि:—

मध्यषड्जं समारभ्य मंद्रषड्जावधि क्रमात् ।
सम्यगालापनं कृत्वा मध्यषड्जे समापयेत् ॥
मंद्रमध्यषड्जमध्ये रागवर्धनमारभेत् ।
गत्वातानं तारकान्तं मध्यषड्जे समापयेत् ॥

प्राचीन नियमों का महत्व अब प्रचार में नहीं रहा है। अतः हम भी इस विषय की अधिक ऊहापोह क्यों करें? ग्रन्थों को पढ़कर फिर जो-जो भाग तुम्हें उपयोगी प्रतीत हों, उन्हें प्रचार में लाना।

प्रश्न—अभी तो इस विषय में हमारे लिये इतना ही ज्ञान पर्याप्त है। अब यमन की ओर पुनः अग्रसर होइये।

उत्तर—यमन का वादी स्वर गंधार है, तथा सम्वादी नि है। अतः ये दोनों स्वर तुम्हें बारम्बार दिखाई देंगे। अपने राग का विस्तार करते समय गायक इन दोनों स्वरों की कैसे बढ़त करते हैं, यह ध्यान पूर्वक देखते रहना चाहिये। वे, कभी कभी प्रत्येक तान के अन्त में गंधार स्वर को बड़ी खूबी से ला दिखाते हैं। यह कृत्य मनोरम दिखाई देता है। अभ्यास से यह सब तुम्हें साध्य होगा। इसमें असाधारण बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। यमन राग को, दिए जलने के समय-अर्थात् रात्रि के पहिले प्रहर में गाते हैं।

प्रश्न—रागों के समय निर्दिष्ट करने के कौन-कौन से साधन बताये गए हैं?

उत्तर—ग्रन्थों में ऐसे साधन तो नहीं बताए गए हैं, परन्तु यह सत्य है कि, उनके समय अवश्य निश्चित हैं। कुछ लोगों का कहना है कि, इस प्रकार समय निर्दिष्ट करना सर्वथा अर्थ-हीन है। इन लोगों का कहना है कि, स्वरों के कार्य नियमित हैं, अतः उनका चाहे जैसा प्रयोग हो, बात एक ही है। परन्तु मैं तो यह समझता हूँ कि रागों का समय निर्धारित करने में अपूर्व चातुर्य अन्तर्हित है। तथापि हमें यह मानना पड़ेगा कि यह विषय विवादग्रस्त है। यह भी ठीक है कि ग्रन्थों में बताए हुए रागों के समय को आज ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्यों कि रागों के स्वरूप अब परिवर्तित हो गए हैं। मैं भी उन्हीं लोगों में से एक हूँ, जो यह कहते हैं कि, अमुक राग अमुक समय पर अधिक शोभन होगा। मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि, मैं जिस पद्धति का विवेचन कर रहा हूँ उसमें समय का महत्व स्वीकार किया गया है। पूर्वाङ्ग राग तथा उत्तरांग रागों के विषय में कहते समय मैंने इस ओर पहले भी संकेत किया था। मैंने यह भी कहा था कि, रात्रि के पूर्व भाग में प्रायः ऐसे राग गाए जाते हैं, जिनमें पूर्वाङ्ग का कोई स्वर वादी होता है। अभी तो तुम यही नियम स्वीकार करलो, जिसे मैं बता रहा हूँ। यह मैं कह ही चुका हूँ कि, मध्य रात्रि के पश्चात् उत्तराङ्ग का प्राबल्य है। इसमें शास्त्र का कोई रहस्य हो या न हो, परन्तु मुझे विश्वास है कि इस पद्धति को सीखने के लिये, समय का नियम एक उत्तम साधन होगा। दूसरा, एक साधारण नियम यह याद रखो कि, सा, म, प, ये स्वर चाहे जिस समय वादी हो सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि इस नियम का अपवाद कदापि दृष्टिगोचर न होगा। अपवाद तो मिलेंगे, परन्तु इन अपवादों से तुम्हारे नियम और भी दृढ़ होंगे। मुझे विश्वास है कि, इस नियम के आधार पर जैसे-जैसे तुम गायकों के गाने सुनते जाओगे, वैसे-वैसे तुम्हें नियम की सार्थकता सिद्ध करने को प्रमाण मिलते जायेंगे। वादी स्वर के विषय में जैसे तुम्हें एक नियम बताया है, वैसे ही तुम्हें तीव्र मध्यम की उपादेयता के विषय में भी बताना है।

प्र०—वह कौन सा नियम है ?

उ०—बताता हूँ, सुनो। यदि हम सूर्यास्त से लेकर सूर्योदय तक पहला, तथा सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक दूसरा इस प्रकार पूरे दिन के दो भाग मान लें, तो तुम्हें यह पता चलेगा कि, तीव्र मध्यम रात्रिगेय रागों में बहुलता से आता है। यह दिन के रागों में उतना दृष्टिगोचर नहीं होता। यह मैं मानता हूँ कि आजकल हमारी पद्धति में हिंडोल, गौड़सारङ्ग, तोड़ी, मुलतानी इत्यादि राग दिन गेय माने गए हैं तथा इन सभी में तीव्र मध्यम प्रयुक्त होता है। परन्तु फिलहाल हम इन्हें नियम का अपवाद मानकर अग्रसर होंगे। तथापि चलते-चलाते मैं तुम्हें इतना बताए देता हूँ कि, यदि तुम इन रागों को ग्रन्थों में खोजो, तो उनका स्वरूप तीव्रमध्यमयुक्त दिखाई न देगा। तथापि 'रूढ़िर्बलीयसी' इस न्याय को स्वीकार करके इन्हें अपवाद ही मान लेना अच्छा होगा।

प्रश्न—यह नियम हमें बड़ा मनोरंजक प्रतीत होता है। यह अधिकांश रागों में लगेगा न ?

उ०—जिन रागों में गंधार तथा निषाद कोमल लगते हैं, केवल उन्हीं में बहुधा तीव्र मध्यम नहीं लगता। तथापि यह कहा जा सकता है कि अवशिष्ट अधिकांश रागों में यह नियम नहीं टूटता।

प्र०—तब तो फिर यह भी एक स्वतंत्र नियम बन गया कि, ग तथा नि कोमल लगने वाले रागों में तीव्र मध्यम नहीं लिया जाता ?

उ०—ऐसा मानने में भी कोई आपत्ति नहीं है। इस नियम का अपवाद क्वचित ही दृष्टिगोचर होगा। हाँ, तो इस यमन को एक आलाप योग्य राग समझा जाता है; क्योंकि इसमें गायक उत्तम आलाप कर सकते हैं।

प्र०—तब तो फिर ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ राग ऐसे भी हैं, जो आलाप योग्य नहीं हैं।

उ०—किसी अन्श तक ऐसा समझना ठीक ही है। जिस राग में राग का विस्तार गीत की सहायता के बिना भी उत्तमता से हो सकता है, उसे आलाप योग्य राग कहते हैं, जैसे—यमन, केदार, कानड़ा, भैरव इत्यादि। जो राग आलाप योग्य नहीं होते, उन्हें क्षुद्रगीतोपयोगी कहते हैं। ऐसे रागों को शब्द रहित गाते समय बहुधा उसे किसी गीत की कल्पना से गाते हैं। इस भेद को विशेष महत्व का मानने की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थों में तो यह अवश्य ऐसा ही है, इसमें कोई संदेह नहीं। यमन अत्यन्त सरल राग है, अतः यह साधारण भी है। तुम जो अनेक कथा पुराण सुनते रहते हो, उनमें शायद ही कभी यह प्रयुक्त नहीं होता। इस राग को कहीं-कहीं कल्याण-थाट का आश्रय राग माना जाता है।

प्र०—आश्रय राग क्या ?

उ०—यह तो तुम जानते ही हो कि कल्याण थाट के सभी स्वर तीव्र हैं।

यमन के आरोह तथा अवरोह अत्यन्त सरल हैं। अतः इस थाट के स्वर-समुदायों को चाहे जैसे गाया जाय, फिर भी वे यमन के ही दिखाई देंगे। इसे समझ लेना कठिन नहीं है। इस थाट से जो और दूसरे राग निकलते हैं, उनके नियम स्वतंत्र हैं, इसलिये उनका गाना कुशलता का काम है। उन रागों के विशिष्ट नियमों की जरा भी अवहेलना हुई कि, उनके स्वर इस यमन राग जैसे ही दिखाई देने लगेंगे। इसका कारण यह है कि, यमन में नियमों का खटराग नहीं है। तब फिर कल्याण थाट के नियमभ्रष्ट रागों का यह यमन, आश्रय राग हुआ कि नहीं ? तुम्हारे प्रत्येक थाट में इसी प्रकार एक-एक आश्रय राग हो सकता है। मौज में आकर कभी-कभी लोग मुख्य थाटों को शहर की बड़ी-बड़ी सड़कों की उपमा देते हैं। प्रत्येक शहर में कुछ निश्चित राज-मार्ग अर्थात् प्रधान सड़कें होती हैं, तथा बाकी के छोटे-छोटे रास्ते अथवा गलियां इन मुख्य राज-मार्गों से ही आ मिलते हैं। बहुत कुछ यही बात हमारे इस संगीत रूपी नगर की भी समझनी चाहिये। इसमें जो मुख्य दस जनक थाट माने गये हैं उन्हें, राज मार्ग के रूप में तथा जन्य रागों को छोटे-छोटे रास्ते समझना चाहिये। अत्यन्त संकीर्ण अथवा मिश्र राग रूपों को सूक्ष्म गलियाँ समझना चाहिये। लक्ष्य-सङ्गीत में यही उदाहरण दिया गया है:—

यथाजनपदे प्रायो राजमार्गा व्यवस्थिता:।
तथैवस्युर्मेलरागाः सङ्गीतनगरे ह्यमी ॥
क्षुद्रमार्गपरिभ्रष्टाः प्रमुखेषु पतंतिते ।
जन्यरागपरिभ्रान्ता मेलरागेषु केवलम् ॥

यमन को मैंने आश्रय राग कहा है, इसके विषय में उपर्युक्त ग्रन्थ में यह उल्लेख है:—

कल्याणीमेलकन्यस्तरागभ्रष्टास्तु गायकाः ।
निश्चयेन पतंत्यत्र यतोऽसौस्यात्तदाश्रयः ॥

मैं यह बता चुका हूँ कि, कुछ लोग यमन में शुद्ध मध्यम का समावेश करके, यमन कल्याण को स्वतन्त्र राग मानने का प्रयत्न करते हैं। यह तो तुम्हें विदित ही है कि, मेरी सम्मति में यमन तथा कल्याण दोनों भिन्न नहीं हैं। जो गायक ध्रुपद गाने वाले हैं, वे यमन में केवल तीव्र मध्यम ही लगाते हैं। तथापि यह बात भी नहीं है कि, ऐसी कोई ध्रुपद न हो, जिसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग न दिखाई दे। ख्याल नामक जो गीत हैं, उन्हें गाने वाले दोनों मध्यम लगाते हैं।

प्रश्न—क्या ध्रुपद गाने वाले लोगों का एक स्वतन्त्र वर्ग माना जाता है ? यदि ऐसा ही है तो हमारी पद्धति में मुख्यतः जो-जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें बतादें तो अच्छा हो।

उत्तर—हां, गायकों के ऐसे ही वर्ग हैं। गीतों के सम्बन्ध में तुम जो कुछ जानना जाहते हो, वह Capt. Willard, Mr. Bannarjee, Raja S. M. Tagore इत्यादि ने अपनी-अपनी पुस्तकों में भली भांति लिखा है, उनकी पुस्तकें बड़ी अच्छी हैं तथा उन्हें तुम अवश्य पढ़ना। तथापि Capt. Willard साहब की पुस्तक अब अप्राप्य है, तथा अन्य दोनों पण्डितों की बंगला भाषा में है। अतः मैं समझता हूं कि, उनके ग्रन्थों में कही हुई बातों का सार तुम्हें समझा दिया जाय तो अच्छा होगा।

मि० बनर्जी यह कहते हैं कि, "हमारे समाज में उच्चकोटि के गीतों का आशय ध्रुपद, ख्याल, तथा टप्पे से है। प्रबन्ध तथा होली का गायन ध्रुपद के अन्तर्गत माना जाता है। त्रिवट, चतुरङ्ग, कौलकलबाना को ख्याल के अन्तर्गत मानते हैं। तराना, जुगलबंद, रागमाला इत्यादि गीत, उपर्युक्त दोनों प्रकारों के अन्तर्भूत हैं। ठुमरी, गजल, खेमटा इत्यादि टप्पे के अन्तर्गत माने जाते हैं। उपर्युक्त सभी गीतों में ध्रुपद सब से प्राचीन माना गया है। ऐसा माना जाता है कि, हमारे देश में मुसलमान बादशाहों के पहले, हमारे पण्डित ध्रुपद गाते थे। ध्रुपद के बहुधा चार भाग होते हैं जिन्हें गायक 'तुक' कहते हैं। इन भागों के नाम अस्थाई, अन्तरा, संचारी तथा आभोग हैं। राग में विशेष महत्व का भाग अस्थाई अन्तरा है। अन्तिम भाग को आभोग कहते हैं। अस्थाई तथा आभोग के बीच में अन्तरा आता है। संचारी में इन तीनों भागों में आये हुए स्वरों का मिश्रण होता है। इन चारों भागों में से प्रत्येक भाग में कितने चरण रखे जायें, यह गायक की इच्छा पर निर्भर है। वैसे तो प्रत्येक भाग में नियमानुसार चार चरण होते हैं, परन्तु आगे चलकर यह नियम उपेक्षित होता गया। प्राचीन ध्रुपदों में शब्द अत्यधिक होते थे। उन्हें याद रखने में गायकों को असुविधा होने लगी, फलतः ध्रुपद संक्षिप्त की जाने लगी। अनेक बार तुम्हें ध्रुपद में अस्थाई तथा अन्तरा, ये दो ही भाग दृष्टिगोचर होंगे। ध्रुपद के साथ जो वाद्य बजाया जाता है, उसे पखावज कहते हैं। ध्रुपद, अधिकतर चौताल, सूलफाक, झंपा, आदि, तीव्रा इत्यादि तालों में गाये जाते हैं। प्राचीन काल में ध्रुपद गाने की चार शैलियां मानी जाती थीं, तथा उन्हें "वाणी" कहते थे। उनके नाम १ गौरहारी (इसे गायक गोबरहरी कहते हैं) २ नौहारी, ३ डागरी, ४ खंडारी, हैं। ये नाम हमें आज कल भी सुनाई देंगे। परन्तु गायक इनका पारस्परिक शास्त्रीय भेद नहीं समझा सकते। अतः अब "वाणी" का विशेष महत्व नहीं रहा है। कुछ लोग कहते हैं कि, भिन्न-भिन्न भागों के गाने की रीतियां हैं। परन्तु यही कहना पड़ेगा कि आजकल इन चारों वाणियों की स्वतन्त्र ध्रुपदें सुनाई नहीं देतीं। कुछ लोगों का विचार है कि, प्राचीन शास्त्र में "गौडी" नामक जिस गीत का उल्लेख है, गौरहरी उसी का प्रकार है। आजकल बहुमत यही है कि प्रचार में जो ध्रुपद सुनाई देती हैं वे सभी "गौरहारी" वाणी की हैं।"

सङ्गीत रत्नाकर में जो तीस प्राचीन ग्राम राग बताए गए हैं, वे पाँच गीतों में विभाजित किये गये हैं। उन गीतों के नाम १ शुद्धा, २ भिन्ना, ३ गौडी, ४ वेसरा ५ साधारणी—ये हैं। इनकी व्याख्या से यही विदित होता है कि इन गीतों का आशय राग के गाने की विभिन्न शैलियां हैं। इस ग्रन्थ में उनकी व्याख्या यह है:—

"पंचधा ग्रामरागाः स्युः पंचगीतिसमाश्रयात् ।
गीतयः पंच शुद्धाद्या भिन्ना गौडीच वेसरा ॥
साधारणीति शुद्धास्या दवक्रललितैः स्वरैः ।
भिन्ना सूक्ष्मैः स्वरैर्वक्रैर्मधुरैर्गमकैर्युता ॥
गाढैस्त्रिस्थानगमकै रुहाटीललितैः स्वरैः ।
अखंडितस्थितिः स्थानत्रये गौडी मता सताम् ॥
उहाटी कंपितैर्मंद्रैर्द्रुतद्रुततरैः स्वरैः ।
हकारोकारयोगेण हन्यस्तेचिबुके भवेत् ॥
वेगवद्भिः स्वरैर्वर्णचतुष्केऽप्यतिरक्तितः ।
वेगस्वरा रागगीतिर्वेसरा चोच्यते बुधैः ॥"

अब तुम्हीं सोचलो कि, इन प्राचीन गीतों का वाणी से सम्बन्ध है या नहीं? मि० बनर्जी कहते हैं कि, उन्होंने ऐसा मत सुना है। वाणी के विषय में एक अन्य कठिन प्रश्न यह है कि, एक ही ध्रुपद भिन्न-भिन्न वाणियों में गाया जा सकता है या नहीं? ऐसे प्रश्नों के आधार योग्य ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि, इन्हें तर्क से ही सिद्ध करना पड़ेगा। जिन गायकों के घराने में परंपरा से ध्रुपद का गाना चला आ रहा है, उन्हें सुनकर इस विषय का ज्ञान प्राप्त करना अधिक उपयोगी होगा। कहीं-कहीं उर्दू ग्रन्थों में इस वाणी का उल्लेख है, परन्तु उनमें भी मैंने कहीं इस वाणी का स्पष्टीकरण नहीं देखा। अमुक खां साहेब के घराने में अमुक वाणी है—बस इतना ही लिखा हुआ दृष्टिगोचर होता है। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि, इन चार वाणियों का रहस्य आजकल यथा योग्य रीति से प्रचार में भी दृष्टिगोचर होगा। अस्तु, हम बनर्जी के मत के विषय में पुनः अग्रसर होते हैं:—

"जो ध्रुपद के गाने वाले हैं, उन्हें कलावन्त की पदवी दी जाती है। अकबर बादशाह के पास तानसेन नामक प्रसिद्ध गायक था। वह उत्तम गायक था, अतः उसकी रचना शक्ति भी अद्भुत थी। उसने अनेक चमत्कारपूर्ण ध्रुपदें बनाई हैं। परन्तु हमारे यहां स्वरलिपि न होने से उसके गीतों का अधिकांश भाग नष्ट हो गया। इसी प्रकार, उसके रचे हुए जो गीत आजकल प्राप्य हैं, उनमें भी स्वरों और शब्दों का रूपान्तर हो गया है। यह कहना भी अनुचित न होगा कि उसके रचे हुए असली गीत अब प्राप्त हो हीं नहीं सकते। कहानी कुछ ऐसी है, कि तानसेन पहले हिन्दू

था, फिर बाद में मुसलमान हो गया। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि तानसेन के समय में ख्याल का गाना प्रचलित था या नहीं। गोपाल नायक तथा बैजूबावरा ने तानसेन से पहले ख्याति प्राप्त की थी। गोपाल नायक, ईसवी सन् की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पठान बादशाह अलाउद्दीन के शासन काल में विद्यमान था। इसी अलाउद्दीन बादशाह के पास अमीर खुसरो नामक प्रसिद्ध विद्वान था। (रत्नाकर पर कल्लीनाथ ने जो टीका की है, उस के तालाध्याय में गोपाल नायक का नाम आया है, उससे दो बातें सिद्ध होती हैं। पहली यह कि कल्लीनाथ की टीका पंद्रहवीं शताब्दी की है, और दूसरी यह कि गोपाल नायक निश्चित रूप से दक्षिण का विद्वान था। इतिहास में उसे दक्षिण का पंडित कहा गया है। इतिहास से यह भी सिद्ध होता है कि, कल्लीनाथ तुंगभद्रा नदी के किनारे के पास विजयनगर का रहने वाला था।) तानसेन के पश्चात् धूंडी, बकसू, सूरदास इत्यादि ने ख्याति प्राप्त की। इन्होंने भी उत्तमोत्तम गीतों की रचना की है। इनमें से थोड़े बहुत गीत आज भी हमें दृष्टिगोचर होते हैं। कहते हैं कि ध्रुपद गाने का प्रचार पंजाब की ओर अधिक है। उधर मोलादाद, अल्लिआस इत्यादि प्रसिद्ध गायक हुए हैं।" इस प्रकार, अपने ग्रन्थ में, मि० बनर्जी ने ध्रुपद के विषय में जो कुछ कहा है, उसका सार मैंने तुम्हें बता दिया। Capt. Willard साहेब अपने ग्रन्थ में ध्रुपद के विषय में यह लिखते हैं:—

"This may properly be considered as the heroic song of Hindustan. The subject is frequently the recital of some of the memorable actions of their heroes, or other didactic theme. It also engrosses love matters, as well as trifling and frivolous subjects. The style is very masculine and almost entirely devoid of studied ornamental flourishes. Manly negligence and ease seem to pervade the whole, and the few turns that are allowed are always short and peculiar. This sort of composition has its origin from the time of Raja Man of Gwalior, who is considered as the father of Dhrupad singers. The Dhrupad has four Tooks or strains, the first is called Sthul, Sthaee or Bedha, the 2nd Untara; the 3rd Ubhog and the last Bhog. Others, term the last two Abhog. × × × इन महोदय ने ये बातें अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर लिखी हैं।

"ख्याल" नामक गीतों के विषय में मि० बनर्जी ने जो कुछ कहा है, उसका सार यह है कि, "ख्याल फारसी शब्द है। इसका अर्थ "यथेच्छाचार" भी हो सकता है। संगीत में ख्याल का यही अर्थ युक्तियुक्त होगा। प्राचीन काल में सभ्य समाज में ख्याल नहीं गाया जाता था। उस समय ध्रुपद का ही गायन होता था। ध्रुपद की अपेक्षा ख्याल की रचना संक्षिप्त है। इसमें बहुधा अस्ताई तथा अन्तरा ये दो ही भाग होते हैं। कुछ थोड़े से लोग इसमें एक तीसरा भाग भी मानते हैं, परन्तु उसके स्वर अन्तरे के समान ही गाते हैं। ख्याल के योग्य ताल

आड़ा चौताला, तिलवाड़ा, एकताल, त्रिवट, झूमरा इत्यादि हैं, जिन ख्यालों में शब्द पर्याप्त होते हैं, तथा जिनके प्रत्येक भाग में चार चार चरण होते हैं, वे सावकाश गाये जाते हैं तथा वे बहुत कुछ ध्रुपद के समान ही प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि, ख्यालोपयोगी जो तालें हैं, वे बहुत कुछ ध्रुपदोपयोगी तालों के समान ही हैं। तथापि ध्रुपद की अपेक्षा वे कुछ अधिक चपल हैं। एकताल तो ध्रुपद के चौताल जैसा ही है। यतिताल को यदि सावकाश बजाया जाय तो ध्रुपदों का धमार अथवा तीव्रा जैसा होगा।" (क्योंकि मैंने तुम्हें अभी ताल के विषय में कुछ नहीं बताया है, इसी से उसकी तुलना उचित न समझ कर, मैं यहां ऐसा नहीं कर रहा हूँ।) "ख्यालों में जिस प्रकार क्षुद्रतान, गिटकरी इत्यादि का प्रयोग होता है, वैसा ध्रुपद में नहीं होता। इसी प्रकार ध्रुपद में "गमक" नामक जो प्रकार गाया जाता है, वह ख्याल में नहीं गाया जाता। गायन शैली को देखने से ख्याल तथा ध्रुपद में यही विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। रागरागिनी के विषय में इन दोनों प्रकार के गीतों में कोई भेद नहीं है। तथापि कुछ रागिनी ऐसी हैं जिनमें ख्याल अच्छे नहीं लगते उदाहरणार्थ भैरवी, खमाज, सिंधु, इत्यादि। (इन रागों में किसी किसी को क्वचित् ख्याल गाते हुए मैं ने सुना है) सदारंग तथा अदारंग नामक गायकों के रचे हुए ख्याल समाज में उच्च श्रेणी के माने जाते हैं। ख्याल तथा ध्रुपद इन दोनों ही में अनेक बार ईश्वर सम्बन्धी उद्‌गार होते हैं, परन्तु ध्रुपद की गति धीर तथा प्रकृति गंभीर होने से ईश्वरोपासना में उसका उपयोग अधिक होता है। Capt. Willard साहेब अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि जौनपुर नामक शहर के राजा सुलतान हुसैन शर्की ने १५ वीं शताब्दी में ख्याल उत्पन्न किया। हमारी सम्मति में यह मानना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता कि अमुक व्यक्ति ने ख्याल उत्पन्न करके उसका प्रचार किया। ख्याल की तरह का गाना पहले से ही समाज में प्रचलित चला आ रहा होगा? परन्तु वह समाज में सम्मान्य न था। आगे चलकर सुलतान हुसैन ने इस गाने को पसन्द किया। उसने गायकों को प्रोत्साहित किया, तथा इसीलिये उसका प्रचार अधिक हो गया, यही सर्वमान्य होना चाहिये।"

Capt. Willard साहेब अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८८ पर कहते हैं कि:—"In the Khyal the subject generally is a love tale, and the person supposed to utter it is a female. The style is extremely graceful, and replete with studied elegance and embellishments. It is chiefly in the language spoken in the district of Khyrabad, and consists of two Tooks. Sooltan Hoosain Shurquee of Jounpore is the inventor of this class of song.

Although the pathetic is found in almost all species of Hindustani musical, as well as poetical compositions yet the Kheal is perhaps its more immediate sphere. The style of the Dhroopad is too masculine to suit the tender delicacy of female expression, and the Tuppa is more conformable to the character

of a maid who inhabits the shores of the Ravi river (and has its connection with a particular tale) than with the beauties of Hindustan; while the Ghuzuls and Rekhtas are quite exotic, transplanted and reared on the Indian soil since the Mahomedan conquest. To a person who understands the language sufficiently it is enough to hear a few good Khyals to be convinced of the beauties of Hindustani songs, both, with regard to the pathos of the poetry and delicacy of the melody.

टप्पा:—इस गीत के सम्बन्ध में बनर्जी के कहने का सारांश यह है कि, "टप्पे का गाना ख्याल तथा ध्रुपद की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है। टप्पे सब रागों में नहीं होते। ख्याल की ही कतिपय तालों में बहुधा टप्पे गाए जाते हैं। प्राचीन रागनियों में से भैरवी, खमाज, चेतागौरी, कालिङ्गड़ा, देश तथा सिंधु इत्यादि रागनियों में टप्पे होते हैं। टप्पों की रचना आधुनिक ही कही जायेगी। काफी, झिंझौटी, पीलू, बरवा, मारू, यमनी, लूम इत्यादि आधुनिक रागों में अनेक टप्पे हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि, इन रागों का विस्तार संक्षिप्त ही होता है। हमारे यहां यह धारणा दृढ़ हो गई है कि, टप्पे सदैव शृङ्गाररस में ही होने चाहिये। परन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। चाहे जिस रस में टप्पों की रचना करने में कोई हानि नहीं है। यह अवश्य सत्य है कि इन गीतों की गति शीघ्र तथा प्रकृति क्षुद्र होने से इन्हीं के अवलम्ब से पद्य-रचना करनी पड़ती है। यह तो स्पष्ट ही है कि, ईश्वरोपासना इत्यादि विषयक गीत, जिनमें अधिक गम्भीर रचना होती, टप्पों की शैली में शोभित नहीं होते। सङ्गीत का प्रधान कार्य स्मृति-उद्दीपन है। अतः जिन स्वरों के कानों में पड़ते ही अन्तकरण में महान, उन्नत, प्रशान्त, और विराट भावना का उदय हो वे ही भक्ति और उपासना के योग्य स्वर होते हैं। टप्पों की प्रकृति की ओर देखने से यही दिखाई देता है कि, ये गीत व हास्य, आनन्द, प्रणय इत्यादि लघुभावोपयोगी अधिक होते हैं। Capt. Willard अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि, टप्पे का गायन, पंजाब में ऊँट हांकने वाले लोगों से सर्व प्रथम आरम्भ हुआ। आगे चलकर "शोरी" नामक प्रसिद्ध गायक ने उनका शृङ्गार करके, उन्हें उच्च श्रेणी का बना दिया। सम्भव है कि यह कहानी सत्य हो, क्योंकि पंजाब में यह कहानी सर्वत्र ही भली भांति प्रसिद्ध है। एक अन्य ग्रन्थकार का कहना है कि, "शोरी" का वास्तविक नाम गुलामनबी था तथा वह अयोध्या का रहने वाला था। यह निर्विवाद है कि टप्पा आजकल अतिशय लोकमान्य गीत-शैली है। शोरी द्वारा रचे हुए गीतों को टप्पे कहते हैं। टप्पों के अतिरिक्त जो इधर क्षुद्र गीत प्रचलित हैं, उन्हें ठुमरी कहते हैं। शोरी मियां के टप्पे का ढङ्ग (गाने की रीति) निराला ही था, यह सत्य है। उसमें प्रयुक्त होने वाले तान, कंप, गिटकिरी इत्यादि प्रकार कुछ निराले ही हैं। शोरी के टप्पे प्रायः खमाज, लूम, झिंझौटी, भैरवी, सिंधु जैसे रागों में हैं। कुछ लोग यहाँ यह शंका करेंगे कि क्या यमन, केदार, कानड़ा इत्यादि रागों में टप्पे नहीं होते? इसका उत्तर एक तो यही है कि टप्पे में प्रयुक्त होने वाले गायन प्रकार इन गम्भीर

प्रकृति के रागों में सुशोभित नहीं होते। तथा दूसरा यह है कि शोरी ने भी ऐसे रागों में टप्पे नहीं बनाए हैं। यदि हम अपने गायकों पर ध्यान दें तो वे लोग ऐसे रागों में टप्पे नहीं गाते, यह हम देखते ही हैं:—

कुछ बातें देश-व्यवहार पर भी अवलंबित होती हैं, यह भी मानना पड़ेगा। यों समझो कि खमाज, भैरवी सिंधु इत्यादि राग कितने अच्छे, मधुर, तथा लोकप्रिय हैं। तथापि उन्हें ख्यालियों ने पसन्द नहीं किया। इसी से उनमें ख्याल हैं ही नहीं, यही कहा जा सकता है। इसके अतरिक्त दूसरा कोई और कारण भला क्या बताया जा सकता है? हमारे देश में प्राचीन-काल से एक और प्रथा चली आ रही है, और वह यह है कि जिनके कुटुम्ब में ध्रुपद गाने की चाल है, वे इतर गीत गाते ही नहीं। ऐसे घराने के गायक सदैव अपने आपको ध्रुपदिये कहते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यह प्रथा अन्यथा नहीं है। बाल्यावस्था से ही जिन्होंने ध्रुपद गाने के लिये विशेष रूप से अपना गला तैयार किया है, उनसे ख्याल, टप्पे जैसे गीतों के नाजुक अलंकार न सध सकें तो कोई आश्चर्य नहीं है। ऐसे गायक यदि इन गीतों को कदाचित् गाने भी लगें, तब भी अनेक बार इनमें ध्रुपद का ढङ्ग प्रस्फुटित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिनका ख्याल गाने का ही पेशा है, वे गायक जिन गीतों को गाते हैं, वे सभी थोड़े बहुत परिमाण में ख्याल के ढङ्ग पर ही चले जाते हैं। यह सब प्रथक रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है। इस आधार पर से ही गायकों के ध्रुपदिये, ख्यालिये इत्यादि वर्ग माने जाते हैं। आजकल यदि हम प्रचलित व्यवहार को देखें तो एक ही गायक सभी तरह के गीत गाने के लिये तैयार हो जाता है। परन्तु वह उत्तम रीति से सभी को निभा नहीं सकता, यह सहज में समझा जा सकता है। यह भी कह देना आवश्यक है कि जो उच्चश्रेणी के गायक हैं। वे ऐसे प्रसन्नता का अनुभव नहीं करते। टप्पे के विषय में Willard साहब अपनी पुस्तक में यह कहते हैं:—

"Songs of this species are the Admiration of Hindustan. It has been brought to its present degree of perfection by the famous Shoree, who in some measure may be considered its founder. Tuppas were formerly sung in very rude style by the camel drivers of the Panjab, & it was he who modelled it into the elegance it is now sung with. Tuppas have two Tooks and are generally sung in the language spoken at Panjab or a mixed jargon of that and Hindi. They recite the loves of Heer and Ranjah equally renowned for their attachments and misfortunes and allude to some circumstance in the history of their lives".

भावभट्ट पंडित ने अपने अनूपसंगीतरत्नाकर नामक ग्रन्थ में ध्रुपद की जो व्याख्या दी है वह इस समय मुझे याद आगई है, अतः तुम्हें बताता हूँ। ध्रुवपद शब्द का अपभ्रंश भाषा में ध्रुपद समझना चाहिये।

"गीर्वाणमध्यमदेशीयभाषासाहित्यराजितम् ।
द्विचतुर्वाक्यसंपन्नं नरनारीकथाश्रयम् ॥
श्रृङ्गाररसभावाढ्यं रागालापपदात्मकम् ।
पादांतानुप्रासयुक्तंपादांतयमकंचवा ॥
प्रतिपादं यत्रबद्ध मेवंपादचतुष्टयम् ।
उद्ग्राहध्रुवकाभोगोत्तमंध्रुपदंस्मृतम् ॥

प्रश्न—हमारे यहां संस्कृत की ध्रुपदें गाने का प्रचार है क्या ?

उत्तर—नहीं ! फिर भी यदि कोई इस प्रकार की नवीन ध्रुपदें रच कर गावे तो, ऐसा करना अशक्य नहीं है। तथापि यह सत्य है कि, व्यवहार में ऐसी ध्रुपदें तुम्हें दिखाई न देंगी। देखो! Sir William Jones साहेब जयदेव की संस्कृत अष्टपदियों अथवा प्रबन्धों के गाने के विषय में, जिनके राग तथा ताल स्पष्ट लिखे हैं, क्या कहते हैं:—(Vol. I p. 440)

"When I first read the songs of Jayadeva, who has prefixed to each of them the name of the mode in which it was anciently sung, I had hopes of procuring the original music, but the Pandits of the south referred me to those of the west and the Brahmins of the west would have sent me to those of the north, while they, I mean those of Kashmir and Nepal, declared that they had no ancient music, but Imagined that the notes of the Gitagovind must exist, if anywhere, in one of the southern provinces where the poet was born, from all this I collect, that the art which flourished in India many centuries ago, has faded for want of culture, though some scanty remnants of it may perhaps, be preserved in the pastoral roundelays of Mathura on the loves and sports of the Indian Apollo."

प्रश्न—तब तो इन सब बातों से हमें कुछ ऐसा लगता है कि, हमारा वास्तविक प्राचीन सङ्गीत—जिसका ग्रन्थों में उल्लेख हुआ है, हमारे देश के इस उत्तर भाग में मिलना कठिन है। आपके कथनानुसार ध्रुपद, ख्याल, टप्पा, ठुमरी इत्यादि जो गीत आजकल दृष्टिगत होते हैं, उन पर मुसलमानी छाप होना सम्भव है।

उत्तर—तुम बहुत ठीक समझे। आजकल हमारे सङ्गीत की ऐसी ही स्थिति हो गई है। यह मानना पड़ेगा कि दाक्षिणात्य सङ्गीत के विषय में यह बात सत्य नहीं है। मैंने स्वतः देश में पर्याप्त भ्रमण किया है। विभिन्न सङ्गीत व्यवसायी विद्वानों से भेंट भी की है, परन्तु बड़े खेद से कहना पड़ता है कि, ग्रन्थों को समझने वाले लोग मुझे बहुत कम दिखाई दिये। तथापि इतना गनीमत है कि यदि ग्रन्थों का अध्ययन करने वाले पण्डित नहीं मिलते तो, उन ग्रन्थों का सङ्गीत भी तो आजकल उपलब्ध नहीं है।

मैंने तुम्हें स्पष्ट बता दिया है कि आजकल जिस सङ्गीत का प्रचार है वह ग्रन्थों से अलग हो गया है। यह कोई भी कह सकता है कि ऐसे सङ्गीत के योग्य ग्रन्थ भी नवीन ही होने चाहिएं। "लक्ष्यसङ्गीत" नामक ग्रन्थ की उत्पत्ति इसी कारण से हुई है। प्राचीन ग्रन्थों में कहे हुए श्रुति, स्वर, मूर्छना, ग्राम, शुद्धतान, कूटतान, अलंकार, जाति, गीति इत्यादि प्रकारों का वर्णन करके केवल मुसलमानी ढङ्ग से रागों को गाने लगने से क्या लाभ है? यही नहीं, प्रत्युत ऐसे-ऐसे गानों को सर्वथा शास्त्रोक्त समझने वाले भी तुम्हें कहीं-कहीं दिखाई देंगे। इस दृष्टि से देखा जाय तो लक्ष्यसङ्गीत नामक ग्रन्थ ठीक हैं। उसमें यह स्पष्ट लिखा है कि यह ग्रन्थ नवीन सङ्गीत के आधार पर लिखा गया है। उसे इस प्रकार क्यों लिखा गया, इसका कारण भी उस ग्रन्थकार ने उसमें प्रथम ही बता दिया है। प्रसिद्ध राजा सुरेन्द्रमोहन टैगोर ने सङ्गीत विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। वे सभी अत्यन्त मनोरंजक तथा उपयोगी हैं। उन्हें पढ़ने की मैं तुम्हें अवश्य सम्मति देता हूँ। ईश्वर ने उन्हें सर्व-सम्पन्न बनाया था, अतः स्पष्ट है कि उन्होंने जो कुछ किया, वह और किसी के द्वारा किया जाना शक्य न था। उनके समय में बड़े-बड़े पण्डित विद्यमान थे, अतः उनकी सहायता से उन्होंने इस विषय पर महत्वपूर्ण खोज की थी तथा उन बातों को प्रकाशित भी किया। अपने "Universal History of Music" नामक ग्रन्थ में उन्होंने मुसलमानी राज्य में अपने सङ्गीत का थोड़ा सा इतिहास इस प्रकार लिखा है:—

"The Mahomedans as a ruling nation came in contact with the people of India for the first time in the 11th. century, and since then a change has been worked into the music system of the country. The Mahomedans did not encourage the theory of the art, but they patronized practical musicians and were themselves instrumental in composing and introducing several styles of songs or devising new forms of musical instruments. It is ralated by Mahomedan Historians of the period that when Dacca was invaded by Alla Udin in 1294 and the conquest of the South of India was completed (1310) by his Mogul general Malik Kafer. music was in such a flourishing condition, that all the musicians and their Hindu preceptors were taken with the armies, and settled in the North. It is said that the celebrated Persian poet and musician Amir Khusroo came to India during the rule of Alla Udin and defeated in a contest the musician of the south Nayak Gopal, who had come to Delhi with a view to challenge the musicians of the court. Amira Khusroo is reported to have given the name of Satar to the Tritantri Vina of the classic days and to have divided the Rags into twelve Mokams which were subsequently subdivided by other Mahomedan musicians into 24 Sobhas and 48 Guswas. Rajah Man who ruled in

Gwalior (1486-1516) was a great lover of music. It is said that he brought the Dhrupad style of song to its present state and that he composed several songs in this style. Sooltan Hoosain Shurqee (of the Shirki family which flourished in Jounpoor in the 15th century) introduced the style of song known as Kheyal. During the reign of the Mogul Emperor Akbar (1550-1605) music made considerable progress and received substantial encouragement. It was in his court that the famous musician Tansen (pupil of the venerable Haridass Swami) flourished. Tansen who was formerly in the service of Rajah Ram, is said to have received from him one crore of Tankas as present. The Emperor is mentioned in the Ain-i-Akbari as being excessively fond of music and having a perfect knowledge of its principles.

His court teemed with musicians of various nationalities, Hindus, Iranis, Turanis, Kashmiris both men and women. The musicians were divided into three classes, Gayandas singers; Khvanandas, chanters; and Sajandas, players. The principal singers came from Gwalior, Mashad, Tabriz and Kashmir. The schools in Kasmir had been founded by Irani and Turani musicians under the patronage of Zainul Adin, king of Kashmir. The Gwalior school dated from the times of Rajah Man Tunwar in whose court as well as in that of his son Vikramajit, the famous Nayak Baksu lived. When Vikramajit lost his throne, Baksu went to Rajah of Kalinjar. Shortly afterwards he accepted a situation in the court of Sultan-Bahadur (1526-1536) at Guzrat. Ramdas and Mahapatar, both of whom had been with Islem Shah at Lucknow, were among the court musicians of Akbar. The number of the Principal court musicians named in Ain-i-Akbari is 36 and included Tansen, Tantaring (his son) Baz Bahadur (Ruler of Malwa and inventor of the style of singing known as Baz-Khai), Birmandal Khan (player on the Sarmandal) and Quasim. × × ×

The songs of Vidyapati (who adorned the court of Shiwa Sinha of Tirhut, Behar, in the 14th century) were in vogue in the time of Akbar. It was also in this reign that Mira Bai the wife of a Rana of Udaipur, and a celebrated songstress and composer of Hymns flourished. The Emperor had opportunities of listening to her excellent vocal performances. The blind poet and musician Surdass who is said to have composed 125000

Vishnupadas lived also in this reign. Surdass was the son of Ramdass who has already been mentioned as one of the musicians of Akbar's court. The following singers are named as belonging to the reign of Jehangir (1605-27) Jehangirdad, Chatr Khan, Parwizdad, Khurramdad, Makhu, Hamzan. It was in the reign of this emperor that Tulsidass died. Tulsidass was a popular composer of hymns regarding Ram and Sita. During Shah Jehan's reign (1628-58) the following musicians lived; Jagannath, Dirang Khan and Lalkhan (Gansamudra). Lalkhan was son-in-law to Bilas son of Tansen. Jagannath and Dirang Khan were weighed in Silver and received each Rs. 4500. Aurangzeb who suceeded Shahjahan to the throne of Delhi and occupied it from 1658-1707 abolished the court singers and musicians. × × × ×. During the years the ten successors of Aurangzeb ruled in Delhi (1707-1857) music continued to be cultivated but not with the vigour it had attained in the preceding reigns. Mahomed sha was the last of the Emperors who had renowned musicians flourishing in his time. There are several vocal compositions extant which are associated with his name. The famous songstress Shori brought the Tuppa song to its present degree of perfection in this reign. It is said that her husband Gulam Nabi composed songs and coupled them with her name. The chief feature of music of the mahomedan period was the combination of the Hindu style with the Persian one. Some types of classical music were brought under Persian names, while some entirely new ones were introduced such as the Trivat, Terana, Guzal, Rekta, Quol, Culbana Etc. The style of music the mahomedans cultivated is now the standard high class music of India, leaving out, of course, the provincial airs. × × × ×

इस ग्रन्थ में से अब और अधिक उद्धरण देकर मैं तुम्हारा समय नष्ट नहीं करना चाहता। अब भी हम मूल विषय को छोड़कर पर्याप्त अलग हो गये हैं।

प्र०—ये सब बातें हमें बड़ी ही मनोरंजक प्रतीत हुईं। यदि आप ऐसे ही बहुत सी बातें बताते चलें तो हमारा लाभ ही होगा, क्योंकि ये बातें ग्रन्थावलोकन के बिना कैसे जानी जा सकती हैं ?

उ०—यह भी किसी अन्श तक ठीक ही है। Tagor साहेब अपने ग्रन्थ बेचते नहीं, अतः उनका बाजार में प्राप्त होना तो संभव ही नहीं है। इसी कारण से

मैंने तुम्हें इन उद्धरणों को सुना देना उचित समझा। ख्याल और ध्रुपद के विषय में तो मैं कह ही चुका हूँ। मैं समझता हूँ कि अब दो शब्द ठुमरी नामक गीत के विषय में भी कह देना उचित प्रतीत होता है। "ठुमरी" के विषय में श्री० बनर्जी का मत, मैं तुम्हें अभी बताता हूँ, परन्तु यह न समझना कि मैं पूर्ण रूपेण उनके मत का पोषक हूँ। श्री० बनर्जी के कतिपय विचार मुझे मान्य हैं, तथा इसी प्रकार टैगोर एवं Willard साहेब के लिये भी मेरे मन में बड़ा आदर है। तथापि उनके और मेरे मत में कहीं-कहीं भेद भी है। टैगोर साहेब बड़े ही सुशील तथा दयालु गृहस्थ हैं। मेरा उनसे परिचय हो चुका है। वे मुझे बड़े ही साफ़ दिल के व्यक्ति दिखाई दिये। उनके कौन से सिद्धान्त मुझे ग्राह्य नहीं हैं, यह मैं फिर कभी बताऊँगा। श्री० बनर्जी के साथ मेरा पत्र व्यवहार था। अब उनका स्वर्गवास हो चुका है। वे स्पष्ट वक्ता थे। सङ्गीत पर उन्होंने बँगला भाषा में दो एक अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। क्योंकि ये ग्रन्थ एक विद्वान के द्वारा लिखे हुए हैं, अतः सुशिक्षित लोगों को वे तुरन्त ग्राह्य होते हैं। मैंने उनका भाषान्तर किया है। उसे तुम पढ़ना, अब ठुमरी के विषय में बनर्जी का मत कहता हूँ:—

"जिन रागों में टप्पे होते हैं, प्रायः उन्हीं रागों में ठुमरियां भी अधिक होती हैं। ठुमरी में पंजाबी, अद्धा, कव्वाली इत्यादि तालें होती हैं। Willard साहेब ने अपने ग्रन्थ में "ठुमरी" नामक राग का भी उल्लेख किया है। उसे देखने से यही अनुमान होता है कि, वह शंकराभरण तथा मारू इन दो रागों के मिश्रण से बना है। संगीतसार नामक ग्रन्थ में यह कहा गया है कि, ठुमरी की उत्पत्ति शोरी मियां से हुई। यह नहीं कहा जा सकता कि, यह बात किस सीमा तक विश्वसनीय है। तथापि यह बात निश्चित है कि हिन्दुस्तान में ठुमरी नामक एक प्रकार का गाना प्रचलित है, तथा वह भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता है। लखनऊ की ओर ठुमरी का व्यवहार अत्यन्त लोकप्रिय है। प्रसिद्ध शोरी भी उधर ही की तरफ का व्यक्ति था, और संभवतः इसी से उसका नाम इस प्रकार के गाने से जुड़ गया है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि, शोरी ने ठुमरी गाने का प्रचार नहीं किया। इसका कारण यह है कि टप्पा तथा ठुमरी सर्वथा भिन्न प्रकार हैं। कदाचित ऐसा हुआ हो कि टप्पे के संक्षिप्तीकरण से ठुमरी का गाना निकला हो। हिन्दुस्तान में गाने वाली वेश्याऐं ठुमरी बहुत गाती हैं। तथा इस प्रकार गाये जाने के कारण बड़े-बड़े गायक ठुमरी का गाना निम्न कोटि का समझते हैं। सच पूछो तो यह अनुभूत बात है कि, समाज को ख्याल तथा ध्रुपद की अपेक्षा ठुमरी का गाना अधिक मिष्ट प्रतीत होता है। ठुमरी में दो प्रकार का आनन्द है। एक तो यह कि गाने की शैली ही सुन्दर है, और फिर उसमें स्वरवैचित्र्य भी विलक्षण ही है। ठुमरी गाने वाले का कन्ठ—फिर गायक चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष—ख्याल, ध्रुपद गाने वालों के कन्ठ की अपेक्षा बिलकुल ही निराले ढङ्ग से तैयार किया हुआ होता है। उसमें अत्यन्त ही सारल्य और कोमलता होती है। ख्याल, ध्रुपद गाने वाले गायकों से ठुमरी का गायन उत्तम नहीं सधता। ठुमरी के गीत बहुत ही छोटे होते हैं, अतः वे वैचित्र्य से ओत प्रोत रहते हैं। उसकी विशेषता यही है कि, यद्यपि उसमें भिन्न-भिन्न को एकत्र किया जाता है, तथापि कानों पर उसका परिणाम

बड़ा ही संतोष-प्रद होता है। खमाज की ठुमरी हो, तब भी उसमें गायक, भैरवी, सिंधु, पीलू, बिहाग इत्यादि रागों के भी स्वर शनैः शनैः युक्तिपूर्वक लगा कर लोगों का मन-रंजन करते हैं! ऐसे स्वर अच्छे क्यों लगते हैं, इसका कुछ निराला ही कारण है। चाहे जो हो, बड़े-बड़े गायक भले ही ठुमरी पर हसें, परन्तु इसमें संशय नहीं है कि ये गीत भी अति लोकप्रिय गीतों में से हैं।

Capt Willard ठुमरी के विषय में यह कहते हैं।

"Thoomree This is in an impure dialect of the Vrijbhasha. The measure is lively and so peculia, that it is not mistaken by one who has beard a few songs of this class. It is useless to waste words in description, which must after all prove inadequate of a subject which will impress the mind more sensibly when attention is bestowed on a few songs."

"ग़ज़ल" के विषय में श्री बनर्जी कहते हैं कि यह शब्द अरबी भाषा का है। "ग़ज़ल" प्रणय विषयक कविता है। जिन रागों में टप्पे होते हैं, बहुधा उन्हीं रागों में ये गीत भी होते हैं। हमारे देश में फारसी, तथा उर्दू-इन भाषाओं में ग़ज़लें होती हैं। मुसलमान लोगों के, ये खास स्वदेशी गीत माने जाते हैं, तथा यह समझा जाता है कि इन्हें वे अपने देश से हिन्दुस्तान में लाए हैं। ग़ज़ल गीतों में अनेक चरण होते हैं। रेखता, रुबाई इत्यादि अन्य गीत फारसी तथा उर्दू भाषा में होते हैं, उन्हें भी बहुत कुछ इसी के समान समझना चाहिये। परन्तु उनमें शब्दार्थ भिन्न होता है। ये जो मुख्य गीत कहे गए हैं, इनके अतिरिक्त सोहला, कजरी, लावनी, चैती, जिगर इत्यादि हिन्दुस्तान के क्षुद्र गीत हैं, परन्तु इनका वर्णन नहीं मिलता। ग़ज़ल तथा रेखता के विषय में Willard साहब कहते हैं:—

"These are in the Urdu and Persian languages and differ from each other, according to some, merely in the subject they treat of. The Gazal has for its theme a description of the beauties of the beloved object, minutely enumerated, such as the green beard, moles, ringlets, size, shape & c. as well as his cruelties and indifference and the pain endured by the lover, whilst in the Rekta he eulogizes the beauty of the beloved in general terms and evinces his own intention of persevering in his love, and bearing with all the difficulties to which he might bo exposed in the accomplishment of his desires. They consist mostly of from five to ten or a dozen couplets.

तुम्हारे ध्यान में यह बात आ गई होगी कि श्री० बनर्जी ने Willard साहेब का ही मत माना है। हमारे हिन्दुस्तानी संगीत के गीत शब्दों के विषय में Willard साहेब ने यह कहा है कि:—

"The tenor of Hindustanee love ditties, therefore, generally, is one or more of the following themes:—

1. Beseeching the lover to be propitious.
2. Lamentations for the absence of the object beloved.
3. Imprecating of rivals.
4. Complaints of inability to meet the lover from the watchfulness of the mother and sisters-in-law and the tinkling of little bells worn as ornaments round the waist and ancles, called payel &c.
5. Fretting and meking use of invectives against the mother and sisters-in-law as being obstacles in the way of her love.
6. Exclamations to female friends termed sukhees and supplicating their assistance. and.
7. Sukhees reminding their friends of the appointment made, and exhorting them to persevere in their love.

प्र०—ध्रुपद के विषय में बताते हुए आपने पहले यह कहा था कि ध्रुपद में "गमक" ली जाती है; "गमक" किसे कहते हैं ?

उ०—"गमक" एक दृष्टि से गीत का आभूषण है। रत्नाकर में गमक की व्याख्या इस प्रकार की गई है। "स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः" इस वाक्य का अर्थ यह होगा कि, "स्वरों का ऐसा कंपन जो सुनने वालों के चित्त का हरण करे, उसे गमक कहते हैं" केवल वर्णन द्वारा तुम गमकादि प्रकारों को नहीं समझ सकते। "इक्षुक्षीरगतं यद्वन्माधुर्यं नोच्यते बुधैः" बहुत कुछ यही बात गमक के विषय में भी कहनी पड़ेगी। तथापि ग्रन्थों में इसका भी वर्णन किया गया है तथा उसके भिन्न-भिन्न नाम भी बताए गए हैं। रत्नाकर में कुल १५ गमक बताए गए हैं, और वे ये हैं:—

'स्वरस्य कंपो गमकः श्रोतृचित्तसुखावहः।
तस्य भेदास्तुतिरिपः स्फुरितः कंपितस्तथा॥
लीन आंदोलितवलितत्रिभिन्नकुरुलाहताः।
उल्लासितः प्लावितश्च गुंफितो मुद्रितस्तथा।
नामितो मिश्रितः पंचदशेति परिकीर्तिताः॥"

दक्षिण की एक पुस्तक में उधर के गमकों के मुझे ये नाम दिखायी दिये:—(१) आरोह, (२) अवरोह, (३) डालु, (४) स्फुरित, (५) कंपित, (६) आहत, (७) प्रत्याहत, (८) त्रिपुच्छ, (९) आन्दोलित, (१०) मूर्छन। संस्कृत ग्रन्थों में गमकों

का वर्णन दिया हुआ है। उन ग्रन्थों के अध्ययन के समय, मैं उन्हें समझा दूंगा, अभी वे भली भांति तुम्हारी समझ में न आयेंगे।

प्रश्न—ठीक है, तब इस समय हम उनका विचार छोड़े दे रहे हैं। अब आप हमें क्या बतायेंगे ?

उत्तर—जिस दृष्टि से हमने पहले गायकों के ध्रुपदिये, ख्यालिये इत्यादि भेद किये थे, उसी प्रकार कतिपय सङ्गीत व्यवसायी लोगों के भी कुछ वर्ग प्रचार में माने जाते हैं। Capt. willard के शब्दों में उन्हें भी बताता हूँ। मैं उनके ग्रन्थ से उद्धरण ले रहा हूँ, इसका कारण यह है कि उन्होंने इस विषय पर खोज—अर्थात् ऐतिहासिक खोज—पर्याप्त की है। बङ्गाल के ग्रन्थकारों ने भी अपनी-अपनी पुस्तकों में उनके मत को स्वीकार किया है। वे कहते हैं:—

Musicians:-These are divided into classes by the Hindu authors, agreeably to merit and extent of knowledge.

'Nayuk. He only has a right to claim this denomination who has a thorough knowledge of ancient music both theoretical and practical. He should be intimately acquainted with all the rules for vocal and instrumental compositions and for dancing. Should be qualified to sing Geet, Chand, Prabandha &c. to perfection and able to give instruction.

II To this class belong those who understand merely the practice of music, and is subdivided into—

1—Gundharb-One who is acquainted with the ancient (Marg) Rags as well as modern (Desee) and

2—Goonee or Gooncar-He who has a knowledge of only the modern ones.

III-Calavant, Gundharbs, and gooncars who sing Dhrupads, Trivats &c, to perfection, go by this appellation.

IV-Quval, excels in singing Quol, Turana, Khyals &c.

V-Dharee sings Curca &c.

VI-Pandit. This term literally signifies a Doctor of music and is applied to those who profess to teach the theory of music and do not engage in its practice.

प्रश्न—आपने पहले हमसे यह कहा था कि अब हमारे यहां ग्रन्थ सङ्गीत—अर्थात् प्राचीन ग्रन्थ सङ्गीत—तो प्रचलित है ही नहीं, तथा जो कुछ है वह मुसलमान गायकों द्वारा बहुत कुछ रूपान्तरित किया हुआ है। तब तो फिर इस दृष्टि से सङ्गीत के विषय में हमारी स्थिति शोचनीय ही है, क्या आप यह नहीं मानते ?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि, आजकल ऐसी स्थिति अवश्य है। यह ठीक है कि, उन बेचारे मुसलमान गायकों को हमारी स्थिति विदित नहीं है। हमारे पास

संस्कृत ग्रन्थ हैं, तथा संस्कृत भाषा भी हम जानते हैं। इसी से तो वे हमसे घबराते हैं। रागों के नाम भी हिंदुओं के ही प्रचलित हैं, तथा वे राग भी हिन्दू ग्रन्थों में हैं, अत: गायक यह समझते हैं कि हिंदू लोग रागों का जो वर्णन करते हैं वही ठीक है, परन्तु यदि हम प्रामाणिक रूप से इस तथ्य पर विचार करें कि, वस्तुस्थिति क्या है, तो तुम्हारे जैसे सुज्ञ तथा सुशिक्षित व्यक्तियों को यह स्पष्ट विदित हो जायगा कि, मुसलमान गायकों को निम्नकोटि का समझने का हमें कोई अधिकार नहीं है। हम सशास्त्रता का अभिमान करते हैं, परन्तु यदि कोई हम से यह पूछे कि "तुम्हारा शास्त्र कौन सा है," तो हम किस पुस्तक का नाम लेंगे ? यह हमें स्वीकार है कि लक्ष्य सङ्गीत ग्रन्थ में जो सङ्गीत है, वह केवल आजकल का है, परन्तु उस ग्रन्थ के अतिरिक्त तुम्हारे इतर ग्रन्थों की क्या स्थिति है ?

प्र०—आपकी ये बातें सुनकर तो हमें आश्चर्य होता है। रत्नाकर, दर्पण, राग विबोध, चतुर्दण्डि, सारामृत, पारिजात इत्यादि ग्रन्थों के नाम आपने ही बताये थे न ?

उ०—हां, परन्तु प्रश्न यह है कि उन ग्रन्थों में वर्णित सङ्गीत को क्या हम सब आजकल गाते हैं ? तुम चाहे जिस गायक से यह प्रश्न पूछो कि "तुम अपना गाना किस ग्रन्थ के प्रमाणानुसार गाते हो" ? और फिर देखो कि वह क्या कहता है। वह कभी उत्तर न दे सकेगा । मैंने बहुत पर्यटन किया है, परन्तु तुम से सत्य कहता हूँ कि मुझे एक भी पंडित अथवा गायक ऐसा नहीं मिला जिसने रत्नाकर के मूल ३० ग्राम रागों को भलीभांति समझा हो। दर्पण में बताये हुये रागों के मेल, प्रचलित रागों से संबन्धित कर सकने वाला भी मुझे अभी तक कोई नहीं मिला । यह ठीक है कि तुमने जिन ग्रन्थों का नाम लिया है, वे आज भी विद्यमान हैं, परन्तु तुम्हारी आजकल की पद्धति से उनके रागनियम अनेक स्थलों पर भिन्न होगये हैं। जब यह बात है, तो फिर क्या यही कहना न पड़ेगा कि अब हम ग्रन्थोक्त सङ्गीत नहीं गाते तथा हमें शास्त्र परिपुष्टता का अभिमान करने का कोई अधिकार नहीं है । मैं यह जानता हूँ कि मेरा यह मत किसी को भी अच्छा न लगेगा, परन्तु वस्तुस्थिति क्या है, यह मैंने तुम्हें शुद्ध हृदय से बतादी है । यों सोचो कि प्रचार में हम मियां की मल्लार, मियां की सारङ्ग, मियां की तोड़ी, हुसैनीतोड़ी, दरबारी तोड़ी, बिलासखानी तोड़ी, जौनपुरी, सरपर्दा, साजगिरी, शहाणा, यमनी, नवरोज, चांदनीकेदार, सूरमल्लार, पीलू, बरला इत्यादि राग गाये जाते हुए सुनते हैं; अब यदि हम यह कहने लगें कि इन्हें प्राचीन ग्रन्थाधार प्राप्त हैं, तो ठीक होगा क्या ? कुछ लोग कहेंगे कि इन मुसलमानी रागों को छोड़कर शेष राग तो हमारे ग्रन्थों के ही हैं न ? हां, परन्तु उन्हें भी हम उस तरह कहां गाते हैं ? उनमें कहे हुए नियमों को हम बिलकुल ही परिवर्तित करके, मुसलमान गायक उन्हें जैसे गाते हैं उसी तरह से गाते हैं। अनेक स्थलों पर ग्रन्थों का थाट भी हमें मान्य नहीं होता। भैरव, भैरवी, तोड़ी जैसे साधारण रागों में भी हम ग्रन्थों के नियमों का पालन करने को तैयार नहीं; तब फिर हमारा शास्त्र कौन सा है, क्या यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न नहीं होता ? मेरे कहने का उद्देश्य भलीभांति समझना।

आजकल के सङ्गीत अथवा गायकों की निंदा करना मेरा हेतु नहीं है। मैं तो यह कहता हूँ कि हमारे आज के हिंदुस्तानी सङ्गीत की, शास्त्र-दृष्टि से नवीन ही स्थापना करनी पड़ेगी। यदि यह कहा जाय कि इस विषय पर आजकल जो ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं, वे सभी नवीन शास्त्र की रचना कर रहे हैं, तो अनुचित न होगा। यद्यपि मैं भी तुम्हें आगे चलकर संस्कृत ग्रन्थ पढ़ाने वाला हूँ, तथापि उनका संगीत अब भी यथायोग्य रीति से प्रचलित है, यह कहने का साहस मुझ में कदापि नहीं है। अपनी प्राचीन धर्म पुस्तकों को, तथा नियमों की पुस्तकों को यद्यपि हम अब भी पढ़ते पढ़ाते हैं, तथापि क्या उनकी सभी बातें आज प्रचलित दिखाई देती हैं ? यही बात हमारे सङ्गीत की भी है । अस्तु, यह विषयान्तर है, अतः इसे छोड़कर हम यमन पर विचार करेंगे।

प्र०—यमन के विषय में क्या हमें और भी कुछ बताया जाने को रह गया है ? इसके विषय में हमने इतनी बातें याद कर ली हैं, देखिये:—

(१) यह राग संपूर्ण है, तथा कल्याण थाट से उत्पन्न होता है

(२) इसके आरोह तथा अवरोह बिलकुल सरल हैं, तथा इस कारण इसमें चाहे जैसे स्वर समुदाय-अर्थात् तीव्र स्वरों के समुदाय लगा दिये जायँ तब भी विशेष विसङ्गत प्रतीत नहीं होते। हमारे यहां कुछ लोग इसे आश्रय राग भी कहते हैं।

(३) यमन में गंधार स्वर प्रधान है अर्थात् यह हमें राग में यत्र तत्र दृष्टिगोचर होगा। इस गंधार का नियमित संवादी स्वर निषाद है। यह भी हमें यमन में पर्याप्त दिखाई देगा। परन्तु इसका महत्व गंधार की अपेक्षा कम परिलक्षित होगा।

(४) यह राग पूर्वाङ्ग वादी राग गिना जाता है, क्योंकि इसमें वादी स्वर गंधार है।

(५) इस राग में हमारे गायक कभी कभी अवरोह में शुद्ध मध्यम का किंचित् स्पर्श कर दिखाते हैं। इस शुद्ध मध्यम को गंधार से सम्बन्धित करके गाते हैं। इस शुद्ध मध्यम के विषय में एक विशेष बात यह रखनी चाहिये कि यद्यपि इसका अल्प प्रयोग अवरोह में क्षम्य है, तथापि "पमग" इस प्रकार इस स्वर को लेकर सरल अवरोह नहीं किया जाता, यहां तीव्र मध्यम ही लेना पड़ता है। इस स्वर की स्थिति बहुत कुछ विवादी स्वर के समान ही है।

(६) यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में, अर्थात् संधि-प्रकाश रागों के पश्चात् गाया जाता है।

(७) यह आलाप योग्य रागों में से एक राग माना जाता है। अत्यन्त साधारण होने से यह प्राय: सभी गायकों को आता है।

(८) कुछ लोग कहते हैं कि यह मुसलमान गायकों के द्वारा प्रचलित किया गया है। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि, हमारे ही देश के यमुना कल्याण का यह एक प्रकार है।

(९) यमन, वस्तुतः कल्याण का ही एक प्रकार है, अतः उसे कुछ लोग यमन-कल्याण भी कहते हैं।

(१०) कल्याण के प्रकार लगभग १२ माने जाते हैं, कल्याण में भिन्न-भिन्न राग मिलाकर इनका सृजन होता है।

प्रश्न-इतनी बातें तो हमें याद हैं, और भी कोई महत्व की बात रह गई हो तो वह भी बता दीजिए ?

उत्तर—नहीं, अब इससे अधिक कुछ नहीं है। इन सभी बातों को भिन्न-भिन्न गीतों में रख कर मैंने तुम्हारे लिये लक्षणगीत बना रखे हैं। वे तुम्हें शनैः शनैः सिखाये ही जा रहे हैं। इन गीतों में केवल लक्षण अर्थात् रागों के थाट, समय, वर्ज्यावर्ज्य स्वर इत्यादि दिये हुए हैं। यह स्पष्ट है कि इन बातों के अतिरिक्त उनमें और कोई वैचित्र्य नहीं है। तथापि मेरा अनुमान है कि गीतों के योग से भिन्न-भिन्न लक्षण तुम्हें भली भांति याद हो जायेंगे।

प्रश्न—बिलकुल ठीक है। ऐसे अर्थ प्रधान गीतों को कवित्व की अपेक्षा नहीं रहती। हमारे शास्त्रों में जिस प्रकार विद्वानों ने छोटे-छोटे सूत्र रख दिये हैं, तथा उनकी सहायता से वे शास्त्र जिस प्रकार जल्दी से याद हो जाते हैं, मेरे अनुमान से वही बात यहां भी है। ऐसे सब गीतों को हम याद कर लेंगे। अब आप हमें यमन थाट के जन्य राग बतायेंगे न ? आपने पहले कहा था कि बारह जन्य राग सिखाये जायेंगे। इतना ही डर लगता है कि इतने रागों का सविस्तार वर्णन कैसे याद रहेगा ?

उत्तर—ऐसा प्रतीत होना स्वाभाविक है। परन्तु हमारे विद्वान पण्डितों ने इस अड़चन पर ध्यान रखकर एक सरल युक्ति निकाली है। उन्होंने इन जन्य रागों का एक सुगम वर्गीकरण कर दिया है। तथा विभिन्न वर्गों में लगने वाले साधारण लक्षण भी बता दिये हैं। उनकी सहायता से तुम्हारा काम बड़ा सरल हो जायेगा। यह बात नहीं है कि युक्तियां किसी बड़े शास्त्रीय तत्व पर अवलम्बित हों, परन्तु प्रचलित सङ्गीत को शीघ्र समझ लेने की दृष्टि से ये बड़ी उपयोगी होंगी। मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि कल्याण थाट में हमें कुल तेरह जन्य रागों पर विचार करना है। अब, इन्हीं में से कुछ राग ऐसे हैं जिनमें मध्यम बिलकुल नहीं लगता, कुछ ऐसे हैं जिनमें मध्यम केवल अवरोह में लगता है, कुछ ऐसे भी हैं जिनमें तीव्र मध्यम आरोह तथा अवरोह दोनों में ही लगता है। कतिपय अन्य ऐसे हैं, जिनमें तीव्र तथा कोमल दोनों मध्यम गृहीत होंगे। मध्यम की इसी स्थिति के आधार पर हमारे पण्डितों ने कल्याण थाट के तेरह जन्य रागों की सुविधा के लिये तीन वर्ग किये हैं। पहले वर्ग में मध्यम बिलकुल न लगने वाले अथवा केवल अवरोह में मध्यम लगने वाले रागों को रखा है। दूसरे वर्ग में आरोह तथा अवरोह दोनों ही में तीव्र मध्यम लगने वाले रागों को रखा है। और तीसरे वर्ग में उन्होंने दोनों मध्यम लगाने वाले रागों को माना है। अवरोह में तीव्र मध्यम लगने वाले रागों को एक मध्यम लगने वाले दूसरे वर्ग में रखना चाहिये था, परन्तु अवरोह में यह स्वर विशेष महत्व का नहीं होता, इसीसे उन्होंने ऐसा किया है। ये तीनों वर्ग केवल सुविधा की दृष्टि से किये गये हैं, अतः उनका ऐसा करना आपत्तिजनक नहीं है। ग्रन्थों में इन तीनों वर्गों का उल्लेख इस प्रकार किया हुआ मिलता है:— (क्रमशः)

——*——

कल्याणीमेलजा रागा विभज्यंते त्रिधा पुनः ।
अमैकमद्विमा इति सौकर्यार्थं विचक्षणैः ॥

प्रश्न—यह वर्गीकरण तो सचमुच बड़ा सुन्दर हुआ। उन्होंने इसमें रागों का विभाजन किस प्रकार किया है ?

उत्तर—भूपाली राग प्रचार में औडव माना गया है, तथा उसमें म नि, वर्जित स्वर माने गये हैं, इसलिये यह तो पहले वर्ग में ही जायेगा। चन्द्रकान्त तथा शुद्धकल्याण इन दोनों रागों में तीव्र म है, परन्तु है केवल अवरोह में, अतः इन्हें भी इसी वर्ग में रखा जा सकता है। आरोहावरोह में तीव्र म ग्रहण करने वाले राग यमन, हिंदोल, मालश्री हैं, ये दूसरे वर्ग में रखे जायेंगे। तीसरे वर्ग में दोनों मध्यम लगने वाले राग हैं, अतः इसमें केदार, छायानट, कामोद, श्याम, गौड़सारङ्ग, यमनी-बिलावल इत्यादि राग आयेंगे। कहीं-कहीं ये दो मध्यम के राग तुम्हें बिलावल थाट में, अर्थात् शुद्ध स्वरों के थाट के अन्तर्गत भी माने हुए दिखाई देंगे, परन्तु प्रचार में क्यों कि इन रागों में तीव्र मध्यम भी लगाया जाता है, अतः इन्हें कल्याण थाट के अन्तर्गत मानने में विशेष हानि दिखाई नहीं देती, अतः तुम्हारे कल्याण थाट के रागों के वर्ग ये होंगे:—

१ ला……	१ भूपाली	२ शुद्ध कल्याण	३ चन्द्रकांत
२ रा……	१ यमन	२ मालश्री	३ हिंदोल
३ रा……	१ हमीर	२ केदार	३ छायानट
	४ कामोद	५ श्याम	६ गौड़सारङ्ग
	७ यमनी बिलावल		

प्रश्न—आपने पहले हमें कल्याण के जो भिन्न-भिन्न भेद बताये थे, उनके थाट के विषय में क्या करना चाहिये ?

उत्तर—उनमें से कुछ तो इन तीन वर्गों में हैं ही, जो भिन्न प्रकार हैं, उनका थाट भी भिन्न होना उचित ही है। दोनों मध्यम लगने वाले जिन रागों को हमने देखा है, उनके विषय में भी क्या हम यह नहीं कह सकते कि वे यमन तथा बिलावल इन दो थाटों के मिश्रण से उत्पन्न हुए हैं ? आगे चलकर तुम्हें यह दिखाई देगा कि, शुद्ध स्वरों का थाट ऐसे मिश्रणों के लिये बड़ा ही उपयोगी होता है। शुद्ध थाट होने के कारण, उसमें इतर थाटों का यथायोग्य रीति से सम्मिश्रण अप्रिय नहीं होता। परन्तु उसे किस थाट से कितना, तथा किस प्रकार मिलाना चाहिये, यही जानना कुशलता का काम है। अभी तुम इस विषय में प्रवेश मत करो।

प्रश्न—तब ठीक है! शुद्धकल्याण के विषय में कुछ और बताइये ?

उत्तर—यह तो मैं बता ही चुका हूँ कि, शुद्ध कल्याण में म तथा नि इन स्वरों को नहीं लगाया जाता। मैंने यह भी कहा था कि इस राग की प्रकृति कुछ अन्शों में भूपाली के ही समान है, क्यों कि उस राग में भी म और नि वर्जित किये जाते हैं।

इन दोनों रागों में अन्तर भी अवश्य है, क्योंकि भूपाली में म और नि ये स्वर आरोह तथा अवरोह दोनों ही में वर्जित हैं। यमन संपूर्ण राग है, अतः स्पष्ट ही है कि यह इन दोनों रागों से निराला ही रहेगा। तब क्या फिर ये तीनों राग स्पष्ट रूप से स्वतंत्र नहीं हो गए ?

प्र०—हां, ये बिल्कुल स्पष्ट अलग हो गये। तथापि, क्योंकि आरोह में म नि नहीं हैं, इससे यह भूपाली जैसा, और क्योंकि अवरोह में ये स्वर हैं, इससे क्या शुद्ध कल्याण, यमन जैसा दिखाई न देगा ?

उ०—हां, अवश्य ! ऐसा तो दिखाई देगा ही। यही तो हमारे सङ्गीत की विशेषता है। एक ही राग में, यदि उसी के समान कतिपय अन्य रागों के स्वरूप कहीं थोड़े बहुत दिखाई दें, तब भी वह अपने स्वतन्त्र लक्षणों से जगह-जगह पहिचाना जा सकता है। ये इतर स्वरूप भी ऐसे कौशल से दिखाए जाते हैं कि, मूलराग की बिल्कुल हानि नहीं होती। एक राग में इतर रागों की थोड़ी बहुत छाया क्यों दिखाई देती है, यह समझ में आजाना चाहिए। यह तो हम जानते ही हैं कि मनुष्य अपने चेहरे से ही एक दूसरे से अलग-अलग पहिचाने जाते हैं। चेहरे यदि छिपा दिए जायँ तो क्या नीचे के भाग प्रायः भ्रम में नहीं डाल देते ? क्षण भर के लिए रागों के विषय में भी थाट को शरीर के नीचे के जैसा समझा जा सकता है। रागों के जो मुख्य अङ्ग-कतिपय नियमित स्वर-समुदाय अथवा वादी स्वर इत्यादि हैं, उन्हीं से राग स्वतन्त्र ठहराया जाता है। राग का विस्तार करते समय यदि मूल राग किंचित् आवृत हो जाय तो कुशल गायक राग को, उस विस्तार में ठीक जगह पर ऐसी खूबी से दिखाते हैं कि,श्रोताओं का संपूर्ण-गायन सुसंगत तथा मधुर प्रतीत होता है। गायकों का यही सच्चा कसब है। राग का विस्तार प्रारम्भ हुआ नहीं कि, उस राग के जनक थाट से उत्पन्न होने वाले अनेक राग उसके आस-पास आ खड़े होते हैं। जरा दुर्लक्ष्य हुआ कि मूल राग भ्रष्ट हुआ। इस बात पर गायक को सदैव ध्यान रखना पड़ता है। इसीसे प्रत्येक राग सीखते समय उस राग का रङ्ग, अर्थात उसे पहिचानने के स्वर समुदाय, ध्यानपूर्वक घोट कर याद रखे जाते हैं। तथा उस राग को गाते समय योग्य स्थल पर उन स्वर समुदायों का प्रयोग करके, रक्ति गुण में कमी नहीं आने दी जाती। रत्नाकर में शार्ङ्गदेव पंडित ने राग-स्थापन-प्रकार के विषय में बताते हुए कहा है कि:—

स्तोकस्तोकैस्ततः स्थायैः प्रसन्नैर्बहुभंगिभिः।
जीवस्वरव्याप्तिमुख्यैः रागस्य स्थापना भवेत्॥

और उस पर टीका करने वाले-अर्थात् कल्लिनाथ पंडित ने दो एक मनोरंजक उदाहरण देकर इस प्रकार स्पष्टीकरण दिया है:—

जीवस्वरोऽशस्वरः। उक्तस्वस्थानचतुष्टयप्रयुक्ताया मालप्तावुक्तलक्षणैः स्वल्पै रागावयवैर्विस्तार्यमाणायामापाततोऽभिव्यक्तस्य रागस्य रागांतर-साधारणस्थायादिप्रयोगात्स्वरूपतिरोभावे सति किंचित्प्रतीयमानता भवेदित्य-

भिप्रायः । यथा लोके सभांप्रत्यागच्छतो देवदत्तस्य स्वरूपेणाभिव्यक्तस्य ततः सभां प्रविश्योपविष्टस्य तस्य स्वसदृशरूपवेषभाषादिसांकर्यात्स्वरूप-तिरोभावेसति यथा तस्यकिंचित्प्रतीयमानत्वम् । यथा वा पृथगानीय भिन्नवर्णेषु मणिषु प्रोतस्य मुक्तामणेर्मध्यंतरच्छायोपरागात्स्वरूपतिरोभावे सति यथा तस्य किंचित्प्रतीयमानत्वं तद्वदिति ।

प्रश्न—यह उदाहरण तो बड़े मजे के रहे । आप जो कुछ बता रहे हैं, उसकी अब हमें अच्छी कल्पना हो गई । यहां आलप्ती के चार स्वरस्थान कहे गये हैं । वे क्या हैं ? यदि आप इस विषय में हमें कुछ बताना उचित समझें तो कहिए ।

उत्तर—प्राचीन सङ्गीत में, ये आलाप करने के चार प्रकार हैं । प्रचार में आलाप किस प्रकार किया जाता है, तथा तुम्हें कैसे करना चाहिए, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूं । ये स्वस्थान प्राचीन सङ्गीत के हैं । यह अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है कि उस सङ्गीत में इनका महत्व अत्यधिक था । अब तो "कामचार प्रवर्तित्वम्" देशी सङ्गीत का लक्षण ही हो गया है, अतः इन प्रस्थानों का विशेष महत्व नहीं है । गायक को प्रथम अमुक स्वर से प्रारम्भ करना चाहिए, इसके बाद अमुक स्वर पर जाना चाहिये इत्यादि बातें प्रस्थानों के प्रकरण में बताई गई हैं । यह ऐतिहासिक विवेचन है, इसी से तुम्हें बता रहा हूं ।

प्रश्न—यह हमारी समझ में आ गया । प्रचार में ये प्रकार नहीं हैं । परन्तु हमारे प्राचीन विद्वान आलाप किन नियमों से करते थे, यह तो हमारी समझ में आ जायगा । हमें अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन की आवश्यकता नहीं है, तथापि इस विषय में कुछ खास खास बातें बता दीजिये ।

उत्तर—अच्छी बात है । प्रत्येक राग में कोई न कोई एक थाट (अथवा स्वर सप्तक) लगता है । यह तो तुम्हें भी मालूम है । यह भी तुम जानते हो कि, प्रत्येक राग में एक वादी स्वर होता है । इन स्थानों के विषय में तुम्हें चार स्वरों के नाम याद रखने चाहिये ।

प्रश्न—आपने हमें वादी, सम्वादी, अनुवादी इत्यादि बताये थे । उन्हें तो हमने भली भांति समझ कर याद कर लिया है ।

उत्तर—उनका दृष्टिकोण तो दूसरा ही था । अब जो मैं कह रहा हूँ, वह नई बात है । उनके नाम ये हैं:—१ स्थायी स्वर, २ द्वयर्ध स्वर, ३ द्विगुण स्वर, ४ अर्धस्थित स्वर । इनका आशय समझाता हूँ, इसे याद रखना । स्थायी स्वर का अर्थ है वह स्वर जिसे तुम "वादी" स्वर कहते हो । वादी स्वर से आठवां "द्विगुण" स्वर है । वादी से चौथा स्वर द्वयर्ध है । तथा द्वयर्ध और द्विगुण के बीच में जो स्वर है वह "अर्धस्थित" स्वर है । स्वरों की ये जगहें, तथा उनके नाम याद कर लेने पर यह तुरन्त समझ में आ जाता है कि आलाप में स्वस्थान किस काम आते हैं । रत्नाकर में कहा है:—

यत्रोपवेश्यते रागः स्वरे स्थायी सकथ्यते ।
ततश्चतुर्थो द्व्यर्धः स्यात्स्वरे तस्मादधस्तने ॥
चालनं मुखचालः स्यात् स्वस्थानं प्रथमंचतत् ।
द्व्यर्धस्वरे चालयित्वा न्यसनं तद्द्वितीयकम् ॥
स्थायिस्वरादष्टमस्तु द्विगुणः परिकीर्तितः ।
द्व्यर्धद्विगुणयोर्मध्ये स्थिता अर्धस्थिताः स्वराः ॥

प्रश्न—इसमें कुछ शब्द नये हैं, जैसे उपवेशन, चालन, मुखचाल, न्यसन इत्यादि । उन्हें समझाइये ?

उत्तर—कल्लिनाथ ने इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया हैः—

यत्र यस्मिंस्तत्तद्रागांशभूते षड्जादिष्वन्यतमे स्वरे राग उपवेश्यते स्थाप्यते स स्वरो रागस्थितिहेतुत्वात्स्थायीति कथ्यते । चालनं-तत्तद्रागोचित स्फुरितकंपितादिगमकयुक्तत्वेनो च्चारणं वादनं वा मुखचालः ॥

न्यसनं न्यासः । यह समझ में आ ही जाता है । अब तीसरे तथा चौथे स्वर-स्थानों के विषय में कहता हूं । उनकी व्याख्या यह हैः—

अर्धस्थिते चालयित्वा न्यसनं तुतृतीयकम् ।
द्विगुणे तु चालयित्वा स्थायिन्यासाचतुर्थकम् ॥
एभिश्चतुर्भिः स्वस्थानै रागालप्तिर्मता सताम् ॥

प्रश्न—ये नियम कैसे सुस्पष्ट हैं । ऐसे ही यदि आज भी प्रचलित होते तो बहुत अच्छा था । ऐसे नियमों से यह भली भांति समझ में आ जाता है कि राग विस्तार क्रम से किस प्रकार करते जाना चाहिये । आजकल प्रचार में तो यह कहीं दिखाई नहीं देंगे न ?

उत्तर—प्रचार में आलाप करते समय उसमें अस्ताई, अन्तरा, इत्यादि विदारी अर्थात् भिन्न-भिन्न भाग दृष्टिगोचर होते हैं । परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि स्वस्थानों के ये नियम अब भी तुम्हें दृष्टिगोचर होंगे ! जहां तक शक्य है, वहां तक यदि इनका कोई थोड़ा बहुत उपयोग करे, तो अनुचित प्रतीत न होगा । अस्तु, पर हां ! मैं पहले क्या कह रहा था ?

प्रश्न—शुद्ध कल्याण का विवेचन चल रहा था, तथा उसी में वह बात आगई थी कि इस राग में भूपाली तथा यमन की थोड़ी बहुत छाया दिखाई दे सकती है । ऐसा क्यों होता है, इस विषय का कारण बताते हुए आपने रत्नाकर के उद्धरण उपस्थित किये थे ।

प्रश्न—अच्छी बात है। तब फिर हम अपने प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। जिन गायकों को शुद्ध कल्याण भली भांति नहीं आता है, उनके गाने में भूपाली अधिक दिखाई देती है। परन्तु जब वे अवरोह में कहीं-कहीं म नि लगा देते हैं तो लोगों को ऐसा प्रतीत होता है कि वे अशुद्ध भूपाली गा रहे हैं। क्योंकि शुद्ध कल्याण, वस्तुतः कल्याण का ही एक प्रकार माना जाता है, अतः इसमें यमन का भाग अवश्य दिखाई देगा। प्रायः गायक यमन के अङ्ग को युक्ति से प्रयुक्त करते हैं। यमन तो श्रोताओं द्वारा तुरन्त ही पहिचान लिया जाने वाला राग है। बहुत कुछ यमन का ही स्वरूप लेकर गायक उसके आरोह में म, नि वर्जित कर देते हैं। यह देखकर श्रोताओं को बड़ा आनन्द आता है। इसे भूपाली कहें, तो यमन का अङ्ग स्पष्ट विद्यमान है, और यदि यमन कहें तो म नि अतिशय गौण दृष्टिगोचर होते हैं। यह देखकर सुनने वाले बड़े ही प्रसन्न होते हैं, इस राग को रात्रि के प्रथम प्रहर में गाते हैं। इसे प्रथम प्रहर का कहना, तुम्हारे लिये कोई नवीन बात नहीं है। एक-एक प्रहर के यद्यपि अनेक राग हैं, तथापि प्रत्येक गायक उन सभी को एक ही समय में तो नहीं गा सकता। कोई यमन गाता है, कोई भूपाली गाता है, तो कोई शुद्ध कल्याण से ही अपना गाना प्रारम्भ करता है। ये सब बातें प्रचार में दिखाई देंगी। यह तो तुम जानते ही हो कि, पहले प्रहर का अर्थ संधिप्रकाश के बाद का प्रहर है। संधिप्रकाश के रागों में प्रायः रि ध कोमल, ग नि तीव्र, तथा मध्यम तीव्र—ये स्वर होते हैं। ऐसे राग सुनते-सुनते जैसे-जैसे रात्रि आने लगती है, वैसे-वैसे गायक तथा श्रोतृ समूह को भिन्न थाटों के रागों में प्रवेश करने की उत्सुकता होने लगती है। यह वस्तुतः अनुभूत बात है। अतः ऐसे प्रसंग पर तीव्र रि, ध लगने वाले रागों के गाने से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसका यथायोग्य रीति से वर्णन करना कठिन है। संधिप्रकाश के राग, करुण तथा शान्त, इन रसों के लिये योग्य हैं, तथा इसी से उनमें गाम्भीर्य भी अधिक माना जाता है। इस समय पर मन में गम्भीर विचारों का आना उचित ही है, इसे कोई भी स्वीकार करेगा। इस समय लोग अपने दिन भर के काम से छुटकारा पा जाते हैं तथा स्वमेव अपने-अपने सुख दुःख के विचार ईश्वर के सम्मुख उपस्थित करने में प्रवृत होते हैं। कुछ अन्शों में यह बात सर्वथा सत्य है कि संधिप्रकाश रागों की प्रकृति क्षुद्र नहीं होती। इन रागों को प्रत्यक्ष सुनकर ही हृदय उनका समुचित रसास्वादन कर सकता है। मन पर इन रागों का प्रभाव कुछ विलक्षण ही पड़ता है। तुम्हारी स्वरमालिका जो "पूर्वी" थाट में है, वह कुछ ऐसे ही प्रकार की है। ग्रन्थों में इस विषय के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि:—

"संधिप्रकाशरागाणां मृदुता रिधयो स्ततः।
मेलमेनं समारभ्य तीव्रत्वे परिवर्तिता॥
परिवर्तनमप्येतन्नूनं संतोषकारणम्।
भिन्नरससमास्वादा न्मनोहर्षं प्रपद्यते॥"

प्रश्न—रागों के गाने के समय निर्धारित करने में कुछ रहस्य है। यह आपने हमें बताया ही है। हमें भी ऐसा ही प्रतीत होता है, लेकिन प्रचार में गायक समय के इन नियमों का पालन करते भी हैं?

उत्तर—मैं समझता हूँ कि यह नहीं कहा जा सकता कि प्रचार में सभी राग समय के नियमित प्रमाण से ही गाये जाते हैं। कुछ खास-खास तथा लोकप्रिय रागों के विषय में समय सम्बन्धी भेद बिलकुल नहीं है, परन्तु कुछ समय के सम्बन्ध में मतभेद है। हमें लक्ष्य सङ्गीतकार का मत स्वीकार कर लेना चाहिये, बस यही काफी होगा। वह मत मुझे भी पसन्द है। मैंने यह कहा है कि प्रचार में समय के नियम के अनुसार गायक अपने राग नहीं गाते। इसका एक कारण सहज में यही समझा जा सकता है कि हमारे यहाँ के लोग, बिचारे अपने-अपने धन्धे रोजगार में उलझे पड़े हैं। (कारण यह है कि ऐसा किये बिना उपजीविका कैसे चले ?) इससे नियमित समय पर नियमित रागों को सुनने और गाने का नियम भला कैसे प्रचलित होता ! ऐसे लोगों को सारङ्ग, भीमपलासी, धनाश्री इत्यादि दिनगेय राग दिन के अतिरिक्त कहीं सुनने का प्रसङ्ग आने से रहा। तात्पर्य यह है कि इस शास्त्र नियम का आशय इतना ही समझना चाहिये कि नियमित राग नियमित समय पर अपना-अपना प्रभाव अधिक सन्तोषप्रद रीति से व्यक्त करते हैं। तुम कहीं गाना सुनने जाओ तो तुम्हें उल्टा यह दिखाई देगा कि गायक दो-तीन घन्टे में पांच पचीस रागों की झड़ी लगा देगा। फिर एक लाभ यह भी है कि रागों के समय निर्धारित कर देने से उन्हें पद्धति के अनुसार सीखने के लिये उत्तम साधन उपलब्ध होगा। समय के नियम को परिस्थितियों के अनुसार शिथिल कर देने की प्रथा पूर्वकाल से प्रचलित दिखाई देती है। "दर्पण" में एक जगह यह कहा है:—

यथोक्तकाल एवैते गेया पूर्वविधानतः ।
राजाज्ञया सदागेया नतु कालं विचारयेत् ॥

तरङ्गिणीकार का भी यही संकेत है:—

दशदंडात्परं रात्रौ सर्वेषां गानमीरितम् ।
रंगभूमौ नृपाज्ञायां कालदोषो नविद्यते ॥

यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि योरोप के कतिपय पण्डितों का यह कहना है कि समय के नियम को स्थापित करने में कोई अर्थ नहीं है। हमारे देश के कुछ विद्वानों का भी यही मत है। मि० बनर्जी अपने गीतसूत्रसार (Grammar of vocal music) नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ५८ पर कहते हैं कि "हमारे यहां राग रागनियों को दिन तथा रात्रि के नियमित समयों पर गाने की जो प्रथा चली आ रही है, वह केवल काल्पनिक है। विवेचकों को यह बात तुरन्त समझ में आ जायेगी, स्वर-समुदायों में ऐसी कोई विशेषता नहीं है, जिससे उन्हें किसी खास समय पर न गाने से, इच्छित फल प्राप्त न हो। सङ्गीत का सर्व उद्देश्य स्वरों द्वारा मन के भाव व्यक्त करके श्रोताओं के मन पर उनका स्वरूप उत्पन्न करना भर है। अतः इन भावों को यथोचित रूप में व्यक्त करने के लिये समय की अपेक्षा नहीं है। जिन भावों को हम प्रातःकाल में व्यक्त करते हैं, उन्हीं भावों को क्या रात्रि में व्यक्त नहीं कर सकते ? अवश्य ही ऐसा किया जा सकता है। यह बात स्वीकार है कि सङ्गीत के फल का सम्बन्ध गायक तथा श्रोता के मन से है। परन्तु यह कहना ठीक प्रतीत

नहीं होता कि किसी एक निश्चित समय पर ही सुनने पर सभी लोगों के मन की स्थिति समान रहती है। यदि ऐसा होता तो राग-समय-विषयक यह विधान ठीक होता। हम यह देखते हैं कि हमारे अनेक लोगों को स्नान तथा आहार इन दो प्रसङ्गों पर सङ्गीत की आवश्यकता नहीं होती। योरोपियन लोगों को भोजन करते समय बैंड की आवश्यकता प्रतीत होती है। हमारे गायक लोग और भी विचित्र बातें कहने लगते हैं। वे कहते हैं कि राग तथा रागिनी ये सभी देवता हैं। चाहे जिस समय उनका आवाहन करने से वे प्रार्थना नहीं सुनते, परन्तु नियमित समय पर नियमित रीति से प्रार्थना करने से, वे प्रसन्न होकर गायक तथा वादकों को, अद्भुत रंजन शक्ति प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल पर सभ्य समाज में संध्याकालान्तर बहुधा सङ्गीतालोचन करने की प्रथा है। तब जो बेचारे नौकरी पेशा लोग हैं, क्या वे प्रातःकालीन रागों की कभी चर्चा ही न करें ? क्या यह अन्याय न होगा ? अस्तु, बात यही है। प्राचीन ग्रन्थकार ही इस विषय पर एक मत कहां हैं ? पारिजात में भूपाली को प्रातःकाल में गाना तथा भैरवी को सब समय गाना लिखा है। सुना जाता है कि दक्षिण में यमन प्रातःकाल तथा भैरवी रात्रि में गाई जाती है। किसी के मत से ललित, रामकली, तोड़ी आदि रागों को संध्या समय गाने से उत्तम कार्य होता है। जैसेः—

छायागौडी तथाचान्या ललितांच तथा मता।
मल्लारिका तथा छायागौरी तु तोडिकाव्हया॥
गौडी मालवगौडश्च रामकिरी तथैवच ।
एते रागा विशेषेण प्रातः कालेच निर्मिताः॥
सायमेषांतु गानेन महतीं श्रियमाप्नुयात्

(सङ्गीतसारसंग्रहः)

हमारे यहां के गायक इस मत को नहीं मानेंगे। परन्तु हमारे कुशल पंडितों ने इसका एक उत्तम समाधान किया है और वह यह हैः—

एवं बहुविधाचार्यैर्गानकालः समीरितः।
यस्मिंदेशे यथा शिष्टैर्गीतं विज्ञस्तथाचरेत्॥

(सङ्गीतनिर्णयः)

कोई कहेगा कि तब फिर इस प्रथा का उद्गम स्थान क्या है ? नाटकों में हम प्रायः पढ़ते हैं कि बड़े-बड़े राजाओं के प्रासादों में प्रहर-प्रहर पर वाद्य वादन का प्रचार रहा है। आजकल हमारे देवालयों में भी क्या बहुत कुछ ऐसी ही प्रथा नहीं है। प्रत्येक प्रहर के लिये रोज-रोज़, नये-नये राग कहां से लाये जांय ? अतः हमारे धूर्त सङ्गीत व्यवसायी लोगों ने एक-एक समय के लिये, एक-एक राग नियमित कर दिया। × × × इस प्रकार इन रागों के समय निश्चित करने की प्रथा चल पड़ी। अभ्यास बड़ा ही प्रभावशाली होता है। अभ्यास से नवीन स्वभाव बनता है। भैरव का सम्बन्ध प्रातःकाल से कैसे है ? उसे सुनने पर प्रातःकाल का

स्मरण क्यों होता है ? ऐसे प्रश्न किये जा सकते हैं। परन्तु इनका उत्तर केवल यही है कि Association का (स्मृति उद्दीपन का) फल है। यदि दो बातों को हम सदैव साथ-साथ देखते रहें, तो फिर कभी उनमें से केवल एक ही दिखाई देने पर भी, तुरन्त दूसरी का स्मरण हो जाता है।" मैंने तुम्हें मि० बनर्जी के मत का यह सार बता दिया है। परन्तु Sir William Jones ने एक स्थल पर यह कहा है कि:—

"Whether it had occurred to the Hindoo Musicians that the velocity or slowness of sounds must depend, in a certain ratio, upon the rarefaction & condensation of the air, so that their motion must be quicker in summer than in spring or autumn, & much quicker than in winter, I cannot assure myself; but am persuaded that their primary modes in the system of Pavava were first arranged according to the number of Indian Seasons."

मैं तुम्हें अभी यह बता चुका हूँ कि मैं समय के महत्व को मानने वालों में से एक हूँ। किस राग का क्या परिणाम होता है, यह रागों को भली भांति समझे बिना तुम्हारी समझ में कैसे आयेगा ? अतः फिलहाल इस विवादग्रस्त विषय को एक ओर हटाकर हम प्रस्तुत विषय की ओर अग्रसर हों। अभी तुम "यथाकाले समारब्धं गीतं भवति रंजकम्" इतना ही स्वीकार करके आगे बढ़ो। एक अन्य बात भी याद रखनी चाहिये, और वह यह है कि, यह न समझना चाहिये कि आजकल जो रागों के समय प्रचलित हैं, वे सर्वथा ग्रन्थों में कहे हुए समयों के अनुसार हैं। इसका कारण यही है कि ग्रन्थोक्त राग स्वरूप अब अनेक स्थलों पर परिवर्तित हो गए हैं। हमारा सङ्गीत कुछ अन्शों में नवीन ही है, तथा इसी से समय का नियम भी प्राचीन नियम से कहीं-कहीं पृथक हो गया है।

प्रश्न—यह हमारी समझ में आ गया। अब शुद्धकल्याण के विषय में आगे चलिये ?

उत्तर—हां, जब तक गायक इस राग को सावकाश रीति से गाता है, तब तक तो वह म, नि स्वर अवरोह में बड़ी खूबी से दिखाकर यमन तथा भूपाली इन दोनों से तथा चन्द्रकान्त नामक जो राग है, उससे भी इस राग को पृथक करके दिखा देता है, परन्तु इसमें द्रुत तानों का आरम्भ करते ही, यह कृत्य उसके लिये कठिन हो जाता है। क्योंकि इस प्रकार की अड़चन पड़ना सम्भव है, इसी से कुछ चतुर लोग इस शुद्ध कल्याण में 'रि तथा प' इन दो स्वरों का सम्वाद मानते हैं। मेरा यह कथन तुम्हें कुछ विचित्र सा प्रतीत होगा। इस राग में रि तथा ध ये दोनों स्वर लगते हैं, फिर रि स्वर का सम्वादी प क्यों माना जाय ? यह प्रश्न तुम्हारे मन में उठेगा।

प्रश्न—आपने ठीक पहिचाना। यही प्रश्न हम अभी पूछने वाले थे। रिषभ वादी हो तो उसका पांचवां स्वर अर्थात् धैवत सम्वादी होगा। ऐसा एक नियम आपने हमें पहले बताया था। यह उस नियम का एक अपवाद प्रतीत होता है।

उत्तर—हां, अपवाद मान लेने में भी कोई हर्ज नहीं है। ग्रन्थों में वादी-संवादी स्वरों में ८ या १२ श्रुतियों का अन्तर बताया है, ऐसा नियम बताकर ग्रन्थकारों ने इसके उदाहरण भी दिये हैं:—

"समौ, सपौ, रिधौ चैव निगौ संवादिनौ मिथः।
एवं शुद्धस्वरेषूक्तः सम्वादी स्वरनिर्णयः ॥
साधारणाख्यगांधारकैशिक्याख्यनिषादयोः ।
तथैवांतरकाकल्योः सम्वादो विकृतेष्वपि ॥
शुद्धरिषभसम्वादीवरालीमध्यमस्तथा ॥"

प्रश्न—आपने अभी तक हमें श्रुतियों के विषय में नहीं समझाया। यह शब्द बार-बार लोगों के मुँह से सुनाई पड़ता है।

उत्तर—श्रुतियों के विषय में तुम्हें दो शब्द आगे बताने वाला था। खैर, थोड़ा सा अन्श यहां भी समझ लो। तुम्हारे जैसों के लिए श्रुति की कल्पना कराना कठिन नहीं है। यह तुम जानते ही हो कि हमारे स्वर सप्तक में हमने मुख्य ७ स्वर ही माने हैं। यदि हम इन सातों स्वरों के बजाय सप्तक में २२ स्वर मानें तो क्या दशा होगी?

प्रश्न—ऐसी दशा में स्वरों का अङ्ग बहुत ही स्वल्प हो जावेगा और विकृत स्वरों की संख्या बहुत बढ़ जावेगी। परन्तु इसमें हम अपने ७ शुद्ध स्वर और ५ विकृत स्वरों को भी सम्मिलित मान रहे हैं और उसी दृष्टिकोण से यह उत्तर दिया है।

उत्तर—तुम्हारी कल्पना ठीक है। इन २२ स्वरों में तुम्हारे १२ स्वर अवश्य दिखाई देंगे। इन २२ छोटे-छोटे स्वरों को ही श्रुति कहते हैं। श्रुति शब्द का अर्थ 'नाद' है। 'श्रूयते इति श्रुतिः' इसमें कोई गूढ़ तत्व नहीं है।

प्रश्न—परन्तु इस व्याख्या के अनुसार तो परस्पर वस्तुओं के रखने, टकराने आदि की ध्वनि भी श्रुति कहलायेगी। क्योंकि आपकी परिभाषा है कि जो सुनाई दे सके उसे श्रुति कहते हैं!

उत्तर—एक दृष्टि से ऐसा तर्क ठीक है, परन्तु सङ्गीत में उपयोगी श्रुति, पण्डितों ने भिन्न प्रकार से बताई है। सङ्गीत 'श्रुति' की व्याख्या इस प्रकार है "नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमुत्तमम्"

इस व्याख्या के कारण तुम्हारी उपरोक्त ध्वनियां गीतोपयोगी न हो सकने के कारण श्रुति नहीं हो सकतीं।

प्रश्न—खैर, यह हम मान गये, परन्तु फिर गीतोपयोगी नाद २२ ही क्यों हैं? एक सप्तक में तो इससे भी अधिक नाद निकल सकते हैं।

उत्तर—इसका कारण है "अभिगेयत्वम्"। केवल गीतोपयोगी नाद ही नहीं परन्तु स्पष्ट रूप से पहिचाने जा सकने वाला नाद ही श्रुति कहलावेगा। ऐसे २२ नाद विद्वानों ने एक सप्तक में ठहराये हैं। मेरे ख्याल से तो यह २२ संख्या भी कम नहीं है। श्रुतियां इससे अधिक भी हो सकती हैं। इस बात को जानते हुए ग्रन्थकारों ने स्पष्ट लिखा है "केशाग्रव्यवधानेन बह्व्योऽपि श्रुतयोमताः। वीणायांच तथा गात्रे सङ्गीतज्ञानिनां मते"॥ यह कथन पण्डित अहोवल ने अपने ग्रन्थ सङ्गीत पारिजात में बताया है।

प्रश्न—आपने कहा है कि हमारे १२ स्वर भी २२ श्रुतियों के अन्तर्गत ही हैं। फिर श्रुति और स्वर का भेद क्या किया गया है ?

उत्तर—मैं संक्षेप में बता देता हूँ। प्रत्येक राग को तुम किन्हीं नियमित स्वरों में ही गाते हो। वे स्वर ५, ६, ७, (कभी-कभी इन से अधिक भी) होते हैं। अब यह ध्यान में रखने की बात है कि उस राग में जितने नाद (श्रुति) उपयोगी मानकर काम में लिये जाते हैं, वे सब उस राग के लिये स्वर माने जाते हैं। जिन शेष नाद का उपयोग नहीं होता वे केवल श्रुति ही रह जाते हैं। स्वर और श्रुति एक दूसरे से भिन्न भिन्न हैं। पारिजात कार ने इसे स्पष्ट समझाया है:—

"श्रुतयः स्युः स्वराभिन्नाः श्रावणत्वेन हेतुना।
अहिकुण्डलवत् तत्र भेदोक्तिः शास्त्रसंमता॥
सर्वाश्च श्रुतयस्तत्तद्रागेषु स्वरतां गताः।
रागाहेतुत्व एतासां श्रुतिसंज्ञैव संमता॥"

श्रुति सम्बन्धी इतनी जानकारी ही इस समय तुम्हारे लिये पर्याप्त है। "रत्नाकर" की टीका में पंडित कल्लिनाथ ने श्रुति और स्वर के भेदों का स्पष्टीकरण किया है। इसे आगे देखेंगे। अब हम पुनः वादी और संवादी स्वरों के मध्यम के अन्तर पर ध्यान दें। ग्रन्थों में स्वरों की श्रुतियों का विभाजन इस प्रकार किया है। "चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्ज मध्यम पंचमाः द्वे द्वे निषादगांधारौ त्रिस्त्रीरिषभधैवतो"। प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर शुद्ध अवस्था में आता है, ऐसा मत ग्रन्थकारों का है। इस परिमाण से षड्ज चौथी श्रुति पर, रिषभ ७ वीं पर, गांधार ९ वीं पर, मध्यम १३ वीं पर, पंचम १७ वीं पर, धैवत २० वीं पर, और निषाद २२ वीं श्रुति पर शुद्ध रूप में आता है। अब वादी-संवादी के नियम से 'सा' स्वर का संवादी 'प' स्वर षड्ज से ठीक १२ श्रुति के अन्तर पर है, क्योंकि मध्य में रे, ग, म, स्वरों की ९ श्रुतियां आ जाती हैं। और पंचम की ३ श्रुतियां और लगती हैं तब कहीं शुद्ध पंचम आता है। इस तरह 'सा' और 'प' के मध्यम में १२ श्रुतियों का अन्तर हो जाता है. तब 'सा' का संवादी प हो जाता है। इस नियम से 'रे' का संवादी 'ध' और 'ग' का संवादी 'नि' हो जाता है। परन्तु यह नियम अन्य स्वरों में बिलकुल ठीक-ठीक लगने के विषय में नहीं कहा जा सकता।

इसके विपरीत 'चतुर्दण्डीकार' ने इस प्रकार कहा है। "शुद्धश्चमध्यमः शुद्धनिषाद-श्चेत्युभौस्वरौ। श्रुत्यष्टकेनांतरितावपि संवादिनौ नहि।"

सारांश यह है कि प्रत्येक स्वर का ५ वां स्वर उसका सम्वादी निर्विवाद हो सकता है। अन्य स्वरों के संवादी प्रकार लोकव्यवहार पर अवलम्बित रहते हैं। तो भी ऐसा माना जाता है कि, उपरोक्त प्रकार के अलावा सम्वादी स्वरों का अन्तर यथासंभव ८ श्रुति का होता है। यह विधान भी आंशिक रूप से ठीक है, क्योंकि सम्वादी स्वर भी राग में एक महत्व का स्वर होता है, यदि वादी के अत्यन्त निकट हो जावे तो वादी का महत्व कम हो जाता है।

विवादी स्वरों का अन्तर १ श्रुति मात्र होता है, यह कथन भी प्रचलित विवादी शब्द की सङ्गति में ठीक नहीं कहा जा सकता। मि० बनर्जी का कथन है कि, प्राचीन-काल में वादी-विवादी स्वरों का रहस्य अवश्य ही कुछ भिन्न रहा होगा। उनके इस कथन का कारण मैं तुम्हें कुछ बता ही चुका हूँ परन्तु पुनः और बता देता हूँ। मि० बनर्जी एक विद्वान और स्वतंत्र विचारक सङ्गीतज्ञ थे। उनके कथन को सम्पूर्ण रूप से नहीं मानते हुए भी हमें अपने विचार करने के हेतु उनके कथन को समझना आवश्यक है। वे कहते हैं:—'हमारे यहां प्रायः यह भी माने हुए हैं कि प्रत्येक राग में वादी, संवादी, विवादी और अनुवादी स्वर होना ही चाहिए और इन्हीं की सहायता से राग रूप का निर्माण किया जाना संभव है। मेरे विचार से इस धारणा में भ्रम का अंश ही अधिक है, और यह संस्कृत ग्रन्थों के कारण ही प्रविष्ट हुआ है। राग में अधिक प्रयुक्त स्वर वादी और 'वादी' स्वर से अल्प प्रयुक्त स्वर संवादी कहलाता है। इन दोनों से अल्प महत्व के स्वर अनुवादी और अत्यन्त अल्प अथवा अव्यवहृत स्वरों को विवादी कहते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में इन स्वर नामों का प्रयोग भिन्न धारणा से किया गया है।

"सोमेश्वर" का कथन है कि 'राग' में जो स्वर अधिक आता है वह स्वर अन्श स्वर या वादी स्वर कहलाता है। जैसे मालकौंस केदार आदि में मध्यम, झिंझोटी में गांधार, कालिंगड़ा में पंचम, विभास में धैवत स्वर वादी है। प्रचार में यह नियम इतना अधिक कठोर नहीं है। जिसे केदार राग का उत्तम ज्ञान है वह बिना मध्यम को प्रधानता दिये भी राग रूप दिखा सकता है। अन्य रागों में भी ऐसा ही समझना चाहिये। स्वरों का अल्प, बहुत्व प्रयोग गायक की इच्छा पर निर्भर होता है। यदि हम केदार मालकौंस आदि रागों को भी एक ओर रहने दें तो ऐसे कितने राग निकलेंगे जिनमें वादी की प्रबलता इसी प्रकार रहती है। मेरे ख्याल से यह संख्या अधिक नहीं हो सकती।

यह एक बहुमत सा ही हो गया है कि सब प्रकार के मल्लार, भैरव, भीम-पलासी, मेघ, ललित इन रागों में वादी स्वर 'म' ही होता है। विहाग, पूरिया, जयन्त, गौड़सारंग इनमें वादी 'ग' होगा। यमन, यमनकल्याण, शुद्ध कल्याण, कामोद, जोगिया, श्री, रामकली, मुलतानी, तोड़ी के प्रकार, शहाना, अड़ाना इनमें प वादी, हमीर, अल्हैया में ध वादी—छायानट, वृन्दावनी, कानड़ा, में रे वादी स्वर व्यवहृत

होते हैं, परन्तु प्राय: उपरोक्त विचार भी निश्चित नहीं है। यदि यमन में वादी 'प' को कहा जावे तो कोई कह सकता है कि इसका वादी 'ग' क्यों नहीं हो सकता। यमन में 'प' के समान 'ग' का प्रयोग भी अत्यधिक किया जाता है। इसी प्रकार रे और नि स्वरों के विषय में कहा जा सकता है। तीव्र म को भी कोई इसी प्रकार बता सकते हैं। कुशल गायक इन समस्त स्वरों को बढ़ाकर गाते दिखाई देते हैं, और ऐसा करने से भी उनका राग भ्रष्ट नहीं होता। जो कुशल गायक नहीं हैं, उनके द्वारा ऐसा प्रयोग सफल नहीं हो सकता। उपरोक्त कथन का सार इतना ही है कि वादी स्वर का नियम अटल नियम नहीं कहा जा सकता। यह विषय भी प्राय: भाषा शास्त्र जैसा है। यह कथन ठीक है कि प्रचार में वादी-संवादी की धारणा पर ही कोई राग नहीं सिखाये जा सकते। ऐसा करने पर इसके विपरीत शिक्षण कार्य कठिन ही हो जावेगा।

विवादी स्वरों के विषय में इस प्रकार का बहुमत है कि जिस राग में जो स्वर वर्ज्य किये जाते हैं वे ही उसमें विवादी माने जाते हैं। जैसे-वृन्दावनीसारङ्ग में ग, बिहाग में रे, हिन्डोल व मालकौंस में रे तथा प आदि। ग्रन्थों में वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी स्वर राग में लगने वाले माने हैं। × × × ×

इस समय यह भी कहा जा सकता है कि हमें ग्रन्थों के आधार पर चलना आवश्यक नहीं है। वादी, विवादी स्वरों का प्रचलित अर्थ समझकर ही राग सीखने में सरलता होती है, इस कथन को ठीक माना जा सकता है। ऐसा मानने पर मैं वादी, विवादी निश्चित करने का एक उपाय बताता हूं। जिन प्रसिद्ध रागों के ऊपर चर्चा की जा चुकी है, उनके वादी-सम्वादी स्वरों के विषय में कोई उलझन नहीं है, क्योंकि वे प्रसिद्ध राग रूप हैं। परन्तु जो राग इतने प्रसिद्ध नहीं हैं, उनके लिये कुछ स्थूल नियम इस प्रकार बताये जा सकते हैं। जो शुद्ध थाट का सम्पूर्ण राग हो अथवा जिस राग में 'ग' के सिवाय अन्य स्वर कोमल लगाये जाते हैं, उन रागों में वादी स्वर ग या प ही शोभा देगा। यदि 'ग' वादी हो तो प सम्वादी कहलायेगा। ऐसे ही यदि प वादी हो तो ग सम्वादी रखा जावे। (यह एक साधारण नियम बताया गया है) अन्य स्वर अनुवादी कहे जावेंगे। सम्पूर्ण रागों में विवादी स्वर नहीं होते। शुद्ध थाट में जो गाया जावे अथवा जिसमें ग व म के सिवाय अन्य कोई स्वर विकृत हों, इसी प्रकार वे औडव-षाडव राग जिनमें पंचम वर्ज्य किया जाता है, इनमें ग अथवा प स्वर वादी होगा। ध अथवा कोमल नि सम्वादी होगा। जिन रागों में रे, म, ध, नि इनमें से कोई एक स्वर वर्ज्य हो, उनमें ग या प स्वर वादी होगा। म वादी स्वर लेने पर ध सम्वादी, प वादी का रे सम्वादी होगा। जिन रागों में ग स्वर वर्ज्य हों उनमें तीव्र मध्यम भी प्राय: नहीं लिया जाता। यथा सम्भव विकृत स्वरों को वादी-सम्वादी नहीं बनाया जाता। जहां ग कोमल आता हो, वहां म अथवा प स्वर वादी होंगे। म वादी होने पर शुद्ध ध सम्वादी होगा। प वादी होने पर शुद्ध रे संवादी होगा। यदि ऐसे रागों में रे स्वर कोमल हो तो वह सम्वादी रूप में नहीं लिया जावेगा। ऐसी दशा में ग या प के सिवाय किसी अन्य स्वर को प्रधानता दी जाती है, और ऐसा किया जाने पर वही स्वर वादी हो जाता है।"

वादी-सम्वादी स्वर के विषय में ग्रन्थों के कथन की समीक्षा करते हुए मि० बनर्जी आगे कहते हैं—"शार्ङ्गदेव, मतङ्ग, दन्तिल आदि ग्रन्थकारों के मत से इन दो स्वर वादी सम्वादी के मध्य में १२ या ८ श्रुति का अन्तर होना चाहिये। ये परस्पर सम्वादी हो जाते हैं। जैसे 'सा' का सम्वादी प अथवा म और म या प का सम्वादी 'स' इसी नियम के अनुसार रे और ध व ग और नि स्वर परस्पर सम्वादी हैं। यदि हमने चार ऐसे रागों की कल्पना की है जिनमें रे स्वर वादी होता है, तो सम्वादी 'ध', अनुवादी 'प' और विवादी 'ग' होगा। किन्तु इन चार रागों का अन्तर कैसे स्पष्ट रूप से बताया जा सकेगा? मेरी समझ में उपरोक्त रागों में पार्थक्य बताना असंभव हो जावेगा! मेरी राय से उपरोक्त रागों में प्राचीन काल में इन शब्दों का रहस्य कुछ दूसरा ही होना चाहिये।

यह तर्क का विषय है कि इन वादी-सम्वादी स्वरों में (Harmony) का सम्बन्ध है। यह स्पष्ट है कि प्रत्येक स्वर का उसके पांचवें स्वर से निकट सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध के कारण उसका सम्वादी नाम बिलकुल योग्य ही है। 'स' से 'प' आरोह में १२ श्रुति के अन्तर पर है, परन्तु अवरोह में 'स' से 'प' केवल ८ ही श्रुति के अन्तर पर है? इसी प्रकार 'म' से 'स' का अन्तर आरोह में १२ श्रुति व अवरोह में ८ श्रुति होता है।

यह देखते हुए यह स्पष्ट नियम हो जाता है कि नियत वादी स्वर का पांचवां स्वर ही सम्वादी होता है। मध्य काल के ग्रन्थकारों ने इस प्राचीन रहस्य को न समझते हुए लिख दिया है कि वादी-सम्वादी स्वरों में ८ या १२ श्रुति का अन्तर होता है, इस प्रकार उन्होंने 'सा' वादी के दो सम्वादी 'म' और 'प' लिख दिये हैं। परन्तु वे ही ग्रन्थकार 'म' से ८ श्रुति के अन्तर पर के स्वर नि को सम्वादी कबूल नहीं करते। क्या यह शंकास्पद नियम नहीं है? हमारे मत से तो स्पष्ट रूप से वादी स्वर का पांचवां स्वर सम्वादी बताया है, यह बिलकुल युक्ति सङ्गत है और इस नियम से 'म' का सम्वादी स्वर 'स' होगा। जिस राग में वादी स्वर 'स' होगा उसमें 'प' वर्जित नहीं होगा क्योंकि वह सम्वादी होता है, और जिस राग में 'प' वर्जित किया जाता है उसमें वादी स्वर 'स' नहीं होता। मालकौंस राग में पंचम वर्ज्य लेने के कारण 'स' को वादी न बनाकर 'मध्यम' को वादी बनाया गया है।

"सङ्गीत-रत्नाकर" की टीका करते हुये सिंह भूपाल इस प्रकार लिखते हैं कि वादी स्वर के स्थान पर सम्वादी स्वर का प्रयोग करने पर राग हानि होती है। जैसे—"यस्मिन्गीते अंशत्वेन परिकल्पितःषड्जः तत्स्थाने मध्यमः क्रियमाणो रागो न भवेत्" मेरा ख्याल है कि इस टीकाकार ने मूल ग्रन्थ का अर्थ करते हुए बहुत ही गड़बड़ी करदी है।

'मतङ्ग' के मत से दो श्रुति के अन्तर का स्वर विवादी कहा है, जैसे रे का विवादी 'ग', 'ध' का विवादी 'नि'। किन्तु इसका क्या अर्थ है, विवादी को श्रुति

कटु समझा है या और कुछ ? एक मत से नि और ग स्वरों को अन्य सभी स्वरों का विवादी कहा है।" "निगावन्यविवादिनौ" इस कथन का क्या तात्पर्य है, यह स्पष्ट रूप से कहीं भी नहीं बताया गया है।

अनुवादी स्वर की व्याख्या में कहा गया है कि जो स्वर संवादी और विवादी नहीं होते उन्हें अनुवादी कहते हैं। जैसे सा का अनुवादी रे और ध, प के अनुवादी भी रे, ध, एवं रे के अनुवादी 'म' और 'सा' इन अनुवादी स्वरों के विषय में 'सिंह भूपाल' का कथन इस प्रकार है:—

"यद्वादिना रागस्य रागत्वं समुदितं तत्प्रतिपादकत्वम् नाम अनुवादित्वम्। ततश्च षड्जस्थाने ऋषभः प्रयुज्यमानः रिषभस्थाने षड्जः प्रयुज्यमानः जाति-रागविनाशकरो न भवति" ॥

इस कथन का क्या अर्थ किया जा सकता है ? मध्यम ग्राम में सम्वादी व अनुवादी स्वरों के विषय में थोड़ा भेद है, वहां पर 'स' का सम्वादी 'प' न होकर 'म' माना गया है। रे का सम्वादी 'प' और 'ध' होंगे। विवादी—आदि स्वर षड्ज ग्राम के अनुसार ही हैं। स के अनुवादी 'प' 'ध' 'रे' और रे के अनुवादी म और प माने गये हैं।

विवादी स्वर का अर्थ तो यह है कि वे स्वर जो वादी-सम्वादी और अनुवादी स्वरों के कार्य में बाधक हों वे स्वर विवादी कहलाते हैं। परन्तु ऐसे स्वर रागों में बिलकुल नहीं होते हैं। शास्त्रकार कहते हैं कि दो श्रुति के अन्तर का स्वर विवादी होता है। यह कथन भी ठीक प्रतीत नहीं होता। जैसे झिंझोटी राग में 'ग' स्वर वादी होता है, इस ग से दो श्रुति के अन्तर पर 'म' स्थित है। तो क्या 'ग' का विवादी स्वर 'म' होगा ? 'म' स्वर न लेने पर झिंझोटी बिगड़ती ही नहीं, वरन् उसका रूप हीं नहीं दिखाया जाता। ऐसी दशा में झिंझोटी में कौन सा स्वर विवादी माना जाता है ? पूरिया राग में ग स्वर वादी है। इसके ऊपर की दो श्रुति और नीचे की दो श्रुति के स्वर इस राग में प्रयुक्त ही नहीं हैं, तब फिर यहां किन स्वरों को विवादी कहा जावेगा ?

उपरोक्त समस्त शास्त्रीय बातों को देखते हुए हमें ऐसा समझ में आता है कि प्राचीन संगीत में भी (Harmony) जैसी कोई स्वर संगति इस समय भी प्रचलित थी। वादी, विवादी आदि नाम रागों में प्रयुक्त अवस्थादर्शक नहीं हो सकते। मध्यकालीन ग्रन्थकारों को इसके सम्बन्ध में ठीक-ठीक बोध नहीं था। चाहे जो हो, इन स्वरों का स्पष्ट विवरण युक्ति संगत रूप से किसी ग्रन्थकार द्वारा प्राप्त नहीं होता, यह निर्विवाद है।

ऊपर मैंने मि० बनर्जी का कथन तुम्हें बताया है। इस समय वादी-सम्वादी स्वरों का जो अर्थ है वह तुम्हें बताया जा चुका है। मि० बनर्जी के कथन पर आगे गम्भीरता से विचार करेंगे। इस समय प्रचलित दृष्टि से उनके मतभेद से भी कोई बाधा उपस्थित नहीं होती। तुम्हारी जिज्ञासा की तृप्ति के लिये ही मैंने तुम्हें इतनी बातें सुनाई हैं। अब हम पुनः कल्याण की ओर चलें।

प्र०—हमें उपरोक्त जानकारी बहुत ही मनोरंजक समझ पड़ी है। हम आपके कथनानुसार उन बँगला ग्रन्थों को अवश्य पढ़ेंगे। शिक्षित लोगों के विचार, मतभेद होते हुए भी हमें रुचिकर और ग्रहण करने योग्य ज्ञात होते हैं और उन विचारों की सहायता से हम स्वतन्त्र कल्पना करने में समर्थ होते हैं। चाहे विषयान्तर हो जाता हो, परन्तु आप हमें इस प्रकार की योग्य बातें अवश्य ही सुनाते जाइएगा। आपने बताया था कि शुद्ध-कल्याण राग में कोई-कोई वादी रिषभ और सम्वादी पंचम को मानते हैं। इसी प्रसङ्ग में श्री० बनर्जी के विचार बताये थे। सारांश रूप में हमने यही समझा है कि प्रत्येक राग में एक प्रधान स्वर वादी, एक स्वर सम्वादी, शेष प्रयुक्त स्वर अनुवादी और वर्ज्य स्वरों को विवादी माना जाता है। ग्रन्थों में बताई हुई व्याख्या इस समय में कई स्थानों पर असंबद्ध सी हो गई है, और ऐसा होना आश्चर्य का विषय नहीं है।

अब कल्याण के विषय की ओर चलिये।

उ०—सुनो, शुद्धकल्याण राग का विस्तार मन्द्र और मध्य दोनों स्थानों में किया जाना चाहिये। गायक गण जब मन्द्र स्थान के पंचम तक जाते हैं, तब सा, नि, ध, प, इस प्रकार स्वर प्रयोग अत्यन्त मधुर होता है। अवरोह सम्पूर्ण होने के कारण निषाद स्वर का प्रयोग गायक सा, नि, ध, प, इस स्वर समुदाय में स्पष्ट रूप से दिखाते हैं। इस प्रयोग से श्रोताओं को यमन का आभास हो जाता है, परन्तु आगे प, ध, सा रे सा ग रे सा, इस प्रकार भूपाली की तरह विस्तार करते हुए यमन की छाया दूर करते हैं। मन्द्र सप्तक में भूपाली अधिक गाने से भी श्रोताओं को शुद्ध कल्याण का भ्रम हो जाता है। इस राग के अवरोह में म, नि स्वरों को स्पष्ट दिखाते आना चाहिए और गायक लोग इन स्वरों को किन-किन प्रकारों से दिखाते हैं, इसका अनुकरण भी करना चाहिए। भूपाली में धैवत अधिक लिया जाता है और इससे देशकार राग की छाया दिखाई देती है। शुद्ध कल्याण में ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें रे और प को महत्व दिया जाता है। इस राग को विलम्बित लय से गाना अधिक उत्तम होता है। इस प्रकार धीमी लय से गाकर ही मींड, गमक आदि अलंकार उत्तम दिखाए जा सकते हैं। यह अलंकार शब्द भी मैंने साधारण अर्थ में ही कहा है।

प्र०—तो क्या शास्त्रीय ग्रन्थों में अलंकार का अर्थ भिन्न बताया है?

उ०—हां ग्रन्थों में अलन्कार की व्याख्या में कहा गया है "विशिष्टवर्ण सन्दर्भमलंकारं प्रचक्षते" अलंकारों के कई भेद बताये हैं। नवीन शिक्षार्थी को अपने गायक जो पल्टे बताते हैं वे भी एक प्रकार के अलंकार ही हैं। ग्रन्थों में अलंकारों के स्वर समुदायों का निश्चय कर उनका स्वतन्त्र नामकरण भी किया गया है। यह अत्यन्त उत्तम योजना है। इन अलंकारों को उत्तम रूप से तैयार करने पर गले की तैयारी बहुत अच्छी हो जाती है, साथ में स्वर ज्ञान भी उत्तम हो जाता है। फिर भिन्न भिन्न रागों में इनका प्रयोग गाते समय करने से राग वैचित्र्य बढ़ता है। प्राचीन संगीत के नियत रागों में अलंकार भी नियत होते थे, परन्तु इस समय उन नियमों को कोई नहीं पालता। यह बात नहीं है कि इस समय प्राचीन अलंकार गाये ही नहीं जाते, इस समय भी उनका प्रयोग गायन में कई जगह होता है। परन्तु वे विशिष्ट नामों द्वारा विशेष रूप से सिखाये हुए नहीं होते। यदि उन अलंकारों

का प्रयोग प्रचार में गायक लोग लेने लगें, तो वह बहुत उपयोगी सिद्ध होंगे, 'पारिजात' में ये सब विस्तार पूर्वक दिये गये हैं। इनके उपयोग के विषय में 'पारिजात' में ऐसा लिखा है—

"शशिना रहितेवनिशा विजलेव नदी लता विपुष्पेव ।
अविभूषितेव कांता गीतिरलंकारहीना स्यात् ॥"
"अलमेतेऽलंकारा रंजनलब्ध्यै स्वरावबोधाय ।
वर्णाङ्गभ्यासाय च तदवश्यं पूर्वमभ्यस्या: ॥"

प्रश्न—इस समय प्रचार में मींड गमक आदि कौन से अलंकार हैं ?

उत्तर—'गमक' के विषय में बता ही चुका हूं। दूसरे अलंकार मींड, आंस, कंप, गिटकड़ी, लाग, डांट, भूषिका (Grace notes) आदि माने जाते हैं। श्री० बनर्जी ने उन्हें अपनी रचना में बहुत अच्छी तरह समझाया है। मैं वह सब तुम्हें आगे समझाऊँगा। संस्कृत ग्रन्थों में 'गमक' नाम से जो अलंकार बताये हैं, ये सब उन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु ग्रन्थों में जो अलंकार बताये हैं वे गमक में मिले हुए नहीं समझने चाहिये।

प्रश्न—नहीं-नहीं, वे निराले प्रकार हैं, यह हम समझ गए हैं। अब आप प्रस्तुत विषय (कल्याण) की ओर बढ़िए ?

उत्तर—जो लोग रिषभ को वादी स्वर मानते हैं, उनका कथन है कि शुद्ध कल्याण राग यमन से पहले गाना चाहिये। "र्यंशोगेय: सदापूर्वं यमनादितिसंमतम् । गांधारांशस्तत्परं स्यान्नियमोहि मनीषिणाम्" मेरे विचार से इस राग की इतनी जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त है। इस राग की सामान्य रूप-रेखा का स्मरण करा देने वाले दो तीन श्लोक तुम्हें बता देता हूँ। इन्हें कन्ठस्थ कर लेने में तुम्हें सुगमता होगी।

"कल्याणीमेलकोत्पन्नो रागोसौ मन्यते बुधै: ।
शुचिकल्याण इत्याख्य आरोहे मनिवर्जित: ॥
गांधार: सुमतो वादी कैश्चिदृषभईरित: ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गीतो नियतं स्यात्सुखावह: ॥
गवादित्वे सनियमं धैवतो मंत्रिसंनिभ: ।
सत्यंशेरिषभे नूनं संवादी पंचमो भवेत् ॥

उपरोक्त जानकारी याद रखने से तुम इस राग को, अन्य इसके सम स्वरूपी राग भूपाली, चन्द्रकांत, देशकार, विभास आदि से बचा सकोगे। यद्यपि सर्व प्रथम सुनने में इन रागों की पहिचान में भ्रांति हो सकती है, परन्तु इन सब के भिन्न-भिन्न पहिचान के चिन्ह स्वतन्त्र हैं।

प्रश्न—परन्तु देशकार, विभास आदि राग तो कल्याण थाट के नहीं हैं ?

उत्तर—फिर भी भ्रांति पड़ जाना सम्भव है। देशकार राग बिलावल थाट का है, परन्तु उसमें म, नि, स्वर वर्ज्य हैं। इन स्वरों के वर्ज्य होने से इसमें सा रे ग प ध स्वर रह जाते हैं। यह राग भूपाली के स्वरूप जैसा दिखाई देता है। शुद्ध-कल्याण और भूपाली बिलकुल निकट के राग हैं; यह मैं तुम्हें कह चुका हूं।

विभास में रे ध कोमल लगने से उसका स्वरूप बिलकुल भिन्न हो जाता है। विभास राग की उत्पत्ति भैरव थाट से है। इसमें भी म, नि स्वर वर्ज्य हैं। कोई-कोई इस राग को शुद्ध सा रे ग प ध स्वरों का मानते हैं, यह ठीक नहीं है। शुद्ध स्वरों के विचार से केवल देशकार और भूपाली ये दोनों राग ही ऐसे हैं जिनमें सम्पूर्ण रूप से एकता है। भूपाली इस समय रात्रि काल में गाया जाने वाला माना गया है और देशकार राग प्रातःकालीन गाया जाने वाला माना गया है।

प्रश्न—तो फिर देशकार उत्तरांग वादी ही होना चाहिये ?

उत्तर—हां, देशकार उत्तरांग वादी ही है। भूपाली रात्रि कालीन राग है और अवरोह में भी म नि होने से शुद्ध कल्याण से अलग हो जाता है। चन्द्रकान्त राग के आरोह में निषाद लिया जाता है, इस कारण यह राग 'भूपाली' और शुद्ध कल्याण इन दोनों से भिन्न हो जाता है। आरोह में निषाद के प्रयोग से यमन का स्वल्प भाग दिखाई दे जाता है परन्तु मध्यम के वर्ज्य होने से आगे चलकर इसका स्वरूप चन्द्रकांत से अलग हो जाता है। हमारे संगीत में मध्यम स्वर एक विलक्षण महत्व का स्वर माना गया है। मध्यम वर्ज्य होने पर ग, प, स्वरों का उच्चारण एक के बाद एक होता है। इस ग प स्वर संगति को अत्यन्त मनन से सीखना आवश्यक है, क्योंकि इसका प्रयोग आगे अनेक स्थलों पर होता है। प्रभात व संध्या के रागों में इस स्वर संगति का परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण हो जाता है। एक बार "पग, ध, पग" ऐसे स्वरों को बार-बार गाकर उसके परिणाम को देखो, तुम्हें तत्काल ही मेरे कथन का तात्पर्य समझ में आ जावेगा। मैंने तुम्हें यह बताया ही है कि अपने संगीत में कुछ स्वर समुदाय या स्वर संगति (जिन्हें अङ्ग कहते हैं) को ध्यान में रखना आवश्यक है। विभास में कोमल रे ध, का प्रयोग होता है, यह तुम्हें स्वर मालिका सीखते समय ही आ गया होगा। विभास के अन्य प्रकार भी हैं, उनके विषय में, मैं समय पर कहूँगा। शुद्ध कल्याण के विषय में तुम्हारी जानकारी अधिक नहीं है, मैं अब तुम्हें उसे गाकर सुनाता हूँ, और इस राग के अवरोह में गायक म और नि स्वरों को जिस प्रकार घर्षण, मीड़न करते हैं अर्थात् गमक, मींड आदि लेते हैं वह भी बताता हूँ, जिससे तुम पूर्ण रूप से पहिचान कर सकोगे। तुम स्वर मालिका तो गाते ही हो, अब शीघ्र ही तुम लक्षण गीत सीखोगे, जिससे इस राग की ठीक-ठीक पहिचान करना तुम जान सकोगे। एक बार तुम्हें ये निकट के दो ही राग समझा देने और उनके स्वरों का थोड़ा थोड़ा विस्तार समझा देने से तुम ठीक समझ जाओगे। लक्षण गीत प्रसिद्ध गायकों के गीतों के आधार पर ही तैयार किये गये हैं, और उनके सीख जाने पर तुम्हें वे गीत भी ठीक-ठीक गाना सरल हो जावेगा, यह भी एक आसान बात हो जाती है।

प्रश्न—हम समझ गये, आपकी सम्पूर्ण योजना बहुत ही श्रेष्ठ है। अब आप कौनसा राग बतायेंगे ? हमारा आग्रह है कि आप अब हमें शुद्ध कल्याण के निकट का राग भूपाली ही समझाइये ?

उत्तर—ठीक है। भूपाली राग कल्याण थाट में माना जाता है। 'राग विबोध' में इसे शंकराभरण थाट में माना गया है, तो भी उसे कल्याण थाट में मानना

अनुउपयुक्त नहीं है। इस राग में मध्यम आरोह और अवरोह में वर्ज्य माना गया है। एक कारण यह भी है कि प्रचार में भूपाली का नाम "भूप कल्याण" भी सुनाई पड़ता है। हिन्दी और उर्दू भाषा भाषी उसे "भूपाली" कहते हैं। हमने थाटों को सुविधा की दृष्टि से ही स्वीकार किया है। जिस रीति से हम अपने सङ्गीत को उत्तम रूप से समझ सकें वही रीति हमारी पसंद की जाने योग्य है। "भूपाली" राग बहुमत से रात्रि के पहले प्रहर का राग माना जाता है। यह औडव जाति का है, और इसमें म नि स्वर बिलकुल नहीं लिये जाते। औडव नाम का प्रयोग मैंने बार-बार किया है। उस नाम से ५ स्वरों के राग का बोध होता है। औडव नाम से पांच संख्या का बोध खींच तान कर ही किया जा सकता है। इस विषय में 'रत्नाकर' में स्पष्ट कथन मिलता है:—

"वान्ति यान्त्युडवोऽत्रेति व्योमोक्तमुडुवं बुधैः ।
पंचमं तच्च भूतेषु पंचसंख्या तदुद्भवा ॥
औडुवी साऽस्ति येषांच स्वरास्ते त्वौडुवा मताः ।
तेषुजातं तु यद्गीतं तदौडुवितमुच्यते ॥"

"औडव" का अर्थ नक्षत्र है। इनका संचालन आकाश में होता है। आकाश का क्रम पंच महाभूतों में पांचवां माना गया है। (पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश का क्रम प्रसिद्ध है) इस प्रकार औडव का अर्थ पांच संख्या का दर्शक बनाया गया है, इसी प्रकार षाडव शब्द की व्याख्या भी ध्यान में रखने योग्य है।

"षडवन्ति प्रयोगं ये स्वरास्ते षाडवा मताः ।
षट्स्वरं तेषुजातत्वाद्गीतं षाडवमुच्यते ॥"

भूपाली राग में वादी स्वर गंधार लिया जाता है, और निषाद स्वर के वर्ज्य होने के कारण संवादी स्वर धैवत माना गया है। धैवत संवादी होने के साथ-साथ इस राग का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वर भी है। इस धैवत का प्रयोग गांधार की अपेक्षा कम ही करना बड़ी विशेषता है और यह जिस गायक को अच्छी तरह नहीं सध गया हो, तो उसका राग बिगड़ जाता है। अभी तुम्हें पर्याप्त रूप से गाने का अभ्यास नहीं हुआ है, अतः कुशल गायक गांधार स्वर का उच्चारण किस विशेषता से करते हैं, यह बताने पर भी तुम उत्तम रूप से नहीं समझ सकोगे।

प्रश्न—परन्तु आप कहिये, हम उसे समझने का प्रयत्न करेंगे ?

उत्तर—ठीक है, सुनो ! स्वर का उच्चारण करते समय अपनी इच्छानुसार उस स्वर के प्रारम्भ में अत्यन्त सूक्ष्म दूसरे किसी स्वर का अन्श या कण जोड़ दिया जाता है। वह किस स्वर का कण लगाया जाता है, जिसकी पहिचान करना सरल नहीं होता। किसी समय ऐसे बारीक कण राग का वास्तविक स्वरूप उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होते हैं। स्वर मात्र से ही एक राग दूसरे राग से भिन्न नहीं कहा जा सकता। यह सूक्ष्म स्वर प्रयोग राग का अलंकार होता है, इसके प्रयोग से गायक

की कुशलता ज्ञात होती है। मनुष्य के शरीर पर श्रृङ्गार करने से वह अधिक सुन्दर दिखाई देगा, परन्तु श्रृङ्गार के अभाव में ऐसा नहीं है कि मनुष्य पहिचाना ही नहीं जावे। मनुष्य की पहिचान के लिये श्रृङ्गार की आवश्यकता नहीं होती, यही सिद्धांत रागों में कायम रहता है।

गायक लोग ऐसे सूक्ष्म स्वर का प्रयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक करते हैं। भूपाली में वादी गंधार को प्रमुख रूप से दिखाते हुए उसमें मध्यम या पंचम का सूक्ष्म कण संगत रूप से जोड़ देते हैं, यह प्रयोग बहुत सुन्दर लगता है। यद्यपि यमन में भी वादी स्वर वही गंधार है, परन्तु वहां रिषभ का कण ग्रहण किया जाता है। मार्मिक श्रोताओं को ये दोनों प्रकार स्पष्ट रूप से अलग-अलग दिखाई दे जाते हैं। यह बात केवल वर्णन से नहीं समझाई जा सकती, इसलिये मैं तुम्हें प्रत्यक्ष कर दिखाये देता हूँ। प्रत्येक स्वर के नीचे व ऊपर बारीक कण लगाने का अभ्यास करने पर तुम्हें मेरे कथन का मर्म समझ में आ जावेगा। यूरोपियन संगीत में (Grace Notes) नामक सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग कहीं-कहीं किया जाता है। इसी प्रकार का यह प्रयोग भी है। गाने में भिन्न-भिन्न स्वरों को अनेक प्रकार से परस्पर जोड़ने का कार्य होता है और जिस-जिस प्रकार से यह जोड़ किया जाता है, उसी प्रकार से उसे नाम दिये जाते हैं। श्री० बनर्जी ने अपने ग्रन्थ में "यमल" श्लिष्ट, पूर्वाश्रित, पराश्रित आदि नाम बताये हैं। ये प्राचीन नाम हैं। इनका अर्थ भी स्पष्ट है। भूपाली में धैवत स्वर सम्वादी है। इस धैवत का प्रयोग अधिक परिमाण से होता है, परन्तु अवरोह करते समय गन्धार अथवा रिषभ पर थोड़ा रुक जाना पड़ता है। जैसे "ध, पग ध ध पग रे, ग प ध सा"। धैवत की प्रधानता के साथ यदि ठहरने का स्थान पंचम बताया जावे, तो देशकार की छाया उत्पन्न हो जावेगी। जैसे "धप, गप, धप, धप, गरेसा, गप ध, प"। देशकार का चलन उत्तरांग में है और इसका विश्रान्ति स्वर (आरोह अवरोह व स्वर विस्तार में रुकने का स्वर) पंचम माना गया है। वास्तव में वह पंडित धन्य है जिसने पूर्वाङ्ग और उत्तरांग रागों का वर्ग भेद किया है। इस वर्ग भेद के कारण कितनी विशेषता उत्पन्न हो जाती है। भूपाली और देशकार दोनों रागों में सा रे ग प ध इन पांच स्वरों का ही प्रयोग होता है, परन्तु एक के पूर्वाङ्ग प्राधान्य और दूसरे के उत्तराङ्ग प्राधान्य होने से ही इन दोनों रागों में परस्पर कितना अन्तर हो जाता है। देशकार में लगने वाले दीर्घ ध प कान में पड़ते ही प्रातःकाल का आभास होने लगता है। किसी-किसी ग्रन्थ में भूपाली में रे ध स्वर कोमल माने गये हैं, परन्तु हमारे प्रचलित भूपाली राग का वह स्वरूप नहीं है। पारिजात में ऐसा लिखा है "मनिवर्जा तु भूपाली रि धौ यत्र च कोमलौ"। 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रन्थ के रचयिता का भी ऐसा ही कथन है 'भूपाली रागः सन्यासः सांशः सग्रह एवच। मनिलोपादौडवः स्या त्प्रातःकालेच गीयते। धैवतः शुद्ध एवात्र' इत्यादि। परन्तु इस ग्रन्थ में रे तीव्र माना गया है अर्थात् यहां भूपाली का थाट आसावरी हो जाता है। शुद्ध स्वरों की प्रचलित भूपाली का वर्णन 'राग विबोध' में पाया जाता है। यह हमारे ग्रन्थों के मत भेदों का स्वल्प दिग्दर्शन है। जब भूपाली जैसे सामान्य राग के विषय में इतने मतभेद हैं, फिर तो अप्रसिद्ध रागों के विषय में मतभेत होना आश्चर्य

की बात नहीं कही जा सकती। भूपाली और देशकार के भेद को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये मैं तुम्हें इन दोनों रागों का थोड़ा-थोड़ा स्वर विस्तार सुना देता हूँ।

भूपाली:—ग, रे सा; रे ग, ग रे ग, रे सा ध़ प़, ध़ सा, रे सा, ग, ध प ग; प ग, रे ग, ग रे सा।

ग प, ध सां, सां रें सां ध, प ग, रे ग, रें सां ध प ग, रे ग, गं रें सां ध प ग, सां ध प ग, ध प ग रे, ग, रे सा।

देशकार—ध, ध प, ग प ध प, ग रे सा, सा रे ग प, ध ध प, ध प, सां, ध प, रें रें सां, ध प, ध ध, सां सां ध प, ध प ग रे सा, ध, ध प; प ग, प ध, सां, रें सां, सां रें गं रें सां, रें सां ध प, ध ध, रें सां ध ध प, ग प ध सां, ध प, ग प ध प, ग रे सा, ध, ध प।

इस स्वर विस्तार में, मैं स्थान-स्थान पर जैसे रुकता गया था, उसे तुमने ध्यान में रखा होगा। अब तुम्हें ये दोनों राग भिन्न-भिन्न समझ में आ गये होंगे?

प्रश्न—वास्तव में ये भिन्न-भिन्न राग दिखाई देते हैं। इस स्वर समुदाय को ठीक हृदयस्थ करना ही ठीक होगा। उत्तरांग प्रधान होने पर कैसी भिन्नता हो जाती है और वादी स्वर का महत्व कैसे दिखाया जाता है, इसकी थोड़ी-थोड़ी कल्पना हमें हो गई है। जो भी हम भिन्न-भिन्न रागों की स्वर मालिका गाते हैं उनके रागों की रचना के तत्व बिना समझे गाने से उतना आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। राग नियम सीखना कितना आनन्द दायक होता है। मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति रागों के वादी-संवादी स्वरों को बिना जाने गाता है, वह गाना मूर्खता पूर्ण कहा जा सकता है। जो गायक इन स्वरों को यथा योग्य रीति से जानकर गाता है वही वास्तविक आदर का पात्र होता है। परन्तु मेरे ख्याल से ऐसे गायक बहुत थोड़े ही होंगे।

उत्तर—तुम्हारा तर्क युक्ति संगत है। वास्तव में ऐसे विज्ञ गायक बहुत कम पाये जाते हैं। खूब रियाज कर केवल गला तैयार किये हुए गायक बहुत पाये जायेंगे। परन्तु इन लोगों को न तो राग नियमों की जानकारी ही होती है और न ये धीरता पूर्वक गाकर उन खूबियों को श्रोताओं के सन्मुख रख ही सकते हैं। गाते-गाते चाहे जिन असंबद्ध स्वरों पर रुककर एक असंगत प्रकार मात्र उत्पन्न कर देते हैं, और भोले-भाले श्रोता उसे अत्यन्त कुशल समझ कर उसकी तारीफ ही करते हैं। एक बार सम्पूर्ण पद्धति सीख जाने पर तुम्हारे मन में ऐसे गायकों के विषय में कोई सम्मान नहीं रहेगा। इस समय यह एक दृढ़ धारणा बन गई है कि जिसका गला उत्तम तैयार हो वही उत्तम गायक है। गले की तैयारी तो आवश्यक है ही, परन्तु राग नियमों के ज्ञान की भी गायक को अत्यन्त आवश्यकता है। अस्तु—

इस भूपाली राग में शुद्ध कल्याण का भाग अनेक स्थान पर दिखाई पड़ना संभव है क्योंकि ये दोनों राग पूर्वांग वादी हैं। भूपाली में ग प स्वरों की संगति बहुत

सुन्दर दिखाई देती है। दक्षिण की ओर 'भूपाली' का नाम 'मोहन' राग बताया गया है। मोहन राग एक अत्यन्त लोकप्रिय राग कहलाता है। दक्षिण के गायकों के गायन सुनकर यह ज्ञात होता है कि वहां वादी-संवादी स्वरों के महत्व की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता। मेरा उद्देश्य दक्षिणी पद्धति की टीका करना नहीं है। मैंने दक्षिण के अनेक गायकों के गाने सुने हैं, परन्तु उनके गायन से मुझे उतना आनन्द प्राप्त नहीं हुआ जितना उत्तर के गायकों के गानों से प्राप्त हुआ। किसी-किसी ग्रन्थ में 'भूपाल' नाम प्राप्त होता है। वहां इस भूपाल राग को भैरवी थाट में बताया गया है। मेरे ख्याल से हमें भूपाल और भूपाली को दो भिन्न राग मानना चाहिये। भैरवी थाट में म, नि वर्ज्य राग 'भूपाल' और शुद्ध स्वरों के म, नी वर्ज्य राग को भूपाली कहते हैं। राग भूपाली रात्रि के प्रथम प्रहर में और भूपाल राग दिन के प्रथम प्रहर में गाया जाता है।

प्रश्न—लक्ष्यसङ्गीतकार ने भूपाली का वर्णन कैसा किया है?

उत्तर—इस प्रकार:—

"कल्याणीमेलसंजाता भूपाली बुधसंमता।
आरोहे चावरोहेऽपि मनिहीना भवेत्सदा॥
गांधार:केवलंवादी धैवतोऽमात्यईरित:।
स्यादस्या:प्रकृति:शुद्धकल्याणसदृशी ध्रुवम्॥
पूर्वांगस्य प्रधानत्वात् सायंगेयत्वमीक्षितम्।
सम्पूर्णावरोहणेऽपि कल्याणोऽस्याभवेत्पृथक्॥
सत्युत्तरांगप्राधान्ये देशीकार:समुद्भवेत्।
वादित्वाद्धैवतस्यैव वैलक्षण्यं प्रकाशयेत्॥"

ये श्लोक तुम्हें याद कर लेना चाहिये।

प्रश्न—आपने कहा था 'राग विबोध' में वर्णित भूपाली अपनी प्रचलित भूपाली से मिलती है। तब राग विबोध में इस राग का वर्णन कैसा किया है?

उत्तर—'राग विबोध' में इस प्रकार कहा गया है:-

"मल्लारिमेलउक्तास्तीव्रतररिमृदुमतीव्रतरधाश्च।
मृदुस:शुद्धा:समपा अस्मादेते तु मल्लारि:॥"

* * *

सन्यासग्रहगांशा मनिहीनोषसिस्मृतेहभूपाली।

पहिली आर्या में मल्लारी मेल के स्वर बताये हैं। हमारे शुद्ध रे, ध स्वर ही 'राग विबोध' के तीव्र रे व तीव्रतर ध स्वर हैं और जो स्वर हमारे शुद्ध ग और नी हैं, वे स्वर 'राग विबोध' के मृदु 'म' और मृदु सा हैं। इस विवरण के अनुसार राग विबोध का मल्लारी थाट हमारे बिलावल थाट जैसा ही सिद्ध होता है। 'राग विबोध' कार ने 'भूपाली' को प्रभातकालीन राग माना है, और

हमारे यहां यह राग रात्रिकालीन माना गया है, यही मतभेद है। प्राचीन काल में भूपाली के प्रातःकाल गाये जाने के प्रमाण स्वरूप कोई-कोई कहते हैं कि हमारे दक्षिणी घरों की स्त्रियां प्रातःकाल उठकर 'भूपाल्या' (पद्य) गाती हैं और उन पद्यों का राग बिलकुल अपने प्रसिद्ध राग भूपाली के समान ही होता है। यह धारणा असंगत नहीं है, इस पर भी विचार करना चाहिये। परन्तु इस समय तो प्रचार में भूपाली राग गायकों द्वारा रात्रि में ही गाया जाता है, यह निर्विवाद है। हमें प्रचार की तरफ ध्यान देते हुए आगे बढ़ना है, क्योंकि हम हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति का विचार कर रहे हैं। 'राग विबोध' में इसे प्रातःकालीन माना गया है और इसका वादी स्वर गांधार ही स्वीकार किया गया है। यह आंशिक रूप से हमारे राग से मिलती हुई धारणा है।

प्रश्न—मेरे ख्याल से वादी-संवादी शब्दों के अर्थ नवीन रूप से स्थापित करते हुए, विद्वानों ने पूर्वाङ्ग व उत्तरांग रागों का विभाग करते हुए ही रागों का समय निर्धारित किया होगा ?

उत्तर—तुम्हारा कथन असंभव नहीं कहा जा सकता। 'भूपाली' राग को रात्रिकालीन और गांधार स्वर प्रधान मानकर ही 'देशकार' से उत्तम प्रकार से भिन्न किया जाता है। यह हमारे पंडितों की कुशलता ही है कि एक से स्वर समुदाय के दो भिन्न भिन्न राग मानकर, केवल वादी स्वर की सहायता से ही भिन्न भिन्न समयों के राग बनाकर दिखा दिये।

प्रश्न—संभवतः गायक लोग भूपाली राग को गांधार से ही आरम्भ करते होंगे ?

उत्तर—प्रायः ऐसा ही करते हैं, परन्तु कहीं-कहीं सा, प इन स्वरों से भी गीत आरम्भ करते हुए मुझे सुनाई दिये हैं। इस समय प्रचार में ग्रह, न्यास आदि स्वर नियमों को बिलकुल छोड़ दिया गया है। हमारे देशी संगीत में ग्रह, न्यास के नियम लगाने पर राग वैचित्र्य सीमित हो जावेगा, ऐसा विचार भी कोई कोई व्यक्त करते हैं। "कामचार प्रवर्तित्वं देशीत्वम्" यह देशी संगीत की व्याख्या निश्चय ही बहुत कुछ तथ्य लिये हुए है। राग का केवल आलाप करते हुए ग्रह, न्यास के नियम थोड़े प्रमाण में ग्रहण किये जा सकते हैं, परन्तु गीतों में भी उनका अनिवार्य रूप से ग्रहण किया जाना शक्य नहीं है। जबकि प्राचीन संगीत में सम्पूर्ण रूप से परिवर्तन हो गया है तब इन नियमों की क्या आवश्यकता है ? अस्तु—

'भूपाली' एक सरल रागों में माना जाता है। नवीन सीखने वालों को यह राग शीघ्रता से आ जाता है। कोई कोई विद्वान यह कहते हैं कि 'सा, रे, ग, प ध' यह स्वर समुदाय एक अत्यन्त प्राचीन काल का थाट है। इस थाट से निर्मित होने के समय म और नी स्वरों का निश्चयीकरण नहीं किया गया था। परन्तु यह प्रश्न इतिहास का है। इस पर कुछ पाश्चात्य ग्रन्थ Sensations of Tone (Helmholtz), Students' History of music (Ritter), History of Music (Chappell), Theory of sound in its relation to music (Blasserna). आदि तुम्हें पढ़ने चाहिये। उन ग्रन्थों के जिन जिन भागों को पढ़ना आवश्यक है, वह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। सङ्गीत के इतिहास को सीखते समय पाश्चात्य ग्रन्थों का अवलोकन करना आवश्यक है।

प्रश्न—हम आपसे ऐतिहासिक चर्चा में जाने का आग्रह नहीं करते। अब हम भूपाली राग ठीक समझ चुके हैं, अब आगे का राग बताइये ?

उत्तर—ठीक है ! अब हम 'चन्द्रकांत' राग के विषय में चर्चा करें। इस नाम की नवीनता का कारण इस राग का प्रचार में नवीन होना मात्र है। इसका वर्णन ग्रन्थों में पाया जाता है, इसे कल्याण अङ्ग का राग मानते हैं। यह बहुत अन्शों में शुद्ध कल्याण जैसा ही दिखाई देता है। इसके आरोह में मध्यम वर्ज्य है और निषाद का प्रयोग होता है। इस प्रकार यह शुद्ध कल्याण से भिन्न हो जाता है। इसमें "नी, रे, ग, रे सा, ग रे ग, प म ग रे, सा रे ग रे सा" स्वर समुदाय यमन-कल्याण का आता है। परन्तु यमन राग सम्पूर्ण है और इसमें आरोह में मध्यम नहीं लगाया जाता, इस दृष्टि से यह यमन से अलग हो जाता है। 'चन्द्रकांत' में अवरोह में मध्यम लेते हुए गायक उसे मींड में लेकर शुद्ध कल्याण के अनुसार रूप दिखाते हैं! केवल निषाद स्पष्ट दिखाते हैं जिससे यह शुद्ध कल्याण से अलग हो जाता है। इस राग का वादी स्वर गांधार व निषाद संवादी स्वर माना गया है। इसका समय रात्रि का प्रथम प्रहर है। 'राग लक्षण' ग्रन्थ में इसके स्वर इस प्रकार बताये हैं।

"मेचकल्याणिकामेला च्चंद्रकांत इति श्रुतः ।
आरोहणे मरिक्तःस्या दवरोहे समग्रकः ॥"

'लक्ष्य सङ्गीत' में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

"कल्याणीमेलके ख्यातश्चंद्रकांतो गुणिप्रियः ।
आरोहे मध्यमत्यक्तो ह्यवरोहे समग्रकः ॥
गांधारस्यैव वादित्वं संध्याकालप्रसूचकम् ॥
प्राधान्यं स्या त्सुनिश्चितं पूर्वांगेऽत्र सतांमते ॥"

उपरोक्त वर्णन के अनुसार ही गायक इसे प्रचार में गाते हैं। इस राग के विषय में अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि यह राग प्रसिद्ध नहीं है, परन्तु मधुर अवश्य है।

प्रश्न—हम यमन, शुद्ध कल्याण, भूपाली और चन्द्रकांत इन चारों रागों को उत्तम रूप से समझ गये हैं। इनके वादी स्वर तथा अन्य सभी बातें हमारे ध्यान में आ गई हैं। अब आप हमें इन रागों का विस्तार सुना दीजिये।

उत्तर—ठीक है, मैं तुम्हें इन सबका स्वर विस्तार सुना देता हूँ। यह और भी सुविधाजनक होगा।

यमन—

ग, रे, सा; सा रे ग, रे ग, नि़ रे ग, रे सा; सा रे ग रे सा, नी़ ध़ प़, प़ ध़ नि़, ध़ नि़, रे रे, नि़ रे ग, रे ग, रे, सा; प मं ग, रे ग, रे, ग मं प, मं ग रे, नि़ रे ग रे, नि़ रे ग मं प, रे सा; प़ प़ ध़ ध़ नि़ नि़ ध़ नि़, रे नि़, रे नि़, ग ग, रे ग प मं ग, ध प मं ग, रे ग, रे सा; नि़ रे ग मं प, ग मं प, ध ध प, मं ग, रे ग, प, रे, सा, नि़ रे सा; नि ध प मं ग मं प, नि ध, मं ध नि ध प, मं मं ग ग, रे रे, ग ग रे ग, नि़ रे ग, रे,

ग मं ग, ध प मं ग, रे ग, प ग, रे, सा; नि़ रे ग रे सा, नि़ रे ग मं प रे सा, नि ध मं ध प मं ग रे, ग मं प मं ग, रे ग, प़ प़ ध़ ध़ नि़ नि़ रे रे, ग रे ग, प मं ग, रे ग, रे रे सा; ग ग, प ध प, सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां सां नि ध, नि ध प मं प ध प, नि ध प; सां नि ध प, मं ग रे, ग मं प मं ग, रे सा; नि, मं, ग रे, ग मं प, नि, रें सां, गं रें सां, नि नि, ध नि, मं ध मं प, नि नि, मं ग, रे रे, नि़ रे ग मं प, रे ग, रे सा; नि़ रे सा।

शुद्ध कल्याण—

ग, रे, सा; सा रे सा, ग, रे ग, रे, सा रे ग रे सा; रे रे सा नि़ ध़ प़, प़ ध़ प़, सा, सा रे ग, रे ग, प ग, रे ग, रे सा; ग रे सा रे, सा नि़ ध़ प़, नि़ ध़ प़, ध़ प़, सा, सा रे ग रे सा, ग रे ग, प रे सा; सा रे ग, प मं ग, रे ग, मं ग, ध प मं ग, रे ग, प ध नि ध प, ग, रे ग, प रे सा; प़ ध़ प़ प़, सा, ध़ सा; ग रे ग, प मं ग रे ग, ध प ग रे, ग प ग रे, ग रे सा; सां ध प ग, रे ग, ध प ग, रे ग, रे, सा; प मं ग रे, ग रे सा, प ग रे सा, सा रे ग प ग रे सा, नि ध प ग प प प ग रे, ग प ध नि ध प, ग, ध प ग, रे ग, प रे, सा; ग, रे, सा, रेसा; नि़ ध़ प़, प़ सा, रे ग रे सा, सा, ग रे ग, प़ ध़ प़ सा, रे ग, ग, ध ध प ग, रे ग, सा रे ग, ध प ग रे, सा; प प ग ग, प प ध प, सां, सां, गं रें सां, सां रें गं रें सां, रें रें सां, नि ध ध प प, ग ग, प ध, रें सां, नि ध प, प ग रे ग, प रे रे सां।

भूपाली—

ग, रे, सा, सा ध़, सा रे ग, रे ग, रे सा; सा रे ग रे सा, प़ प़ ध़ सा, सा ध़, रे सा ध़, ग रे ग, सा रे सा ध़ ध़ प़, प़ ध़ सा, सा रे; ग रे; सा रे सा; ग रे ग प ग रे, ग प ध प ग, रे ग, प ध प, ग रे, ग रे सा; प़ ध़ सा रे ग, रे ग, ग प ध ध प, ध प ग रे, सां सां ध प ग रे, ध प ग रे, सां रें सां, ध प ग रे, सा रे ग रे, ग प ग रे, सा; ग ग प ध प, सां, सां, सां रें सां, सां रें गं रें सां, रें रें सां ध प ग, सां ध प ग, ध प ग, रे ग, प ध सां, प ध प ग, रे ग, रे, सा; ग ग प ध सां; सां रें सां, सां रें गं रें सां, सां रें गं पं गं रें सां, गं रें सां, रें सां ध प ग, ध प ग रे, सा रे ग प ध सां ध प ग रे, ग रे, सा; ध़ ध़ प़ ध़ सा, प़ ध़ सा, ध़ सा, रे, सा, ग रे ग, ग प ग, ग प ध प ग, सां ध प ग, रें रें सां ध प ग, रे ग, प ग, ध प ग, रे रे सा; सा रे ग।

चन्द्रकान्त—

ग रे सा, नि़ ध़ प़, ध़ प़, सा, सा रे ग रे सा, रे रे सा; नि़ रे ग, रे ग, रे रे, ग प रे ग, मं ग, प मं ग, रे ग रे सा; नि़ रे ग, रे सा, रे रे सा, रे रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, प़ ध़ नि़ रे, ग रे, ध ग प रे, नि़, रे ग रे सा।

प़, ध़ प़, नि़ ध़ प़, नि़ रे, ग रे ग, प म॑ ग, नि ध प म॑ ग, रे ग, प, रे सा; सा ध़ प़, ध़ ध़ प़, प़ ध़ सा, नि रे ग रे सा, सा सा ग रे ग, रे ग, नि नि म॑ ग, रे ग, प, रे सा; ध म॑ ग रे ग, म॑ ग रे, प, नि ध, म॑ ग रे, ग प ग रे सा, ग ग रें ग प, ध प, सां, सां, नि रें गं रें सां; नि रें ग पं गं रें सां, सां रें सां नि ध, नि ध प, ग रे, ग प, नि रें, नि ध म॑ ग रे ग प, ग रे सा।

सा सा, प प, म॑ ग रे, ध ध, नि ध म॑ ग रे, ध प म॑ ग रे, ग प ग रे, नि़ रे ग, नि ध प म॑ ग रे, ग प ग रे, ग रे सा।

अब इनके अधिक विस्तृत विस्तार करने की आवश्यकता दिखाई नहीं देती। 'यमन' अत्यन्त सरल राग है। इसके विषय में बहुत कुछ बता ही चुका हूं। 'भूपाली' और 'भूपाल' ये दो राग अलग-अलग हैं, यह स्मरण रखने की बात है। इन दोनों को ग्रन्थाधार प्राप्त है। पुण्डरीक विट्ठल पण्डित ने भूपाली को 'केदार थाट' का राग माना है। उनका केदार मेल अपने बिलावल थाट जैसा ही है। मैं तुम्हें बता चुका हूं कि भूपाली शुद्ध स्वरों के थाट में मानी गई है। 'केदार मेल' का वर्णन पंडित पुण्डरीक विट्ठल ने इस प्रकार किया है:—

"लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौच। शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः।
निगौ विशुद्धौ च यदाभवन्ति। तदातु केदारकमेल उक्तः॥

यह स्वर वर्णन तुम्हें नवीन ही समझ में पड़ेगा, परन्तु इसे समझने में तुम्हें अधिक परेशानी न होगी। यहां जो 'लघु' षड्ज व मध्यम बताये हैं वे क्रमशः हमारे तीव्र नि और ग हैं और जिन नि ग को यहां शुद्ध कहा है, वे स्वर हमारे प्रचलित शुद्ध ध और शुद्ध रे हैं। पुण्डरीक दक्षिण का विद्वान था, अतः उसका शुद्ध स्वर थाट दक्षिण का ही था। राग विबोध में भी यही शुद्ध थाट माना गया है; इन दोनों ग्रन्थों में वर्णित राग अनेक स्थानों पर परस्पर मिलते हैं। ग्रन्थों के स्वरों का मिलान अपने स्वरों से करने का वर्णन तुम्हें बता दिया है। 'लक्ष्य सङ्गीत' में यह तुलना उत्तम रूप से की हुई है। यदि तुम चाहो तो तुम्हें वे श्लोक सुना दूं।

प्रश्न—अवश्य सुनाइये! हम उन्हें कण्ठस्थ करेंगे।

उत्तर—सुनो! 'लक्ष्य सङ्गीत' में कहा है:—

"समपा लक्ष्यशुद्धास्ते ग्रन्थेष्वपि तथैवच।
कोमलौतुरिधावत्र ग्रन्थेषु शुद्धसंज्ञकौ॥
अस्माकंयः कोमलोगस्तत्र साधारणोमतः।
तीव्रगांधारसंज्ञोऽत्र ग्रन्थेषु चांतराभिधः॥
निषादस्तीव्रकोस्माकं भवेत्काकलिसंज्ञकः।
कोमलोनिर्व्यवहारे ग्रन्थेस्यात्कैशिकाव्हयः॥

तीव्रमध्यमस्य संज्ञा बहवः स्युःसुलक्षिताः
वरालीमः प्रतिमोऽपि कैशिकी पंचमो मृदुः ।
अस्मच्छुद्धरिधौ तत्र शुद्धौस्यातांगनीक्रमात् ॥"

इन श्लोकों को कण्ठस्थ करने से तुम्हें ग्रंथों के वाक्यों का अर्थ सरलता से समझ में आने लगेगा। यद्यपि इन श्लोकों से भी 'रत्नाकर', 'दर्पण' आदि ग्रन्थों में बताये राग समझ में नहीं आ सकेंगे, परन्तु अन्य अनेक ग्रंथों की स्पष्टता अवश्य हो जावेगी।

प्रश्न—तो क्या रत्नाकर व दर्पण में रागों का वर्णन निराले प्रकार से किया हुआ है ?

उत्तर—इन ग्रंथों में राग वर्णन में ग्राम व मूर्छना का प्रयोग किया गया है। यह विषय कठिन और विवादग्रस्त है। हमारे हिन्दुस्थानी संगीत में वैसी ग्राम मूर्छना की उलझन नहीं है। इन दोनों ग्रंथों के भाषान्तर होगए हैं। इन्हें पढ़ने से तुम ग्राम मूर्छना का उपयोग जान सकोगे। जब मैं तुम्हें इन ग्रंथों को पढ़ाऊँगा, तब इस विषय की चर्चा करना उपयुक्त होगा।

प्रश्न—रत्नाकर व दर्पण इन दोनों ही ग्रन्थों की राग रचना क्या एकसी है ?

उत्तर—नहीं, दर्पण में छः राग और तीस रागिनी मानी गई हैं। इसके रचयिता दामोदर पण्डित का कथन है कि यह रचना हनुमान (हनुमत्) मत के आधार पर की गई है। हनुमत् मत के आदि प्रधान ग्रन्थ का कोई वर्णन नहीं किया है। इस समय भी हनुमान मत का ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। 'दर्पणकार' ने रत्नाकर का केवल स्वराध्याय ग्रहण किया है और 'रत्नाकर' के रागाध्याय को छोड़ कर उसके स्थान पर अन्य किसी ग्रन्थ का रागाध्याय अंकित कर दिया है। कोई-कोई ऐसा तर्क करते हैं कि दर्पणकार ने रत्नाकर का रागाध्याय (रागों का खुलासा) नहीं समझा था, शायद ऐसा ही हो, हमें इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थों में रागों के विषय में दिए हुए विवरण परस्पर इतने निराले और विपरीत हैं कि उन्हें जानकर तुम्हारे मन में हिन्दुस्तानी संगीत के प्रति बने हुए आदर भाव पर आघात होना सम्भव है। इस बात को एक उदाहरण से समझ लो। तुम्हारे कल्याण थाट में सब स्वर तीव्र लगते हैं, यह मैं बता चुका हूं। इस थाट के समर्थन में एक दो ग्रन्थाधार मैंने तुम्हें बताये हैं। अब 'पुण्डरीक विट्ठल' के ग्रन्थ रागचन्द्रोदय का कल्याणी मेल देखो:—

"शुद्धौ सगौ शुद्धपधौ तथैव। लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौच।
साधारणो गोपियदा भवेत्तु। कल्याणकस्याभिहितःसुमेलः ॥"

यह स्पष्ट है कि यह वर्णन प्रचलित कल्याण थाट में नहीं लग सकता। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न वर्णन ग्रन्थों में बहुत पाये जाते हैं। इसी कारण अपने गायक

कल्याण के भिन्न-भिन्न प्रकारों को स्वीकार करते हैं। पुण्डरीक के कल्याणीमेल की निन्दा करने की जरूरत नहीं है। जरा 'रागविबोध' कर्त्ता सोमनाथ का कथन तो सुनलो:—

"कल्याणस्य तु मेले शुचयः सपधा रिरस्ति तीव्रतरः।
साधारणश्च मृदुपो मृदुसोऽस्मिन्नेष इतरेच॥"

ये दोनों ग्रंथकार एक ही मत के मानने वाले हैं। ऐसे-ग्रंथों के अभिमतों को तिरस्कृत भी नहीं करना चाहिये। इनका उपयोग हमारे द्वारा कैसे हो सकता है, यह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा।

प्रश्न—ठीक है, ऐसा ही कीजियेगा। अब केवल एक तीव्र मध्यम को ही ग्रहण करने वाले रागों का विचार हमें करना चाहिये।

उत्तर—एक मध्यम वाले इस थाट के राग मालश्री, हिंडोल व यमन माने जाते हैं। इनमें से यमन का वर्णन आश्रय राग होने के कारण इससे पहले किया जा चुका है। मालश्री व हिण्डोल राग औडव हैं। इनमें पांच स्वर ही लगाये जाते हैं। प्रथम मालश्री की ओर ध्यान दें। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि, इसमें 'सारे स्वर तीव्र' लगते हैं। इस राग में रे, ध स्वरों को वर्ज्य किया जाता है। यह ठीक है कि बुद्धिमान लोग हमारी सङ्गीत रचना अत्यन्त सरलता से समझ सकते हैं। कल्याण थाट के स्वर 'सा रे ग म प ध नि' में से भिन्न-भिन्न स्वरों को वर्ज्य करते हुए भिन्न-भिन्न रागों को उत्पन्न किया जाता है, जैसे—उक्त संपूर्ण स्वरों से 'यमन' राग हो जाता है, आरोह-अवरोह में म नि, वर्ज्य करने पर भूपाली, केवल आरोह में म नि वर्ज्य करने पर शुद्ध कल्याण, केवल आरोह में म वर्ज्य करने पर चन्द्रकांत राग हो जाता है, यह तुम सीख ही चुके हो। अब यह याद रखो कि उपरोक्त थाट के स्वरों में रे ध वर्ज्य करने से मालश्री और रे, प वर्ज्य करने से हिंडोल हो जाता है।

प्रश्न—आपके कथन का तात्पर्य हम समझ रहे हैं। आपने अभी तक जो-जो बातें बताई हैं, उन्हें समझने में हमें कोई कठिनाई नहीं हुई। वास्तव में हमारी राग रचना अत्यन्त मनोरंजक है, मेरा ख्याल है कि जिस प्रकार कल्याण में म नि और रे ध स्वर वर्ज्य करने से नवीन राग उत्पन्न हो जाते हैं, इसी प्रकार अन्य थाटों में भी ये ही स्वर वर्ज्य करने से नवीन राग उत्पन्न होते होंगे।

उत्तर—तुम्हारी कल्पना गलत नहीं है। आगे बिलावल थाट में इसी नियम से आरोह में मध्यम वर्ज्य करने से "अल्हैया बिलावल", म नि वर्ज्य करने से देशकार, आरोह में रे ध वर्ज्य करने से 'बिहाग' हो जाता है। खमाज थाट में रे ध स्वर वर्ज्य करने से 'तिलङ्ग' हो जाता है। ये स्वर भैरवी थाट में वर्ज्य करने से धनाश्री राग का एक विशिष्ट प्रकार उत्पन्न हो जाता है। पूर्वी थाट के आरोह में रे ध वर्ज्य करने पर 'जैतश्री' होता है। तोड़ी थाट में इन्हीं स्वरों को आरोह में छोड़ने से मुलतानी राग होता है। अधिक क्या, प्रत्येक थाट में सम्पूर्ण औडव, षाडव प्रकार से ४८४ राग गणित से होना संभव है। यद्यपि इतने प्रकार नहीं हैं.

परन्तु प्रत्येक थाट में निम्नलिखित १२ प्रकारों में नवीन प्राचीन ग्रन्थकारों ने इसी प्रकार अनेक राग उत्पन्न कर उनके भिन्न-भिन्न नाम दिये हैं। ये बारह प्रकार नीचे भैरव थाट के उदाहरण से समझो:—

भैरव थाट—

१	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां	।
२	सा	रे	×	म	प	ध	×	सां	।
३	सा	रे	×	म	प	ध	नि	सां	।
४	सा	रे	ग	म	प	ध	×	सां	।
५	सा	×	ग	म	प	×	नि	सां	।
६	सा	×	ग	म	प	ध	नि	सां	।
७	सा	रे	ग	म	प	×	नि	सां	।
८	सा	रे	ग	×	प	ध	×	सां	।
९	सा	रे	ग	×	प	ध	नि	सां	।
१०	सा	रे	ग	म	प	ध	×	सां	।
११	सा	रे	ग	म	×	ध	नि	सां	।
१२	सा	×	ग	म	×	ध	नि	सां	।

इन प्रकारों में हमारे मिश्र-राग, वक्ररूप, वादी स्वर परिवर्तन से बदलने वाले राग तो अभी आये ही नहीं हैं। यह नियम कठिन नहीं है। इसका प्रयोग हमारे अशिक्षित गायक ठीक-ठीक कर लेते हैं, फिर सुशिक्षित लोग तो इसे सरलता से प्रयोग में ला सकते हैं। इस रीति से उत्पन्न होने वाले नवीन रागों को लोकप्रिय बनाने में पर्याप्त समय और परिश्रम की आवश्यकता है, परन्तु यही एक मात्र उपाय इन्हें प्रचलित करने का हो सकता है। हमारे संगीत व्यवसायी गायकों को सदैव नवीन राग बनाने और उन्हें सिखाने व सुनाने की उत्कंठा रहती है। ऐसे गायकों को ये नवीन रूप सिखाये जाने पर अपने आप ही ये राग स्वरूप लोकप्रिय हो जावेंगे। यह अनुभव स्वतः मुझे प्राप्त हुआ है और इस कार्य से मुझे प्रशंसा भी प्राप्त हुई है। हमारे श्रोताओं को नये राग बहुत पसंद आते हैं। कई गायकों ने अपने प्रचलित रागों को तोड़-मोड़ कर और इस प्रकार नये स्वरूप बनाकर भी कीर्ति पाई है। ऐसे उदाहरण मेरे सामने आये हैं, उनके इन नवीन रागों के नियमों पर कौन विचार करता है, इस प्रकार के गायकों का अज्ञान उनके राग विस्तार करते समय मार्मिक श्रोताओं द्वारा सदैव पकड़ में आ जाता है। यह स्पष्ट है कि नियम स्थिर करने का भार हमारे सुशिक्षित लोगों पर है। अस्तु, हम "मालश्री" की ओर बढ़ें।

ग्रन्थों में "मालश्री" नाम भी दिखाई देता है। किसी-किसी ग्रन्थ में 'मालाश्री' "मालासी" आदि नाम भी पाये जाते हैं, परन्तु ये सभी नाम बहुमत की दृष्टि से एक ही राग के नाम हैं। इस प्रकार दिखाई देता है कि 'मालश्री' राग शास्त्र सिद्ध है। प्रचार में मालश्री में गंधार और निषाद तीव्र (शुद्ध) लिये जाते हैं। इस प्रकार मध्यम स्वर भी तीव्र माना जाता है। ग्रन्थों में जो "मालश्री" राग पाया जाता है

उसका थाट श्रीराग का थाट अर्थात् प्रचलित काफी का थाट है, यह तुम्हें पहिले बता दिया गया है ? तब हम प्रचलित मालश्री के लिये ग्रन्थों का आधार कैसे ग्रहण कर सकते हैं ? यह भी एक विचित्रता है कि उन रागों में कहीं-कहीं रे ध स्वर विवादी कहे गये हैं । 'रागविबोधकार' का कथन निम्नलिखित है, उन्होंने थाट श्रीराग का ही माना है ।

"सग्रहसांशन्यासा मालाश्रीर्निग्रहांशा वा ।
पूर्णाथवा रिधाल्पा गेयाऽदौ मंगलाय शाश्वतिकी ॥"

पारिजात में इस राग का थाट काफी माना गया है । परन्तु धैवत वर्ज्य करने का कथन नहीं किया है । बहुत से संस्कृत ग्रन्थों में मालश्री को काफी थाट में ही माना गया है । भेद इतना ही है कि कोई-कोई इसे सम्पूर्ण मानते हैं व कोई-कोई इसे षाडव औडव भी मानते हैं । लक्ष्यसङ्गीतकार ने मालश्री का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"कल्याणे मेलके तत्र मालश्रीर्गीयते बुधैः ।
पंचमांशग्रहन्यासा रिधहीनौडवा मता ॥"

यह स्वरूप प्रचलित मालश्री का वास्तविक स्वरूप है । अन्य ग्रन्थकारों ने 'मालश्री' के विषय में जो-जो कहा है वह उन्हीं के शब्दों में तुम्हें सुना देता हूँ ।

"रागलक्षणे"

"हरप्रियाख्यमेलाच्च संजातश्चसुनामकः ।
मालवश्रीरितिख्यातः सन्यासं सांशकग्रहम् ॥
रिवर्जं वक्रमारोहे रिपवर्ज्यावरोहकम् ।"

'हरप्रिय थाट' अर्थात हमारा काफी थाट है । यह स्वरूप मालश्री का नहीं है यह स्पष्ट है ।

पारिजाते:—

"रिहीना मालवश्रीः स्यात् शुद्धमेलस्वरोद्भवा ।
मध्यमादिस्वरोद्ग्राहा धांशयुक्तान्त्यपास्मृता ॥"

सङ्गीतसारामृते—

श्रीरागमेलसंजाता षड्जन्यासग्रहांशिका ।
रिवर्जिता मालवश्रीः षाडवा मंगलप्रदा ॥
रागांगमेनांशंसन्ति प्रगेया सर्वदा बुधैः ॥"

'स्वरमेल कलानिधि' के मत से भी 'मालवश्री' का थाट काफी कहा गया है ।

प्रश्न—'स्वरमेल-कलानिधि' ग्रन्थ किस समय का है ?

उत्तर—"शाकेनेत्रधराधराब्धिधरणीगण्येथसाधारणे"। इस प्रकार ग्रन्थकार ने कहा है । अर्थात् यह १४७२ शाके की रचना है । तिथि के लिए कहा गया है "वर्षे श्रावणमासिनिर्मलतरेपक्षेदशम्यांतिथौ" ।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्:—

"षाडवोमालवश्रीःस्यात् रागांगमृषभोज्झितः ।
मेलेश्रीरागविख्याते सर्वकालेषुगीयते ॥"

रागचंद्रोदये:—

"चतुःश्रुतीयत्ररिधौ भवेतां । साधारणो गोऽपिचकैशिकीनिः ॥
तथाविशुद्धाः समपाभवन्ति । श्रीरागकस्याभिहितः समेलः ॥
श्रीरागकोऽस्मादपिमालवश्री । धन्नासिकाभैरविका तथैव ॥
अन्येऽपिरागाः कतिचित्प्रसिद्धा । भवंति सैंधव्यभिधादयश्च ॥"

भावार्थ:—जिसमें रिषभ व धैवत चार-चार श्रुति के लिये गये हैं, गांधार स्वर साधारण नाम से लिया है, निषाद कैशिक व षड्ज, मध्यम व पंचम शुद्ध लिये जाते हैं, उसे विद्वान श्रीराग का थाट कहते हैं। इस राग मेल से ही मालश्री, धन्नासी (धनाश्री) भैरवी व अन्य सैंधव आदि राग उत्पन्न होते हैं। यह भी काफी का ही थाट है। अब यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि, क्या हमारा प्रचलित मालश्री राग बिलकुल अशुद्ध है? प्राचीन ग्रन्थों की दृष्टि से इसको शास्त्र शुद्ध कैसे कहा जा सकता है?

मेरी दृष्टि से तो यह निर्णय है कि राग विबोध ग्रन्थ में वर्णित मालश्री और लक्ष्य सङ्गीत में वर्णित मालश्री दो भिन्न-भिन्न राग हैं। काफी थाट के स्वरों में रे, ध दुर्बल करते हुए एक स्वतंत्र 'मालश्री' को भी हम स्वीकार कर सकते हैं। काफी थाट के विषय में विचार करते समय मैं इस विषय पर तुम्हें अधिक बताऊँगा 'लक्ष्य सङ्गीतकार' ने इसी प्रकार मानते हुए कहा है—"ग्रन्थेषु मालवश्र्याख्या काफी मेले सुलक्षिता । नासावस्मल्लक्ष्यमार्गप्रसिद्धेति परिस्फुटम्" तुम्हें इस कथन को सुनकर आश्चर्य होगा, परन्तु यह उपाय मानने का आधार सर्वमान्य ग्रन्थ 'रत्नाकर' में भी वर्णित है—"यद्वालक्ष्यप्रधानानि शास्त्राण्येतानि मन्वते । तस्माल्लक्ष्यविरुद्धं यत्तच्छास्त्रं नेयमन्यथा।" उसकी टीका करते हुए कल्लिनाथ ने लिखा है "एतानि शास्त्राणि देशी विषयाणि । लक्ष्यप्रधानानि लक्ष्यमेव प्रधानं येषांतानि । तस्मात् लक्ष्यविरुद्धं यच्छास्त्रं तत् लक्ष्यविरुद्धं यथा न भवति तथा व्याख्येयमिति।" यह उपाय वास्तव में उत्तम है। रागविबोधकार ने रत्नाकर के उपरोक्त श्लोक के विषय में एक स्थान पर ऐसा कहा है:— "शास्त्राणां लक्ष्यानुग्रहाय प्रवृत्तत्वात् यत्र तयो र्विरोध स्तत्र शास्त्रैर्नियमित-स्याप्यर्थस्य उपलक्षणत्वादिना प्रकारांतरेण गतिः कर्तव्या न तु लक्ष्यमुपेक्ष्यम्" अस्तु, 'मालश्री' राग को दिन के अन्तिम प्रहर में गाने की प्रथा है। इस समय गाये जाने वाले रागों का प्रधान चिन्ह यह है कि—अधिकांश रागों में रे ध स्वर वर्ज्य या दुर्बल ग्रहण किये जाते हैं। उदाहरण के लिये धानी, धनाश्री, भीमपलासी, मुलतानी व मालवश्री को लिया जाता है। जैसे-जैसे सूर्य अस्ताचलगामी होता है, वैसे-वैसे ही संधिप्रकाश रागों का आरम्भ काल आ जाता है, अर्थात् दिन भर चलने वाले तीव्र रे और ध दुर्बलत्व पाने लगते हैं। उपरोक्त धानी, धनाश्री आदि

रागों में गांधार निषाद कोमल लिये जाते हैं, इस विषय में भी किसी-किसी का मत है कि इनका भी झुकाव व्यवहार में तीव्र गांधार, निषाद की ओर होता जाता है। उनका कथन है कि, प्रभात काल में गांधार और निषाद कोमल लिये जाते हैं, वहाँ वे रे और ध के अधिक निकट आ जाते हैं। परन्तु तुम्हें इस सूक्ष्म भेद में जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारी पद्धति में रागों की भिन्नता सूक्ष्म स्वरों से नहीं मानी जाती "मालश्री" राग दिन के चौथे प्रहर में गाया जाता है।

यह अभी ऊपर कहा जा चुका है। इसका वादी स्वर पंचम व उसका सम्वादी स्वर षड्ज है। चौथे प्रहर में पंचम स्वर का वादित्व अन्य रागों में दिखाई पड़ता है। गायक लोग बहुधा गांधार स्वर का प्रयोग षड्ज की मींड लेकर करते हैं। यह काम बहुत सुन्दर होता है। यह एक प्रकार से इस राग की पकड़ ही है; प्रत्येक राग को ध्यान में लाने के लिये भिन्न-भिन्न युक्तियों की योजना की

गई है उसी प्रकार की यह भी योजना है। इसके लिये ग सा ये दोनों स्वर जोड़कर गाने का अभ्यास होना चाहिये। मींड लेने से इन दोनों स्वरों के मध्य का रिषभ घसीट में लिया जाता है, इससे राग सौंदर्य में वृद्धि होती है। अवरोह में ऐसा प्रयोग उत्तम कहा जाता है। आरोह में सा तथा ग ये दोनों स्वर बिलकुल अलग अलग गाये जाते हैं। यह भी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिये कि कल्याण थाट के हिण्डोल राग में (जिसे मैं तुम्हें उसके बाद-बताऊँगा) रिषभ इसी प्रकार वर्ज्य है

वहां भी ग सा स्वर इसी क्रम से आते हैं, परन्तु वह कार्य मालश्री में सुन्दर दिखाई नहीं देगा। इसका कारण यह है कि हिंडोल प्रातःकालीन राग है। हिंडोल गाते हुए ग स्वर से सा मिलाते हुए गायक लोग अत्यन्त सूक्ष्म कोमल मध्यम का कण गांधार में जोड़ देते हैं। परन्तु ऐसा कण मालश्री में नहीं लिया जा सकता। "लक्ष्य सङ्गीत" में लिखा है "लक्ष्येकमात्सगासक्ता रिमच्छायावरोहणे" तुम यदि ध्यान पूर्वक देखोगे तो तुम्हें यह विशेष रूप अवश्य दिखाई देगा। केवल वर्णन मात्र से ही ऐसी बातें अच्छी तरह नहीं बताई जा सकतीं; अतः मैं तुम्हें इसका प्रयोग कर दिखाता हूँ इसका अभ्यास कर लेने पर ही गायक गांधार में मध्यम का अन्श जोड़कर फिर षड्ज पर आते हैं और फिर मन्द्र के तीव्र धैवत को लेकर षड्ज पर आते हुए अपनी तान पूरी करते हैं। मालश्री गाने वाले गांधार से मींड लेकर षड्ज पर आते हैं, और फिर मन्द्र पंचम लेकर षड्ज पर जाते हैं; ये दोनों प्रकार तुम्हें तैय्यार होने चाहिये। कल्याण थाट के रिषभ वर्ज्य होने वाले राग बिना सीखे उक्त प्रयोग में भूल करना संभव है। प्रचार में तुम्हें ऐसे गायक भी मिलेंगे जो मालश्री को

सा, प ग ऐसे तीन ही स्वरों पर गाते हैं। वे तुम्हें "सा सा ग ग प प, ग प ग सा, ग सा प़ सा, प ग प प ग, सा" इस प्रकार का प्रयोग दिखायेंगे। शास्त्रीय दृष्टि से उनका यह प्रयोग योग्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि हमारा सर्वमान्य नियम "पंचोनेभ्यःस्वरेभ्यश्चनस्याद्रागस्यसंभवः" है।

रागों के तीन वर्ग औडव, षाडव व सम्पूर्ण भी उक्त नियम की साक्षी देते हैं। जो गायक उपरोक्त राग को तीन ही स्वरों में गाने का दावा करते हैं, उनके गाने को

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर म, नि स्वरों का प्रयोग भी घसीट में किया हुआ दिखाई दे सकता है।

प्रश्न—"मालश्री" का राग स्वरूप (राग विस्तार) बताइये ?

उत्तर—"मालश्री" का राग स्वरूप इस प्रकार होता है:—

प, प, प ग सा, सा सा ग ग प, प, प मं ग, प ग सा; सा सा प़ नि़ सा, ग प ग, मं ग, सा, नि़ सा ग प मं ग, प ग सा; प मं ग, प मं ग, मं ग, सा ग मं ग, मं ग, सा, प़ प़ सा, सा ग सा सा, ग प मं ग प ग सा, नि प मं ग, ग मं प मं ग ग सा; प प ग सा, ग प सां, नि सां गं सां, पं मं गं सां, नि नि प मं ग प सां, सां नि प ग, सा ग प सां, नि प ग, प ग, गसा;

सा सा प प मं प नि प, प मं ग प सां नि प प, नि प ग सा, ग प सां, गं सां नि प, ग प ग सा।

यह स्वरूप इस स्वर समुदाय को बारबार गाकर समझ लेना चाहिये। इसमें विशेषता यही है कि इस राग को बिहाग और शंकरा नामक रागों के प्रमाण से अधिक युक्ति पूर्वक नहीं मिलने देना चाहिये। मालश्री गाते समय श्रोताओं को उक्त दोनों रागों का थोड़ा-थोड़ा आभास होना संभव है।

बिहाग में शुद्ध मध्यम स्पष्ट रूप से लगता है। इस कारण उसे भिन्न करके बताना सरल है। शंकरा के अवरोह में कोई-कोई रे स्वर का प्रयोग करते हैं, धैवत भी शंकरा में वर्ज्य नहीं है, इस कारण इसे मालश्री से भिन्न किया जा सकता है। मालश्री में 'म' और 'नि' स्वरों को बिलकुल गौण बना देने पर किसी यूरोपियन ट्यून का सा आभास होता है। कल्याण थाट में रे ध वर्ज्य होने वाले राग सिर्फ मालश्री और हिण्डोल ही हैं, यह याद रखना कठिन नहीं है। शंकरा और बिहाग यह रे ध वर्ज्य करने वाली जोड़ी आगे बिलावल थाट में आवेगी।

प्रश्न—अब हिण्डोल के विषय में बताइये ?

उत्तर—हिण्डोल प्रभात कालीन राग प्रचार में माना गया है, अतः इसमें प्रभात-कालीन कोई चिन्ह होना चाहिये।

प्रश्न—मेरे ख्याल से यह राग उत्तरांगवादी होगा ?

उत्तर—स्पष्ट है। वह स्वर इस राग में धैवत माना गया है। परन्तु इसमें कौनसा ऐसा भाग है जो प्रभातः काल के समय असंगत प्रतीत होगा।

प्रश्न—इसमें लगने वाला तीव्र मध्यम स्वर ही ऐसा दिखाई देता है। शायद इसे प्रभात के रागों में अपवाद स्वरूप माना गया है ?

उत्तर—हां ऐसा ही है। हमारे नियमों के अपवाद स्वरूप रागों में से एक राग यह भी है। इस प्रकार की सूचना मैंने तुम्हें पहिले भी दी थी। अस्तु—

हिंडोल में वादी स्वर धैवत और सम्वादी स्वर गांधार माना गया है। कोई-कोई इसमें वादी गांधार और सम्वादी धैवत मानते हैं, परन्तु हम तो धैवत को ही वादी स्वीकार करेंगे।

प्रभातकाल के रागों का स्पष्ट चिन्ह उत्तरांग वादी होना और अवरोह में अधिक विचित्रता होना है। इसी प्रकार एक नियम यह भी साधारण रूप से हो जाता है कि रात्रिकाल के रागों में रे स्वर आरोह में अधिक स्थानों में दिखाई देता है, इस प्रकार प्रभात के या दिन के रागों में नहीं दिखाई देता। यह नियम अत्यन्त दृढ़ नहीं है फिर भी इस नियम के अनेक उदाहरण प्राप्त हो सकते हैं। हिंडोल के विषय में प्राचीन ग्रन्थकारों ने क्या लिखा है ? उन्हें सुनकर सम्भवतः तुम्हें निराशा होगी। मैं तुम्हें भिन्न-भिन्न मतभेद जानने की उत्सुकता की दृष्टि से भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के मत सुनाता हूँ। सर्व प्रथम इस समय के सङ्गीत आधार ग्रन्थ माने हुए "सङ्गीत पारिजातः" ग्रन्थ की तरफ देखो। पं० अहोबल कहते हैं:—

"हिंदोलेऽथ रिपौ त्यज्यौ कोमलो धैवतो भवेत्।
हिंदोलो रिपयोगेन मार्गहिंदोलको भवेत् ॥"

पारिजात का शुद्ध थाट काफी (प्रचलित) का है। इस दृष्टि से इस हिंडोल का स्वरूप प्रचलित मालकोश जैसा हो जावेगा। दूसरे शब्दों में इसे ऐसा कहा जा सकता है कि आसावरी थाट के स्वरों में रे प वर्ज्य करने से हिंडोल के स्वर रहते हैं। "स्वरमेल कलानिधि" के रचयिता "रामामात्य" ने हिंडोल के स्वर इस प्रकार बताये हैं:—

"श्रीरागमेले यल्लक्ष्म तत्स्यात् हिंदोलमेलके।
धैवतः शुद्ध एवात्र विशेषोयं प्रदर्शितः ॥"

इस ग्रन्थ में वर्णित श्रीराग का थाट प्रचलित काफी जैसा है, अतः यह मत भी पारिजातः के मत से मिलता हुआ है।

चतुर्दण्डीकार कहता है:—"हिंदोलसंज्ञको रागो भैरवीमेलसंभवः। औडवो रिधलोपेन सर्वकालेषु गीयते" ॥ यह भी उपरोक्त थाट ही होता है।

'संगीत सारामृत' में भी हिंदोल को भैरवी थाट में ही माना है:—

"हिंदोलो भैरवीमेलसंजातो रिपवर्जितः।
औडवः सर्वदा गेयः सङ्गीतागमकोविदैः ॥"

'सङ्गीत दर्पण' कार कहता है—"हिंदोलको रिधत्यक्तः सत्रयो गदितो बुधैः। मूर्छना शुद्धमध्यास्या दौडवः काकलीयुतः" ॥ इस ग्रन्थ में ग्राम, मूर्छना आदि के द्वारा राग विवरण समझाया है। इन विवादग्रस्त विषयों में तुम्हें न लेजाकर केवल इतना बताये देता हूँ कि प्रचलित हिंदोल के रूप का उपरोक्त वर्णन नहीं है। 'विद्यापति' ने अपने ग्रन्थ 'रागतरंगिणी' में हिंदोल का थाट कर्णाट माना है अर्थात् यह थाट श्रीराग का ही है, जिसे प्रचार में काफी थाट कहते हैं। (प्राचीन श्रीराग प्रचलित काफी थाट में आता है)

अब तुम्हारे ध्यान में आ गया होगा कि प्रचलित हिंदोल उनमें से किसी भी मत से नहीं मिलता। इस राग को यमन (कल्याण) थाट में किसने और कब प्रविष्ट कर दिया, यह प्रश्न भी उपस्थित होता है, परन्तु हमें प्रचलित रागों को सामने रखते हुए चलना है, अत: ग्रन्थों में वर्णित हिंडोल को एक निराला राग मान लेना ही उत्तम है। हमारे प्रचलित हिंदोल का समर्थक मत इस प्रकार है:--

"कल्याणीमेलकोत्थः स्या द्धिंदोलः सर्वसम्मतः ।
प्रातः कालप्रगेयोऽपि धांशको गांशकोऽथवा ॥
वादित्वं तद्गस्वरस्य प्रातर्नैव सुरक्तिदम् ।
इतिकेचिद्वस्य प्राहुः समीचीनं हि मे मते ॥
रिपयोरत्र लुप्तत्वादमात्यो गस्वरो भवेत् ।
अवरोहेण वर्ण्येन प्रायो गानं सुखावहम् ॥"

उपरोक्त मत लक्ष्यसंगीतकार का है।

प्रश्न--बंगाल के प्रसिद्ध संगीतज्ञों ने इस राग के विषय में क्या शोध की है?

उत्तर--वहां भी इन प्राचीन ग्रन्थों को समझने वाले व्यक्ति अधिक नहीं देखे गये। प्रचलित संगीत के विषय में ही बँगला भाषा में एक दो उत्तम ग्रन्थ पाये जाते हैं परन्तु संस्कृत ग्रन्थों की स्पष्टता वहां भी स्पष्ट नहीं दिखाई गई। इस हिंदोल के विषय में उधर के एक ग्रन्थकार का कथन तुम्हें बताता हूँ:--

"हिंदोल राग संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित हिंदोल राग ही है। इसकी जाति औड़व है, इसमें रिषभ और पंचम स्वर विवादी हैं। इसको वसन्त रितु में झूला-महोत्सव पर गाने की प्रथा है। हनुमत् मत के अनुसार हिंदोल में पंचम के स्थान पर धैवत स्वर विवादी माना गया है। हमारे प्रदेश के लोग हनुमत् मत के अनुसार न गाकर धैवत स्वर को सम्पूर्ण महत्व देते हुए गाते हैं। मैं एक स्थान पर कह चुका हूँ कि हमारी तरफ हनुमत् मत का प्रचार अधिक नहीं है, क्योंकि इस मत के विपरीत अनेक राग प्रचार में हैं। "सङ्गीत तरङ्ग" के ग्रन्थकार ने एक स्थान पर लिखा है कि हमारे देश में इस समय हनुमत् मत का ही प्रचार है; और यही ग्रन्थकार आगे चलकर हिंदोल में पंचम वर्ज्य करने का उल्लेख करता है। फिर भला हनुमत् के प्रचार से इसकी क्या संगति हो सकती है? "शब्द कल्पद्रुम" ग्रन्थ में हिंदोल में रे, प स्वर वर्जित बताये गये हैं। "राग विबोध" और 'संगीत नारायण' ग्रन्थों के जो कुछ राग 'Sir William Jones' ने संग्रहीत किए हैं उनमें भी हिंदोल का विवरण पंचम वर्जित ही पाया जाता है।"

उपरोक्त उद्धरण "सङ्गीतसार" ग्रन्थ का है। इस ग्रन्थ में हिंदोल का स्वरूप कल्याण थाट के स्वरों में ही बताया गया है। "राग विबोध" का शुद्ध थाट कौनसा है, सम्भवत: इसे बंगाली ग्रंथकारों ने नहीं समझा है, तभी उन्होंने उसे शुद्ध बिलावल मेल थाट जैसा समझकर अपने ग्रन्थों में उससे यत्र-तत्र बिना विचारे

उद्धरण रख दिए हैं। मेरी समझ से तुम्हें भी इन बंगाली ग्रन्थकारों का यह कार्य अनुचित ही जँचा होगा। 'राग विबोध' कार ने हिंदोल को औड़व माना है और हम भी प्रचार में उसे औड़व मानते हैं। इतनी साम्यता देखकर ही रागविबोध के आधार पर अपने रागों को बताने लगना पागलपन है। 'रागविबोध' का हिंदोल प्रचलित आसावरी थाट में और हमारा हिंदोल कल्याण थाट में आता है; फिर भला इनमें क्या एकता हो सकती है। बङ्गला ग्रन्थों में ऐसे अनेक उदाहरण मुझे दिखाई दिये हैं। उनका सङ्गीत ग्रन्थों का ज्ञान हमारे यहां की अपेक्षा बहुत अधिक नहीं कहा जा सकता। वहां सङ्गीत रुचि निसंदेह अधिक है, परन्तु वहां मुझे सङ्गीत शास्त्र ज्ञाता अधिक प्राप्त नहीं हुए। जिनसे मेरी भेंट हुई उनकी भी ग्रन्थों में वर्णित अनेक स्थलों पर गलत धारणा बनी हुई देखी गई। इस प्रकार की ग़लतफ़हमी का एक उदाहरण तुम्हें सुनाता हूँ। बङ्गाल प्रवास करते समय मेरी एक सङ्गीतशास्त्र ज्ञाता से भेंट हुई। उन्होंने 'सङ्गीत-दर्पण' का अध्ययन किया था, ऐसा उनकी बातों से प्रगट हुआ। मैं उनसे सहज ही पूछ बैठा कि 'दर्पण' में वर्णित शुद्ध स्वर मेल कौनसा है? उन्होंने कहा कि--"वह तो बिलावल मेल ही है" तब मैंने उनके सामने श्रीराग की व्याख्या रखते हुए पूछा कि फिर श्रीराग के स्वर कौनसे होंगे? श्रीराग की वह व्याख्या यह थी:—

"श्रीरागः सच विख्यातः सत्रयेण विभूषितः।
पूर्णः सर्वगुणोपेतो मूर्छना प्रथमा मता।
केचित्तु कथयंत्येन मृषभत्रयसंयुतम्॥"

उन्होंने उत्तर दिया कि हम लोग श्रीराग में रे स्वर कोमल लेते हैं। षड्ज स्वर चार श्रुति का है और वहां 'सत्रय' अर्थात् तीसरे दर्जे का है, अतः क्या वह कोमल नहीं हो जाता?

मैं यह उनका उत्तर सुनकर आश्चर्य में पड़ गया। मुझे स्वप्न में भी 'सत्रय' के उपरोक्त अर्थ का बोध नहीं था। 'सत्रय' का अर्थ जिस राग में सा स्वर ग्रह, अन्श व न्यास इन तीन स्थानों में आता हो इस प्रकार होता है। उक्त सज्जन का यह अर्थ सुनकर मैंने पूछा कि श्रीराग में धैवत कोमल और मध्यम तीव्र लिया जाता है। इस विषय में इस श्लोक में क्या कहा है? इसका उत्तर उनके द्वारा कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। 'सङ्गीत-सार, कर्ता ने श्रीराग के स्वर प्रचलित स्वरों के अनुसार ही ग्रहण किये हैं अर्थात् उसने कोमल रे, मध्यम तीव्र, धैवत कोमल ऐसे स्वर ग्रहण किये हैं, और संस्कृत आधार लिया है सोमेश्वर और कल्लिनाथ का; और उस पर वही ग्रन्थकार श्रीराग को सम्पूर्ण जाति का बताता है! यह सोमेश्वर यदि रागविबोधकार हुआ तो इस राग का थाट तो काफी का थाट हो गया (मैं पहिले कह चुका हूँ) परन्तु यह तो दूसरा ही सोमेश्वर सुना गया है।

मैं बङ्गला ग्रन्थों की आलोचना नहीं करना चाहता हूँ, परन्तु उधर के ग्रन्थों के विषय में तुम्हारे प्रश्न करने पर ही अपनी दृष्टि से प्रमाणबद्ध ही बता रहा हूँ। उधर

के सङ्गीतज्ञ बड़े खोजी हैं यह असंदिग्ध है, परन्तु ग्रन्थों के अध्येता नहीं हैं और इसी कारण यह गलतियां होना सम्भव है। यह मेरा अपना मत है। मैंने तुमसे उधर के प्रसिद्ध ग्रन्थों को पढ़ने के लिये आग्रह किया ही है। तुम खुद उन ग्रन्थों को पढ़कर अपना मत निश्चित कर लेना।

प्रश्न—आपने कहा था कि भावभट्ट अधिक प्राचीन ग्रन्थकारों में से नहीं है। इसने हिण्डोल का वर्णन कैसा किया है?

उत्तर—'भावभट्ट' ने केवल भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के मत एकत्र किये हैं परन्तु इससे भी रत्नाकर, दर्पण आदि ग्रन्थों की स्पष्टता नहीं हो सकी। अन्य जिन-जिन ग्रन्थों के उद्धरण इसने ग्रहण किये हैं वे समझने योग्य हैं।

प्रश्न—'भावभट्ट' ने रत्नाकर के राग अपने ग्रन्थों में नहीं बताये हैं?

उत्तर—नहीं! उसने तो रत्नाकर के रागों को वैसे के वैसे ही उद्धृत कर दिया है परन्तु इस अनुकृति से कोई उपयोगी लाभ नहीं हुआ है। भावभट्ट ने रत्नाकर के राग जैसे के तैसे उद्धृत कर दिये और उनके समझने का—प्रयत्न न करते हुए भिन्न-भिन्न ग्रन्थों की व्याख्या एकत्र करदी। रत्नाकर के ग्राम राग, ग्राम, मूर्छना, जाति आदि साधनों से समझाये गये हैं; इनकी स्पष्टता अनेक ग्रन्थकारों ने नहीं समझी और वे ग्राम रागों के मार्ग पर गये ही नहीं। ग्राम, मूर्छना, जाति की उत्तम स्पष्टता करते हुए रत्नाकर के रागों का स्वरूप स्पष्ट करना वास्तव में बहुत कठिन कार्य है। रत्नाकर के पश्चात् के अनेक ग्रन्थ उत्तम समझने योग्य हैं और हमारे लिये उपयोगी भी हैं। भावभट्ट ने हिन्डोल की व्याख्या इस प्रकार की है—"द्वितीयगतिकोरिश्च त्वेकैकगतिकौ गनी। तदा हिंदोलमेलः स्यात्"। इस प्रमाण से हिण्डोल का थाट आसावरी का थाट ही सिद्ध होता है। आसावरी थाट का हिंडोल प्रभात काल में गाया जाने वाला राग है, यह कथन असंगत नहीं है। उसे ही कल्याण थाट में गांधार वादी कहते हुए वर्णन करने पर मतभेद उत्पन्न हो सकता है। रागविबोध' में हिंडोल के विषय में कथन है—"हिंदोलो रिपहीनो मांशः सांतग्रहः सदोषसित्रा" इस राग का थाट वसंत बताया है, वसंत मेल की व्याख्या इस प्रकार की गई है "शुद्धा वसंतमेले सरिपमधा अन्तरश्च काकलिका" इस व्याख्या से हिंडोल का थाट भैरव ठहरता है। यहां भी रे प स्वरों को वर्ज्य किया है। यह सब देखते हुए कहा जा सकता है कि हिंडोल का स्वरूप भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता गया है। हमें "लक्ष्य सङ्गीत" का मत प्रचलित रूप से मिलता हुआ होने से पसन्द करना है। लक्ष्यसङ्गीतकार भी ग्रन्थों के इस मतभेद को जानता था, यह उसके कथन से स्पष्ट हो जाता है। भैरव थाट में रे प वर्जित हिन्डोल राग का एक नवीन प्रकार आगे प्रचार में आवेगा। हमें अभी तो प्रचलित हिन्डोल पर ध्यान देना है। यह राग कभी-कभी गायकों द्वारा रात्रि में गाया हुआ भी सुना है। उस समय उनका तीव्र मध्यम स्पष्ट और गांधार को महत्व का स्वर बनाना योग्य नहीं कहा जा सकता। मैं फिर कहता हूँ कि यदि कोई इसे रात्रिगेय और वादी गांधार से युक्त राग बताता है तो मैं उसके कथन को असङ्गत नहीं कहूंगा। हिन्डोल में पंचम वर्ज्य है अतः स्वाभाविक ही धैवत का महत्व अधिक हो जाता है। यही उत्तरांग वादित्व देखकर इसे प्रभात का राग माना है। कोई-कोई गायक वादी

स्वर षड्ज मानते हैं, यह हमारे मान्य नियम के विरुद्ध नहीं है, क्योंकि सा म प चाहे जिस समय के राग में वादी हो सकते हैं। इस समय प्रचार के अनुसार चलने के लिये हमें धैवत को ही वादी स्वीकार करना पड़ेगा। इस राग के आरोह में निषाद वक्र रूप से लिया जाता है। अर्थात् आरोह में निषाद तक आकर पुनः एक दो स्वर तक वापस जाना पड़ता है। वक्रत्व का अर्थ मैं तुम्हें पहले समझा चुका हूँ। "सा, ग, मं ध नि ध, सा" यह हिंडोल का आरोह है और 'सा, निध, मंग, सा' अवरोह है। "म ध नि सा" ऐसा सरल आरोह करने पर श्रोताओं को 'सोहनी' राग का आभास होना संभव है इसलिये उपरोक्त वक्रता ग्रहण की गई है। गंभीर विलम्बित लय में गाते हुए उपरोक्त नियम को उत्तम रूप से निभाया जा सकता है और उसका परिणाम भी उत्तम होता है। जलद गायन द्रुतलय में गाते हुए अनेक गायक नियम भङ्ग करते हुए पाये जाते हैं। जलद तानों में निषाद स्वर को बिलकुल गौण बना देने से भी श्रोताओं के मन में रागअशुद्धि की तिरस्कृत भावना उत्पन्न नहीं होती। निषाद की वक्रता अनेक रागों में तुम्हें दिखाई देगी। कल्याण थाट के दो मध्यम वाले रागों के आरोह में निषाद वक्र या वर्ज्य पाया जाता है। जलद तानों में इस वक्रता की रक्षा न करने पर निषाद 'प्रच्छादित' या 'अनभ्यस्त' कहा जाता है। हिंडोल उत्तरांग प्रधान राग है अतः इसका स्वरूप अवरोह में अधिक खिलता है। इस राग की प्रकृति बड़ी गंभीर है। इस राग में निषाद का प्रयोग जितना कम किया जायेगा उतना ही यह राग स्पष्ट दिखाई देगा और वही निषाद जितना अधिक प्रयुक्त होगा उतना ही अधिक 'सोहनी' के निकट हमारा राग जावेगा। हिंडोल सुनने वाले श्रोताओं को मारवा, पूरिया, सोहनी, एक प्रकार का पंचम आदि रागों की थोड़ी-थोड़ी छाया दिखाई देना संभव है। यद्यपि ये सब राग अपने-अपने नियमों के अनुसार पृथक्-पृथक हैं, परन्तु इन में थोड़ी बहुत मात्रा में समीपता भी है। इन सभी रागों में कोमल रे का प्रयोग होता है अतः पूर्वाङ्ग में ये राग हिंडोल से अलग हो जाते हैं, परन्तु उत्तरांग में ये राग हिंडोल के बहुत निकट आ सकते हैं।

प्रश्न—हमें हिंडोल का राग स्वरूप (विस्तार) स्वरों में बतलाइए ?

उत्तर—हिंडोल' का राग विस्तार निम्न प्रकार से होता है—

सा, ध़सा, गसा, सा, गमंग, सा, सानि़ध़, नि़ध़, मं़ध़सा, सा, सा, गमंग, सा

सा, ध़, मं़ध़, मंग, मंध़सा सागमंध, धमंगसा; धधमंग, मंग, मंधनिध, मंग, धमंगगसा, सासागग, मंधमंग, धधमंगमंगसा, सागमंग, सा; गगमंध, मंधसां सांसांधध, गंमंगंसां, सांनिध, निधमंगग, निधमंग, मंगसा;

धध़सा, गगसा, सागमंगसा, साग, मंग, निधमंग, धधमंग, मंगसा;

गगमंधसां, सां, सांगंमंगं, मंगंसां, सांनिधमंगग, धमंग, मंगगसा, निनि-धधमंमंगग, मंग, सा, ध़, साग;

इन स्वरों को को गाने पर हिंडोल का स्वरूप उत्तमरूप से स्पष्ट दिखाई देने लगेगा।

मेरे विचार से हमने कल्याण थाट के प्रथम दो वर्गों के रागों पर पर्याप्त चर्चा करली है। अब हम तीसरे वर्ग के दोनों मध्यम ग्रहण करने वाले रागों पर विचार करेंगे।

प्रश्न—जी हां कहिये ?

दोनों मध्यम वाले राग—

उत्तर—इस विभाग में सर्व प्रथम हम 'हमीर' राग को लेते हैं। कहीं-कहीं इसे 'हंबीर' नाम भी दिया गया है। रागों के नाम योग्य हैं या अयोग्य इस प्रश्न की उलझन में न पड़ते हुए हमें प्रचलित नामों को ही ग्रहण करना है। मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि रागों के नाम भिन्न-भिन्न कारणों से दिये गये हैं। मि० बनर्जी अपने ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं:—

"राग रागनियों का संग्रह देश के भिन्न-भिन्न भागों में किया गया है। इसके प्रमाण स्वरूप अनेक रागों के नाम हैं जो कि भिन्न-भिन्न देश-भागों पर रखे गये हैं। जैसे-सैंधवी, बङ्गाली, सोरठी, भूपाली, गुर्जरी, मालवी, कर्नाटी, कामोदी, गांधारी, टंकी (राजपूताना) वैराटी, कालिंगड़ा, मुलतानी, आदि। मुख्य छः रागों के नाम छः रितुओं पर से रखे गये दिखाई देते हैं। खैर, हमें अभी इस चर्चा में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। हमीर कल्याण थाट का दोनों मध्यम (तीव्र या कोमल या शुद्ध) वाला राग है। यह सम्पूर्ण जाति का माना गया है। किसी-किसी संस्कृत ग्रन्थ में इसे शंकराभरण थाट से उत्पन्न बताया है। इसका कारण यही कहा जासकता है कि दो मध्यम वाले रागों में तीव्र मध्यम की अपेक्षा कोमल (शुद्ध) मध्यम ही अधिक महत्वपूर्ण रहता है। यह ठीक है कि प्रचार में ऐसे सभी रागों में तीव्र मध्यम लिया जाता है। तीव्र मध्यम की गौणता का एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि यदि इसका प्रयोग न भी करें तो भी राग स्वरूप नहीं बिगड़ पाता। 'हमीर' में आरोह में निषाद वर्ज्य माना गया है। वैसे ही अवरोह में गांधार स्वर वर्जित किया गया है। कोई-कोई इसी बात को इस ढङ्ग से भी कहते हैं कि हमीर में आरोह में निषाद और अवरोह में गांधार वक्र लिया जाता है। इन दोनों स्वरों का प्रयोग गायक अत्यन्त कुशलता पूर्वक ही कर सकता है। प्रमाणापेक्षा कम अधिक प्रयोग में लेने पर 'यमन' का आभास हो सकता है। 'ग रे सा' इस प्रकार का सरल अवरोह करने पर यमन राग का अङ्ग स्पष्ट दिखाई देता है। इसीलिये गायक ऐसी जगहों पर 'ग म रे सा' इस प्रकार प्रयोग करते हैं। "लक्ष्य-संगीतकार" ने दो-दो मध्यम वाले रागों के लिये यह नियम भी प्रचार को देखते हुए—बना दिया है कि ऐसे रागों के आरोह में नि दुर्बल व अवरोह में ग दुर्बल होता है। कहा है—

"द्विमध्यमेषु रागेषु नियमः प्रायशो भवेत्।
आरोहे स्यान्निदौर्बल्यं गदौर्बल्यं विपर्यये ॥"

विलम्बित रूप से इस राग का आलाप करते समय इस नियम की ओर पूर्ण ध्यान रखकर ही अपने राग को शुद्ध और सुन्दर बनाया जा सकता है। जलद तान लेते हुए 'प प ध नि सां रें' इस प्रकार का अन्श अन्य गायकों जैसा लिया जा सकता है, परन्तु योग्य स्थानों पर मूल राग के स्वरसौष्ठव की योजना करते हुए इसे यमन से बचाते रहना चाहिये। उत्तम गायक इस राग को जिस

प्रकार गाते हैं उसको ध्यान पूर्वक सुनने से अनुकरण करना शीघ्र आ जाता है। हमीर का अङ्ग तुम्हारे हृदय में ठीक से जमा देने के लिये मैं उन स्वरसमुदायों को गाकर सुनाता हूँ, उन पर ध्यान देना।

'सा, ग म ध, नि ध, सां, रेंसां, नि, धप, मंपधप, ग ग मरे, गम धप, गम रे सा।' यह स्वर समुदाय उत्तम तैयार करने पर इस राग का स्वरूप बिना भूल किये तुम गा सकोगे। इसकी अपेक्षा छोटा प्रकार निम्नलिखित है:—

"सा, रे सा, ग म ध, नि ध सां। सां नि ध प, मं प, ध प, ग म रे सा" 'ग म ध' इस स्वर समुदाय का इतना अधिक प्रचार है कि इसका प्रयोग होने मात्र से लोग हमीर का नाम ले देते हैं। यह स्वर समुदाय ही इस राग की एक मात्र पकड़ हो गई। हमीर राग का वादी स्वर धैवत मानने का एक कारण 'ग म ध' समुदाय भी कहा जाता है। ग्रन्थों में धैवत को वादी नहीं बताया गया है और वह कुछ अन्शों में ठीक भी है क्योंकि रात्रि के प्रथम प्रहर में गाये जाने वाले रागों में धैवत स्वर का वादी होना ठीक नहीं दीखता। गाते समय धैवत पर जो वजन दिया जाता है, उसे देखते हुए उसे वादी ही बना लेना चाहिये यह ठीक नहीं। सङ्गीतसार कर्त्ता ने एक संस्कृत ग्रन्थ के आधार पर अपने ग्रन्थ में इस राग के विषय में लिखा है:—

षड्जन्यासग्रहांशासा हंबीरापूर्णतांगता।
निशायाः प्रथमे यामे गेया प्रोक्ता मनीषिभिः॥

यह आधार 'सोमेश्वर' की रचना से लिया हुआ लेखक ने बताया है। 'राग विबोध' का लेखक सोमनाथ प्रसिद्ध है, परन्तु यह श्लोक राग विबोध में नहीं पाया जाता, अतः उपरोक्त सोमेश्वर या सोमनाथ कोई दूसरा ही है। यदि चक्र आधार में सोमेश्वर ने हमीर थाट का शंकराभरण माना हो तो ठीक है, परन्तु राग के थाट के विषय में सङ्गीतसार कर्त्ता की कहीं गड़बड़ी हो गई है। अतः सोमेश्वर का हमीर थाट अन्यत्र भी कहा गया है, परन्तु वह शंकराभरण से भिन्न ही बताया है। शंकराभरण में धैवत तीव्र है, यह सर्वत्र प्रसिद्ध है, परन्तु हमीर थाट के वर्णन में कुछ ग्रन्थों ने धैवत स्वर कोमल बताया है। मैं तुम्हें इन ग्रन्थों का वर्णन सुनाता हूँ। 'राग विबोध' का कथन है:—

"हंमीरमेलउज्ज्वलसमपधतीव्रतररिमृदुमम्रदुसकाः।
हंमीरविहंगडकेदारप्रमुखा अतो मेलात्॥"

यहां पर सा, म, प स्वर शुद्ध हैं, अर्थात् वे हमारे शुद्ध थाट जैसे हैं। तीव्रतर 'री' हमारा शुद्ध रिषभ हो जाता है। मृदु म और मृदु सा हमारे शुद्ध ग और शुद्ध नि को कहेंगे। परन्तु राग विबोध का शुद्ध ध हमारा कोमल धैवत कहलायेगा। इसी स्थान पर प्रचलित हमीर से इसका अन्तर हो जाता है। 'अनूप संगीतरत्नाकर' ग्रन्थ में हम्मीर का वर्णन इस प्रकार पाया जाता है:—

"द्वितीयगतिकोरिश्च तृतीयगतिकौ निगौ ।
हंमीरमेलएषःस्याद्धमीराद्यास्तदुद्भवाः ॥
सत्रिस्तृतीययामेच हंमीरः पूर्णईरितः ॥"

यहां पर रिषभ दूसरे दर्जे का अर्थात् हमारा शुद्ध रे, निषाद व गंधार तीसरे दर्जे के अर्थात् हमारे नि तथा ग हो जाते हैं। शेष चार स्वर सा, म, प, ध, को शुद्ध बताया गया है। इस प्रकार यह मत भी 'राग विबोध' जैसा ही सिद्ध होता है, क्यों कि इस ग्रन्थ का शुद्ध धैवत हमारा कोमल ध है। 'राग चन्द्रोदय' में हम्मीर का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"शुद्धौसगौमध्यमपंचमौच । शुद्धस्तथाधैवतकोयदिस्यात् ॥
लघ्वादिकौषड्जकमध्यमौचेत् । हंमीरनट्टाव्हयकस्यमेलः ॥
हंमीरनट्टप्रमुखाश्चरागाः । केचित्प्रसिद्धाः प्रभवंत्यमुष्मात् ॥
सांशग्रहांतोऽहनितूर्ययामे । पूर्णोभवेन्नट्टहमीरपूर्वः ॥"

यह वर्णन हम्मीर नाट का है, परन्तु हम्मीर व नाट एक ही थाट के बताये हैं अतः हमें थाट के स्वरों को देखना उपयोगी होगा। यहां बताया हुआ शुद्ध गन्धार हमारा तीव्र (शुद्ध) रे षड्ज व मध्यम लघु अर्थात् हमारे तीव्र नि और ग लेते हैं। इनका शुद्ध धैवत हमारा कोमल धैवत हो जाता है। अर्थात् यह मत भी रागविबोध से मिलता हुआ है। अन्य अधिक उदाहरण न देते हुए अब तुम्हें मैं बताता हूँ कि हमीर को शंकराभरण मेल राग किसने बताया है? तुम्हें मैं 'राग तरङ्गिणी' ग्रन्थ का नाम इससे पहिले भी सुना चुका हूं। इस ग्रन्थ में हम्मीर को शंकराभरण थाट का बताया है। इस ग्रन्थ का शुद्ध थाट काफी का है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। इस ग्रन्थ में हम्मीर को केदार थाट में माना गया है और केदार थाट के स्वर इस प्रकार बताये हैं। "गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृण्हाति। निषादश्च षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृण्हाति तदा केदारसंस्थानम्।" काफी थाट में ग नी तीव्र हो जाने से हमारा शुद्ध थाट हो गया है। केदार थाट के रागों के विषय में ग्रन्थकार कहता है:—

"केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
आभीरनाटमात्र गेयो राग स्तथापरः ॥
खंबावती ततो ज्ञेया शंकराभरणस्तथा ।
बिहागडा च हंबीरः श्यामः श्रुतिमनोहरः ॥
छायानट्टश्च भूपाली ज्ञेया भीमपलासिका ॥"

उपरोक्त उद्धरण विशेषकर इसलिये मैं दे रहा हूँ कि आगे हमें केदार श्याम, छायानट इन रागों के विषय में भी चर्चा करनी है। 'राग-तरङ्गिणी' ग्रन्थ उत्तरी भाग का और ऊपर के बताये हुए ग्रन्थों के रचयिता पं० भावभट्ट, पुण्डरीक, सोमनाथ दक्षिण भाग के मान लिये जाने पर सङ्गीत का इतिहास समझने में सरलता होगी। खैर अभी हमें इस विषय पर चर्चा नहीं करनी है। शंकराभरण थाट का आधार हमारे राग हमीर को प्राप्त हो जाने से बहुत सी कठिनाइयां हल हो गईं। अब केवल तीव्र मध्यम लगाने का प्रश्न रह गया है। इसके लिये यह कहा जा सकता है कि तीव्र मध्यम रात्रिगेय रागों का सूचक स्वर है और हमीर राग को रात्रि में गाने का निश्चित करने पर उसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग असङ्गत नहीं कहा जा सकता, उलटे वह राग सौन्दर्यवर्धक ही ही होता है। उपरोक्त कथन का प्रमाण उस स्वर (तीव्र मध्यम) को गौण बना देना है। दोनों मध्यम वाले सारे रागों से यदि तीव्र मध्यम निकाल भी दिया जावे तो विशेष रूप से राग हानि नहीं हो सकती। लक्ष्य सङ्गीत में किया हुआ वर्णन हमारे प्रचलित हमीर का वास्तविक वर्णन है, क्यों कि यह रचना 'रागतरङ्गिणी' के पश्चात् की और हमारी हिन्दुस्तानी सङ्गीत पद्धति की ही रचना है।

"कल्याणी नामके मेले हंमीरः प्रोच्यते बुधैः।
गग्रहः पांशकः कैश्चिद्धैवतांशोऽपि लक्ष्यते ॥
धैवतेऽवधारणं यन्नैतद्वादित्वकारणम् ।
लक्ष्यगतं समालोच्य बुधः कुर्यात्स्वनिर्णयम् ॥
स्यादारोहे निदौर्बल्य मवरोहेऽपि गस्यतत् ।
सायंगेयं तथा पूर्णं वक्रं रूपं सतां मतम् ॥
मध्यमावत्र द्वौ ग्राह्यौ रोहण एव तीव्रमः ।
सरलत्वे रोहणस्य यमनः स्या त्सुनिश्चितम् ॥
संघाताद्गमधानां स्या देतद्रूपं परिस्फुटम् ।
प्रायोऽनेनैव श्रोतारः कुर्वंति नामनिर्णयम् ॥"

उपरोक्त श्लोकों के तात्पर्य को स्मरण रखने के लिये इन्हें कण्ठस्थ कर लेना चाहिये क्योंकि इनकी सहायता से तुम प्रचलित राग का ठीक-ठीक प्रतिपादन कर सकोगे। प्रचार में धैवत को वादी मानने का बहुमत है, तो भी तुम पंचम या षड्ज को वादी मानकर भी काम चला सकते हो। यदि इसका वादी धैवत ही मानकर लोकमत को सम्मान देना पड़े तो इसे रात्रिकालीन रागों का अपवाद मानना होगा। हमीर राग गायकों के द्वारा गाते हुए सुनने पर तुम्हें केदार, श्याम और कामोद का स्थान-स्थान पर आभास होता जावेगा। ये राग हमीर के निकटवर्ती राग हैं। इस प्रकार के समप्रकृतिक रागों के नियम बहुत अच्छी तरह समझ लेने चाहिये। आगे चलकर मैं तुम्हें अपनी पद्धति के सम प्रकृतिक रागों का एक कोष्ठक बता

दूंगा जो तुम्हारे लिये उपयोगी होगा। मेरे ख्याल से हमीर की इतनी जानकारी तुम्हारे लिये पर्याप्त हो गई है।

प्रश्न—जी हाँ, हमीर का थाट, आरोह, अवरोह, वादी, समय, तीव्र मध्यम नियम और ग नि का नियम आदि सभी बातें हम समझ चुके हैं। अब इसका स्वरूप स्वरों द्वारा स्पष्ट गाकर बता दीजिये ?

उत्तर—सुनो—

सा, गमध, निध, सांनिधप, गमध, प, धप, गमरे, धप, गमरे, सारेसा, गमध। सारेसा, निधप, मंपधप, सा, सारेरेसा, गमध, प, मंप, गमरेसा, गमध।

मंपधमंप, गमरे, निध, सां, निध, निधप, पपधधपप, मंपधमंप, गमरे, गमधप, गमरेसा, निनिध, निधप, मंप, धधपप, पगमरे, गम, निध, सांनिधप, मंपधप, गमरेसा, गमध।

सारेसासा, गमपमं, धपनिध, सां, सांरेंसां; सांधनिप, धमं, पग, मरे, गमधध, प, गमरे, सारेसा।

पपसां, सां, सां, सांरेंसां, गंमंपंगंमंरेंसां, सांनिध, निधप, मंपधप, सांरेंसांनिधप मंपधधप, गमरे, गमधप, गमरेसा, गमध।

इस प्रकार से इस राग का विस्तार करने पर यह तुम्हारा राग उत्तम तैयार हो जावेगा। इस प्रकार स्वर समुदाय असंख्य किये जा सकते हैं। इन दो मध्यम वाले रागों में अन्तरे का आरम्भ प्रायः पंचम से शुरू किया जाता है। यह एक साधारण नियम तुम्हें दिखाई पड़ेगा। इसका अन्तरा प्रायः 'पपसां, सां, सांरेंसां, सांध, सां, सांरेंसांनिधप' इस प्रकार से आरम्भ किया जाता है। इस नियम का पालन सभी गायकों द्वारा कठोरता से होता ही है ऐसा मेरा कथन नहीं है, परन्तु तुम्हें प्रचार में इस नियम के अनुरूप अनेक उदाहरण प्राप्त होंगे। इस दो मध्यम वाले राग में तार षड्ज से पंचम तक अवरोह करते हुए धैवत पर स्पष्ट विश्रांति ली जाती है। धैवत से पंचम तक जाते हुए प्रायः गायक लोग बहुत अल्प परन्तु समझ सकने योग्य कोमल निषाद का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग सुन्दरता वर्धक होता है। इस निषाद के स्पर्श करने से बिलावल जैसा स्वल्प आभास हो जाता है। कोमल नि इस राग में विवादी स्वर हो जाता है, परन्तु इसका अत्यन्त अल्प प्रयोग अवरोह में करने से राग हानि नहीं होती।

प्रश्न—यह हमारे ध्यान में आ गया। अब आप केदार की ओर बढ़िये ?

उत्तर—अच्छा सुनो! केदार नाम प्राचीन है। यह राग साधारण रागों में से है और बहुत से गायक इसे जानते हैं। ऐसे प्रसिद्ध राग के विषय में विशेष मतभेद नहीं है। संस्कृत ग्रन्थों में यह राग पाया जाता है; उनमें से किसी ने इस राग का थाट शंकराभरण (वर्तमान बिलावल) माना है और वह हमारे प्रचलित

स्वरूप के अधिक निकट है । प्रचार में तीव्र मध्यम लगाये जाने से हमने इसे कल्याण थाट के अन्तर्गत माना है । यह रात्रिगेय राग है और इसमें ग नि भी कोमल नहीं है, अतः इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग असंगत प्रतीत नहीं होता । इस राग का समय रात्रि का प्रथम प्रहर माना गया है । इस राग में गायक लोग एक विशेष प्रकार से स्वर प्रयोग भी करते हैं, वे बीच-बीच में दोनों मध्यम एक के बाद एक लगाते जाते हैं। यह काम इस राग में बहुत सुन्दर दिखाई देता है किन्तु बार-बार यही काम करना उत्तम नहीं दिखाई देता । तथापि योग्य रूप से प्रयोग करने पर राग वैचित्र्य बढ़ जाता है, इस प्रकार दोनों मध्यम की निकट सङ्गति बहुत थोड़े रागों में ग्रहण की गई है । इसलिये मैंने विशेषकर तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है ।

प्रश्न—इस प्रकार दोनों मध्यमों का निकट प्रयोग अन्य किन-किन रागों में हुआ है ?

उत्तर—पूर्वी, ललित, बसंत, पंचम आदि कुछ रागों में इस प्रकार के प्रयोग तुम्हें दिखाई पड़ेंगे । इसके विषय में मैं तुम्हें विस्तृत रूप से आगे बताऊँगा । केदार राग में दोनों मध्यम होते हुए विलंबित रूप से गाना आवश्यक होता है। जलदलय (द्रुतलय) में गाते हुए वे प्रायः नहीं लिये जाते और गाने पर भी सुन्दर नहीं दिखाई देते । दोनों मध्यम वाले रागों में प्रायः तीव्र मध्यम आरोह में ही लिया जाता है। उपरोक्त कथन से मेरा यह भाव नहीं है कि तीव्र मध्यम ग मं प इस प्रकार से इस राग में लिया जाता है । ऐसा प्रयोग इस राग में नहीं होता । इस राग में तीव्र मध्यम एक आगंतुक स्वर जैसा है, नियमिति स्वर नहीं है। आरोह व अवरोह राग के स्वीकृत स्वरों को बताते हैं, इनके सिवाय विशेष उपयोग के हेतु लिये हुए स्वरों का प्रयोग नियमित रूप से नियत स्थान पर ही किया जाता है। 'केदार' राग में तीव्र मं पंचम की संगत में थोड़ा प्रयुक्त होता है । जिस प्रकार यमन कल्याण में कोमल 'म' गंधार की संगति में प्रयुक्त होता है उसी प्रकार यहां भी इस स्वर का प्रयोग है । यमन में जैसे—ग म प इस प्रकार नहीं लगते हैं वरन् 'प म ग म ग', जैसा शुद्ध म का प्रयोग करते हैं; इसी प्रकार का विशिष्ट प्रयोग इसमें तीव्र मध्यम का होता है । इस प्रकार के मनोरंजक स्वर का प्रयोग अनेक रागों में किया गया है। दोनों मध्यम वाले प्रायः सभी रागों में तीव्र मध्यम को लेने का प्रत्यक्ष उदाहरण बताता हूं । देखो मैं तीव्र मध्यम किस प्रकार लेता हूँ—"सा, म, मप, पध, प, मं प, म, मपधपम, रेसा; मंपध, मंप, निधप, मंप, धपम, मप, मरेसा" इसी प्रकार दोनों मध्यम जोड़ने का उदाहरण भी सुनाता हूँ। साम, मप, पध, पम, मपधपमंम, धपम, पम, रेसा" अधिक उदाहरण तुम्हें राग विस्तार बताते समय सुनाऊँगा । केदार राग में गांधार स्वर यद्यपि वर्ज्य नहीं कहा गया है परन्तु प्रचार में उसे इतना गौण किया जा चुका है कि उसका अस्तित्व मात्र नहीं रहा है । इस राग में गांधार स्वर को संभाले रहना भी बड़ी कुशलता है। इसे बिलकुल छोड़ देने से सारङ्ग राग का आभास हो जाता है और परिमाण से अधिक प्रयोग करने से कल्याण, कामोद आदि रागों की छाया उत्पन्न हो जाती है। यह

सुनकर तुम्हें घबराना नहीं चाहिये। यह सारा काम वर्णन सुनने से चाहे कठिन दिखाई देता हो, परन्तु प्रयत्न करने पर वैसा कठिन नहीं है। दस पांच बार इस खूबी की ओर ध्यान देने पर अपने आप ही आ जाता है। जब गायक मध्यम स्वर से ऋषभ स्वर की ओर आता है वहीं उसे गांधार स्वर दिखाना पड़ता है। यह गांधार स्वर सदैव मध्यम की संगति में मिला हुआ आता है। मध्यम इस राग का प्रधान स्वर है अतः श्रोताओं को गांधार स्पष्ट समझ नहीं पड़ता। केदार राग का एक प्रधान नियम यह है कि इसके आरम्भ में रे, ग ये दोनों स्वर छोड़कर साम, मप इस प्रकार प्रयोग होता है, ऋषभ स्वर इस राग के आरोह में वर्ज्य स्वर माना गया है। रे म, प, इस प्रकार आरोह करने से सारंग या मल्हार दिखाई पड़ने लगता है। रे प करने से कामोद का अङ्ग उत्पन्न हो जाता है। रे, ग आरोह करने से केदार राग बिगड़ जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लेने से राग पहिचाना जा सकता है। ऐसा लेने पर भी कोई कोई गायक तीव्र मध्यम के कम अधिक परिमाण से केदार के अनेक प्रकार मानते हैं। तीव्र मध्यम स्वर का अधिक प्रयोग करते हुए जो प्रकार गायक गावे हैं उसे 'चांदनी-केदार' कहते हैं। एक प्रसिद्ध मुसलमान गायक ने मुझे शुद्ध केदार और 'चाँदनी-केदार' का भेद इस प्रकार बताया है कि "शुद्ध केदार" में तीव्र म बिलकुल अल्प लिया जाता है। कोई कोई लेते भी नहीं हैं परन्तु चाँदनी केदार में उसे आरोह में लिया जाता है। इसी प्रकार चाँदनी केदार में बीच-बीच में धैवत की संगति में अवरोह में कोमल निषाद लिया जाता है। यह भिन्नता अवश्य है, परन्तु इसके लिये कोई शास्त्राधार प्राप्त नहीं होता। चाँदनी नाम उर्दू भाषा का दिखाई देता है और इससे यह सिद्ध होता है कि किसी अर्वाचीन गायक ने ही ग्रन्थों में वर्णित केदार को तोड़ मोड़कर इस रूप में कर दिया है। ग्रन्थों में शंकराभरण थाट लेकर उसमें तीव्र मध्यम व स्वल्प कोमल निषाद मिलाकर इस रूप को उत्पन्न किया है। वर्तमान गायक दोनों मध्यम लेकर केदार गाते ही हैं। इस प्रकार उसे मिश्रण कर चाँदनी केदार नाम दिया गया है। चाँदनी केदार राग के गीतों में गायक चाँदनी शब्द की योजना भी प्रायः कर देते हैं। केदार के स्वरूप में परिवर्तन कर गायकों ने मलूहा, जलंधर आदि अनेक प्रकार उत्पन्न किये हैं। इनके विषय में हम थाट में विचार करेंगे। धैवत की संगति में कोमल नि का अन्श लेने का जो वर्णन मैंने किया है वहां अवरोह में सां नि ध . प इस प्रकार प्रयोग न समझते हुए 'ध नि ध' (यहां नि के नीचे लगी हुई आड़ी लकीर स्वर की कोमलता की द्योतक है) इतना ही प्रयोग समझना चाहिये। यमन में जैसे कोमल मध्यम का प्रयोग होता है उसी प्रकार का यह प्रयोग समझना चाहिये। गायकों से चाँदनी केदार और शुद्ध केदार के अलग अलग नियम पूछें तो वे उत्तर नहीं दे सकेंगे। वे तुमसे ही कहेंगे कि इन रागों के गीतों में इन नियमों की भिन्नता देखलो। इसका कारण यह है कि उन्होंने अपने गीत सुन सुनकर तैयार किये हैं। उन्हें किसी ने नियम आदि नहीं सिखाये। जो वास्तविक प्रसिद्ध गायक हैं उन्होंने ही इस प्रकार के कुछ नियम अवश्य बना दिये हैं। वास्तव में रागों के भिन्न-भिन्न नाम कहने के साथ-साथ उनके नियमों की भिन्नता भी दूसरों को समझाते आना आवश्यक है।

प्रश्न—आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गये। हमने केदार राग की जानकारी इस प्रकार हृदयंगम की है। केदार राग ग्रन्थों में शंकराभरण थाट में बताया गया है, परन्तु इसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग भी किया जाने से सुविधा की दृष्टि से इसे कल्याण थाट में ग्रहण किया गया है। इसके आरोह में रे ग स्वर छोड़ दिये जाते हैं, विशेष कर आरोह में रे स्वर सदैव वर्जित किया जाता है। गांधार स्वर अत्यन्त अल्प रूप से सदैव मध्यम की संगति में आता है। मध्यम स्वर इस राग का प्रधान स्वर है। तीव्र मध्यम का अधिक प्रयोग कर व धैवत के अन्श में कोमल निषाद अवरोह में अल्प ग्रहण कर गायक चाँदनी केदार नामक नया स्वरूप बना देते हैं।

उत्तर—बस, बस ! तुमने इस राग को ठीक समझ लिया है। अब आगे बढ़ें, राग विबोधकार ने केदार का वर्णन दो प्रकार से किया है। एक का थाट हमीर जैसा है, उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—"केदारोल्परिधोनिशि सन्यासोगांशग्रहकः" यह हमीर थाट है परन्तु इसमें कोमल धैवत लेने का आदेश है। यह हमारा स्वीकृत रूप नहीं है। दूसरा प्रकार शङ्कराभरण थाट में बताया है, "न्यंशन्यासग्रहकः पूर्णोनिश्येच केदारः" यहां पर निषाद को अन्श स्वर बताया गया है, परन्तु वह अपने यहां प्रचार में नहीं है। हम तो मध्यम को अंश स्वर मानते हैं। "हृदय प्रकाश" नामक ग्रन्थ में केदार राग को शंकराभरण थाट में माना है और इससे श्याम, नाट, हमीर आदि रागों की उत्पत्ति बताई है। एक विशेष बात स्पष्ट ही तुम्हें बता रहा हूं कि किसी भी ग्रन्थ में तीव्र मध्यम को ग्रहण करने का आदेश नहीं दिया गया है। "सङ्गीत पारिजात" के रचयिता पं०—अहोबल 'केदार' के विषय में लिखते हैं—"गनी तीव्रौ तु केदार्यां रिधौ नस्तोऽथ गादिमा" यह थाट शंकराभरण का है, इसमें रे ध बिलकुल वर्ज्य करने का आदेश दिया हुआ है। किन्तु हम प्रचार में उपयोग नहीं करते। हम आरोह में रे स्वर मानते हैं। गांधार को महत्व न देते हुए हम मध्यम स्वर को वादी मानते हैं। इसी ग्रन्थ में आगे 'केदार नाट' राग का वर्णन किया गया है। वहां आरोह में रे ध स्वर वर्ज्य बताये हैं। यह स्वरूप कुछ अंशों में प्रचलित केदार के निकट आ जाता है। गांधार स्वर को इस राग में कभी भी वादी स्वीकार नहीं किया जा सकता। "सङ्गीत सारामृत" में तुलजेन्द्र कहते हैं—

"रागः केदारसंज्ञः स्याच्छंकराभरणोद्भवः ।
संपूर्णः सग्रहः सांशः सायंकाले प्रगीयते ॥"

इस उत्तम वर्णन में भी विशेष नियम नहीं बताये गये हैं। "राग चन्द्रोदय" में केदार मेल इस तरह बताया गया है—

"लब्वादिकौ षड्जकमध्यमौच ।शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः ।
निगौ विशुद्धौ च यदा भवंति । तदातु केदारकमेल उक्तः ॥"

और इसकी व्याख्या आगे इस प्रकार दी हुई है "न्यंशांतको निग्रहकोऽरिधोवा । केदारकः सायमभीष्ट एषः" यह ग्रन्थ दक्षिण की ओर का माना

जाता है इसलिये इस ग्रन्थ का केदार मेल रागविबोध के थाट के अनुसार ही होगा। यहां पर धैवत के विषय में कुछ नहीं कहा गया है अर्थात् वह शुद्ध (ग्रन्थकार के मत से) यानी हमारे मत से कोमल स्वर होगा।

"रागमंजरी" ग्रन्थ में इस ग्रन्थ का थाट चन्द्रोद्रय के अनुसार ही बताया गया है। "रिधौ द्वितीयगति कौ तृतीयगति कौ निगौ" उपरोक्त सम्पूर्ण उद्धरणों में तीव्र मध्यम लगाने के विषय में कोई आदेश दिखाई नहीं देता। यही बात मैं तुमको पहिले कह चुका हूँ। 'राग तरंगिणी' कार ने जो केदार थाट का वर्णन किया है, उसे मैं तुम्हें हमीर राग समझाते समय बता चुका हूँ। सङ्गीत दर्पण में हनुमत मत के प्रमाण से केदारी को दीपक राग की रागिनी मानी है और इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

"केदारी रिधहीना स्यादौडवा परिकीर्तिता।
नित्रया मूर्छना मार्गी काकलीस्वरमंडिता॥"

दर्पण का शुद्ध थाट दक्षिण का है। उसमें से रे ध छोड़ देने पर सा रे म प ध स्वर रह जाते हैं। दक्षिणी थाट के शुद्ध रे ध अपने कोमल रे ध होते हैं और उनका प्रयोग हमारे केदार राग में नहीं किया जाता, हमें विवाद ग्रस्त विषयों में जाने की आवश्यकता नहीं है। जिस ग्रन्थकार ने केदार का थाट शंकराभरण बताया है उसके आधार को ही हमें मान लेना चाहिये।

प्रश्न—'लक्ष्य सङ्गीत कार' इस विषय में क्या कहते हैं?

उत्तर—'लक्ष्य सङ्गीत कार' का कथन प्रचलित राग रूप का पूर्ण समर्थन करता है, क्योंकि वह तुम्हारी पद्धति का ही ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के अभाव में तुम्हारा प्रचलित सङ्गीत अनेक स्थानों पर निराकार ही हो जाता है, इस ग्रन्थ का वर्णन निम्नलिखित है:—

"कल्याणीमेलके प्रोक्तः केदारो बहुसंमतः।
शंकराभरणेऽप्यन्ये केचिदाहुर्विपश्चितः॥
मद्वंद्वमिह संप्रोक्तं गौणत्वं तीव्रमे यदि।
अन्शत्वं शुद्धमेऽभीष्टं व्यस्तत्वं चापितत्स्वरे॥
रिगोनत्वं रोहणे स्यात्पूर्वांगे संमतं सताम्।
असत्प्रायत्वमारोहे चावरोहे तु गस्यतत्॥"

यह वर्णन तुम्हें पूर्ण रूप से ध्यान में रखना चाहिये क्योंकि यह तुम्हारे प्रचलित राग रूप का उत्तम समर्थन करता है। 'राग लक्षण' में केदार राग इस प्रकार बताया गया है:—

"मेलाचसंभवो धीरशङ्कराभरणाच्च वै।
केदारराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहेप्यवरोहेच धवर्जं षाडवं तथा॥"

यहां भी थाट शंकराभरण माना गया है, परन्तु उसमें धैवत स्वर वर्ज्य करने का आदेश दिया गया है। हमारे प्रचलित केदार में धैवत वर्ज्य नहीं माना जाता। "चत्वारिंशच्छत राग निरूपणम्" नामक ग्रन्थ में केदारी को दीपक की रागनी कहा है और इसका वर्णन (रूप या ध्यान) इस प्रकार कहा गया है:—

"विरहविवुधचित्ता पांडुगंडा कृशांगी ।
मलयजरसपूरैः सिच्यमाना सखीभिः ॥
सरसकमलपत्रैःक्लृप्तशय्यानिविष्टा ।
हिमकरसितवस्त्रा भातिकेदारिकेयम् ॥"

प्रश्न—परन्तु यहाँ इस रागनी के स्वर तो बताये ही नहीं हैं ?

उत्तर—हां, यहां केवल एक चित्र मात्र दिया हुआ है। ऐसे बहुत से ग्रन्थ हैं जिनमें इसी प्रकार का राग वर्णन पाया जाता है। राग के स्वरों के विषय में और अन्य नियमों के विषय में कोई बात ऐसे ग्रन्थों में नहीं बताई गई है। इस स्वरूप मात्र से राग गायन कैसे सम्भव है ? इस प्रकार की शंका यथार्थ है। कोई-कोई कहते हैं कि सात स्वरों के वर्णन बताये गये हैं उनकी मदद से इस प्रकार के चित्रों में लगने वाले स्वरों की खोज की जा सकती है। मेरी समझ से इतनी कुशलता बेचारे श्रोताओं में या गायकों में प्राप्त होना दुर्लभ है। इसके स्थान पर यह मानना अधिक सुविधाजनक है कि हमारे प्राचीन सङ्गीतज्ञों ने एक-एक राग-रागनी को एक-एक देवता माना है। इसका ध्यान करने के लिये किसी मूर्ति का ध्यान होना चाहिये, इस प्रकार से इन स्वरूपों की कल्पना उन लोगों द्वारा की गई है। 'सङ्गीत दर्पण' में सभी राग नियमों के इसी प्रकार के ध्यान दिये हैं। रागनी का ध्यान यथा योग्य रीति से करने पर उसकी प्रसन्नता प्राप्त होती है और तभी उसके द्वारा गायक कीर्ति पा सकता है' कुछ ऐसी ही धारणा उन पंडितों की समझी जा सकती है।

इस विषय पर Sir William jones कहते हैं—"Every branch of knowledge in this country has been embellished by poetical fables; and the inventive talents of the Greeks never suggested a more charming allegory than the lovely families of the six Ragas, named, in the order of seasons above exhibited, Bhairava, Malawa, Shri Rag, Hindola or Vasanta, Deepaka, and Megha; each of whom is a genius, or Demi God, wedded to five Raginees or Nymphs, and father of eight little Genii, called his putras, or sons; the fancy of shakespeare and the pencil of Albano might have been finely employed in giving speech and form to this Assemblage of new aerial beings, who people the fairy land of Indian imagination; nor have the Hindoo peots and painters lost the advantage, with which so beautiful a subject presented them."

प्रश्न—'लक्ष्य सङ्गीत' कार का इस विषय पर क्या कथन है ?

उत्तर—'लक्ष्य सङ्गीत'कार ने एक स्पष्ट वक्ता के रूप में साफ साफ लिखा है।

"रागादीनामुदीर्यंते नानाग्रन्थेषु मूर्तयः।
तत्र तेषां चरागाणां नस्वराद्युपलभ्यते ॥
संगीतदृष्ट्या ते ग्रन्थाः केवलं निष्फला मताः।
मेलाःकथंमूर्तितःस्युरित्यप्युल्लेखमर्हति ॥"

यह कथन गलत नहीं है। मैं तुम्हें यह पहिले ही कह चुका हूँ कि हमारे लिये उन्हीं ग्रन्थकारों की रचना उपयोगी है जिन्होंने अपने ग्रन्थों में रागों के स्वरूप स्पष्ट रूप से स्वरों में समझाये हैं। कल्पद्रुम ग्रन्थ का कथन है "मध्यमांशग्रहन्यासो धैवतो वर्जितः क्वचित्। अर्धरात्र्युत्तरंगानं केदारस्य मतं बुधैः। इस ग्रन्थ का शुद्ध थाट बिलावल का मानने पर यह वर्णन शुद्ध है, परन्तु इस ग्रन्थकार के विषय में पंडितों का मत अधिक अच्छा नहीं है, यह बता देना भी उपयुक्त है।

हमारा केदार राग गंभीर प्रकृति का राग माना गया है। जिन रागों में वादी स्वर का स्थान मध्यम स्वर प्राप्त करता है, अधिकतर वे राग गंभीर प्रकृति के ही होते हैं। इस राग का प्रभाव शीघ्र ही हृदय पर हो जाता है, और देर तक नहीं मिटता। यह कल्याण थाट का एक स्वतंत्र स्वरूप है। इसके मध्यम स्वर को "लक्ष्यसङ्गीतकार" ने 'व्यस्त' और कहीं-कहीं 'मुक्त' विशेषण दिया है। प्रत्येक थाट के इस प्रकार के व्यस्त मध्यम वाले रागों का एक निराला वर्ग बन जाता है, जो राग परिचय की दृष्टि से एक स्वतंत्र साधन के रूप में सहायक होता है। केदार राग में "म रे सा" स्वर समुदाय बहुत ही महत्त्वपूर्ण और मनोहर है। इसका ठीक रूप से अभ्यास करने की आवश्यकता है। इन तीनों स्वरों को भिन्न-भिन्न प्रकार से गाने से भिन्न-भिन्न राग दिखाई पड़ने लगते है। 'म' से मींड़ लेकर 'रे' पर आने से सोरठ व मल्हार की छाया दीखने लगती है। 'म', 'रे' 'सा' इस प्रकार खुले स्वरों का प्रयोग करने पर सारङ्ग की छाया स्पष्ट हो जाती है। इसमें यह विशेषता है कि मध्यम का उच्चारण कर थोड़ा रुकते ही सूक्ष्म गांधार का कण अपने आप ही योग्य परिमाण से लग जाता है, जिसकी आवश्यकता केदार राग में होती है। तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, थोड़े से अभ्यास से उक्त कण अपने आप तुम्हारे गले से निकलने लगेगा। "सा म, मप, पध, पम" इस प्रकार स्वरों को गाते हुए तुम्हारे मध्यम पर आकर वहां से 'रे' पर जाने के पूर्व ही, वह 'ग' अपने आप गले से लग जाता है। परन्तु यदि तुम "सा, रे म, प, नि प, म" इन स्वरों पर से घूमते हुए, मध्यम पर आकर, रिषभ पर जाना चाहोगे तो वह गान्धार अपने आप वर्ज्य हो जावेगा और तुम्हारे स्वरों से 'सारङ्ग' का स्वरूप प्रगट हो जावेगा।

प्रश्न—यह हम समझ गये। अब कृपाकर 'केदार' के स्वरों का स्वरूप (राग विस्तार) समझा दीजिये ?

उत्तर—बहुत अच्छा ! सुनो ?

"साम, मप, पधपम, म, मपधम, पम, रे, सा। सासारेसा, म, रेसा, पम, रेसा, साम, पधप, म, रे, सा।

सारेसानिधप, धधप, सा, रेसा, म, मपधपम, रे, सा। सा म, मप, निध, प, मंपधपम, सांनिधप, मंपधप, मंम, मम, साम, पधपम, पम, रेरे, सा।

निनिधप, मंपधनिधप, मंपधपम, रेंसांनिध, पमंपम, पमंम, पम, साम, मंमंरेंसां, रेंरेंसांनिधप, सांनिधपम, साम, मप, धपम, मपम, रेसा ।

पप, सां, सां, सांरेंसां, धसां, धसां, मंमंरेंरेंसां, सांरेंसांनिधप, मंपधनिधप, मंपधपम, साम, मंरेंसांनिधपम, मपधप, मपम, रेरे, सा।

पपधपम, पप, सां, रेंसां, निधप, धनिधप, मंपधम, साम, पम, निधपम, मपधपम, पम, रे सा।

प्रश्न—अब आगे का राग बताइये ?

उत्तर—हम अब 'कामोद' राग पर विचार करेंगे। इस राग में भी दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है और कल्याण थाट का राग है, इसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है। यह भी तुम्हें मैं समझा चुका हूं कि 'इन दो मध्यम वाले रागों में तीव्र मध्यम गौणता प्राप्त करता है और इस कारण शंकराभरण थाट में भी किसी-किसी के द्वारा माने जाते हैं, कामोद राग का अङ्ग स्वतन्त्र है। इस राग की प्रधान पकड़—"गमप, गमरेसा, रे" स्वर समुदाय है, यह राग रात्रि के प्रथम पहर में गाया जाता है। इस राग का वादी स्वर-पंचम और संवादी षड्ज या रिषभ माना जाता है। इस राग में गांधार स्वर का प्रयोग कुशलता पूर्वक किया जाना चाहिये। 'मगरेसा' सरल अवरोह और 'सारेगम सरल आरोह करने से राग हानि हो जाती है, अतः कोई-कोई विद्वान गांधार को वक्र मानते हैं। इससे पूर्व तुम्हें बताया हुआ नियम दोनों मध्यम होने से इस राग में भी लगता है। अर्थात् आरोह में नि दुर्बल और अवरोह में ग दुर्बल माना जाता है। यद्यपि साधारण रूप से गांधार सभी लगाते हैं, परन्तु राग में ग और नि दोनों स्वर दुर्बल माने गये हैं। लक्ष्य सङ्गीत में इस राग के आरोह के निषाद स्वर को 'असत्प्राय' बताया है।

इस राग के अवरोह में 'ग रे सा' ले लेने से एक दम कल्याण अंग का स्वरूप सामने आ जाता है अतः गांधार पर आकर 'गमरेसा' इस प्रकार प्रयोग करने का चलन है। यह प्रयोग बहुत सुन्दर दिखाई देता है इस राग में दूसरी प्रधान बात बीच-बीच में रे और प की सङ्गति दिखाई देने की है। यह स्वरसङ्गति मल्लार

नामक राग में भी तुम्हें दिखाई देगी, मल्लार में तीव्र मध्यम बिलकुल नहीं लिया जाता इसलिये यह राग बिलकुल निराला हो जाता है। रे प की संगति गायक द्वारा दिखाने पर भी कामोद में लगते ही तीव्र मध्यम जोड़ कर कामोद अङ्ग बता दिया जाता है, जिससे मल्लार राग का भाग स्पष्ट नहीं हो पाता। "जैसे—रेपप, मंप, धप, गमप, गम, रेसा, रे, पप" यह काम बहुत उत्तम दिखाई देता है। इसी प्रकार के राग श्याम और छायानट हैं जिनमें उपरोक्त स्वरूप स्वल्प मात्रा में प्रयुक्त होता है, परन्तु निराले बनाने का अलग नियम है।

कोई-कोई संगीतज्ञ कामोद राग को गौड़ और हम्मीर रागका मिश्रित रूप बताते हैं। कुछ अंशों में यह कथन तथ्य पूर्ण कहा जा सकता है। बिलकुल थोड़े में इस राग का स्वरूप बताने के लिये "सा, रेपपमंप, धसां, निधप, गमप, गमरेसा, रे, इन स्वरों का प्रयोग काफी होगा। जो आरम्भ में रे प की संगति नहीं मानते वे प्रारंभ में गौड़ का स्वरूप 'गमरेसा रे, मंप लगाते हैं, परन्तु राग विस्तार करते हुए उन्हें भी 'रेप' की सङ्गति दिखानी ही पड़ती है, क्योंकि यह अन्य रागों से भिन्न करने का प्रधान साधन है। इस राग को ठीक रूप से न समझ सकने की दशा में गायक प्राय: श्याम या छायानट राग में चला जाता है। छायानट में रे, गमप, गमरेसा" स्वर समुदाय विशेष भाग के रूप में अनिवार्य रूप से लिया जाता है, परन्तु कामोद में इस क्रम के अनुसार स्वर नहीं लिये जाते। श्याम 'राग के आरोह में निषाद का स्पष्ट प्रयोग राग में बड़ा माधुर्य वर्धक होता है और धैवत अल्प हो जाता है। इस राग के स्वरूप बताते समय तुम्हें स्पष्ट रूप से दिखाई देगा। कामोद में रिषभ स्वर बहुत महत्व पा लेता है। यही देखकर कुछ लोग रिषभ को वादी मानते हैं परन्तु मेरे विचार से तुम्हें वादी पंचम ही मानना सुविधा पूर्ण होगा। छायानट में पंचम का महत्व देखकर कामोद में रिषभ को वादी कहते हैं, परन्तु तुम्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। यद्यपि पूर्वाङ्ग राग में वादी स्वर पूर्वाङ्ग का होना चाहिये, परन्तु यह बन्धन स, म, प के लिये नहीं हैं। वे चाहे जिस प्रकार के रागों में वादी स्वीकार किये जाते हैं। कामोद राग में ग और नि स्वर अल्प प्रयुक्त होने के कारण कोई-कोई इसे औड़व मानते हैं। यह ठीक से समझ लेना चाहिये कि इस राग में गांधार स्वर बिलकुल वर्जित नहीं है। ऐसा करने से अलग ही स्वरूप उत्पन्न हो जाता है, 'पमरेसा' स्वरों से तत्काल सारंग दिखाई देने लगता है। हां कामोद में निषाद का कोई महत्व नहीं है, यह कहा जा सकता है। जहां आरोह में निषाद नहीं लिया जाता, वहां इसका महत्व अवरोह में भी अधिक नहीं रहता। कामोद में प्रत्येक समय तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम की संगति में ही कम परिमाण में किया जाता है। 'पमंग' अवरोह और 'गमप' आरोह दोनों प्रकार इस राग में नहीं आते। तीव्र मध्यम का प्रयोग मपधमंप, "गमपगम, रेसारे" इस प्रकार होता है दो मध्यम का राग होने के कारण इसके अन्तरे का आरम्भ प्राय: "पपसांसां, सांरेंसां" इन स्वरों से किया जाता है। ऐसे रागों का सारा आनन्द पूर्वाङ्ग में होता है, अतः गायक लोग उत्तरांग में स्वतंत्रता से 'तान' लेते हैं। अर्थात्—निषाद के नियम की ओर सूक्ष्मता से ध्यान नहीं देते। "पपधनि, सां रें" इस प्रकार आरोह का स्वरूप समुदाय नियमों से विपरीत न होते हुये भी इस राग में असंगत माना

जावेगा, क्योंकि वह यमन का भाग है। फिर भी गायक लोग इसका प्रयोग इस राग में भी करते हैं। क्योंकि प्रत्येक तान में 'पपनिधसां' अथवा "पपधनिधसां" स्वर लेने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। इस कठिनाई को देखते हुए ही विवादी स्वर का अर्थ 'अल्पत्व', 'प्रच्छादितत्व' 'अनभ्यास' आदि किया है। अवरोह में धैवत से पंचम की ओर जाते हुये कोमल निषाद का स्पर्श बहुत सुन्दर रीति से किया जाता है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि यह प्रयोग दोनों मध्यम वाले प्रायः सभी रागों में होता है। कोई-कोई कहते हैं कि इस प्रकार के रागों के अन्तरे बहुत कुछ समान होते हैं। यह कथन भी आंशिक रूप से यथार्थ है।

इस 'कामोद' राग के विषय में 'संस्कृत' ग्रन्थकारों के मत ऐतिहासिक जानकारी और कुछ ग्रन्थों में संतुलन की दृष्टि से तुम्हें बताता हूँ। ग्रन्थों के मतभेद देखकर तुम्हें उलझनों में न पड़कर प्रचलित रूप को ही महत्व देना चाहिये। राग विबोधकार ने 'कांबोदी नामक एक राग का नाम बताया है। इसका थाट इस प्रकार से बताया है:—

"कांबोदीमेले, तीव्रतररिरंतरकंतीव्रतरधौच ।
काकलिका शुचिसमपा अतश्चकांबोददेवक्री ॥"

आगे चलकर—'कांबोदी' के लक्षण इस प्रकार बताये हैं। 'पूर्णासादिरनिर्वा कांबोधंशान्तसाचसायान्हे' इस थाट को अपना शुद्ध थाट कह सकते हैं। इसमें निषाद वर्ज्य करने का विवरण ध्यान देने योग्य है। अन्य ग्रन्थों में "कांभोजी" राग बताया है पर वह बिलकुल निराला राग है। 'राग मंजरी' में कामोद के विषय में लिखा है:—

"निगावेकैकगतिकौ तृतीयगतिकोऽपिमः ।
एपकामोदमेलःस्या दस्मादन्यतराःपरे ॥
सत्रिःसंपूर्णकामोदो गायेत्तुरीययामके ॥"

"राग चन्द्रोदय" ने कामोद को इस प्रकार बताया है:--

"शुद्धौपधौ पंचमको लघुश्च । शुद्धौसरी त्रिश्रुतिकौ निगौच ।
एवं यदास्यात् स्वरमेलनंच । तदाहि कामोदकमेल एषः ॥
षड्जग्रहांशांतविराजमानः । कामोदरागो दिवसांतयामे ॥"

'नृत्य निर्णय' के मत से यह राग इस प्रकार है:—

"कामोदःकामरूपी धृतमुकुटकरः श्वेतवस्त्रंदधानः ।"

× × ×

सम्पूर्णःसत्रिकोऽसौ विधुगतिगनिक श्चापराह्णेचकास्ति ।

'अनूप सङ्गीत विलास' के संकीर्ण रागाध्याय प्रकरण में कामोद सम्बन्धी विवरण इस प्रकार दिया है:—

"गौंडाद्बिलावलाज्जातः कामोदः पंचधाभवेत् ।
कामोदः शुद्धकामोदः सामन्तस्तिलकस्तथा ॥
पुनः कल्याणकामोद इत्युक्तं भरतादिभिः ।
तथाहि शुद्धकामोदो यदि शुद्धेन संयुतः ॥
कामोदेन च संयुक्तः केदारो यदिगीयते ।
तदाभवति सामन्तकामोदः प्रीतिवर्धनः ॥
खटरागोयदायुक्तः कामोदेन ततादिषु ।
तदा तिलककामोदो भवेद्भवविदारकः ॥
यद्वीमने सम्मिलतीहगौंडस्तुरुडे गुणीनामथवाच वृन्दे ।
तदावनीपालसभासुयाति कल्याणकामोद इति प्रसिद्धम् ॥
शुद्धनाटेन कामोदो युक्तः कामोदनाटकः ।
आडीसिंहलिपूर्वस्तु कामोदः सप्तधा भवेत् ॥

ये कामोद के भिन्न-भिन्न भेद बताये गये हैं। इन भेदों पर इस समय हमें विचार नहीं करना है। मिश्र रागों के प्रपंच में हमें इस समय पड़ने की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थों के ये उद्धरण यदि तुम्हारे ध्यान में रह गये तो ठीक ही है, अन्यथा इन्हें याद न रखने से भी तुम्हें कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम्हें प्रचलित सभी बातें बताई गई हैं। केवल लक्ष्यसङ्गीतकार का निम्नलिखित मत याद रखना ही अधिक उपयोगी होगा:—

कल्याणीमेलकेतत्र कामोदो विबुधप्रियः ।
द्विमध्यमप्रयोगेण लक्ष्येऽसौ स्या द्विद्रमेलजः ॥
पंचमस्यैव वादित्वं विदुषामत्र सम्मतम् ।
अमात्यत्वंरिस्वरेस्या दग्वक्रमवरोहणे ॥
तीव्रमस्य प्रयोगोऽपि स्वल्प एवानुलोमके ।
निषादःस्यादसत्प्राय आरोहे तद्विदांमते ॥"

प्रश्न—वास्तव में आपने जो बातें बताई हैं उनका पूर्णरूप से समर्थन 'लक्ष्य-सङ्गीत' में प्राप्त होता है। आपने जिन-जिन ग्रन्थों का विवरण दिया है, उनमें परस्पर स्थान-स्थान पर बड़ी विभिन्नता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में प्रधान कारण तो यह कहा जा सकता है कि ये ग्रन्थकार भिन्न-भिन्न समय में और भिन्न स्थानों पर हुए थे, अतः विभिन्नता होना स्वाभाविक है। हमारे यहां के प्रचलित राग दक्षिण में भी गाये जाते हैं, परन्तु उनका स्वरूप वहां भिन्न है, इसका कारण स्थान भेद है। दूसरा कारण यह है कि सङ्गीत में समाज की रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न समयों में बड़ा परिवर्तन हुआ है।

'लक्ष्य सङ्गीतकार' के समय भी संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त थे और वह ग्रन्थकर्त्ता ने देखे भी थे, परन्तु प्रत्यक्ष उपयोगी संगीत के ग्रन्थों के विपरीत परिवर्तित रूप में देखकर "लक्ष्य प्रधानानि शास्त्राणि" न्याय से प्रचलित संगीत का ही वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। यह कार्य उत्तम हो गया है। इससे एक लाभ यह भी हुआ है कि सौ-पचास वर्ष बाद यदि कोई पंडित इस समय के संगीत को शोध करे तो उसे इस ग्रन्थ से अत्यधिक सहायता प्राप्त हो सकेगी, इस समय हम प्रत्यक्ष ही उपरोक्त ग्रन्थ की सहायता पा रहे हैं यह स्पष्ट है।

प्रश्न—जी हां, आपका कथन ठीक है। अब कामोद का स्वर विस्तार सुनाइये ?

उत्तर—ठीक है, सुनो !

सा, रे पप, मंप, धप, मग, मप, गमप, गमरेसा। रेपप, मंपधप, मंपधमंप, गमप, गमरेसा, रे, पप, गमरेसा। सारेसा, मरे, पप, धधप, मंप, निधप, मपपमप, मरे, पप, गमरेसा। सारेसा मरे, सारेसा, पप, गमप, गम, रेसा, रे सारेसा, सानिधप, पपधधप, गमप, गमरेसा। पप, सां, सां, सांध, सांरेंसां, गंमंपं, गंमंरेंसां, सांसांरेंरेंसां, सांनिधधप, पप, गमप, गमरेसा, मंमंरेंरेंसां, सांरेंसां, धधप, गमप, गमरेसा। सांसांरेंरेंसां, रेंसां, निधप, मंप, धधपमंप, गमरे, गमपगमरेसा।

इस प्रकार से स्वरों को गाते हुए कामोद का स्वरूप तुम्हारे ध्यान में जम जावेगा। कामोद को 'रागलक्षण' कार ने भी 'कल्याण थाट' में बताया है, परन्तु उसका वर्णन इस प्रकार किया है;—

मेचकल्याणिकामेलात्कामोदा परिकीर्तिता।
सन्यासंसांशकंचैव सषड्जग्रहमुच्यते।
आरोहेचावरोहेपि पधवर्जन्तदौडवम् ॥"

यह वर्णन हमारे लिये उपयोगी नहीं है; क्योंकि हम पंचम को वर्ज्य नहीं कर सकते। ऊपर बताये गये राग स्वरूप में तीव्र मध्यम का प्रयोग अनेक जगहों पर तुम्हें दिखाई देगा, परन्तु कोई-कोई गायक इस राग में इस स्वर को बहुत थोड़ा उपयोग में लेते हैं, कभी-कभी तो इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। मेरे विचार से तीव्र मध्यम अवश्य लेना चाहिये, क्योंकि उसके प्रयोग करने से राग वैचित्र्य बढ़ जाता है। इस राग को उत्तम रूप से सीख जाने पर तुम अपना मत कायम करना। "ग म प, ग म रे सा, रे" यह अङ्ग जहाँ तक सुनाई देगा, श्रोता लोग उसे कामोद ही समझेंगे। कुछ बंगला ग्रन्थों में कोमल निषाद स्पष्ट रूप से प्रयोग करने का विवरण भी प्राप्त होता है, परन्तु वैसा हमारे यहां प्रचार में नहीं है। यह रात्रि के प्रथम प्रहर को गाया जाने वाला राग माना गया है। इसमें हम्मीर व गौड़ रागों का मिश्रण होता है, यह भी तुम्हें बताया जा चुका है। Capt. Willard साहब की पुस्तक में मिश्र रागों का एक कोष्ठक पाया जाता है, इसके विषय में भी तुम्हें मैंने बताया है। 'सङ्गीत कल्पद्रुम' ग्रन्थ में 'राग मिलाप' विषय पर एक प्रकरण है, वह तुम्हें उस ग्रन्थ को पढ़ते समय दिखाई देगा।

प्रश्न—परन्तु केवल मिश्रित होने वाले रागों के नाम जानकर ही मिश्रण कैसे किया जा सकता है ? इस मिश्रण के लिए कहीं कुछ नियम बताये गये हैं ?

उत्तर—ऐसा ही तो नहीं है। हम इस मिश्र राग का अर्थ इस प्रकार करेंगे कि जिसे सुनकर श्रोताओं को अलग-अलग विशिष्ट रागों की छाया दिखाई दे उसे मिश्रित राग कहेंगे। कामोद में गौड़ और हम्मीर का आभास हो ही जाता है। "सङ्गीत दर्पण" में कामोद का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"धांशन्यासग्रहा पूर्णा पौरवी मूर्च्छना मता।
मल्लारनिकटेगेया कामोदी सर्वसम्मता ॥
शिवभूषणकेदारयुक्ता सर्वसुखप्रदा ॥"

दर्पण के उक्त कथन की टीका करना ही निरर्थक होगा।

प्रश्न—अब अगले राग के विषय में समझाइये ?

उत्तर—अब मैं तुम्हें छायानट के विषय में बताता हूँ। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर का माना जाता है। अन्य दो मध्यम वाले रागों के समान इस राग को भी ग्रन्थों में शंकराभरण थाट में बताया गया है। हमने तीव्र मध्यम के प्रयोग की सुविधा के लिये इसे कल्याण थाट के अन्तर्गत माना है। प्राचीन ग्रन्थों में भी इस राग के विवरण प्राप्त होते हैं। दक्षिण में इस राग को "रागांगराग" माना जाता है; क्योंकि यह बहुत प्राचीन रागों में से है। दक्षिण मत की धारणा है कि मार्ग सङ्गीत के जो-जो ग्राम राग अर्थात् प्रसिद्ध राग जनक हैं, उनका शुद्ध अङ्ग देशी सङ्गीत में व्यवहृत होने पर रागांगराग कहा जाता है। उनके इस कथन का इस समय कोई अर्थ नहीं है। यह ठीक है कि दक्षिण के विद्वान अपने रागों में 'रागांग' 'भाषांग' आदि भेद अभी भी मानते हैं। रागांग राग के विषय में उनकी धारणा ऊपर बताई ही है। 'भाषांग राग' उन रागों का नाम है जिनके स्वरों में लोक रुचि के अनुसार परिवर्तन हो गया है। उनके इन भेदों की ओर हमें जाने की आवश्यकता नहीं है। छायानट हमारे यहां के रागों में एक साधारण राग कहा जा सकता है क्योंकि बहुत से गायक इसे जानते हैं। इस राग का ध्यान में रखने योग्य अङ्ग 'धपप, रेगमप, मगमरे, सारेसा" है। प्रत्येक गायक उपरोक्त स्वर समुदाय को इस राग में किसी न किसी स्थान पर श्रोताओं के समक्ष रखता ही है; इसी स्वर समुदाय से इस राग की परख की जाती है। ऐसा भी कहते हैं कि उपरोक्त अङ्ग न होने से यह राग ही नहीं हो सकता। बहुत से गायक अपने गीतों को इसी अङ्ग से आरम्भ करते हैं। यह अङ्ग इतना अधिक स्वतन्त्र है कि जिन-जिन रागों में प्रयुक्त किया जावे प्रत्येक पर अपनी छाया डाल देता है और इस कारण उन रागों के नामों के साथ 'नट' शब्द भी जोड़ दिया जाता है। छायानट पूर्वांग राग है। इसकी पूर्व वर्णित पकड़ याद रखनी चाहिये। हमीर का मुख्य अङ्ग—"गमध, निध, प, मंप, धप, गमरे, गमधप, गमरेसा" केदार का मुख्य अङ्ग "सा, म, मप, पधपम, मपम, रे, सा" कामोद का मुख्य अङ्ग "सा, रेपप, मंप, धधप, मंप, गमप, गमरेसा" तुम्हें बताये गये हैं; इसी प्रकार "धधपप, रेगमप, मगमरे सारेसा" स्वर समुदाय छायानट के लिये याद रखना चाहिये। छायानट में 'रेगमप' स्वरों का प्रयोग विलंबित रूप से सुन्दर दिखाई देता है, ऐसा प्रयोग केदार, कामोद, आदि रागों में नहीं किया जाता। नियमानुसार होने के कारण अवरोह में गांधार का

वक्रत्व बहुत सुन्दर दिखाई देता है। जिन अङ्गों को नियम बद्ध किया गया है उन्हें उत्तम रीति से संभालते हुए प्रयोग करना चाहिये। तीव्र मध्यम की स्थिति इस राग में भी केदार, कामोद, जैसी ही अर्थात् पंचम की संगति में प्रयोग करने की है। इस राग में भी 'गमप' अवरोह और पमग आरोह करने से यमन राग दिखाई देने लगता है। उत्तरांग में तान लेते समय निषाद स्वर के नियम को दुर्बल कर दिया जाता है, इसका कारण मैं पहले ही बता चुका हूं। इस राग में तीव्र मध्यम को बिलकुल ही न लेने पर विशेष राग हानि नहीं होती। तीव्र मध्यम इस राग का सौंदर्य और वैचित्र्य वर्धक स्वर होने के साथ ही समय बोधक (रात्रि काल का द्योतक) स्वर भी है, अतः इसका प्रयोग स्थान-स्थान पर योग्य परिमाण से करना उत्तम होगा। दूसरी महत्व की बात यह है कि पंचम और ऋषभ की संगति इस राग में अनोखा माधुर्य भर देती है। "धधपप, रेगमप" इस स्वर समुदाय में पंचम से ऋषभ पर जाते ही श्रोताओं को राग पहिचान में आ जाता है। यह चमत्कार ही है कि 'सा' रेरे, पप, इस प्रकार स्वर समुदाय आते ही श्रोताओं को कामोद का रूप ध्यान में आ जाता है और 'पपरेरे' स्वर समुदाय का प्रयोग होते ही छायानट का स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। यह विलक्षणता तुम्हें सदैव ध्यान में रखनी चाहिये। मन्द्र स्थान के पंचम से मध्य स्थान के ऋषभ पर आने से भी छायानट का आभास उत्पन्न हो जाता है। इस राग में कोई कोई पंचम वादी मानते हैं और ऋषभ को संवादी मानते हैं। इसके विपरीत कोई कोई ऋषभ को वादी और पंचम को संवादी मानते हैं। हम पंचम को ही वादी मानेंगे। अधिकतर इस राग के गीत धैवत से आरम्भ किये जाते हैं। यह देखकर कोई कोई इस स्वर को भी वादी मानते हैं, परन्तु यह ठीक नहीं है। राग के सम्पूर्ण स्वरूप पर विचार करने से धैवत का महत्व नहीं दिखाई देता। खींच तानकर धैवत को महत्व देने से राग हानि होना सम्भव है। इस राग में हमीर और केदार के अनुसार अवरोह में कभी कभी कोमल निषाद का कण लगा देते हैं। वह बुरा नहीं दिखाई देता क्योंकि यह प्रयोग केवल अवरोह में ही किया जाता है, परन्तु यह स्वर इस राग का नियमित स्वर नहीं है क्योंकि सां नि ध प इस प्रकार का अवरोह करना कभी भी शक्य नहीं है। इस राग को सुनते हुए श्रोताओं को यमन, गौड़, हम्मीर, बिलावल आदि रागों का थोड़ा थोड़ा आभास होता है। इस राग का स्वरूप निम्नलिखित है।

सासा, धधपप, रेगमप, मग, मरे, सारेसा।

सासा, रेरे, गमप, मगग. मरे, सारेसा, सारेसा, निधपप, पपरेरे, रेगमप, गमप, गमरे, सा।

गमप, गमरे, धधपप, गमरे, पगमरे, सारेसा, सारेगमप, गमरेसा।

रेरेसासा, गमरेसा, पपगमप, गमरेसा, धधप, रेगमप, सारेसा।

पपसांसां, सांरेंसां, सांरेंगंमंपं, गंगंमंरेंसां, सांसांरेंरें, सांसांधप, रेगमप, गमरेसा।

सासारेसा, सारेगम, रेसा, पमंपधप, गमरेसा, धधपप, रेगमप, मगमरे, सारेसा, सांरेंसांनिधप, निधप, धधपरेगमप, गमरेसा।

कुछ गायक छायानट को मिश्र राग बताते हैं उनका कथन है कि यह 'छाया' और 'नट' इन दो रागों का मिश्रित स्वरूप है। एक गायक ने मुझे 'छाया' राग के

आरोह में निषाद लगाकर और अवरोह में गांधार लेकर छाया और नट का भेद दिखाया था। यह प्रकार भी तुम ध्यान में रख सकते हो। प्रचार में छाया और छायानट भिन्न भिन्न नियमों से गाने वाले तुम्हें अधिक प्राप्त नहीं होंगे। यमन और कल्याण भीम व पलासी, अल्हैया व बिलावल (ये अन्तिम राग अभी तुम्हें नहीं बताये हैं) इनके भेदों के अनुसार ही यह प्रकार भी है। 'रत्नाकर' में 'छाया' राग भिन्न प्रकार का राग माना गया है और उसमें भी यह भेद माना गया है। इस राग में पंचम और ऋषभ की संगति कोई कोई मींड द्वारा सुन्दर रूप से प्रदर्शित करते हैं। अब मनोरंजन की दृष्टि से ग्रन्थों में किये गये छायानट के वर्णन को देखते हैं। 'संगीत पारिजात' ग्रन्थ के लेखक पंडित अहोवल इस राग के विषय में लिखते हैं:—

"छायानट्टस्तुविज्ञेयः शंकराभरणस्वरैः ।
आरोहणे निवर्जः स्यादवरोहेगवर्जितः ॥
धैवतोद्ग्राहसंयुक्तो रिन्यासोऽनेकमध्यमः ।"

यह वर्णन प्रचलित स्वरूप से बहुत कुछ मिलता है। 'राग लक्षण' ग्रन्थ में छायानट मेल में दोनों गंधार और कोमल निषाद स्वरों को ग्रहण किया गया है। हमारे तीव्र ऋषभ स्वर को उन्होंने वर्ज्य किया है। यह रूप हमारे उपयोग का रूप नहीं है। छायानट के थाट को उन्होंने "वागधीश्वरी" मेल बताया है। यह ग्रन्थ भी दक्षिण की ओर का है। 'संगीत सारामृत' ग्रन्थ में छायानट के विषय में स प्रकार कहा है:—

"समपाः स्युस्त्रयःशुद्धाः षट्श्रुत्यृषभसंज्ञकः ।
अंतराख्यानगांधारः पंचश्रुतिकधैवतः ॥
कैशिक्याख्यनिषादश्चेत्येतत्सप्तस्वरैर्युतः ।
छायानट्टस्यमेलोऽस्मिन्नेतदाद्या भवंतिहि ।
छायानाटः स्वमेलोत्थः संपूर्णः सग्रहांशकः ।
उपांगंसायमेवैष गेयः संगीतकोविदैः ॥"

यह थाट 'राग लक्षण' के थाट से मिलता है। षट्श्रुति ऋषभ हमारा कोमल ग है, अन्तर ग हमारा तीव्र ग, पंच श्रुति ध हमारा तीव्र ध और कैशिक नि हमारे कोमल नि स्वर के नाम हैं। यह रूप भी हमारा स्वीकृत नहीं है।

राग मंजरी:— "छायानाटस्त्रिसः सायं काकन्यंतरराजितः ॥"

राग चन्द्रोदयः—

शुद्धौसमौ पंचमकोविशुद्धः शुद्धोनिषादो लघुध्यमश्च ।
निगौ यदा त्रिश्रुतिकौ भवेतां कर्णाटगौडस्य तदैष मेलः ॥
षड्जग्रहः सांतयुतश्चसांशोऽतःराश्रितकाकलिदीप्यमानः ।
छायादिमः सायमसौविगेयो नटाव्हयो गानविचक्षणेन ॥

नृत्य निर्णय:—

"कर्णाटस्यैवमेले प्रकटितसुतनुश्चादिमध्यांतषड्जः ।"

कर्नाट थाट में दोनों गांधार ग्रहण करने का उल्लेख है। इस प्रकार का छायानट भी प्रचार में ग्राह्य नहीं है। 'रागतरंगिणी' ग्रन्थ में छायानट को केदार मेल का राग बताया है। यह थाट हमारी पद्धति का शुद्ध स्वरों का थाट (बिलावल थाट) ही है, यह पहिले भी कहा जा चुका है। दर्पण, स्वरमेल कलानिधि इन ग्रन्थों में इस राग का वर्णन प्राप्त नहीं होता। "चतुर्दण्डि प्रकाशिका" ग्रन्थ में छायानट का थाट राग लक्षण के समान ही बताया गया है। अब "लक्ष्य संगीत" के छायानट का राग विवरण बताता हूँ:—

"स्यात्कल्याणीमेलकेऽपि छायानट्टोऽतिरंजकः ।
रिपसंवादसंपन्नः संध्याकालोचितः पुनः ॥
सुसंगतिरत्रप्रोक्ता पर्योश्चैवसुसंमता ।
पंचमादृषभे पातो नूनं स्यात् हृदयंगमः ॥
रागेस्मिन् गायकैः कैश्चिद्धैवतो ग्रह ईरितः ।
न्यसनं षड्जस्वरेऽपि मते तेषां सुनिश्चितम् ॥
आरोहणे तीव्रमस्य प्रयोगो दृश्यते कृतः ।
गवक्रंस्यादवरोहे नियमेन सतांमते ॥

प्रश्न—यह वर्णन हमारे प्रचलित स्वरूप के अनुरूप है। हम इसे अच्छी तरह ध्यान में रक्खेंगे। अब आप कौनसा राग बतायेंगे ? हमारे विचार से "श्याम" राग का वर्णन बताइये ?

उत्तर—ठीक है, श्याम राग साधारण रागों में से नहीं है। इस राग को बड़े-बड़े गायक ही जानते हैं। यह अप्रचलित है और इसके रूप के विषय में भी प्रचार में मतभेद हैं। यह एक मत से कल्याण थाट में दोनों मध्यम लगने वाला राग माना जाता है। इस राग को केदार और कामोद राग से प्रयत्न पूर्वक अलग करना पड़ता है, क्योंकि ये सब समप्रकृतिक राग कहलाते हैं। "केदार" के विषय में हम जानते हैं कि इसके आरोह में रिषभ वर्ज्य है, गांधार स्वर पंगु है और निषाद स्वर अल्पप्राय है। श्याम राग में आरोह में रिषभ लेते हैं और निषाद भी स्पष्ट दिखाया जाता है। कामोद में गन्धार स्वर थोड़ा प्रयुक्त होता है और अवरोह में थोड़ा सा निषाद भी लिया जाता है। श्याम राग के आरोह में निषाद स्वर बहुत वैचित्र्य उत्पन्न करता है और गांधार भी स्पष्ट रूप से लिया जाता है। यमन कल्याण व शुद्धकल्याण में गांधार स्वर प्रधान स्वर माना गया था केदार में मध्यम स्वर प्रधान माना गया है; कामोद और छायानट में पंचम स्वर को वादी बनाया गया है, यह तुम जानते ही हो। श्याम राग में वादी स्वर षड्ज

और सम्वादी मध्यम माना जाता है। यह स्वरूप तुम्हें बहुत पसन्द आवेगा। इस राग में चतुःश्रुतिक स्वर सा, म, प बहुत बढ़ाये जाते हैं। केदार राग में मध्यम प्रधान स्वर (वादी) और षड्ज सम्वादी होता है। इस राग में इससे विपरीत स्थिति में षड्ज वादी और मध्यम सम्वादी माना जाता है, परन्तु इन्हीं दो स्वरों को अन्य स्वरों की अपेक्षा अधिक बढ़ाने से "श्याम" राग में केदार का स्वरूप आ जाने का सन्देह रहता है। पंचम स्वर लेते हुए उसमें तीव्र मध्यम जोड़ा जाता है। इस स्थान पर कामोद का आभास हो जाता है। एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि इस राग में मध्यम और पंचम को समान महत्व नहीं देना चाहिये। श्याम राग में पंचम स्वर को वादी मानने वाले इस राग में कामोद का अङ्ग अधिक दिखाते हैं।

"रे, म, रे" स्वरों का प्रयोग केदार में नहीं होता और कामोद में भी नहीं किया जाता। इस राग में यह प्रयोग तो होता ही है और साथ में आगे 'नि, सा' स्वर भी लगा दिया जाता है। "रे, म, रे, नि, सा, रे" यह तान श्याम राग की बहुत मधुर तान है। इस तान से श्रोताओं को मल्लार या सोरठ का आभास होना सम्भव है। इसके हेतु गायक अन्तिम रे से एक दम 'मं प' आरोह करते हैं। यह काम उत्तम दिखाई देता है। श्याम का स्वरूप उत्तम रूप से ध्यान में रखने के लिए निम्न स्वरों पर ध्यान देना चाहिये। "रे मं रे, नि सा रे, मं प, ग मं प ध, मं प, ग म प, ग म रे, नि सा, प नि सा, रे" इस प्रकार से गाते हुए यह अन्य रागों से बहुत अलग किया जा सकता है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि इस राग के आरोह में धैवत नहीं लिया जाता, परन्तु निषाद का प्रयोग होता है। एक तरह से "आरोहे तु निवर्जः स्यात्" नियम का यह राग अपवाद कहा जा सकता है। 'श्याम' को कोई-कोई श्याम कल्याण भी कहते हैं। कोई-कोई श्याम और कल्याण दो अलग अलग राग मानते हैं। 'लक्ष्य सङ्गीत' में इसे 'श्याम' ही कहा है। ग्रन्थों में भी इसी प्रकार दिखाई पड़ता है। अतः हम इतना ही नाम ग्रहण करेंगे। यह राग रात्रि के प्रथम प्रहर में गाया जाता है। इस राग में रे म, रे प ये दोनों ही स्वर संगतियां आ सकती हैं। इन्हें अलग-अलग बताकर गायक राग वैचित्र्य उत्पन्न कर देते हैं। ग और नि स्वरों के अल्पत्व से भी इस राग का स्वतन्त्र अस्तित्व बना रहता है। मध्यम और रिषभ की मींड के अन्तर्गत गुप्त रूप से घसीट द्वारा गांधार दिखाया जाता है, इस समय सोरठ का आभास होने के पूर्व ही रिषभ से तीव्र मध्यम पर जाकर राग की विलक्षणता बताने के साथ उसके रूप की रक्षा भी कर ली जाती है। कोई-कोई गायक श्याम राग में वादी स्वर धैवत को मान कर हमीर जैसा प्रकार गा कर दिखाते हैं। मुझे यह स्वरूप पसन्द नहीं है। हमीर को देखते हुए धैवत को वादी स्वर बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ। मेरे मित्र राजा सुरेन्द्र मोहन टैगोर (इनका मुझसे प्रत्यक्ष परिचय भी है) द्वारा दी हुई पुस्तक 'संगीतसारसंग्रह' में एक ग्रन्थ (सम्भवतः सङ्गीत नारायण) के कई रागों का वर्णन संकलित किया है, इनमें श्याम कल्याण भी बताया है, उसका कुछ वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ:—

"संपूर्णः श्यामरागः स्यात् धांशन्यासग्रहात्मकः ।
प्रदोषो गानकालोऽस्य निर्णीतो गानकोविदैः ॥"

इस वर्णन में धैवत को अन्शस्वर कहा गया है। अब यह कठिन प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि इस ग्रन्थ का शुद्ध थाट कौनसा है? इस विषय में सङ्गीतसार संग्रह में कोई स्पष्टता प्राप्त नहीं होती। शंकराभरण शुद्ध थाट ऊपर की व्याख्या में नहीं लिया जाता है क्योंकि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसे शुद्ध थाट नहीं माना है केवल लक्ष्य सङ्गीत ने ही शंकराभरण को शुद्ध थाट माना है, परन्तु यह आधुनिक ग्रन्थ है। कुछ ऐसे भी पंडित हैं जो धैवतांश ग्रहन्यासः जैसे वर्णों में कोमल रे, ध, के थाट को मानने के समर्थक हैं। 'सङ्गीतसार संग्रह में' कुछ दूसरी ही व्याख्या प्राप्त होती है। वह नीचे लिखे अनुसार है:—

"धैवतांशग्रहन्यासश्छायानट्टः प्रकीर्तितः ।
संपूर्णः कथितश्चासौ कविभिस्तत्वदर्शिभिः ॥"
"रिग्रहन्यासकांशा स्यात् छाया संपूर्णलक्षणा ।
प्रदोषेच प्रगातव्या विधिरेष प्रकीर्तितः ॥"
"षड्जग्रहा मरहिता छाया शृङ्गारवीरयोः ।
गांधारांशग्रहन्यासा वीरशांतिरसाश्रिता ।
संपूर्णागौडसारंगी गेयामध्यान्हतः परम् ॥"

"सङ्गीतनारायण" ग्रन्थ कलकत्ता की Royal Asiatic Library में है।

प्रश्न—और कौन-कौन से ग्रंथ वहां पर हैं?

उत्तर—मैं वहाँ गया था। मुझे उक्त लायब्रेरी के Catalogue में यह ग्रन्थ प्राप्त हुए। (१) सङ्गीत रत्नाकर (२) रत्नाकर टीका (कल्लिनाथ) (३) रत्नाकर टीका (सिंह भूपाल) (४) सङ्गीतनारायण (पुरुषोत्तम) (५) कल्प द्रुम (६) सङ्गीतभाषा (७) पारिजात (८) सङ्गीत शिरोमणि (९) सङ्गीत सागर (१०) अमोघानन्दिनी शिक्षा (११) रागमाला (क्षेमकर्ण) (१२) सङ्गीत दर्पण (१३) नारदीय शिक्षा (१४) संकीर्णराग लक्षण। अब तो उस पुस्तकालय में और भी अधिक ग्रंथ हो गये होंगे। यदि उधर प्रयास करने का अवसर मिले तो उस Library को एक बार अवश्य देखना चाहिये।

प्रश्न—यह कैसे कहा जा सकता है कि अब उस लायब्रेरी में अधिक ग्रंथ होंगे।

उत्तर—मैं सङ्गीत सम्बन्धी जानकारी के हेतु बनारस गया था। वहाँ गाय घाट पर रहने वाले पं० बालमुकुन्द जी मालवीय कर्मकांडी के घर प्रसंगवशात् गया था। ये सज्जन भिन्न विषयों के हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह करते हैं और इस

विषय के शोधक व्यक्तियों को बेचते हैं। इन्होंने मुझे बताया कि कलकत्ते के प्रसिद्ध महा महोपाध्याय पं० हरिप्रसाद जी M. A. ने उनके पास से संगीत सम्बन्धी निम्नलिखित ग्रन्थ लिये हैं:—

१—राग विबोध
२—गांधर्व वेद
३—राग चुम्बकम शिखचिमालिका
४—संगीत संग्रह
५—संगीत विद्यानिधान
६—संगीत कल्पलता
७—संगीत रघुनंदन
८—आनंद जीवन (मदन पाल)
९—सोमेश्वर मत
१०—गीतगिरीश काव्य
११—संगीत रसकौमुदी
१२—संगीतसार (केदारनाथ)
१३—गीतसार
१४—सामप्रकाश

पं० बालमुकुन्द जी ने यह भी बताया था कि ये ग्रन्थ पं० हरिप्रसाद जी ने कलकत्ते की R. A. Library के लिये ही लिए थे। अब वहाँ जाकर उन ग्रन्थों को देखने का अवसर मुझे तो शायद ही प्राप्त हो, परन्तु तुम कभी समय निकाल कर अवश्य देख आना। मैंने अपने कलकत्ता प्रवास में जिन-जिन ग्रन्थों को उस लायब्रेरी में देखा था, उनके विषय में अपनी डायरी में विस्तृत नोट-लिख लिये थे। उनको भी समय पर तुम्हें बताऊँगा।

मैंने मद्रास के इलाके में रामेश्वर तक प्रवास किया। उधर मद्रास, तंजावर, त्रिवेंद्रम, और मैसूर के प्रसिद्ध पुस्तकालयों में संगीत सम्बन्धी ग्रन्थ भी मुझे देखने को प्राप्त हुए थे।

प्रश्न—उन पुस्तकालयों में कौन-कौन से ग्रन्थ हैं?

मद्रास Oriental Library

उत्तर—१-नृत्ताल पुराण संग्रह २-रागविशेष ३-संगीत दर्पण ४-संगीत रत्नाकर ५-सं० सारसंग्रह ६-स्वरमेल कलानिधि।

तंजावर Palace Library

१-सङ्गीत सारामृत २-सङ्गीत मुक्तावली ३-राग रत्नाकर ४-अभिनय दर्पण ५-अष्टोत्तरशत ताल लक्षण ६-ताल प्रस्तार ७-ताल लक्षण ८-ताल दीपिका ९-राग-प्रस्तार १०-ताल दश प्राण दीपिका ११-राग लक्षण १२-दंतिलकोहलीयम् १३-सङ्गीत-मकरंद १४-चत्वारिंशच्छत रागनिरूपणम् १५-सङ्गीत दर्पण १६-रत्नाकर, और दो चार ग्रन्थ थे जिनके नाम मैं भूल गया हूँ।

त्रिवेंद्रम Palace Library

१-अङ्गहार लक्षण २-नाट्य ग्रंथ ३-नाट्य वेद ४-नाट्य वेद विवृत्ति ५-नृत्य-रत्नाकर ६-बालराम भरत ७-भाव प्रकाश ८-रसार्णव सुधाकर ९-सङ्गीत चिन्तामणि १०-सङ्गीत चूड़ामणि ११-सङ्गीत सुधा १२-सङ्गीत सुधाकर (हरिपाल) १३-सप्तस्वर लक्षण १४-स्वर तालादि लक्षण।

मैसूर Government Oriental Library

१-अभिनय दर्पण २-अभिनय प्रकरण ३-अभिनय मुकुर ४-अभिनव भरत-सार संग्रह ५-आदि भरत ६-सङ्गीत दर्पण ७-भरत सार संग्रह ८-सङ्गीत चूड़ामणि ९-सङ्गीत मकरंद १०-सङ्गीत रत्नाकर व्याख्या ११-सङ्गीत लक्षण दीपिका १२-सङ्गीत लक्षण १३-सङ्गीत समय सार १४-स्वर प्रस्तार १५-स्वरमेलकलानिधि।

उत्तरी भाग में भी मैंने बहुत यात्रा की। वहां पर उल्लेखनीय ग्रंथों का स्थान महाराज बीकानेर की लायब्रेरी है। पंजाब, काश्मीर और नैपाल में भी बड़े-बड़े पुस्तकालय हैं और उनमें सङ्गीत ग्रन्थ भी हैं, परन्तु अभी तक वहां जाने का मुझे अवसर प्राप्त न हो सका, बीकानेर लायब्रेरी में मेरे द्वारा प्रत्यक्ष देखे हुए निम्न ग्रन्थ हैं:—

१-सङ्गीत सूत्र २-सङ्गीत रत्नाकर टीका (कल्लिनाथ) ३-सङ्गीत रत्नाकर टीका (सिंहभूपाल) ४-सङ्गीत राज रत्नकोश ५-अनूप सङ्गीत रत्नाकर ६-अनूप सङ्गीत विलास ७-सङ्गीत विनोद ८-सङ्गीत वर्तमान ९-सङ्गीतानूपराग सागर १०-सङ्गीतोद्देश ११-श्रृङ्गारहार संगीत १२-स्वरमेल कलानिधि १३-हृदयप्रकाश १४-हृदय कौतुक १५-संगीतानन्द जीवन १६-संगीत रागमाला (क्षेमकर्ण) १७-संगीत दर्पण १८-दर्पण (हिन्दी) १९ हनुमन्मतीय राग विभाषा २०-संगीत-राग कौतुक २१-सङ्गीतोपनिषत्सार २२-रागतत्व २३-सङ्गीत कल्पतरु २४-राग-विबोध २५-राग काव्य रत्न २६-रागमाला २७-संकीर्णराग २८-राग ध्यान २९-गमक मंजरी ३०-सङ्गीत मकरन्द ३१-मुक्तावली ३२-नृत्याध्याय ३३-मुखचाली-नृत्याध्याय ३४-सङ्गीतसार नृत्याध्याय ३५-स्वराध्याय भाषा ध्रुपद ३६-मुरलीप्रकाश ३७-पारिजात ३८-सङ्गीत सारकलिका ३९-राग चन्द्रोदय ४०-रागमाला ४१-राग-मंजरी ४२-नृत्यभेद निर्णय ४३-संकीर्ण रागाध्याय ४४-सङ्गीत शारिरिकं ४५-सङ्गीत-विनोद। मेरी समझ में इस संग्रह के समान अन्य किसी शहर में कोई संग्रह नहीं है। मेरे देखे हुये ग्रन्थों में जो जो जानकारी मिलने योग्य थी, उसके नोट मैंने अपनी डायरी में लिख लिये थे। वे सभी तुम्हारे सामने आते ही जा रहे हैं, अतः इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं हैं। एक प्रधान बात यह मैं तुम्हें बताये दे रहा हूँ कि सङ्गीत सम्बन्धी इतने ग्रन्थ उपलब्ध हैं, परन्तु किसी में रत्नाकर के ग्रामराग अथवा जाति प्रकरण की स्पष्टता प्राप्त नहीं होती। रत्नाकर के रागों की व जाति प्रकरण की अक्षरशः अनुकृति करने वाले अनेक ग्रन्थकार व उनकी रचनाएँ हैं, परन्तु उसे उत्तम रूप से समझकर लिखने अथवा समझा देने का कोई प्रमाण इन ग्रन्थों में नहीं मिलता। इस बात को तुम और अच्छी तरह तभी समझ सकोगे, जब मैं तुम्हें ये ग्रन्थ समझाऊँगा। मैंने ऊपर जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनमें से अधिकांश रत्नाकर के बाद की रचनाएँ हैं। 'लक्ष्य सङ्गीतकार' ने इन मध्यकालीन ग्रन्थ-कारों के लिये जो कुछ कहा है वह कठोर दिखाई देने पर भी असत्य नहीं है। अस्तु अब हम अपने अपूर्ण विषय की ओर चलें।

प्रश्न—जी हां, अभी हमें 'श्यामराग' का संदर्भ—पूरा करना है।

उत्तर—इस राग के नाम संस्कृत ग्रन्थों में साम, श्याम, सोम, श्याम-कल्यानी आदि दिखाई पड़ते हैं। इनमें से सोमराग हमें बिलकुल ही भिन्न जान

पड़ता है राग लक्षण में इस राग में रे ध नि स्वर कोमल माने हैं। इस प्रकार के राग को हमारे गायक कभी भी श्याम मानने को तैयार नहीं होंगे। आगे तुम्हें यह रूप एक स्वतन्त्र राग के रूप में आता हुआ प्राप्त होगा। ऐसे पंडित भी हैं जो साम व श्याम रागों को भिन्न नहीं मानते 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में साम राग का वर्णन इस प्रकार किया है—

"शंकराभरणान्मेला त्संभूतस्सामरागकः ।
संपूर्णः सततं गेयो मंद्रमध्यमभूषितः ।।"

तुलाजी महाराज के ग्रन्थ सङ्गीत सारामृत में साम का वर्णन इस प्रकार हुआ है:—

"कांभोजीमेल उत्पन्नः सामरागो निवर्जितः ।
षाड़वः सग्रहन्यासः सदागेयः शिवप्रदः ।।"

"आरोहे गंधार लंघनम्" यहां भी कहा गया है। "राग तरंगिणीकार" ने श्याम नाम का स्पष्ट उल्लेख किया है और उसे केदार थाट अर्थात् हमारे शुद्ध स्वर थाट में माना है, यह सब ऊपर बताया जा चुका है। "चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्" ग्रन्थ में श्याम कल्याणी को हंसक राग के पुत्र सामन्त राग की भार्या माना है। यहां स्वरों की स्पष्टता नहीं है। चतुर पंडित ने लक्ष्यसङ्गीत में श्याम का वर्णन इस प्रकार किया है:—

कल्याणीमेलसंप्रोक्तः श्यामरागः सुसंमतः ।
कल्याणस्य प्रकारोऽयमिति कैश्चिदुदीर्यते ।।
मध्यमावत्र द्वौ प्रोक्तौ लक्ष्यमार्गविचक्षणैः ।
स्यात् षड्जस्यैव वादित्वं संवादित्वं तु मेस्वरे ।।
गायने चास्य रागस्य कामोदांगं स्फुटं भवेत् ।
निगाल्पत्वं तत्र दृष्टं नैवमत्र मते सताम् ।।
रिपयो रिमयोर्वापि संगती रक्तिदा भवेत् ।
आरोहणे धैवतस्य वर्जनं सुखमावहेत् ।।

यह वर्णन प्रचलित रूप का है, अतः स्वीकारणीय भी है। "अनूप सङ्गीत-विलास" में 'श्याम नाट' नामक राग दिया हुआ है, उसका वर्णन इस प्रकार है:—

"श्यामनाटस्तुकेदारमेले गेयो मनीषिभिः ।
गादिपूर्णश्चमन्यासः पमांशः श्यामनाटकः ।।"

इस वर्णन में थाट शंकराभरण कहा है और वादी स्वर म अथवा प बनाने के लिये कहा गया है। श्याम राग नट राग से अनेक समय मिश्रित होता प्रतीत होता है, इस कारण ही कुछ ग्रन्थकारों ने 'श्यामनाट' का ही लक्षण बताया है। हमीर, केदार, कामोद आदि राग भी नटराग से सुन्दर रूप से मिश्रित किए जा

सकते हैं। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' ग्रन्थ में भी शान्त कल्पक नामक एक मेल राग का नाम दिया है। यह दक्षिण के ७२ थाटों में से ही एक थाट है। यह थाट हमारे यमन कल्याण का ही है। शांत कल्याण में भी आरोह-अवरोह संपूर्ण कहे गये हैं।

प्रश्न—अब आप श्याम राग का स्वरूप बताइए ?

उत्तर—सुनो !

सा, रे, मरे, रेमरेनि़सा, रे, मंप, प, धप, मंप, मरे, पगमरे, नि़सा।
पनि़, सा, रेनि़सा, मगमरे, नि़सा, मंपधप, मंपम, रे, पगमरेनि़सा।
मम, रेनि़सा, रेनि़, मरेनि़, पनि़, रेनि़सा, सारेमंप, गमरेनि़सा।

पपनि़सा, रेरेनि़सा, मंपरेनि़सा, रेमरे, मंप, निमंप, मंपधमंप, मग, गमपधमंप, गमप, गमरे, नि़सा, रे, मंप। पप, सां, सां, रेंनिसां, निसांरें, मंरें, निसां, निधप, मंपप, निरेंनि, मंप, मंपप, धमंप, मग, गमप, धमंप, गमप, गमरे, नि़सा।

इस राग में, मैं कहां-कहां किस प्रकार से ठहरता हूँ इसे ध्यान पूर्वक याद रखने की आवश्यकता है। इस राग में मध्यम से ऋषभ तक की मींड व साथ ही नि़ सा स्वरों का मधुर उच्चारण बहुत ही विशेषता पूर्ण होता है।

प्रश्न—अब 'गौड़ सारङ्ग' राग के विषय में बताइये ?

उत्तर—ठीक है, मैं बताता हूँ। गौड़ सारंग के बाद यमनी राग का वर्णन तुम्हें सुनाता हूँ, परन्तु उसे हम सहूलियत की दृष्टि से बिलावल थाट बताते हुए लेंगे। यमनी, बिलावल का ही एक प्रकार है। इस कारण जब तक तुम बिलावल नहीं समझ सकोगे तब तक यमनी बिलावल समझना असुविधा पूर्ण होगा। यमनी को कल्याण थाट में ग्रहण करने का कारण केवल उसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग है।

प्रश्न—ठीक है ऐसा ही कीजिए।

उत्तर—अच्छा अब गौड़ सारंग की ओर देखिए। गौड़ सारंग अपनी पद्धति में सम्पूर्ण राग माना गया है। इसमें दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। इस राग के गाने का समय बहुमत से दिन का दूसरा प्रहर माना गया है। मेरी दृष्टि से यह समय इस प्रकार के तीव्र स्वरों के रागों के उपयुक्त नहीं है, उसे दोपहर का राग मानने का कारण इसके नाम में सारंग का प्रयोग मात्र है। दोपहर के समय में तीव्र 'ग' वाले राग सुन्दर नहीं होते इसी नियम के अनुसार ही सारंग में धैवत और गांधार स्वर कम किये गये हैं। गौड़ सारङ्ग को ठीक प्रकार से देखने से उसमें सारङ्ग का भाग बिलकुल नहीं दिखाई देता, फिर भी इस बेचारे की तकदीर में दोपहर का समय जड़ दिया गया है। इस राग में तीव्र मध्यम लिया जाता है। यह भी इसके दोपहर के समय के अयोग्य होने का एक कारण कहा जा सकता है। सारङ्ग के पूर्व गाये जाने वाले राग आसावरी, तोड़ी, देव गांधार, जौनपुरी, आदि हैं। इन सब में गांधार कोमल ग्रहण किया जाता है। सारङ्ग के पश्चात गाये जाने वाले राग धनाश्री, भीमपलासी, धानी और मुलतानी आदि हैं। इनमें भी गांधार कोमल ही माना गया है। स्वतः सारंग में गांधार को बिलकुल वर्ज्य माना गया है।

ऐसी दशा में गौड़ सारंग का समय दोपहर निश्चित करना युक्ति सङ्गत नहीं है। मेरी समझ से अनेक मर्मज्ञों का भी यही मत होगा, तो भी यदि बहुमत को भी स्वीकार किया जावे तो यह एक अपवाद ही माना जवेगा। इसे दिन का ही राग मानें तो इसे बिलावल के समकालीन मानना अधिक युक्ति सङ्गत है, यह अधिक उत्तम होगा। बिलावल को दिन के प्रथम प्रहर में गाने की प्रथा प्रसिद्ध ही है। गौड़-सारंग के उत्तरांग में बिलावल की अल्प, स्वल्प, छाया दिखाई पड़ सकती है। इसी प्रकार का दोनों मध्यम वाला राग यमनी बिलावल भी है। यह मैंने स्वतः का मत तुम्हें सुनाया है। तुम शीघ्र ही समझने लगोगे कि कौन सा मत ठीक है और कौन सा गलत है। यह राग दो मध्यम का है अतः इसमें निषाद स्वर गौड़ ही रहेगा। गौड़ सारंग में कुछ स्वरूप कल्याण का भी है, अतः कोई कोई विद्वान इसका वादी स्वर गांधार मानते हैं। मेरे ख्याल से इसे दिवस गेय मानने पर इसका वादी स्वर धैवत और संवादी गांधार मानना योग्य है। ये दोनों स्वर इस राग के प्रधान स्वर हैं। मैं इस राग को इस रूप में बिलावल के समय गाया जाने वाला मानता हूँ। तीव्र मध्यम की स्थिति पूर्ववत् पंचम की संगति में ही रहती है मंपध, मंप, मग, रेगरे, मग, प, रेसा, यह स्वर समुदाय इस राग की पहिचान कराने वाला है। तीव्र मध्यम का प्रयोग बिलकुल नहीं करने पर भी यह राग पहिचान लिया जाता है, परन्तु प्रयोग करने पर राग वैचित्र्य बढ़ जाता है। इस राग को रात्रिगेय मानने पर तीव्र मध्यम की रात्रि सूचकता और गांधार का वादित्व उत्तम शोभनीय हो जाता है। ग्रन्थों में यह राग शंकराभरण थाट में माना गया है। किसी किसी ग्रन्थ में इस राग का वादी स्वर स्पष्ट रूप से गंधार बताया गया है। गौड़ सारंग वक्र रागों में से है। इस राग के आरोह-अवरोह को ठीक रूप से देखने पर इसकी वक्रता स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न—क्या इस राग का स्वरूप केवल आरोह-अवरोह से नहीं दिखाया जा सकता?

उत्तर—हाँ, क्यों नहीं। इस प्रकार से आरोह-अवरोह करने से यह हो जायेगा। सा, रेसा, गरे, मग, पर्म, धप, निधसां। सांध, निप, धम, पग, मरे, ग सा" देखा यह स्वरूप कितना वक्र है? ऐसा नहीं समझना चाहिये कि गायक लोग सदैव इसी रीति से गाते हैं, जलद तानों में इतनी वक्रता नहीं संभाली जा सकती। इस राग का मुख्य अङ्ग अर्थात् मुख्य पकड़ "सारेसा, गरे, मग स्वर समुदाय का प्रयोग करते हुए राग अस्तित्व बनाये रखते हैं। हमीर राग को भी वक्र राग ही कहा जाता है। 'सारेसा, गमध, निध, सां, सांरेसां, निधपमंप, धधप, गमरे, गमधप, गमरे, सारेसा" इस प्रकार के स्वर समुदायों से हमीर स्पष्ट हो जाता है। अच्छा बताओ यह स्वर समुदाय किस राग का अङ्ग हो सकता है? सा, म, मप, पधप, म, मप, धप, म, रेसा.

प्रश्न—यह अङ्ग केदार राग का होना चाहिये?

उत्तर—बिलकुल ठीक है। "सारेरेपध, मंप, धप, धप, गमप, गमरेसा" यह कामोद का अंग भी तुम जानते हो। और "रेमरे, निसा, रे, मंमंपप, धमंप, म, रे,पगमंरे, नि, सा" यह श्याम का अङ्ग है। वक्र रागों का स्वरूप विलम्बित लय में गाते हुए तो ठीक-ठीक संभाला जा सकता है।

परन्तु जलद लय में उसे साधे रहना मुश्किल होता है। अतः उस राग को व्यक्त करने वाले स्वरों को विशेष रूप से ध्यान में रखना पड़ता है। पंचम स्वर से आगे के स्वरों पर गायक ज़रा तान लेते हैं, पर आश्रय राग यमन का स्वरूप लेने लगता है, तु योग्य स्थानों पर राग वाचक स्वर समुदाय स्पष्ट रूप से दिखाकर गायक मूल राग दिखा दिया करते हैं। इस कार्य को जान-बूझ कर करने से गायक की प्रशंसा ही होती है। कई गायक तान बाजी में इतने तन्मय हो जाते हैं कि उन्हें गाये जाने वाले राग का भी ध्यान नहीं रहता। ऐसे गायक कितनी ही तानें क्यों न लें, परन्तु उनका गायन श्रेष्ठ नहीं कहलाता। यह सदैव ध्यान में रखना चाहिये कि केवल गला तैयार करना ही कुशलता या विद्वता नहीं है। तुम्हें इस बात के अनेक उदाहरण प्राप्त होंगे कि अधिक तानबाजी से श्रोतागण उकता जाते हैं। धीरे-धीरे नियमों को ध्यान में रखते हुए गायन आरम्भ करना और फिर गति बढ़ानी चाहिये। फिर भी समय समय पर मूल राग की प्रत्यक्षता सिद्ध करते रहने से ही श्रोताओं की तृप्ति होगी और तुम्हारी विद्वता उत्तम दिखाई देगी। केवल "रे सा, ग रे, म ग, प रे, सा" स्वरों के गाने से ही गौड़सारंग दीखने लगता है। यह अङ्ग किसी भी राग में मिला देने पर वहां पर भी गौड़ का आभास उत्पन्न होता है।

प्रश्न—इस राग का विस्तार हमें समझा दीजिये ?

उत्तर—हाँ, सुनाता हूँ:—

सा, रेसा, मग, रेगरेसग, प, रेसा। सारेमग, पपर्मप, धधप, धप, मग, रेगरेसग, परेसा। धधर्मप, निधर्मप, धर्मप, धप, मग, रेगरेमग, परेसासारेसासा, धनिधप, धसा, गरेमग, रेगरेसग, परेसा। धधर्मप, निध, सांनिध, निधप, र्मप, निधप, र्मपधर्मप, मग, निधर्मप, मग, रेगरेमग, परेसा।

पपसां, सां, सांरेंसां, सांरेंमंगं, रेंगंरेंसंगं, पंरेंसां, सांरेंसां, निधनिधप, र्मप, धनिधप, र्मपधर्मप, मग, धर्मपमग, रेगरेमग, परेसा।

इस राग को गाते हुए गायक बहुधा 'प रे सा' स्वरों का उपयोग करते हुए प्रचार में पाये जाते हैं। यह उपयोग भी वे प्रत्येक तान पूरी करते समय ही करते हैं, इसी प्रकार मैंने भी ऊपर के स्वरों में तुम्हें बताया है। तुम इस प्रकार की कितनी तानें कंठस्थ कर सकते हो ? एक बार उत्तम रूप से नियम समझ लेने के पश्चात् तुम्हारे जैसों को अधिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। धीरे-धीरे गाते-गाते राग के अङ्ग और स्वरूप अपने आप ध्यान में आ जाते हैं और यह भी समझ में आ जाता है कि इस राग में कौन सा स्वर समुदाय सुसंगत है और कौनसा असंगत है। दैनिक अभ्यास करते जाने से थोड़े ही दिनों में वास्तविक जानकारी हो जाती है। हमारे गायकों को तानबाजी किसी ने सिखाई नहीं है, परन्तु दैनिक रूप से गाते हुए उनके गले अपने आप तैयार हो गये हैं। अस्तु—

अब मैं तुम्हें "गौड़सारंग" के विषय में एक-दो ग्रन्थों के मत सुनाता हूँ। 'हृदय प्रकाश' ग्रन्थ का कथन है—"मार्दिगपांशः सम्पूर्णः गौड़सारंग उच्यते" इस ग्रन्थ के थाट के विषय में मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। कलकत्ता के किसी ग्रन्थकार

ने यह राग अपने प्रचलित स्वरों में बताकर उसके सम्पूर्ण होने का ही संस्कृत ग्रन्थ का हवाला दिया है। परन्तु यह नहीं बताया है कि उस ग्रन्थ का शुद्ध थाट कौन सा है। इस प्रकार के आधार देने का कोई विशेष अर्थ नहीं होता। ग्रन्थकार ने किस उद्देश्य से प्रमाण दिया है, यह वे ही जाने। 'लक्ष्यसङ्गीतकार' ने ग्रन्थ कैसा होना चाहिए, इस विषय पर एक स्थान पर कहा है:—

"स्वाभिप्रायं स्पष्टतया जानीयुः सकला जनाः।
एतदर्थं लेखनंस्याद्ग्रन्थानामित्यसंशयम् ॥
प्राचीनशास्त्रे ह्यज्ञाते सङ्गीतपरिवर्तनात्।
वस्तुस्थितिरुदाहार्या ग्रन्थकृद्भिरमायया ॥
परिवर्तनशीलं यत्संगीतं ग्रन्थकर्तृभिः।
प्राचीनं नष्टप्रायं तत्स्पष्टीकर्तुं न शक्यते ॥
नावश्यकं हि तत्किंतु ययाकयापि भाषया।
तदसामंजस्य बुद्धिं र्नष्टेत्येव ब्रवीम्यहम् ॥"

मेरा ख्याल है कि उपरोक्त कथन ठीक ही है। जब कि प्राचीन सङ्गीत नष्ट प्राय हो चुका है, तब इस प्रकार स्पष्ट लिखने में कोई हर्ज नहीं? पश्चिमी (यूरोपियन) विद्वानों के ग्रन्थ देखने से तुम्हें पता चलेगा कि वहां इस प्रकार की संदिग्ध और लोगों को भ्रम में डालने वाली बात कभी नहीं पाई जाती।

'राग तरङ्गिणीकार' विद्यापति गौड़सारङ्ग के विषय में इस प्रकार लिखता है:—

"मेघरागस्य संस्थाने मेघो मल्लार एवच।
गौड़सारंगनाटौच रागो वेलावली तथा ॥"

मेघ थाट के स्वर बताते हुए ग्रन्थकार ने कहा है:—

"गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमश्च पंचमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, निषादः षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमः शुद्धो भवति, तदा मेघ संस्थानम् ॥"

तरङ्गिणी का शुद्ध थाट काफी का है। इसे ध्यान में रखते ही ऊपर की सभी बातें साफ हो जाती हैं। गौड़सारङ्ग में हम दोनों मध्यमों का प्रयोग करते हैं, यह इस ग्रन्थ अनुसार भी प्रमाणित होता है। रागलक्षण, पारिजात, राग विबोध, रागमंजरी, नृत्यनिर्णय, राग चन्द्रोदय आदि ग्रन्थों में यह राग ही नहीं पाया जाता।

प्रश्न—चलो यह और सुविधा हुई। कृपाकर राग चन्द्रोदय कर्त्ता पुण्डरीक के विषय में कुछ जानकारी दें। इनके श्लोक मुझे अच्छे दिखाई दिये हैं?

उत्तर—पुण्डरीक विट्ठल के ग्रन्थ राग चन्द्रोदय, राग मंजरी, रागमाला, नर्तन निर्णय आदि बीकानेर नरेश के पुस्तकालय में तुम्हें प्राप्त हो सकते हैं। इन्हें मैं तुम्हें आगे सिखाने वाला हूँ। पंडित पुण्डरीक विट्ठल दक्षिण की ओर के थे, ऐसा उनके लिखने से पता चलता है। राग चन्द्रोदय के स्वराध्याय के अन्त में उसने लिखा है—"श्री कर्णाटजातीयपुण्डरीकविट्ठलविरचिते सद्रागचन्द्रोदये स्वरप्रसादः समाप्तः"। यह एक उत्तम पण्डित हो गया है।

प्रश्न—तो फिर इनका शुद्ध थाट दक्षिण का ही है। आपने यह हमें पहिले भी बताया था। चन्द्रोदय में इन्होंने राग रचना किस प्रकार की है, यह भी थोड़े में समझा दीजिये। इस विषय में अधिक गहराई में न जाकर हम साधारण जानकारी ही चाहते हैं।

उत्तर—इस ग्रन्थकार ने मुख्य थाट या मेल १७ माने हैं। इन्ही में ६८ जन्य रागों का वर्णन किया है। मैं तुम्हें ये सारे थाट बताये देता हूँ। इन सभी श्लोकों को कण्ठस्थ करने की आवश्यकता नहीं है, केवल समझ रखना ही पर्याप्त है।

"तत्राद्यमेलस्तु मुखारिकाया। स्ततोभवेन्मालवगौडमेलः।
श्रीरागमेलस्तदनंतरं स्यात्। स्याच्छुद्धनट्टाह्वयकस्य मेलः॥
देशाक्षिकाया अपिमेलकः स्या। त्कर्णाटगौडस्य भवेत्सुमेलः।
केदारकाख्यस्य भवेच्चमेलो। हिजेजमेलोऽपि हमीरमेलः॥
कामोदरागाभिधकस्य मेल। स्ततस्तुतोड्याह्वयकस्य मेलः।
आभीरिकायाः सुमतश्च मेलो। मेलो भवेच्छुद्धवराटिकायाः॥
स्याच्छुद्धरामक्र्यभिधस्य मेलो। देवक्रियायाश्च भवेत्सुमेलः।
सारङ्गमेलस्तदनंतरं स्यात्। कल्याणमेलस्तुततः पुरः स्यात्॥
हिन्दोलरागस्य भवेत्तुमेलः। स्यान्नादरामक्र्यभिधस्य मेलः।
इतीरितास्ते नवचंद्रसंख्या। एवंपरांस्तान्कलयंतु तज्ज्ञाः॥"

इस प्रकार के १६ थाट चन्द्रोदय में पुण्डरीक ने बताये हैं। जन्य रागों की व्यवस्था इस प्रकार की गई है।

१—मुखारी— १ मुखारी।
२—मालवगौड—१ मालवगौड २ गौंडक्रिया ३ गुर्जरी ४ टक्क ५ पाडी ६ कुरंजी ७ बहुली ८ पूर्वी ६ रामक्री १० द्रविड़गौड़ ११ गौडी १२ बंगाल १३ आसावरी १४ पंचम १५ रेवगुप्ति १६ प्रथममंजरी १७ कर्णाट-बंगाल १८ शुद्धगौड १६ शुद्धललित २० देवगांधार २१ मारविका।
३—श्री— १ श्री २ मालवश्री ३ धन्नासिका ४ भैरवी ५ सैंधवी।
४—शुद्धनाट— १ शुद्धनाट।
५—देशाक्षी— १ देशाक्षी।

६–कर्णाट गौड़—	१–कर्णाटगौड़ २ तुरुष्कतोड़ी ३ शुद्धबंगाल ४ छायानट ५ सामंत ।
७–केदार—	१–केदार २ नारायणगौड़ ३ बेलावली ४ शंकराभरण ५ नट–नारायण ६ मध्यमादि ७ गौड़मल्लार ८ सालंगनाट ६ भूपाली १० सावेरी ११ सौराष्ट्री १२ काम्बोजी ।
८–हिजेज—	१–हिजेज २ भैरव
६–हंमीर—	१–हम्मीरनाट
१०–कामोद—	१–कामोद
११–तोड़ी—	१–तोड़ी
१२–आभीरी—	१–आभीरी
१३–शुद्धवराटी--	१–शुद्धवराटी २ सामवराटी
१४–शुद्धरामक्री--	१–शुद्धरामक्री २ त्रावणी ३ देशी ४ विभास ५ ललित ।
१५–देवक्री--	१–देवक्री ।
१६–सारंग--	१–सारंग ।
१७–कल्याण--	१–कल्याण ।
१८–हिंदोल--	१–हिंदोल ।
१६–नारदरामक्री--	१नारदरामक्री ।

प्रश्न--यह बहुत उत्तम वर्गीकरण है, परन्तु जब तक उन १६ थाटों के स्वर हम नहीं जान सकें, तब तक इस ग्रन्थ के रागों को कैसे समझा जा सकता है ? मैं आपसे चाहे जो कुछ प्रश्न पूछ रहा हूँ, इससे विषयान्तर जरूर हो रहा है; परन्तु आपने जब इतनी जानकारी दी है तो इतना और भी बता दीजिये ।

उत्तर:--ठीक है, मैं संक्षेप में वह भी बताये देता हूँ । पुण्डरीक की परिभाषा तुम्हें एक बार ध्यान में जमा लेनी चाहिये । अपने सा, म, प शुद्ध स्वर हैं, वे ही उनके शुद्ध सा, म, प स्वर हैं । अपने तीव्र ग, और नि स्वरों को उन्होंने लघु म और लघु सा, बनाया है । अपने कोमल रे और ध स्वर उनके शुद्ध रे, और ध स्वर हैं । अपने कोमल ग और कोमल नि स्वरों को कहीं पर साधारण ग और नि कहा गया है । अपने स्वर रे और ध स्वर उनके शुद्ध ग और नि स्वर हैं । अपना तीव्र म स्वर उनका लघु प स्वर है । इस ग्रन्थ में लघु शब्द का प्रयोग नवीन ही किया है । पुण्डरीक ने केवल श्री राग को च:तुश्रुति रे व ध बताया है । इन स्वरों के स्थान पर अपने शुद्ध रे ध स्वर एक श्रुति ऊपर ठहरते हैं । परन्तु दक्षिण की ओर हमारे रे ध (शुद्ध) स्वर चतु:श्रुतिक रे ध समझे जाते हैं । राग विबोध का श्रीराग का थाट पुण्डरीक के थाट से उत्तम रूप से मिलता है । मेरा ख्याल है कि मैंने कहीं-कहीं तुम्हें इन स्वरों के विषय में बताया भी है, परन्तु तुम्हें और एक बार बता देता हूँ जिससे तुम्हें सहूलियत होगी ।

१--मुखारी–सभी स्वर शुद्ध अर्थात् दक्षिण का शुद्ध थाट ।

२--मालवगौड़–सा रे म प ध, स्वर शुद्ध षड़ज और मध्यम लघु (अपना भैरव थाट)

३-श्री—रे ध चतुःश्रुतिक, साधारण ग, कैशिक नि, सा म प शुद्ध (अपना काफी थाट)

४-शुद्धनाट—नि ग त्रिश्रुतिक, षड्ज व मध्यम लघु, सा म प शुद्ध (दोनों ग नि)
५-देशाक्षी—सा, म लघु; ग त्रिश्रुतिक, सा म प नि शुद्ध।
६-केदार—सा म लघु, स म प शुद्ध, नि ग शुद्ध (शंकराभरण)
७-कर्नाट गौड़—सा म प शुद्ध, शुद्ध नि, लघु म, नि ग त्रिश्रुतिक।
८-हिजेज—सा रे म प ध शुद्ध, म लघु, नि कैशिक।
९-हंमीर—सा, ग, म, प, ध शुद्ध; सा म लघु।
१०-कामोद—प ध शुद्ध, लघु प, सा रे शुद्ध, नि ग त्रिश्रुतिक।
११-तोड़ी—सा रे म प ध शुद्ध, साधारण ग, कैशिक नि (भैरवी थाट)
१२-आभीरी—सा प म ध शुद्ध, साधारण ग, शुद्ध ग, लघु सा।
१३-शुद्धवराटी—सा रे ग प शुद्ध, ध शुद्ध सा प लघु।
१४ शुद्ध रामक्री—सा रे प ध शुद्ध, म लघु, सा प लघु (पूर्वी)
१५-देवक्री—म सा प नि शुद्ध, सा प लघु, म पंचश्रुतिक (तात्र)
१६-सारङ्ग—सा ग म प शुद्ध, सा, प लघु, नि कैशिक।
१७-कल्याण—सा ग प ध शुद्ध, सा प लघु, साधारण ग।
१८-हिंडोल—सा रे म प ध शुद्ध, ग नि त्रिश्रुतिक।
१९-नादरामक्री—सा रे म प ध शुद्ध, साधारण ग, सा लघु।
विकृत स्वरों के नाम याद करने के लिये निम्न श्लोक उपयोगी होंगे।

"शुद्धाः स्वरायेतु भवंति सप्त। तज्जान् विकारान् प्रवदामि सप्त।
स्वोपांतिकश्रुत्यधिसंश्रितः स्यात्। षड्जाभिधानोलघुषड्जनामा॥
एवं मपौ स्तो लघुशब्दपूर्वौ। साधारणो गः प्रथमश्रुतिस्थः।
मस्य द्वितीयश्रुतिगोऽतरः स्यात्। षड्जाव्हयस्य प्रथमश्रुतिस्थः॥
तथा द्वितीयश्रुतिवर्तमानो। निः कैशिकी काकलिनामधेयः।
अथो रिधावाद्यगतिश्रुतिस्थौ। लक्ष्येषु वेदश्रुतिकौ भवेताम्॥
मः पंचमाद्यां श्रुतिमेत्य लक्ष्ये। क्वचिच्च पंचश्रुतितां प्रयाति।

भाइयो! अब हमें इस विषय में अधिक गहराई से जाने की आवश्यकता नहीं है। लक्ष्य सङ्गीतकार ने अपने ग्रन्थ के अन्त में कुछ वर्गीकरण दिये हैं, उनमें यह वर्गीकरण नहीं बताया है, अतः उसे मैंने तुम्हें बता दिया। भावभट्ट के ग्रंथ के वर्गीकरण भी आवश्यक हैं, परन्तु इस स्थान पर नहीं किये जा रहे हैं। वे वर्गीकरण मैंने तुम्हारी सुविधा के लिये पहिले ही अन्यत्र लिख दिये हैं। लक्ष्य सङ्गीतकार ने ये सभी ग्रन्थ देखे हैं, ऐसा उसके कथन से स्पष्ट दिखाई देता है।

प्रश्न—अब आप लक्ष्यसङ्गीतकार का मत बताइए?

उत्तर—वह इस प्रकार है—

"कल्याणीमेलेके ज्ञेयो गौडसारङ्गनामकः ।
अतिवक्रस्वरूपोऽपि द्वाभ्यां माभ्यां सुभूषितः ॥
मध्यान्हार्हो भवेन्न्यल्पो गवक्रश्चावरोहणे ।
वादित्वं स्याद्धैवतस्य संवादित्वं तु गे पुनः ॥
नूनं विसंगतं चास्य गानं मध्यान्हिकं भवेत् ।
वादित्वं चेन्मतं गेतदिति धांशो मतो मया ॥"

यह मत हमें स्वीकृत है। इसे पूर्ण रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है।

प्रश्न—बहुत अच्छी बात है। हम इसे स्मरण रक्खेंगे। अब बिलावल थाट को आरम्भ कीजिए ?

उत्तर—अच्छा सुनो! 'बिलावल' राग बहुत प्राचीन प्रतीत होता है। संस्कृत ग्रन्थों में वेलावली, वेलावल, बिलावली आदि नाम दिखाई पड़ते हैं। इनके राग रूपों में भेद पाया जाता है। किसी-किसी ग्रन्थ में वेलावली में गांधार कोमल बताया गया है। प्रचार में गांधार तीव्र ही ग्रहण किया जाता है। बहुमत से बिलावल का थाट 'शंकराभरण' माना गया है। शंकराभरण दक्षिण का अत्यन्त लोकप्रिय राग है। हमारे यहां बिलावल राग भी उसी प्रकार लोकप्रिय है, इन दोनों रागों में तुम्हें बहुत साम्यता दिखाई पड़ेगी। ये दोनों राग प्रभातगेय माने गये हैं। ग्रंथों में शंकराभरण को प्रभात का राग बताया गया है। शंकराभरण राग आजकल हमारे यहां भी प्रचलित हो गया है। हमारा बिलावल भी दक्षिण की ओर लोकप्रिय होता जा रहा है। दक्षिण की पद्धति में 'विलहारी' नामक एक प्रकार है जो कुछ अन्शों में अपने बिलावल से मिलता हुआ है। हम लोग बिलावल को प्रातःकाल ही गाते हैं।

प्रश्न—तब तो यह राग उत्तरांग वादी और अवरोह में विलक्षण रूप का होगा ?

उत्तर—ठीक कहते हो, जिस प्रकार संध्या के संधिप्रकाश रागों के बाद कल्याण गाया जाता है, उसी प्रकार प्रभातकालीन संधि प्रकाश रागों के बाद बिलावल गाया जाता है, कोई-कोई इसे प्रभातकालीन कल्याण भी कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं है कि यह योजना अत्यन्त कुशलता से की हुई है।

प्रश्न—दक्षिण में शंकराभरण थाट से निकलने वाले कौन-कौन से राग लोकप्रिय हैं ? उसी प्रकार अपने यहां कौन-कौन से राग इस थाट से उत्पन्न होकर लोकप्रिय हुए हैं ?

उत्तर—दक्षिण के एक प्रसिद्ध सज्जन ने मुझे बताया है कि इस थाट से निकले हुए निम्नलिखित राग वहां प्रचलित हैं:—

(१) शंकराभरण (२) अठाणा (३) आरभी (४) कुरंजी (५) केदार (६) सावेरी (७) बिलहरी (८) बिहाग (९) हंसध्वनि (१०) नवरोज (११) देवगांधारी।

इन रागों के आरोह-अवरोह तुम्हें दक्षिण की अनेक तेलगू पुस्तकों में दिखाई पड़ेंगे। वहां पर थाट और आरोह-अवरोह का अत्यधिक महत्व है।

प्रश्न—दक्षिण भाग के सङ्गीत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें मुख्य रूप से किन किन पुस्तकों का पढ़ना आवश्यक है ?

उत्तर—मेरी समझ से तुम्हें ये पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिए।

(1) Capt. Day's "The Music and musical Instruments of southern India"

(2) Chinnuswami Moodliars' "Oriental Music"

(३) संगीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी by Subram Dixit, Pandit.

(४) पंडित शिंगराचार्य की क्रमिक पुस्तकें.

(५) गान-विद्या-संजीवनी by Mr. T. Naidu M. R. A. S.

(६) भरतकल्पलता मंजरी

इनमें से प्रथम दो पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिये वे अँग्रेजी में हैं, और बहुत उत्तम हैं। शेष पुस्तकें तेलगू में हैं।

प्रश्न—दक्षिण पद्धति के कौन कौन से संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए ?

उत्तर—चतुर्दण्डिप्रकाशिका, संगीतसारामृत, राग लक्षण आदि ग्रन्थ देखना उपयोगी होगा। 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' ग्रन्थ तो दक्षिणी पद्धति की जड़ है, ऐसा कहना गलत नहीं कहा जा सकता। यह ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। मद्रास इलाके के इटय्यापुर नामक स्थान में एक पंडित सुब्रह्मदीक्षित नामक सुप्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। उनके घराने में ही यह ग्रन्थ है। स्वर्गीय दीक्षित जी मेरे मित्र थे, उन्होंने मुझे उस ग्रन्थ की प्रतिलिपि दी है, वह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। वह ग्रन्थ ही तुम्हें पढ़ना है। Mr. Moodliar एक बुद्धिमान लेखक थे वे इन्हीं पंडित दीक्षित के अनुयायी थे।

प्रश्न—Capt. Day साहेब का ग्रन्थ कहीं प्राप्त होता है।

उत्तर—मेरे ख्याल से अब नहीं होता। इसकी एक प्रति B. B. R. A. Society Library में है, ऐसा मैंने सुना है। संगीत विषय के ग्रन्थों की अधिक खपत न होने से प्रायः संगीत ग्रन्थों की अधिक आवृति नहीं हो पाती। यह दुर्भाग्यवश हमारे यहां भी अनुभव किया जा सकता है, अस्तु अब हम अपने विषय की ओर बढ़ें।

प्रश्न—किन्तु यह बात अभी रह गई है कि अपने यहां बिलावल थाट के कौन कौन से राग प्रसिद्ध हैं ?

उत्तर—इस थाट में हमें जिन-जिन रागों को ग्रहण करना है वे ये हैं—

(१) शुद्ध बिलावल (२) अल्हैया बिलावल (३) शुक्ल बिलावल (४) देवगिरी (५) नट बिलावल (६) ककुभ (७) मलुहा केदार (८) गुणकली (९) पहाड़ी (१०) देशकार (११) मांड (१२) बिहाग (१३) शंकरा (१४) दुर्गा (१५) हँसध्वनि (१६) हेमकल्याण (१७) सर्पर्दा (१८) लच्छाशाख, इसी प्रकार के बिलावल के प्रकार प्रचार में माने

जाते हैं और गायक भी बिलावल के और भी भेद मानते हैं, परन्तु उनका स्वरूप बहुत विवाद ग्रस्त है, ऐसा देखा गया है।

प्रश्न--एक राग के भिन्न मानने की प्रथा प्राचीन ही दिखाई देती है? आपने यहां बिलावल के अनेक प्रकार कह दिये हैं इसी प्रकार कल्याण के बताये थे।

उत्तर--हां 'रत्नाकर' के उपांग राग आदि प्रपंच इसी धारणा पर बने हुए हैं। वहां गौड़, बिलावली, गुर्जरी आदि के भिन्न-भिन्न प्रकार माने गये हैं। मार्ग सङ्गीत में भाषा, विभाषा, अन्तर भाषा व देशी सङ्गीत में भाषांग, क्रियांग, उपांग आदि वर्ग पाये जाते हैं। दक्षिण की ओर के रामनाथ नामक स्थान में एक प्रसिद्ध पंडित हैं उन्होंने मुझे रागांग, भाषांग, क्रियांग, उपांग आदि की व्याख्या इस प्रकार बताई थी।

"रागांग राग" शुद्ध शास्त्रीय रागों को कहा जाता है। ग्रन्थों में बताये हुए आरोह अवरोह से प्रयत्न पूर्वक गाये जाते हैं। ये Classical अर्थात् प्रथम वर्ग के राग हैं। शास्त्र नियम भंग होते ही रागांग राग नहीं रह पाता।

"भाषांग राग" वे राग हैं जो बड़े शास्त्रीय सिद्धान्त पर आश्रित नहीं रहते। देशों की भिन्न-भिन्न प्रचार शैलियां द्वारा इनका निर्माण हो जाता है। ऐसे राग जिन शास्त्रीय रागों के निकट होते हैं, उसी राग के भाषांग माने जाते हैं। ऐसे रागों के नाम प्रान्तीय नामों से सम्बन्धित होते हैं।

"क्रियांग राग" वे राग हैं, जिनमें शास्त्र वर्णित नियम तो कायम रहता है परन्तु (बहुधा अवरोह में) कोई विवादी स्वर का उपयोग भी विचित्रता व लोक-रंजन की दृष्टि से कर लिया जाता है। शुद्ध कसौटी पर ये राग भ्रष्ट कहे जा सकते हैं, परन्तु रुचि व रक्तिरंजकता को देखते हुए यह कृत्य कुशलता की दृष्टि से किया जाता है।

"उपांग राग" ये भी क्रियांग के ही अनुसार रागांग रागों को भ्रष्ट कर उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु इनमें एक विशिष्ट भिन्नता है। क्रियांग राग में शुद्ध राग स्वरूप कायम रखते हुए कोई नवीन स्वर ग्रहण किया जाता है, परन्तु उपांग रागों में मूल राग के स्वरों में कुछ या कोई स्वर कम किया जाकर नया स्वर ग्रहण किया जाता है। हमारी हिन्दुस्थानी पद्धति में इस प्रकार का कोई प्रपंच नहीं है।

अभी यह व्याख्या उत्तम, स्पष्ट रूप से समझने योग्य है, यह कोई भी कह सकेगा। 'सङ्गीत विलास' नामक ग्रन्थ में पण्डित भाव भट्ट ने यही व्याख्या इस प्रकार की है।

"ग्रामोक्तानांच रागाणां छायामात्रम् भजंतिहि। गीतज्ञैःकथिताःसर्वे रागांगास्तेन हेतुना॥ भाषाच्छायाश्रिता येच जायंते तादृशाःकिल। भाषांगास्तेन कथ्यंते गायकैःसौतिकादिभिः॥ रागाच्छायानुकारित्वादुपांगमिति कथ्यते। उपांगानिमतंगेनांतर्भावितानितेषुच"॥

बिलावल के भिन्न प्रकार गायकों द्वारा प्रचार में गाये जाते हैं। इन भेदों को अलग-अलग स्पष्ट रूप से पहिचानने में तुम्हें अवश्य ही प्रयास होगा। इसका कारण यह भी है कि बिलावल के अधिकांश भेद संपूर्ण जाति के हैं और उसी तरह प्राय: सभी उत्तरांग वादी भी हैं। प्रत्येक भेद में राग के प्रमुख अङ्ग (बिलावल अङ्ग) को रखने के प्रयत्न में बहुतों के अन्तरे समान दिखाई पड़ने लगते हैं। इस कठिनाई को मिटाने की दृष्टि से राग पहिचान के स्वरों को आरम्भ के स्वरों में या "मुखड़े" में ही स्थित कर दिया जाता है। यहां हमने बिलावल के जिन-जिन प्रकारों को पसन्द किया है, उनमें से अधिकांश के लक्षण पर्याप्त रूप से शीघ्र ही ध्यान में आने योग्य हैं।

'बिलावल' का एक निश्चित अवरोह इस प्रकार है 'सां, नि ध, प ध नि ध प, म ग, म, रे सा' इस अवरोह के स्वरों का प्रयोग करते ही बिलावल स्पष्ट हो जाता है। उत्तरांग वादी रागों की यह एक विशेषता है कि वे राग अवरोह में ही स्पष्ट रूप से पहिचाने जा सकते हैं। मेरे विचार से तुम्हें इन स्वरों को याद कर लेना चाहिये। बिलावल के अवरोह में मध्यम स्वर वर्ज्य नहीं किया जाता। मध्यम वर्ज्य करने से "देशकार" का स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। रात्रि के प्रथम प्रहर के रागों में धैवत वादी बनाने पर वह "मारक" (राग भ्रष्टकर्त्ता) हो जाता है, वही धैवत प्रभात कालीन प्रथम प्रहर के रागों का वादी के रूप में पोषक हो जाता है। रात्रि के रागों में धैवत वादी बनाने पर वे प्रभात के राग दिखाई देने लगते हैं, इसी प्रकार प्रभात के किसी भी राग में जितना रे ग स्वरों को बढ़ाया जावे उतना ही रात्रि कालीन राग दिखाई देने लगता है। यह क्यों होता है? इस विवादग्रस्त विषय पर अभी हमें विचार नहीं करना है। यह कहना भी बहुत कुछ ठीक है कि हमारा सङ्गीत रे, ग, ध, नि स्वरों की भिन्न-भिन्न व्यवस्था पर अवलम्बित है। प्रभात के प्रथम प्रहर के बाद से संध्या के सन्धिप्रकाश रागों तक तीव्र गन्धार वाला राग शायद ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा। "गौड़सारंग" एक अपवाद स्वरूप है, यह तुम्हें मैं बता ही चुका हूँ। तीव्र मध्यम दिन के बहुत थोड़े रागों में प्रयुक्त होता है, यह भी तुम्हें मैंने बताया ही है। इसी प्रकार की कुछ साधारण बातों पर ध्यान देते रहना चाहिये।

प्रश्न—हम तो इस प्रकार का एक साधारण नियम ही बना लेते हैं कि गायक यदि दिन में गाता है तो पहिले यह देखना चाहिए कि वह तीव्र मध्यम का प्रयोग करता है या नहीं। तीव्र मध्यम मिलने के बाद रे स्वर होता है या नहीं, यह देख लेना चाहिए। तीव्र रे दिखाई देने पर गौड़सारङ्ग या यमनी जैसा राग समझ लेना चाहिए, यदि वह रे स्वर वर्जित कर रहा है, तो बहुधा हिन्दोल राग समझ लेना चाहिये?

उत्तर—शाबाश! इस प्रकार की युक्ति सोच निकालना अयोग्य नहीं है। तीव्र मध्यम की मदद से तुम्हें राग पहिचान अनेक स्थानों पर प्राप्त होगी। बिलावल में हम वादी स्वर धैवत और सम्वादी गांधार या रिषभ को मानेंगे। गांधार को सम्वाद

मानने का प्रचार अधिक है। कोई-कोई गायक गांधार स्वर को ही वादी मानते हैं। परन्तु तुम्हें इस मत को पसन्द नहीं करना चाहिये। किसी ग्रन्थ में बिलावल का स्वरूप रे, प वर्ज्य माना हुआ दिखाई देगा, परन्तु ऐसा बिलावल हम नहीं गाते। इस प्रकार के औड़व स्वरूप का एक नवीन और सुन्दर राग हमें मिल जाता है। इस औड़व बिलावल का स्वरूप इस प्रकार होगा। "धनिसां, निसां, निधमग, सा। धनिसा, मग, मध, मग, मध, निसां, गंसां, ध, मग, सा। सासागग, मग, मध, निधमग, धनिसां, गंगंसां, गं मं गं सां, सानिध, निध मग, सा। यह प्रकार बहुत मधुर हो जाता है। इन प्रकारों के नाम खोज निकालने का हमारे पास एक सरल साधन है।

प्रश्न—वह कौनसा ?

उत्तर—मैं तुम्हें पहिले Capt. Day साहब की पुस्तक का नाम बता चुका हूँ। उस पुस्तक में लगभग एक हजार रागों के आरोह-अवरोह थाट के नामों के साथ बता दिये गए हैं। एक मराठी भाषा के प्रसिद्ध संगीत ग्रन्थ में दो सौ के लगभग राग उसी ग्रन्थ में से लिए गए हैं। Capt. Day. साहब ने यही सामग्री संस्कृत ग्रंथों से प्राप्त की है। तन्जावर के एक सङ्गीतज्ञ विद्वान ने मुझे राग लक्षण नामक एक छोटी सी पुस्तक दी है, उस पुस्तक में सैकड़ों रागों के आरोह-अवरोह बताए गए हैं, परन्तु केवल आरोह-अवरोह की सहायता से ही राग नहीं गाया जा सकता इस बात को तुम भी अच्छी तरह समझ गए हो। अस्तु—

मैं तुम्हें बता रहा था कि बिलावल राग में रे और प स्वर वर्ज्य करने पर एक सुन्दर राग स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि बिलावल राग सम्पूर्ण रागों में से है, परन्तु पहिचान के लिए उसका निम्नलिखित स्वरूप ध्यान में रखना चाहिए "सा, रेसा, गरे, गप, धनिध, निसां। सांनिधप, धमग, मरे, सा"। थोड़ी देर के लिए बिलावल के यही आरोह-अवरोह मान लिए जावें तो भी हानि नहीं। इन स्वरों को उत्तम रूप से गाकर तैयार करना पड़ता है। बिलावल का स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र है, जैसे-जैसे वह स्वरूप स्पष्ट होता जाता है वैसे ही बिलावल का कोई न कोई प्रकार उत्पन्न हो जाता है। उत्तरांग में "प प, ध नि ध, नि सां" ये स्वर इतने चमत्कार पूर्ण हैं कि तीव्र स्वर वाले किसी भी राग में इन्हें सम्मिलित करने पर बिलावल का आभास होने लगता है। आगे हम बिलावल के भेदों पर विचार करेंगे, परन्तु प्रायः बहुत से भेदों में "प प ,ध नि ध, नि सां" स्वर समुदाय अन्तरे के रूप में ही दिखाई पड़ेगा।

इतना ही नहीं परन्तु वे सारे भेद बिलावल के ही हैं, यह भी इसी स्वर समुदाय से निश्चित किये जायेंगे। तुम यह शंका कर सकते हो, कि फिर वे राग भिन्न भिन्न रूप से कैसे पहिचाने जायेंगे, इसका उत्तर यह है, कि ऐसे रागों में वादी-संवादी स्वरों से ही राग भिन्नता का निर्णय किया जाता है, कुछ ऐसे प्रकार भी हैं, जिनमें बिलावल के साथ अन्य रागों का मिश्रण हुआ है। बिहाग, जयजयवन्ती, झिंझोटी, छायानट, नट, गौड़ आदि राग बिलावल से उत्तम रूप से मिल सकते हैं, इनकी सहायता से ही बिलावल के प्रकार पहिचाने जाते हैं। इस विषय पर मैं तुम्हें आगे

इन रागों का वर्णन करते हुए अधिक बताऊँगा। अभी मैंने जिन रागों का नाम लिया है वे बिलावल के स्थायी के भाग में मिले हुए अधिक पाये जाते हैं। अन्तरे में "प प ध नि ध नि सां" यह अङ्ग गायक को अनिवार्य रूप से दिखाना पड़ता है, क्योंकि ऐसा न करने से बिलावल का स्वरूप स्पष्ट नहीं दिखाया जा सकता।

बिलावल राग के अवरोह में विशेष रूप से ध म स्वरों की संगति मुख्य रूप से ली जाती है और इसके प्रयोग से राग की विचित्रता तथा सौन्दर्य बढ़ता है।

अब मैं तुम्हें एक मत भेद बताता हूँ। कोई-कोई गायक शुद्ध बिलावल और अल्हैया बिलावल ऐसे दो भिन्न-भिन्न राग मानते हैं, यदि तुम उनसे यह पूछो कि इन दोनों रागों को अलग-अलग बताने के लिये कौन से नियमों का आश्रय लिया जाता है, तब उनका उत्तर यह होगा कि जिस प्रकार सायंकाल में यमन राग, आरोह-अवरोह में सम्पूर्ण माना गया है, उसी प्रकार प्रातःकाल शुद्ध स्वरों का बिलावल राग समझना चाहिये। उनके मत से शुद्ध बिलावल का आरोह-अवरोह "सा रे ग म प ध नि सां, सां नि ध प म ग रे सा" है। इस प्रकार में आरोह में मध्यम वर्ज्य करने पर और अवरोह में थोड़ा सा कोमल निषाद लेने पर अल्हैया बिलावल हो जाता है, यह उनका कथन है, यह मत गलत नहीं है, परन्तु प्रचार में शुद्ध बिलावल और अल्हैया बिलावल अलग-अलग मान कर गाने वाले गायक शायद ही कोई होंगे। किसी भी गायक से बिलावल गाने को कहते ही वह तत्काल अल्हैया गाने लगता है, यदि उसके बाद शुद्ध बिलावल गाने की फरमाइश की जावे तो वह कह देगा कि, मुझे नहीं आता अथवा चाहे जो कुछ गाकर समय नष्ट करने लगता है। बिलावल के प्रकारों में धैवत की संगति में कोमल निषाद का कण अधिकतर लगा दिया जाता है, यह काम अवरोह में ही किया जाता है, और वहां ही सुन्दर दिखाई देता है। यद्यपि अवरोह की प्रत्येक तान में यह नहीं लिया जाता परन्तु बीच-बीच में इस कोमल निषाद का दर्शन हो ही जाता है, कल्याण थाट के दोनों मध्यम लेने वाले रागों का वर्णन करते हुए मैंने तुम्हें यह बताया था कि उन रागों के अवरोह में भी बिलावल के अनुसार ही धैवत की संगति में कोमल निषाद का कण लिया जाता है। बिलावल थाट और कल्याण थाट में केवल कोमल तीव्र मध्यम का ही अन्तर है, इसी कारण ये दोनों राग एक दूसरे के निकट आ जाया करते हैं, इसी प्रकार की निकटता भैरव और पूर्वी थाट में भी दिखाई पड़ेगी। बिलावल राग का पूर्वाङ्ग विस्तार बहुत कुछ कल्याण जैसा ही देखने में हो जाता है। अल्प अनुभव वाले श्रोता को अनेक बार ये दोनों राग अलग-अलग करने में कठिनाई पड़ जाती है, परन्तु गायक जब उत्तरांग की ओर बढ़ता है तब सन्देह को स्थान नहीं रह पाता। अधिकतर सङ्गीतज्ञ लोग मध्य सप्तक में ही राग के प्रधान अङ्ग को बताते हैं, क्योंकि मन्द्र स्थान और तार स्थान में गायन अपूर्ण ही कहलाता है। बिलावल गाते हुए गायक धैवत पर बार-बार जाकर कल्याण की छाया कम करता रहता है। यह काम मैं तुम्हें प्रत्यक्ष करके बताता हूँ, जिससे तुम सरलता से समझ सको। बिलावल राग में कोई संगीत पंडित षड्ज स्वर को वादी मानते हैं।

षड्ज स्वर किसी भी राग का वादी हो सकता है, यह अपना नियम है ही। बिलावल के लक्षण "लक्ष्य सङ्गीत" ग्रन्थ के अनुसार तुम्हें याद रखने चाहिये:—

"शंकराभरणे मेले रागो बेलावलः स्मृतः।
षड्जांशको बुधैः प्रोक्तो धैवतांशोऽपि संमतः॥
आरोहणं भवेत्तत्र मन्यल्पस्वरसंयुतम्।
अस्य गानं मतं प्रातरुत्तरांगप्रधानकम्॥
प्रातःकालीयकल्याण इति केचिद्वदंत्यमुम्।
अवरोहे गदौर्बल्यं कल्याणं च निवारयेत्॥
धमयोः संगति स्तत्र नित्यं वैचित्र्यकारिणी।
आरोहे तु निवक्रत्वं केषांचित्सुमतं सताम्॥"

इन लक्षणों को याद करने से बिलावल की जानकारी मिल जाती है। मैंने तुम्हें जितनी बातें बताई हैं, वे सभी लक्ष्य सङ्गीतकार ने बहुत थोड़े में ऊपर कह दी हैं। यह ग्रन्थ वर्तमान पद्धति का है, इसीलिये इसमें प्रचलित बातों को अधिक महत्व दिया है। इसके लेखक चतुर पंडित का मैं अनुयायी हूं, इस सम्बन्ध में तुम्हें पहले ही विस्तारपूर्वक बता चुका हूं, अब हम प्राचीन ग्रन्थों में देखते हैं कि वे बिलावल के विषय में क्या कहते हैं:—

"सङ्गीत रत्नाकर" ग्रन्थ में बेलावली को कुकुभ ग्राम राग की भाषा भोग वर्द्धिनी से उत्पन्न माना है। ककुभ का वर्णन इस प्रकार है:—

"मध्यमापंचमीधैवत्युद्भवः ककुभो भवेत्।
धांशग्रहः पंचमान्तो धैवतादिकमूर्छनः॥
प्रसन्नमध्यारोहिभ्यां करुणे यमदैवतः।
गेयः शरदि तज्जाता × × × ॥"

इसके बाद आगे, शारङ्गदेव ऐसा कहते हैं।

"विभाषा ककुभे भोगवर्धनी तारमंद्रगा।
धैवतांशग्रहन्यासा गापन्यासा रिवर्जिता॥
धनिभ्यां गमपै र्भूरिवैराग्ये विनियुज्यते।
तज्ञा बेलावली तारधा गमन्द्रा समस्वरा॥
धाद्यान्तांशा कम्प्रषड्जा विप्रलंभे हरिप्रिया।"

रत्नाकर में वर्णित ग्राम, मूर्छना, जाति इनका विचार अभी तक हमने नहीं किया है।

"सङ्गीत दर्पण" ग्रन्थ में वेलावलि की व्याख्या इस प्रकार की गई है:—

"धैवतांशग्रहन्यासा पूर्णा वेलावली मता ।
पौरवी मूर्छना ज्ञेया रसे वीरे प्रयुज्यते ॥"

यह रागिनी हिन्दोल की भार्या मानी गई है, और मूर्छना धैवत से शुरू होने वाली बताई है। इन्हीं पंडित दामोदर ने आगे श्लोक ६१ में "वेलावल्याः स्वराः प्रोक्ताः शंकराभरणे बुधैः" इस प्रकार भी कहा है।

प्रश्न—बंगाली ग्रन्थकारों ने प्राचीन ग्रन्थों के ग्राम और मूर्छना आदि विषयों को किस प्रकार स्पष्ट किया है ?

उत्तर—वहां पर भी संतोष-जनक स्पष्टता नहीं दिखाई पड़ती। उधर के दो मुख्य ग्रन्थ 'सङ्गीतसार' और गीत सूत्र सार ही हैं। उनका अभिमत इस विषय में जो है वह तुम्हें बताता हूँ। सर्व प्रथम श्री० बनर्जी इस विषय में क्या कहते हैं उनका सारांश सुना देता हूं। इसका यह मतलब न समझना कि मैं उनके मत से संपूर्ण रूप से सहमत हूँ।

"प्राचीन समय में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वर ग्राम (मूल स्वरों का सप्तक) व्यवहृत होते थे। इन ग्रामों के स्वरों में भिन्न नियम बनाकर अन्तर कायम किये गये थे। प्राचीन ग्रन्थकारों ने ग्रामों के सूक्ष्म-विभाग किये थे। किसी ने इन सूक्ष्म विभागों की संख्या २२ और किसी ने इससे अधिक संख्या मानी है। इन सूक्ष्म स्वरों को श्रुति कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में षड्ज ग्राम, मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम, इन तीनों ग्रामों का उल्लेख बार-बार हुआ है। इन तीनों ग्रामों में मूल सात स्वरों की रचना भिन्न-भिन्न प्रकार से हुई है। प्रत्येक ग्राम में सूक्ष्मांतरों की (श्रुति) २२ ही मानी गई हैं। इन श्रुतियों को पांच जाति में विभाजति किया गया है। इन जातियों के नाम १-दीप्ता २-आयता ३-करुणा ४-मृदु ५-मध्या कहे गहे गये हैं। दीप्ता जाति की चार श्रुति, मृदु जाति की चार, आयता की पांच श्रुति, करुणा की तीन व मध्या जाति की छः श्रुतियाँ मानी गई हैं। इन जातियों को किस उद्देश्य से बताया गया है, यह वे ग्रंथकार ही जानें। हमें तो यह काल्पनिक प्रकार समझ में आते हैं। इनमें हमें कोई सङ्गीत सम्बन्धी रहस्य नहीं दिखाई देता। संस्कृत ग्रन्थों में भिन्न ग्रामों में बताई हुई श्रुतियां (स्वरान्तर) आधुनिक स्वरान्तरों से बहुत ही भिन्न हैं। ग्रन्थों में षड्ज ग्राम के स्वरान्तर इस प्रकार कायम किये हैं:—

"षड्जत्वेन गृहीतो यः षड्जग्रामे ध्वनिर्भवेत् ।
ततस्तूर्ध्वं स्तृतीयः स्यादृषभो नात्र संशय ॥
ततो द्वितीयो गांधार श्चतुर्थो मध्यमस्ततः ।
मध्यमात्पंचमस्तद्वत् तृतीयो धैवतस्ततः ॥
निषादोऽतो द्वितीयस्तु ततः षड्जश्चतुर्थकः ॥"

मध्यम ग्राम के स्वरान्तर अधिकांश रूप से षड्जग्राम के अनुसार ही समझने चाहिये। केवल पंचम स्वर को एक श्रुति नीचे माना गया है। गांधार

ग्राम में रे व ध स्वर, ऊपर बताये हुये दोनों ग्रामों के रे, ध स्वरां से एक-एक श्रुति नीचे माने गये हैं, और ग तथा नि स्वर एक एक श्रुति ऊँचे माने गये हैं।

तीनों ग्रामों में षड्ज और मध्यम स्वर एक से ही हैं। पंचम स्वर मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम में एक सा ही लिया गया है। ग्रामों के स्वारान्तरों के विषय में भी ग्रन्थकारों में एक मत नहीं है परन्तु मैंने तुम्हें बहुमत के अनुसार ही ऊपर का विवरण बताया है। इस समय हमारे आधुनिक सङ्गीत में इन ग्रामों में बताये हुए स्वरान्तर के प्रमाण से स्वर रचना नहीं दिखाई देती। ग्रन्थकारों ने कहा कि पृथ्वी पर केवल षड्ज और मध्यम ग्राम ही हैं। गांधार ग्राम का प्रयोग केवल देवलोक में होना कहा गया है। इसका अर्थ केवल इतना ही समझ सकते हैं कि इन ग्रन्थकारों के समय गांधार ग्राम उपलब्ध नहीं था। सङ्गीत में समय-समय पर परिवर्तन हुआ है, इसका यह भी एक प्रमाण कहा जा सकता है। षड्ज व मध्यम ग्राम के स्वरों को ध्यान पूर्वक देखने से दिखाई देगा कि इन दोनों ग्रामों में ग, नि स्वर कोमल हैं और गांधार ग्राम में रे, ग, ध नि, स्वर कोमल हैं।

षड्ज ग्राम के स्वरान्तरों की ओर ध्यान पूर्वक देखने से एक आश्चर्यजनक बात दिखाई देगी। जहां सा स्वर है वहां रे, जहां रे है वहां ग, इस प्रकार से स्वर मान लेने पर हमारा आधुनिक शुद्ध थाट (बिलावल थाट) उत्पन्न हो जावेगा। इन बातों को देखते हुए कई बार हमें यह संदेह होने लगेगा कि श्रुतियों की संख्या के प्रमाण से मूल सात स्वरों को निश्चित करते हुए हमारे ग्रन्थकार कहीं भूल तो नहीं कर गये हैं? हम जानते हैं कि भरत, हनुमान इत्यादि आदि शास्त्रकारों के ग्रन्थ तो लुप्त हो चुके हैं। मध्यकाल के ग्रन्थकारों की जानकारी परंपरा से चलती हुई सुनी जाती है।

ग्रामों में लगने वाले सप्त स्वरों की श्रुति संख्या के सम्बन्ध में—

"चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वे द्वे निषाद गांधारो त्रिस्त्री रिषभधैवतो ॥"

यही सुना जाता है। इन ग्रन्थकारों में से किसी एक ने अपनी स्वतः की कल्पना से यह ग्राम रचना तैयार की है और आगे वाले ग्रन्थकारों ने "महाजनो-येन गतः स पंथा" न्याय के अनुसार अपने अपने ग्रन्थों में भी उद्धृत कर ली है। इस प्रमाण से सर्व प्रथम के ग्रन्थकार की ही भूल दिखाई देती है। ऐसा न होने की दशा में प्रत्येक स्वर का अपनी अन्तिम श्रुति पर बोलना यह विधान ही असङ्गत दिखाई देता है। ग्राम का प्रथम स्वर सा, पहिली श्रुति पर मानना ही अधिक युक्ति सङ्गत दिखाई देगा।

यह सब देखने से यही निश्चित होता है कि उन प्राचीन शास्त्रकारों का रहस्य हमारे मध्य युगीय ग्रन्थकार नहीं समझ सके। यह मैं जानता हूँ कि प्राचीन ग्रन्थकारों पर भूल करने का दोषारोपण करना महा पाप करना है। अतः हम इस

प्रकार न कहते हुए यह कहेंगे कि वह प्राचीन ग्राम रचना प्राचीन-सङ्गीत में उत्तम रूप से प्रयुक्त थी, परन्तु इस समय हमारे सङ्गीत में वैसी नहीं है। बिना ऐसा कहे दूसरी गति नहीं है, ग्रन्थकारों ने कहा है कि गांधार ग्राम देवलोक को गया है। हम भी उनका अनु-करण करते हुए इस प्रकार कहेंगे कि जिस कारण से ग्रन्थकारों द्वारा वर्णित षड्ज व मध्यम ग्राम की स्वर रचना प्रचार में नहीं है, उसी कारण से इस समय गांधार ग्राम भी परलोक वासी हो गया है।

विकृत स्वर—संस्कृत ग्रंथकारों ने शुद्ध स्वर सात और विकृत स्वर बारह माने हैं। जिन स्वरों को हम इस समय विकृत कहते हैं वे ही स्वर उनके थे, ऐसा नहीं समझ लेना चाहिए। षड्ज ग्राम के मूल सात स्वर (जिन्हें वे शुद्ध स्वर कहते हैं) एक या दो श्रुति ऊँचा नीचा होने पर विकृत संज्ञा प्राप्त करते हैं। यद्यपि प्राचीन ग्रन्थकारों ने विकृत स्वर १२ माने हैं, परन्तु वे समस्त एक ही ग्राम में प्रयुक्त नहीं होते। षड्ज ग्राम में ३ स्वर स्वतन्त्र रूप से विकृत हैं। मध्यम ग्राम में ५ स्वर स्वतंत्र रूप से विकृत माने गये हैं। शेष चार स्वर दोनों ग्रामों में साधारण माने गये हैं। प्राचीन मत से मुख्य सात स्वरों की नियत अवस्था में अन्तर होने पर उनकी विकृत अवस्था उत्पन्न होती है। सा, ग, म, नि ये चार स्वर दो प्रकार से विकृत होते हैं। विकृति दो प्रकार से होती है। पहिली विकृति नियत स्थान से स्वर के च्युत हो जाने पर और दूसरी विकृति निकट स्वर के विकृत हो जाने पर उत्पन्न होती है। षड्ज ग्राम के तीन विकृत स्वर कैशिक नी, च्युत सा, विकृत रे, मध्यम ग्राम के ५ विकृत स्वर साधारण ग, च्युत म, च्युत प, कैशिक प, विकृत ध, और दोनों ग्रामों के साधारण स्वर अच्युत सा अन्तर ग अच्युत म और काकली नि माने गये हैं।

मेरी समझ से इन विकृत स्वरों के घोटाले में तुम्हें पड़ने की आवश्यकता नहीं है। बाद में ग्रन्थकारों ने षड्ज व पंचम को अचल व शेष पांच का ही विकृत होना स्वीकार किया है, यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ। एक स्थान पर कहा गया है:—

> "षड्जोऽचलः पंचमश्च रिषभश्चलति स्वरः।
> गांधारो मध्यमश्चाथ निषादो धैवतश्चलः॥ संगीतदामोदरे॥

आधुनिक सङ्गीत में यही प्रकार ग्रहण किया गया है। जिन ग्रन्थों को हम देखेंगे उनके विकृत स्वरों के विषय में वहीं अवश्य ही विचार कर लेंगे। अब तुम्हें मूर्छना के विषय में श्री बनर्जी के विचार बताता हूँ।

"स्वर ग्रामों में प्रत्येक स्वर से आरम्भ कर आठवें स्वर तक आरोह करना व पुनः उन्हीं स्वरों पर अवरोह करना इस कृत्य को शास्त्रकारों ने मूर्छना कहा है जैसे—"क्रमात्स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्' ॥ रत्नाकरे ॥ "आरोहणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकम्। मूर्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः॥ "मतंगः" ॥ सा रे ग

म प ध नि यह एक मूर्छना हुई "रे ग म प ध नि सां" यह दूसरी मूर्छना हुई। प्रत्येक ग्राम में ७ मूर्छना मानी गई हैं। इन प्रकारों को मूर्छना कहने का कारण ग्रन्थकारों ने अच्छी तरह नहीं बताया है। ग्रन्थकारों ने मूर्छना का सुन्दर नाम मात्र दे दिया है। षड्ज ग्राम की मूर्छना सा स्वर से और मध्यम ग्राम की मूर्छना 'म' स्वर से आरम्भ होती है। पं० शार्ङ्गदेव का कथन है कि कुछ पंडितों के मत से 'सा' स्वर के स्थान पर 'रे' स्वर की स्थापना कर मूल स्वरों का रे, ग, म, प, ध, नि, सां इस प्रकार का आरोह करने पर 'अभिरुद्गता' नामक मूर्छना होती है।

'सा' के स्थान पर ग स्वर को मानकर (अर्थात् 'सा' की जगह 'ग' उच्चारण करते हुए) आरोह करने से अश्वकांता नामक मूर्छना होती है। इस मूर्छना का अर्थ वास्तव में युक्ति सङ्गत है। मूर्छना से भिन्न-भिन्न राग उत्पन्न होते हैं, ऐसा ग्रन्थकार मानते हैं। मूर्छना का इसी प्रकार का अर्थ ग्रहण करने से संतोषजनक स्पष्टता हो सकती है। सारांश यह है कि हमारे आधुनिक सङ्गीत में जिन्हें थाट कहते हैं, उन्हें भी प्राचीन ग्रन्थों में थाट कहा गया है। मूर्छना बता देने पर फिर स्वरों को ऊँचा नीचा करने की उलझन नहीं रहती।

ग्रीस देश के प्राचीन सङ्गीत में इसी प्रकार का प्रकार दिखाई पड़ता है, यह भी विचारणीय है।

१—उत्तरमन्द्रा (१ ली मूर्छना) सा रे ग म प ध नि (Ionian)

२—अभिरुद्गता (२ री ") रे ग म प ध नि सां (Dorian)

३—अश्वक्रान्ता (३ री ") ग म प ध नि सां रें (Phrygian)

४—मत्सरीकृता (४ थी ") म प ध नि सां रें गं (Lydian)

५—शुद्धषड्जा (५ वीं ") प ध नि सां रें गं मं (Myxolydian)

६—उत्तरायता (६ वीं ") ध नि सां रें गं मं पं (Aeolian)

ग्रामों का मूल स्वरान्तर कायम कर लेने पर केवल मूर्छना बदलने से थाट अपने आप ही बदल जाता है। हमारे सङ्गीत में कुछ थाट ऐसे हैं जो केवल शुद्ध मूर्छना के बदलने से प्राप्त नहीं होते, ऐसे स्थानों पर विकृत स्वरों से मूर्छना आरम्भ करनी पड़ेगी।

भाइयो ! हम इस विषय की बहुत गहराई में जा पहुंचे हैं। अब इसे छोड़ देना ही उत्तम होगा। 'मूर्छना के संयोग से प्राचीन समय में थाट बताये जाते थे' इस प्रकार का मत श्री० बनर्जी का है। सङ्गीत दर्पण का भाषान्तर हो चुका है, उसे भी इस विषय के सम्बन्ध में पढ़ लेना चाहिये।

प्रश्न—सङ्गीतसार में इस विषय में क्या कहा गया है ? यह आपने नहीं बताया है, यदि वह भी इसी प्रकार लम्बा और समझने में कठिन हो तो रहने दीजिए।

उत्तर—नहीं-नहीं, उस ग्रन्थकार ने दस-पांच बातों में ही यह भाग पूर्ण कर दिया है। वह इस प्रकार कहता है "मूर्छना और तान का आश्रय रूप स्वर समुदाय शास्त्रों में ग्राम कहा गया है। ग्राम तीन माने गये हैं। १-षड्ज ग्राम २-मध्यम ग्राम ३-गांधार ग्राम। शास्त्रकार लिखते हैं कि पंचम स्वर अपनी नियत चौथी श्रुति पर स्थित होने पर और धैवत स्वर को तीन श्रुति हो जाने से षड्ज ग्राम हो जाता है। पंचम स्वर अपनी उपान्त्य (तीसरी) श्रुति पर होने पर और धैवत चतुःश्रुतिक होने पर वह मध्यम ग्राम हो जाता है। द्विश्रुतिक गांधार को रिषभ और मध्यम की एक-एक श्रुति देने पर गांधार ग्राम हो जाता है। इन तीन ग्रामों में से षड्ज और मध्यम इस लोक में प्रचलित हैं। गांधार ग्राम देव लोक में व्यवहृत होता है।" यदि कोई यह प्रश्न करे कि सा, म, ग, इन तीन स्वरों के सिवाय अन्य स्वरों के ग्राम क्यों नहीं माने गये? इसका उत्तर यह है कि षड्ज स्वर आदि स्वर है और म तथा प स्वर उसके संवादी हैं अर्थात् ये भी ग्रामत्व के योग्य हैं। औड़व, षाड़व मूर्छना (शुद्धतान) बताते हुये कहीं भी मध्यम का लोप किसी भी ग्रन्थ में नहीं बताया गया है अर्थात् मध्यम का ग्रामत्व योग्य हो जाता है। षड्ज व मध्यम दो स्वर देवकुल के हैं, वैसा ही गांधार भी है, इस कारण गांधार को भी ग्राम बनाया गया है। कोई-कोई षड्ज ग्राम को प्रधान और मध्यम को गौण मानते हैं। मेरी समझ से यह मान्यता ठीक ही है, क्योंकि षड्ज स्वर अन्य स्वरों का जनक (उत्पादक) कहा गया है। षड्ज स्वर की दृष्टि से ही अन्य स्वरों का नाम प्रचार में देते हैं। यदि षड्ज ही नहीं तो फिर रिषभ गांधार कैसे हो सकते हैं? इन बातों को सोचते हुए षड्ज की प्रधानता ही ठीक प्रतीत होती है। मध्यम स्वर को षड्ज बना देने से केवल एक ही स्वर विकृत हो सकता है (तीव्र म) अतः मध्यम को गौण ग्राम माना गया है।"

इस ग्रंथकार के विचार प्राचीन शास्त्रों के विवेचन की दृष्टि से अधिक उच्च प्रतीत नहीं होते। मूर्छना के विषय में इनका कथन है "प्राचीन पण्डितों के मत से शास्त्रोक्त सप्त स्वरों का आरोह-अवरोह करने से मूर्छना हो जाती है, परन्तु आधुनिक पंडित इस मत को नहीं मानते। एक स्वर पर घर्षण करने से दूसरा स्वर जिस क्रिया से दिखाया जाता है उसे मूर्छना कहते हैं। हमने आधुनिक मत का अनुसरण करते हुए यही स्वीकार किया है।" अस्तु—

'वेलावली' राग के विषय में, मैं तुम्हें 'संगीतदर्पण कार' का मत बता चुका हूँ संगीत दर्पण कार के विषय में आगे प्रसंग आने पर और भी कुछ बताऊँगा। 'राग-विबोध में 'बिलावली' शुद्ध स्वरों के थाट में कही गई है, यह बात भी महत्व पूर्ण है। राग की प्रत्यक्ष व्याख्या सोमनाथ ने इस प्रकार की है—

"धांशांतादिः पूर्णाऽरिपापि वेलावली व्युष्टे"

यहाँ बेलावली के दो प्रकार बताये हैं १-सम्पूर्ण बेलावली और २-औड़व बेलावली। बेलावली प्रातर्गेय और वादी स्वर धैवत स्वीकार किया है, यह ठीक है। औड़व प्रकार में रिषभ और पंचम वर्ज्य किये गए हैं। इस प्रकार का उदाहरण मैं तुम्हें आरम्भ में ही गा कर दिखा चुका हूँ। 'राग विबोध' ग्रन्थ की बिलावली का

लक्षण प्रचलित बिलावल का बहुत कुछ रूप से समर्थक है। चतुर्दंडिप्रकाशिका ग्रन्थ में पं० व्यंकटमखी कहते हैं:—

"सम्पूर्णस्वरसंयुक्ता सर्वकालेषु गीयते ।
वेलावली तु भाषांगं जाता श्रीरागमेलके ॥"

श्रीराग मेल अर्थात् प्रचलित काफी थाट है। यह लक्षण बिलावल का समर्थक नहीं है। कोई-कोई बिलावल और बेलावली को भिन्न-भिन्न राग मानते हैं, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। राग विबोध व दर्पण में स्पष्ट रूप से बेलावली का थाट शंकराभरण बताया है।

"शुद्धाः स्युः समपाः पंचश्रुती रिषभधैवतौ ।
साधारणाख्यगांधारः काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो वेलावल्याश्च मेलकः ।
वेलावलि तु भाषांगं पूर्णेयं हि स्वमेलजा ॥
धन्यासांशग्रहा प्रातर्गेया सङ्गीतकोविदैः ॥"

—'सारामृते'

इस वर्णन में गांधार कोमल है। यह प्रकार भी हमारा प्रचलित प्रकार नहीं है।

"पूर्णो वेलावलीरागो धन्यासस्तु च धग्रहः ।
क्वचिद्रिपाभ्यां न्यूनः स्यादवरोहेप्रभातजः ॥"

—'स्वरमेलकलानिधौ'

इस ग्रंथकार ने भी बेलावली को काफी थाट में रखा है।

"वेलावल्यां गनी तीव्रौ मूर्छना चाभिरुद्गता ।
आरोहे मनिहीनाया मंशः षड्जो बुधैः स्मृतः ।
अवरोहे गवर्जायां क्वचिद्गांधारमूर्छना ॥

—'सङ्गीत पारिजाते'

अहोबल पण्डित का उपरोक्त वर्णन उत्तम है। पण्डित अहोबल प्राचीन ग्रन्थों की मूर्छना सम्पूर्णतया समझते थे या नहीं, यह अलग प्रश्न है। "पारिजात" के स्वराध्याय में:—

"आरोहश्चावरोहश्च स्वराणां जायते यदा ।
तां मूर्छनां तदा लोके आहुर्ग्रामाश्रयं बुधाः ॥"

यह मूर्छना की व्याख्या दी गई है। अहोबल ने मूर्छना के सम्पूर्ण न 'रत्नाकर' के ही स्वीकार किये हैं। 'राग वर्णन' में उन्हें इस प्रकार बीच-बीच में ठूँस रखा है कि पाठकों को इस प्रकार समझ पड़ता है कि ग्रन्थकार ने उनका वास्तविक रहस्य नहीं समझा है। हमारे यहां प्राचीन ग्रन्थ वाक्यों को कहीं भी और कैसे भी रख देने के उदाहरण बहुत से प्राप्त होंगे। वस्तुतः उन वाक्यों की कोई

आवश्यकता ही नहीं रहती। अहोबल जानते थे कि रिषभ की मूर्छना अभिरुद्गता होती है।

"ऋषभादिस्वरोद्भूता सप्तम्याख्याभिरुद्गता"

यह इसी की व्याख्या है। अब 'अहोबल' इस विषय में कुछ नहीं कहते कि ऊपर के राग में (बिलावल) यह व्याख्या कैसे लगाई जावेगी। वे कहते हैं कि मेरे राग हनुमत मत के प्रमाण से हैं:—

"लक्षणानि ब्रुवे तेषां संमत्याच हनूमतः" (श्लोक ३३३)

दर्पण के राग भी हनुमान मत के ही हैं। इन दोनों ग्रन्थों के वर्णन तुम खुद फुरसत के समय में मिलाकर देखना।

'राग चन्द्रोदय कार' ने बेलावली केदार मेल में बताई है:—

"लम्बादिकौ षड्जकमध्यमौ च। शुद्धौ समौ पंचमको विशुद्धः॥
निगौ विशुद्धौ च यदा भवन्ति। तदा तु केदारकमेल उक्तः॥
केदारनारायणगौडकाख्यौ। वैलावली शंकरभूषणाख्यः॥ ३०॥
धांशग्रहांता रिपवर्जिता वा। वेलावली प्रातरसावभीष्टा॥"

यह मत 'राग विबोध' से मिलता है। यह हमारे लिए उपयोगी भी है। "सङ्गीत अनूपांकुश" ग्रन्थ में भावभट्ट ने बेलावली का वर्णन 'अहोबल' के शब्दों में ही किया है, अतः उसे देने की कोई आवश्यकता नहीं। इन भाव भट्ट की कुशलता का कहीं-कहीं विलक्षण उदाहरण मिलता है। इनके लिखे हुए ग्रन्थ 'अनूप सङ्गीत रत्नाकर' में शाङ्गदेव के सैकड़ों श्लोक शब्दशः अंकित पाये जाते हैं। केवल जहां-शाङ्गदेव का नाम आया है वहां उन्हें हटाकर अपने नाम रख दिये हैं।

परमर्दी च सोमेशो जगदेकमहीपतिः।
व्याख्यातारो भारतीये लोल्लटोद्भटशंकुकाः॥
भट्टाभिनवगुप्तश्च श्रीमत्कीर्तिधरः परः।
अन्येच बहवः पूर्वे ये संगीतविशारदाः॥
अगाधबोधमंथेन तेषां मतपयोनिधिम्।
निर्मथ्यानूपसिंहोऽयं सारोद्धारममुं व्यधात्॥"

'सङ्गीत रत्नाकर' के इस समय प्रकाशित हो जाने से यह कार्य ठीक नहीं दिखाई देगा। परन्तु उसने यह नहीं समझा था कि यह आगे चलकर प्रकाशित हो जावेगा। उसने अपने ग्रन्थ में बहुत से ग्रन्थों से यथावत् उद्धरण लेकर ग्रन्थ में मिला दिये हैं वह ठीक ही हुआ है।

"अनूप सङ्गीत विलास" ग्रन्थ में राग मंजरी का ही मत बताया है। वह इस प्रकार कहा है:—

"धत्रिका रिपहीनावा प्रातर्वेलावलीष्टदा" ।

यहां भी थाट केदार है, अतः वह ठीक ही है।

'नृत्य निर्णय' ग्रन्थ में इस प्रकार का कथन है—

"धाद्यंतांशाऽरिपावा सरपरदसुता सत्कुडाईसहाया ।"

मैंने तुम्हें अल्हैया बिलावल के विषय में कुछ कहा है—यह नाम संस्कृत ग्रन्थों में नहीं होगा, ऐसा सहज ही सन्देह हो जाता है, परन्तु "सङ्गीत राग तरंगिणी" नामक ग्रंथ में इसे स्पष्ट रूप से बिलावल से अलग बताया है।

"मेघरागस्य संस्थाने मेघोमल्लार एव च ।
गौडसारंगनाटौ च रागौ वेलावली तथा ॥
अलहीया तथा ज्ञेया शुद्धसुहुस्तथैव च"

मेघसंस्थान अर्थात् हमारा प्रचलित शुद्ध थाट ही है। मेरे ख्याल से अब अधिक ग्रन्थों के मतों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनका प्रत्यक्ष उपयोग नहीं होगा।

प्रश्न—हमें बिलावल का स्वरूप सुनाइये ?

उत्तर—ठीक है, सुनो—

सा, रे सा, ग म रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, प़ ध़, सा, सा रे ग म, ग, म रे सा, ध ध प, ध म ग, म रे, सा।

ग म रे, ग प, ध ध ग म, रे सा, ध प म ग, म रे, ग म प, ग म, रे सा।

सा रे ग म, रे ग म, प म ग म रे, ध ध प, नि ध प, ध म ग, रे ग म प, म ग, म रे, सा।

नि नि ध ध प, ध प, नि ध प, ध म, ग प, ध नि़ ध प, ध म, ग, म रे, ग प, म ग, म रे सा।

सा सा ग म, रे ग प ध, म प, नि ध, ध प, ग म प, म ग म रे, ग म प, ग म, रे रे, सा।

सा, ग म, रे ग म, प, ध ध, नि ध, सां, नि ध, नि ध प, ध ध, म ग, म रे, ग प, ध नि़ ध, प, ध म ग, म रे, ग प, ग म रे रे सा।

सा रे ग म, रे रे सा, सा रे सा, ग म रे रे सा, ध नि़ ध प, प ध, नि सां सां, ध ध प ध म प, नि ध सां, सां, नि ध प, प ध नि़ ध प म ग, ग म रे, ग म प, ग म रे, सा रे, सा।

प प ध नि ध, नि सां, ध नि सां, सां, सां रें गं मं, रें रें सां, सां रें सां, ध ध, ध नि़ ध प, ध म प, रें सां, ध नि़ ध प, म ग म रे, रे ग म प, ग म ग, म रे, रे सा।

सां नि ध प, म ग रे, ग प, ध नि़ ध प, ध ध प, ध म प, ध नि ध सां, रें गं मं रें सां, सां रें सां, नि ध प, म ग म रे, प म ग ग, म रे, सा।

प्रश्न—अब हम इस राग को ठीक-ठीक समझ गये, अब दूसरा बताइये ?

उत्तर—मेरे ख्याल से अब हमें देवगिरी राग पर विचार करना चाहिए। देवगिरी नाम दौलताबाद का प्राचीन नाम है। देवगिरी प्रचार में बिलावल राग का एक प्रकार माना जाता है। ग्रन्थों में देवगिरी बिलावल इस प्रकार संयुक्त नाम प्राप्त नहीं होता, वरन् देवगिरी मात्र ही प्राप्त होता है। यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है, कि देवगिरी में सभी स्वर शुद्ध ही लगते हैं। किसी किसी ग्रन्थ में देवगिरी को कल्याण थाट में माना है अर्थात् उसमें तीव्र मध्यम ग्रहण किया जाता है। इस प्रकार के गीत गाने वाले गायक भी देखे गये हैं। यह मत सङ्गीत पारिजात का है, परन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रचार में शंकराभरण थाट में ही देवगिरी का गायन अधिकतर सुनाई देता है। मेरे विचार से तुम्हें दोनों प्रकार समझ लेना चाहिए। तीव्र मध्यम का प्रकार भी बुरा नहीं दिखाई देता। कल्याण थाट में 'देवगिरी' को यमन से अलग करना सरल है क्योंकि देवगिरी के अवरोह में ध, ग स्वर वर्ज्य करने का नियम है। तुम्हें कल्याण थाट में इस प्रकार का राग नहीं दिखाई दिया होगा ? मालश्री में रे ध हिन्दोल में रे प, भूपाली में म नि वर्जित होते हैं परन्तु अवरोह में ध ग वर्जित होने वाला राग एक भी नहीं आया है। इस प्रकार देवगिरी का वादी स्वर षड्ज होता है। प्रचलित देवगिरी का स्वरूप कल्याण के स्वरों से इतना अधिक मिलता है कि दोनों रागों के स्थायी भागों को अलग-अलग करना कभी-कभी कठिन हो जाता है। "सा, नि़ ध़ नि़ ध़, सा रे ग, ग रे ग, रे सा" इन स्वरों को विलंबित रूप से गाने पर बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है परन्तु इनसे कल्याण का बहुत कुछ आभास उत्पन्न हो जाता है, इसके लिए गायक आगे स्पष्ट रूप से शुद्ध मध्यम लेकर दिखा देते हैं जैसे "ग, म, ग, रे, सा"। यह कुशलता तुम्हें ध्यान में रखनी चाहिए। ऐसा बहुमत है कि बिलावल के सम्पूर्ण प्रकार कल्याण के बहुत निकट वाले राग होते हैं। कल्याण का तीव्र मध्यम न लेने पर बहुत से स्वरूप कल्याण जैसे दिखाई देने लगते हैं, अर्थात् देवगिरी भी ऐसा ही राग है। आरोह में मध्यम का प्रयोग बहुत थोड़ा दिखाई पड़ता है। मध्यम लेने पर 'बिहाग' में चले जाने का भय रहता है। बिहाग के आरोह में रिषभ नहीं लेने से वह राग अलग ही हो जाता है। इसे मैं तुम्हें आगे बताने वाला हूं। बिलावल का आरोह करते हुए मध्यम इस प्रकार टाल दिया जाता है "सा, नि़ ध़ सा, रे ग, ग, म ग, प, ध प, म ग, म रे, सा, सा रे ग, म ग, रे सा, ग प ध ध प ग म ग रे सा"। "ग प ध नि, ध, सां" इस भाग के प्रयुक्त होते ही बिलावल स्पष्ट हो जाता है। पहिले बताया जा चुका है कि पं० अहोबल ने अवरोह में ध ग वर्ज्य करने को कहा है। कोई कोई गायक उस नियम का प्रयोग शंकराभरण थाट के अपने देवगिरी राग में भी करते हैं। जैसे "प प ध नि, प, ग, म रे, सा, नि़ ध़, सा, रे ग म रे, सा", देवगिरी प्रभात के प्रहर का राग माना गया है। यह उत्तरांग वादी है। इसका सौंदर्य अवरोह में विशेष दिखाई पड़ेगा। यह अपने नियम से से ही है, अतः कोई नई बात नहीं है। लक्ष्य सङ्गीतकार ने इस राग का वर्णन करते हुए ठीक ही लिखा है—

"आरोहणे रात्रिगेया यथा रागा परिस्फुटाः ।
तथैवावरोहणे ते दिनगेयाः प्रकीर्तिताः ॥"

मैंने तुमसे यह कहा ही है कि बिलावल के बहुत से प्रकारों में अवरोह में धैवत की सङ्गति में कोमल निषाद का कण जोड़ना सुन्दर लगता है। इस कण को इस राग में भी गायक लोग बीच-बीच में जोड़ते जाते हैं। राग की पहिचान के जो-जो मुख्य-मुख्य स्थल मैंने तुम्हें बताये हैं, उन्हें प्रयत्न पूर्वक याद रखना आवश्यक है, क्योंकि उन्हीं की मदद से तुम्हें राग निश्चित करना आ सकेगा। तुम्हें इस राग के विषय में उलझन न हो, इसलिये मैं पुनः संक्षेप में इसकी सभी मुख्य-मुख्य बातें बता देता हूँ।

'देवगिरी' दो प्रकार से गाया जाता है। कोई तीव्र म लेकर और कोई-कोई शुद्ध म लेकर गाते हैं। दूसरा प्रकार अधिक दिखाई पड़ता है, परन्तु कोमल मध्यम होने के कारण उससे भिन्न हो जाता है। इसका वादी स्वर षड्ज है, यह प्रभात का राग है। इसके आरोह में मध्यम स्वर दुर्बल और अवरोह में ध ग स्वर दुर्बल माने गये हैं। इसका अन्तरा बिलकुल बिलावल का ही गायक लोग लेते हैं, जिससे कि श्रोताओं को भ्रान्ति न रहे। प्रायः गायक इसके पूर्वाङ्ग में कल्याण और उत्तराङ्ग में अल्हैया के स्वर लेकर इसे गाते हैं! तुम्हें प्रचार में अल्हैया के बहुत से गीत उत्तराङ्ग से आरम्भ होने वाले प्राप्त होंगे। इस राग का स्वरूप मैं तुम्हें स्वरों में बताये देता हूँ:—

सा, नि़ध़, सा, रे ग, ग, मरे, सा, रे सा, नि़ ध़ नि़ ध़ प़, सा रे ग, म रे सा।

सा रे ग, रे ग, प म ग, म रे ग, सा रे ग म, रे सा, रे सा, नि़ ध़ प़, प़ ध़ नि़ प़, ग म रे सा, सा ध़, सा रे ग।

ग म रे ग, ग प ध नि ध, सां, नि ध नि प, ग म ग, प ग, म रे सा।

सा रे सा, सा रे ग म, रे रे सा, रे सा, ध नि॒ प ग म रे, सा, नि़ ध़, सा रे ग।

प़ प़ सा, नि़ ध़ सा, सा रे सा, ग म रे, सा, प ग म रे, सा, ग प ध नि॒ प, सां रें सां नि ध ध, नि प, प ग म रे, सा रे सा, नि़ ध़, सा रे ग।

सा ध़, सा रे ग, ग, म रे ग, प, ध नि॒ प, म ग, म रे, ग प, ध नि॒ प, ग ग म रे, ग प, म ग, म रे सा, सा रे ग।

सा रे ग, रे रे सा, ग, म रे रे सा, प प ग ग म रे, सा रे ग, रे सा, रे सा, नि़ ध़ नि़ प़, ध़ सा, सा रे ग म प, ग म रे सा।

सा ध़, सा रे ग, रे ग, रे रे सा, ग, म ग, म रे सा, सा, नि़, ध़, प़, प़ ग, ग, म ग, रे ग, ग प, म ग म रे, सा।

प प, सां ध, नि सां, सां, रें सां नि ध नि ध प, ग म ध ध, ध नि॒ ध प, प ध सां, नि ध प, प ध प म ग, म रे सा।

प ध नि ध, सां, सां रें सां, सां नि ध, नि सां नि ध नि प, ग ग म रे, ग प, प प ध नि, प, प ग, म रे, ग म रे, सा रे सा, सा ध, सा रे ग।

उपरोक्त स्वर विस्तार में कहीं-कहीं जान-बूझ कर ग, नि स्वरों की ओर दुर्लक्ष्य किया है। इस रीति से इस राग को कल्याण के निकट लाने का प्रयत्न किया है। प्रचार में तुम्हें अनेक समय ऐसे प्रयोग दिखाई देंगे। कोई-कोई गायक अल्हैया और यमनी का मिश्रण कर देवगिरी राग गाते हैं, परन्तु तीव्र मध्यम छोड़ देते हैं, क्यों कि ऐसा न करने पर यमनी बिलावल गाना कठिन हो जाता है। कोई-कोई देवगिरी में म और नि स्वरों को बिलकुल अल्प रूप में लेकर देशकार की छाया उत्पन्न करते हैं। कोई कहते हैं कि अल्हैया में बिहाग का मिश्रण करने से देवगिरी उत्पन्न होता है। प्रचार में अधिकतर कल्याण, भूप, जय-जयवन्ती, बिहाग, नट, गौड़, झिंझोटी-इन रागों का बिलावल से मिश्रण कर बिलावल के अनेक प्रकार बनाये गये हैं। इन प्रकारों के नाम निश्चित करने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है और इसके मतभेद भी दिखाई पड़ते हैं। देवगिरी, लच्छासाख, सर्पर्दा आदि राग निश्चित करने में बड़ी उलझन उत्पन्न होती है, क्योंकि गायकों का एक मत नहीं है। 'लक्ष्य सङ्गीतकार' का कथन है कि:—

नूनं बिलावलस्यैते प्रकारा वादमूलकाः ।
केवलं लक्ष्यमाश्रित्य बुधाः कुर्वन्तिनिर्णयम् ॥"

मेरे ख्याल से उपरोक्त कथन बहुत अन्शों में तथ्यपूर्ण है, हमें तो बहुमत के अनुसार ही चलना है, बहुमत इस प्रकार है:—

"शुद्धस्वरसमायोगाज्जातो देवगिरिस्तथा ।
बिलावलप्रभेदोऽयं कल्याणांगेनमंडितः ॥
षड्जस्तत्रभवेद्वादी विलोमे दुर्बलौ धगौ ।
नातिदीर्घस्तीव्रमोऽपि क्वचिल्लक्ष्ये प्रदृश्यते ॥
अवरोहे धैवतेनसह कोमलनेर्लवः ।
वेलावलस्वरूपंतत्प्रदर्शयेदसंशयम् ॥"

—लक्ष्यसङ्गीतम् ॥

कोई-कोई ग्रन्थकार बिलावल में पंचम वर्ज्य करते हुए-देवगिरी का स्वरूप उत्पन्न करने का उल्लेख करते हैं; परन्तु यह मत भी प्रचार में नहीं है। बिलावल के किसी भी प्रकार में पंचज वर्ज्य करने का प्रचार नहीं है। पंचम वर्ज्य करने पर एक नवीन ही प्रकार उत्पन्न हो जाता है।

अब हम देवगिरी के विषय में ग्रन्थकारों के कथनों पर विचार करेंगे। ग्रन्थोक्तियां उपयोगी होंगी या नहीं, इस बात पर तुम ध्यान देते रहना। हमारे यहां ग्रन्थों (शास्त्रों) का स्वाभिमान बहुत पाया जाता है।

"कांबोदीमेले तीव्रतररिंतरकतीव्रतरधौच ।
काकलिका शुचिसमपा अतश्च कांबोददेवक्री ॥
अपराण्हे देवक्रीः सांशन्यासग्रहाऽपावा ।"

—रागविबोधे ॥

अन्तर और काकली स्वर अपने तीव्र ग और नि स्वरों के स्थान पर समझ लेना चाहिये। ये नाम दक्षिण की ओर सैकड़ों वर्षों से अभी तक चल रहे हैं। अपने यहां एक दो पंडित मुझे ऐसे भी मिले थे, जिन्होंने यह कहा कि ग्रन्थों में बताये हुए सारे स्वर (सा म प छोड़कर) अपने प्रचलित स्वरों से भिन्न हैं। प्राचीन स्वर इस समय बिलकुल प्रयोग में नहीं आते।" यह सुनकर मैंने उनसे पूछा कि—"फिर क्या हमारा प्राचीन संगीत-ग्रन्थों पर अभिमान करना उचित है ? जब प्राचीन स्वर नहीं है, तब उन स्वरों पर अवलंबित राग भी नहीं हैं और इनके न होने पर हमारी संगीत-शास्त्र निपुणता क्या समझना चाहिये ? हम कभी-कभी मुसलमान गायकों को उनकी विद्या हीनता और शास्त्र अज्ञानता के कारण तुच्छ समझते हैं। यदि हम यह भी मान लें कि हमारे प्राचीन सङ्गीत का इस समय कोई उपयोग न है तो फिर हमारा महत्व बढ़ा हुआ कैसे कहा जा सकता है ?" "मेरे इस प्रश्न का उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। मेरे मत से जब कि इस समय उपलब्ध होने वाले बहुत से ग्रन्थ दक्षिण सङ्गीत से मिलते हुए पाये जाते हैं, तब दक्षिण पद्धति के प्रचलित १२ स्वरों को उन ग्रन्थों में मान लेना ही युक्ति-सङ्गत है। इतना ही नहीं इस प्रकार मानने से ही उन ग्रन्थों की समझ सकने योग्य स्पष्टता हो सकती है।

अब देवगिरी की ओर ध्यान दें। अपने यहां देवगिरी में पंचम स्वर वर्जित नहीं किया जाता। यह एक नवीन प्रकार उत्पन्न होता है, और आगे हमारे लिये उपयोगी भी सिद्ध हो जावेगा।

"देवक्रिया क्रियांगंस्यात् कांभोजीमेलसंभवा ।
गनिलोपादौडुवाऽसौ सग्रहांशा मता सदा ॥"

सारामृते ॥

इस ग्रन्थ का काम्भोजी मेल अपना खमाज थाट है। प्रचार में ग, नी स्वरों को वर्ज्य मानकर 'देवगिरी' नहीं गाया जाता। इन मतभेदों को देखकर किसी ने यह सोचा है कि देवगिरी, देवक्रिया, देवकी, देवकृति आदि राग भिन्न-भिन्न मानने चाहिए। वास्तव में युक्ति उत्तम है, परन्तु ग्रन्थकार भी ऐसा मानते थे या नहीं, यह आगे के मतों को देखकर तुम्हीं बता सकोगे।

'चत्वारिंशाच्छतरागनिरूपण' ग्रंथ में देवक्री को नर-नारायण की माया माना है। इस ग्रन्थ में स्वरों का कोई खुलासा नहीं है केवल मूर्ति (ध्यान) मात्र दिया गया है।

"बंगाली शुद्धसालंका कांभोजी मधुमाधवी।
देवक्रीति च पंचैता नटनारायणांगनाः ॥
देवक्री मृदुधिपाणिपादयुगला ग्रैवेयभूषोज्वला।
स्तब्धोरोजसरोजकामचपला सास्त्री परासुन्दरी॥
कौसुंभाबरधारिणी विधुमुखी श्रीखंडचर्चस्तनी।
काश्मीरारुणविग्रहा सुनयना बिंबोष्ठिका राजते॥"

यद्यपि यह चित्र अच्छा है, परन्तु प्रत्यक्ष राग गाने के लिए इस चित्र की सहायता बहुत थोड़ी हो सकेगी। ऐसे अनेक ग्रन्थकार प्राप्त होंगे। राजा साहब टागोर का ग्रन्थ 'सङ्गीत सार संग्रह' व राग माला, चूड़ामणि आदि ग्रन्थों में इस प्रकार के रूप बहुत प्राप्त होंगे। मैं पुनः उसी बात पर जोर देता हूँ कि जिस ग्रन्थकार की रचना में अपनी पद्धति की स्पष्टता स्वर, थाट, राग आदि उत्तम रूप से समझाये हुए प्राप्त होते हों, वे ही ग्रन्थ हमारे लिए मूल्यवान हैं। ये चित्र बताते हैं कि कौनसे ग्रन्थ हमारे लिये उपयोगी हो सकते हैं।

ऊपर के श्लोक में केवल यही बताया है कि 'देवक्री' नट नारायण की भार्या है। इसी राग की एक भार्या कांभोजी भी बताई गई है, सारामृतकार ने 'देवक्री' कांभोजी थाट में बताई है। नट नारायण का थाट सारामृत के प्रमाण से कांभोजी का ही है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिका व रागतरंगिणी ग्रन्थों में इस राग का वर्णन नहीं है 'स्वरमेलकलानिधि' ग्रन्थ में देवक्रिया को कंनड़ गौड़ थाट में बताया है। इस थाट में दोनों गांधार और दोनों निषाद का प्रयोग कहा गया है। 'राग लक्षण' ग्रन्थ में इस प्रकार इस राग का वर्णन मिलता है:—

"नटभैरविरागाख्यमेलाज्जातः सुनामकः।
देवक्रियेतिरागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम्॥
आरोहेऽप्यवरोहेच पवर्जं तच्च षाडवम्॥"

नट भैरवी थाट अपने आसावरी थाट का ही नाम है। इस मत की देवक्रिया कहीं सुनाई नहीं देती। तो भी आसावरी थाट में पंचम वर्ज्य किया जाने वाला यह नवीन प्रकार प्राप्त होता है। राग चन्द्रोदयकार ने देवगिरी (देवक्रिया) का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"शुद्धौसमौ शुद्धपनी तथैव लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौच।
पंचश्रुतिर्मश्च यदाभवेत्तु देवक्रियायाः कथितः समेलः॥
मेलादमुष्मात्कतिचित्तुरागा देवक्रियाद्याः प्रकटीभवंति।
षड्जग्रहः सांतयुतश्च सांशः समुज्झितः पंचमकेनवास्यात्॥
तृतीययामेदिवसस्य शुद्धवसंतको देवकृतिः सदैव॥"

इस ग्रन्थ के स्वरों के बारे में मैं पहिले ही बता चुका हूँ। 'संगीतसारसंग्रह' में इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है—

"षड्जन्यासग्रहांशेयं वीरेदेवकृतिर्मता ।
असावृतुषु सर्वेषु गातव्या समयेषु च ।।"
"इयमेव शुद्ध वसंतजातिरिति देवदत्तः ।।"

इस ग्रन्थ में इस राग के स्वरों का वर्णन नहीं किया गया है। सङ्गीत सम्प्रदाय-प्रदर्शिनी नामक ग्रन्थ में देवक्रिया को केदार गौड़ थाट अर्थात् प्रचलित खमाज थाट में बताया है। उसमें लिखा है "देवक्रिया चौडवी स्याद्गनिवर्जाच सग्रहा" यह स्वरूप प्रचलित दुर्गा राग से कुछ-कुछ मिलता है।

रागमाला:—

"भूपालीच देवगिरी वसंती सिंदुरी तथा।
आहीरी पंचमी प्रोक्ता हिंदोलस्यैव वल्लभाः ।।"

इस ग्रन्थ में भी स्वरों का स्पष्टीकरण प्राप्त नहीं होता।
'अनूपसङ्गीतरत्नाकर, में 'पारिजात' का ही उद्धरण इस प्रकार दिया गया है।

"अवरोहे धगौ नस्तो मस्तु तीव्रतरो भवेत्।
देवगिरौ गनी तीव्रौ यत्रस्यात् षड्जमूर्च्छना ।।"

'पारिजात' का मत प्रचलित स्वरूप से बहुत कुछ मिलता है। मेरे ख्याल से अधिक ग्रन्थों का मत देने की और आवश्यकता नहीं है। 'देवगिरी' राग को जिस प्रकार गाया जाता है, वे सब बातें तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ। जहां तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जावे वहां व प्रयोग मर्यादित ही रहना चाहिये। यदि उसे ऐसे स्थानों पर नहीं भी लिया जावे तो भी राग नहीं बिगड़ेगा। प्रभात के राग में तो इसकी आवश्यकता ही नहीं रहती। इस राग को गाते समय जहां जहां पर कल्याण का भाग अधिक हो जावे, वहां शुद्ध मध्यम का कुशलता पूर्ण उपयोग किया जाकर कल्याण का प्रभाव दूर किया जा सकता है।

प्रश्न—यह सब हम पूर्ण रूप से समझ गये। अब "यमनी" राग का वर्णन सुनाइये ?

उत्तर—सुनो! 'यमनी' बिलावल का एक प्रकार है। 'यमनी बिलावल' का संयुक्त नाम सुनते ही समझ में आ जाता है कि यह राग यमन और बिलावल का मिश्रण है। वास्तव में इस राग में यमन और बिलावल का मिश्रण कुशलता पूर्वक किया जाता है। यमन के थाट में तीव्र म और बिलावल के थाट में शुद्ध म लेना प्रसिद्ध ही है। 'यमनी' में दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। 'यमनी' प्रभात कालीन

राग है, अतः इसमें तीव्र मध्यम की अपेक्षा शुद्ध मध्यम को अधिक प्रधानता दी गई है। तीव्र म का उपयोग केवल यमन का भाग दिखाने मात्र के लिये किया जाता है। यमनी में 'प मं ग, ग म ग, रे, सा' इस प्रकार गायक स्पष्ट प्रयोग करते हैं। इस राग को गाते हुए गायक, यमन का एक तीव्र म लगने वाला टुकड़ा बिलावल के बीच-बीच में रखते जाते हैं। 'यमन' में शुद्ध मध्यम अत्यन्त मर्यादित रूप से प्रयुक्त किया जाता है, परन्तु इस प्रकार की कोई मर्यादा यमनी में नहीं है। कल्याण जैसा स्वरूप अधिक दिखाई देने पर गायक शुद्ध मध्यम का प्रयोग करके बिलावल को प्रदर्शित कर देते हैं व अल्हैया का आभास अधिक होने पर मध्य में स्पष्ट रूप से यमन प्रदर्शित कर देते हैं। यह कार्य खूबी से कर दिखाना ही गायक की कुशलता है। निम्न स्वर समुदाय को देखो—

"सा रे ग, ग म, रे ग, प म ग, रे सा, प मं ध ध प, प ध प म ग, म रे, सा, प मं ग, म ग रे, सा, सा रे ग।"

यहां बिलावल और यमन दोनों राग मिश्रित हैं। अधिकांश तानें बिलावल की ही ली जाती हैं, परन्तु राग के नाम का निश्चय करने के लिये यमन का अन्श लगाना पड़ता है।

गांधार और निषाद स्वर की वक्रता साधारण बिलावल के नियमों के अनुसार ही की जाती है, परन्तु इस राग में कल्याण अङ्ग भी आता है, अतः वह साधारण नियम बीच-बीच में मोड़ दिया जाता है। 'यमनी बिलावल' एक संपूर्ण जाति का एक आधुनिक राग है। इसमें तीव्र मध्यम सदैव बिलकुल थोड़ा पाया जावेगा। जहाँ वह नहीं लिया जाता वहाँ इस प्रकार के स्वर समुदाय से भी-यमन को दिखाया जा सकता है:—'नि़ रे ग रे सा, नि़ रे सा, ग म ग रे सा, नि़ ध़ नि़ प़, ध़ नि़ रे ग म ग, प ग म ग रे रे सा, ग म प म, ग रे रे सा' ऐसे कोई-कोई गायक तीव्र मध्यम न लेकर अपना राग दिखाते हैं और यमनी का स्वरूप लोगों के मन में जमा देते हैं। मेरे विचार से तुम्हें तीव्र मध्यम थोड़ा सा लेना ही ठीक होगा। देवगिरी के सिवाय अन्य किसी बिलावल प्रकार में तीव्र 'म' नहीं लिया जाता। इस राग को पहिचानने में इस स्वर से तुम्हें बहुत सहायता मिलेगी।

देवगिरी और यमनी इन दोनों को अलग-अलग बताने के लिये इनके नियमों को स्पष्ट रूप से समझ कर उपयोग करना चाहिये। अन्य लोगों के नियम व्यवहार की दृष्टि से चाहे भिन्न हों, परन्तु तुम्हारा गाना सदैव नियम बद्ध ही होना चाहिये। तुम्हारे नियम और तुम्हारी पद्धति ऐसी होनी चाहिये जो सुशिक्षित लोगों के योग्य हो और उन्हें ग्राह्य हो सके। 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' इस प्रकार का समय अब नहीं है। अब समाज बहुत चैतन्य और चिकित्सक हो चुका है। अपनी समझ के अनुसार प्रमाण बद्ध रूप से अपने माने हुए नियमों को श्रोताओं के आगे रख देना अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना है। यदि अपने नियम उन्हें पसन्द आते हैं तो उत्तम है ही, अन्यथा वे नवीन नियमों को खोजकर निकालेंगे और परिणाम शुभ ही होगा। तर्क करने का अधिकार सभी को समान है। अस्तु—

देवगिरी और यमनी दोनों रागों के राग स्वरूप एक प्रसिद्ध गायक के मतानुसार तुम्हें बताये देता हूं।

"सा नि़ ध़, नि़ ध़, सा, रे ग, ग म रे ग, म रे सा, सा रे सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ प़ ग, म ग, रे ग, प म ग, म रे सा। सा ध़, सा रे ग। प, नि ध, सां, रें सां नि ध, नि सां नि ध प, ग म ध ध, ध नि ध प, मं प, नि ध सां, सां, नि ध प, प ग म ग, म रे, सा, सा नि़ ध़ सा रे ग।"

मैं इन स्वरों को विलम्बित रूप में कैसे गाता हूँ, इसे समझ लो।

यमनी—

"सा रे ग रे सा, नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, सा रे ग रे सा, सा ग म रे ग, प मं प, ग म, रे ग, ग प म ग, म रे सा, रे, सा रे ग रे सा।

सा सा, ग म रे ग, प मं प, म ग म म रे, सा, सा रे ग, सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़ प प ध ध प, मं प, म ग म रे, सा।

प, ध नि ध, सां, नि ध, सां, सां रें गं मं, रें सां, सां ध सां, रें सां नि ध प, प ध प, मं प, म ग रे ग, प म ग म रे सा।

ये दोनों राग एक दूसरे में कितने अधिक मिल जाते हैं, यह तुम समझ गये होगे। इन्हें भिन्न-भिन्न करने के लिये कुशल गायकों ने एक उपाय किया है, वे इनमें से एक में तीव्र 'म' का प्रयोग ही नहीं करते। ऐसा करने से स्पष्ट रूप से ये दो निराले राग हो जाते हैं। यदि तुम्हें ऐसा ही करना पसन्द आये तो तुम प्रसन्नता से कर सकते हो, परन्तु यहां यह मनोरंजक प्रश्न भी उत्पन्न होगा कि फिर इन दोनों में से किस राग में तीव्र म का प्रयोग करना चाहिये। यह प्रश्न वास्तव में विचारणीय है। 'देवगिरी' राग प्राचीन ग्रन्थोक्त है, किसी-किसी ग्रन्थ में इसमें तीव्र म लेना बताया है और किसी में नहीं। यमनी एक आधुनिक राग है। यह यमन और बिलावल के संयोग से उत्पन्न हुआ है। ऐसा बहुमत भी है। यमन में तीव्र 'म' प्रसिद्ध ही है, इस उलझन को देखते हुए हमें 'लक्ष्य सङ्गीत' कार का मत ही स्वीकार करना चाहिए, वही अधिक सुविधा-पूर्ण होगा। उसका मत इस प्रकार है।

"कल्याणीनामके मेले यमनी लक्षिता बुधैः।
वेलावल्याः प्रकारोऽयं स्वीकृतो यमनांगतः॥
संपूर्णो गीयते प्रात द्विमध्यमसुभूषितः।
मिथः सम्वादिनावत्र सपाविति मतं सताम्॥
आरोहणे तीव्रमेण यमनांगं स्फुटं भवेत्।
अवरोहे शुद्धमेन बुधस्तत्परिमार्जयेत्॥
निषादे प्रायशो दृष्टं वक्रत्व मनुलोमके।
अस्यामपि प्रसक्तं तद्भवेदिति सुसंमतम्॥"

प्रश्न—हमें भी यही मत पसंद है। देवगिरी में तीव्र मध्यम को टालते जाना और यमनी में स्पष्ट रूप से दिखाना 'यही ठीक है' परन्तु 'यमनी' का वादी स्वर कौनसा है ?

उत्तर—यमनी में वादी षड्ज और संवादी पंचम मानना उत्तम है। तीव्र मध्यम के उपयोग से यह राग देवगिरी से अलग करके रखा जा सकता है, इसलिये षड्ज को वादी मान लेने में कोई हर्ज नहीं होता। चतुर पण्डित के द्वारा बताये हुये देवगिरी के लक्षण तुम्हारे ध्यान में होंगे ही, यमनी बिलावल के लिये अन्य ग्रन्थाधार खोजते रहने की आवश्यकता नहीं है, शायद इसके लक्षण प्राप्त भी नहीं हो सकेंगे।

प्रश्न—हमें आवश्यकता भी नहीं है। इस प्रकार के स्पष्ट रूप के मिश्र रागों के लक्षण ग्रन्थकार भला और क्या बतायेंगे ? अब आगे चलिए।

उत्तर—इसके बाद मुझे बिलावल के अन्य प्रसिद्ध प्रचलित भेदों को बताना है परन्तु सारे भेद एक साथ बताने से गड़बड़ घोटाला हो जाना संभव है, इसलिये मैं निराली प्रकृति के एक दो राग बीच में बताये देता हूँ। पहिले तुम्हें देशकार का वर्णन बताऊँगा।

प्रश्न—जी हाँ, ऐसा ही कीजिये।

उत्तर—'देशकार' या 'देशिकार' राग शुद्ध स्वरों के थाट से ही उत्पन्न होता है। इसमें मध्यम व निषाद स्वर वर्ज्य किये जाने से यह राग 'औड़व' संज्ञा प्राप्त करता है। यह इस समय प्रभात गेय रागों में माना जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में किसी में इसका समय सन्ध्या-काल बताया है और किसी में इसका समय दोपहर का बताया है। हम इसे प्रभात काल का राग ही मानेंगे। देशकार का वादी स्वर धैवत है। इसकी प्रकृति बड़ी गम्भीर है। इस राग में वादी स्वर धैवत को यथा स्थान दिखा देना कुशलता पूर्ण कार्य है। यदि यह ठीक रूप से नहीं किया जा सके तो तत्काल भूपाली की छाया उत्पन्न हो जाती है। यह ठीक रूप से ध्यान में रखना चाहिये कि भूपाली पूर्वाङ्ग वादी राग है और यह राग उत्तरांग वादी है। विलम्बित में 'ध, प, ग प ध ध प प, ग रे सा, ध प' स्वरों को गाने पर तत्काल देशकार दिखाई देने लगता है, और 'ग, रे सा, सा रे ग, ध प ग, रे ग, रे, सा' स्वर समुदाय को गाने पर "भूपाली" राग दिखाई देने लगता है। मेरे विचार से इन दोनों रागों के उपरोक्त स्वर-समुदायों को बार-बार गाकर इसका परिणाम ध्यान में जमा लेना चाहिये। अपने प्रचलित देशकार के स्वरूप को शायद कोई विभास कहेंगे, परन्तु हम विभास को दोनों प्रकार का मानते हैं, जो कि भैरव थाट और मारवा थाट के अन्तर्गत है। इन थाटों के रागों पर विचार करते समय विभास के विषय में तुम्हें बताऊँगा।

किसी-किसी ग्रन्थकार ने देशकार को "पूर्वी" थाट में बताया है, उसमें मध्यम तीव्र और रे ध कोमल लेकर संध्यकालीन प्रकार मान लेने में कोई आश्चर्य की

बात नहीं है। हम शुद्ध स्वरों के इस प्रकार को अभी ही ग्रहण करते हैं। यह राग बिलावल राग के गाने के पूर्व गाया जाने से उत्तम दिखाई देता है। यह राग गाने में कठिन नहीं है, इसका वर्णन लक्ष्यसंगीतकार ने बहुत उत्तम रूप से इस प्रकार किया है:—

"शंकराभरणान्मेला देशीकारः प्रजायते ।
औडवो मनिवर्जः स्यात् प्रथमे यामके दिने ॥
धैवतस्यात्र वादित्वं पंचमे न्यास उच्यते ।
उत्तरांगप्रधानोऽयं प्रातःकाले प्रगीयते ॥
केचिदाहू रूपमेत द्विभासस्य सुनिश्चितम् ।
विभांशुको मतोऽस्माभिर्मेले मालवगौडके ॥
विभांशुक इति नाम प्रस्फुटं सवितुर्यतः ।
गानं तस्यापि रागस्य मतं भानूदयात्परम् ॥
संध्याकाले यथा प्रोक्ता भूपाली गांशिका बुधैः ।
देशीकारो भवेदत्र प्रातःकाले सुधांशकः ॥
केचिदन्ये वदंत्येनं पूर्वीमेलसमाश्रितम् ।
मध्यान्हार्हं कंप्रमनिं वयं लक्ष्यानुवर्तिनः ॥"

प्रश्न—इस वर्णन की सभी बातें आपने अभी बताई हैं। अब इस राग का स्वर विस्तार भी बता दीजिए?

उत्तर—इसका राग विस्तार इस प्रकार होता है:—

"सां, ध ध प, ग प ध प, ग रे सा, सा रे ग प, ध ध, ग प ध ध प, ग रे सा।

सा ध़ ध़ सा, रे ग, प, ग प, ध प, सां, ध प, सा रे ग प, ध, प ग प ग रे सा।

सा रे ग रे सा, ग प ध ध प, ग रे सा, सा ध़ सा, रे ग प, ध, सां, ध प, ध प ग रे सा।

प ग प ध, ध ध प प, ध सां ध प, ध ध, रें रें सां, ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, प।

सा रे सा, ध प ग रे सा, ध़ ध़ सा, सा रे ग प, ध, गं रें सां, रें सां ध, ग प ध, सां ध, सां रें सां ध, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

सा रे ग प, ग प ध, प ध, सां ध, रें रें सां ध, सां रें सां, ध प, ग प ध सां रें सां ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

ग ग प ध सां, सां, सां ध सां रें, रें सां ध प, गं रें, सां रें सां ध प, प ध सां, ध ध प प, सा रे ग प ध सां ध प, ग प ध प ग रे सा, ध, ध प।

यहां पर एक बात और स्मरण रखने योग्य है। इन्हीं पंच स्वरों के प्रकार को कोई-कोई 'जैत कल्याण' भी मानते हैं। इसका वादी स्वर पंचम, बनाकर वे धैवत के महत्व को अल्प कर देते हैं। उसका स्वरूप इस प्रकार है। 'प प, प ध प, रे रे सा, सा, ग प प ग, प ध ग, प प, ध प, रे रे सा। प प, सां, सां रें सां, रें सां, प, प ग सा, ग प, ध सां, प ध ग, प प, प ध प, रे रे सा। हम आगे 'जैत' पर मारवा थाट में भी विचार करेंगे। देशकार में धैवत को गौणता देने पर स्वरूप बिगड़ जाता है। 'सङ्गीत राग तरंगिणी' में 'जैत कल्याण' यमन थाट में बताया गया है। अस्तु—

देशकार के विस्तार में रिषभ और धैवत स्वर कोमल कर देने से विभास राग दिखाई देने लगेगा। विभास भी उत्तरांग प्रधान राग है और उसमें वादी स्वर धैवत ही माना गया है। देशकार में जैसे पंचम पर न्यास शोभा देता है वैसे ही विभास में वह सुन्दर दिखाई देता है। प्राचीन सङ्गीत में ग्रह अन्श व न्यास ये प्रायः एक ही स्थान पर माने गये हैं; परन्तु हमारे देशी सङ्गीत में ऐसा नियम नहीं लगता। मेरे ख्याल से यह सब मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ. 'चतुर पंडित' ने इस सम्बन्ध में एक जगह इस प्रकार लिखा है—

"उक्तदशलक्षणानां नूनं स्याद्गौरवं पुरा।
देश्यामिह पुनस्तेषां संमतं परिवर्तनम् ॥
ग्रहन्यासापन्यासानां नियमाः साम्प्रतं हि ते।
यथायोग्यं नैव लक्ष्ये दृश्यंत इति संमतम् ॥"

'देशकार' के स्वरों के विषय में संस्कृत ग्रन्थकारों का मत देखो—

"शुचिरामक्रीमेले मृदुमकतीव्रतममसृदुसाः शुद्धम्।
सरिपधम् इ० × × × ॥" राग विबोधे ॥

यहां पर जो थाट बताया गया है, वह अपना 'पूर्वी थाट' हो जाता है। सोमनाथ इसे 'शुद्ध रामक्रीमेल' कहता है। प्रत्यक्ष देशकार का वर्णन उसने ऐसा किया है—

"सांशाद्यंतोऽन्होंतः कंप्रमनिर्देशकृत्पूर्णः।"

हम जिसे प्रचार में देशकार मानते हैं, वह रूप यह नहीं है। इस प्रकार का स्वरूप तुम्हारी दृष्टि में कभी नहीं आवेगा, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, परन्तु मैंने 'लक्ष्य-सङ्गीत' का स्वरूप ही पसंद किया है। राग विबोध में वर्णन किया हुआ रूप इस प्रकार दिखाई देगा।

"सां सां, नि ध़ प, प ध़ प, ग प ध़, सां ध़ प, प प ध़ ग प, ग रे़ सा, सा रे़ सा, ग प ध़ प, ग रे़ सा।

म ध सां, सां रें़ सां, सां नि ध़, सां गं मं गं रें़ सां, सां रें़ सां, रें़ रें़ सां, नि ध़, नि ध़ प, ग प ध़, सां नि ध़ प ध़ ध़ प, ग प ध़ प, ग रे़ सा।"

यह प्रकार भी कानों को अच्छा नहीं लगेगा। सङ्गीत रागतरंगिणी में देशकार राग का थाट 'गौरी' माना है। गौरी मेल का वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"शुद्धाः सप्तस्वराः कार्या रिधौ तेषुच कोमलौ।
तोडी सुरागिणी गेया ततो गायकनायकैः॥
एवं सति च गांधारो द्वेश्रुती मध्यमस्य चेत्।
गृण्हाति काकलीनिः स्यात् तदा गौरी प्रवर्तते॥
मालवः स्याद् गुणमयः श्रीगौरीच विशेषतः।
चैत्रीगौडी तथा प्रोक्ता पहाडीगौरिका पुनः॥
देशी तोडी देशकारो गौरो रागेषु सत्तमः।"

यहां पर तोड़ीमेल बनाकर फिर ग, नि स्वर तीव्र करने का कथन है। तोड़ी का ग्रन्थ वर्णित थाट अपनी भैरवी का है। श्री, तोड़ी, शंकराभरण, मालवगौड़ आदि थाट बहुत प्रसिद्ध हैं, और ग्रन्थों के प्रमाणों की एकता सिद्ध करने के लिये उपयोगी होते हैं। तोड़ी के थाट में ग नि तीव्र करने पर प्रचलित भैरव थाट हो जाता है।

'अनूपसङ्गीतविलास' ग्रन्थ में पंडित भाव भट्ट ने इस राग के विषय में लिखा है:—

"तृतीयगतिनिगमा देशकारस्य मेलके।
देशकार स्त्रावणीच देशीललितदीपकौ॥
विभासो जयतश्रीश्च संभवंत्यत्र मेलतः।
देशिकारोऽपराण्हे स्यात् सत्रिः सम्पूर्णको भवेत्॥"

इसमें बताये हुए समप्राकृतिक रागों को देखते हुये पूर्वी थाट ही दिखाई देता है।

"देशकार्यां गनी तीव्रौ धांशो धादिकमूर्छना॥"—पारिजाते॥

यह अपने शुद्ध थाट का प्रचार अवश्य है, परन्तु रूप संपूर्ण माना गया है।

"देशकारी तु सम्पूर्णा षड्जन्यासग्रहांशिका।
मूर्छना प्रथमा ज्ञेया वैराटीमिश्रिता भवेत्॥"—दर्पणे॥

'वराटी' राग अनेक स्थानों पर पूर्वी थाट में ही कहा गया है। 'दर्पण का राग वर्णन संतोष जनक नहीं है, यह मैं कह चुका हूं। यह प्रकार अन्य स्थानों पर भी तुम्हें दिखाई पड़ेगा। ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में मेरे एक स्पष्ट वक्ता और प्रामाणिक रूप से बोलने वाले मित्र के विचार तुम्हें सुनाये देता हूं।

"जो लोग यह कहते हैं, कि अपने मध्यकालीन ग्रन्थकारों ने प्राचीन शास्त्र की स्पष्टता नहीं की है, वे गलत नहीं कहते। ऐसे ही वे मध्यकालीन ग्रन्थकार प्रत्यक्ष सङ्गीत (Practical Music) में भी उत्तम रूप से निपुण थे, यह उनके लिखने से प्रतीत नहीं होता (यह स्वीकार किया जा सकता है कि वे कुछ अन्शों में जानकार थे) यद्यपि वे उत्तम संस्कृतज्ञ थे, परन्तु प्रत्यक्ष सङ्गीत के उत्तम ज्ञान के बिना, सच्चा उपयोगी सङ्गीत ग्रन्थ लिखना सम्भव नहीं कहा जा सकता। ग्रन्थकारों की व्यर्थ निंदा करना मैं भी ठीक नहीं समझता, परन्तु उनके दृष्टिकोणों की शुद्धता, अशुद्धता को निश्चित करना पाप नहीं कहा जा सकता। इस समय भी बहुत से ग्रन्थकर्ता पण्डित पाये जावेंगे जो प्रत्यक्ष सङ्गीत की उच्चकोटि की जानकारी नहीं रखते। जबकि इस समय ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं, तो उस समय भी ऐसे व्यक्ति होना असंभव नहीं कहा जा सकता।"

यह बिलकुल ठीक है, कि किसी-किसी ग्रन्थकार ने अपने रागों की व्याख्या करते हुए उसमें ग्राम-मूर्छना आदि का उपयोग ऐसे विलक्षण रूप से किया है कि पाठकों को सन्तोष होना तो दूर रहा, उनका बड़े भारी भ्रम में (गड़बड़ घोटाले में) पड़ जाना अधिक संभव है। अपने से प्राचीन ग्रन्थकारों के दोष निकालने का साहस तो उनमें था ही नहीं, साथ ही ग्रन्थों का उपयोग भी जैसा चाहिए वैसा नहीं किया गया।

प्रत्यक्ष सङ्गीत जानने वालों को प्रायः संस्कृत ज्ञान नहीं था और संस्कृतज्ञ पण्डितों का कथन था कि यह विषय (प्रत्यक्ष सङ्गीत-गायन-वादन) हमारा नहीं है।

मैं इसके सम्बन्ध में 'संगीत दर्पण' का उदाहरण ही तुम्हें देता हूँ। इस ग्रन्थ में ग्रंथकार पण्डित दामोदर ने अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए कौनसा भाग लिखा है? और कौनसी बात स्पष्टता से बताई है? हमें यह दिखाई देता है कि उसने 'सङ्गीत-रत्नाकर' का स्वराध्याय तो अपनी रचना में अनेक स्थलों पर शब्दशः उद्धृत कर लिया है। परन्तु 'रत्नाकर' का सबसे अधिक महत्वपूर्ण व कठिन 'जाति प्रकरण' को उसने बिलकुल ही छोड़ देना पसंद किया है। इस प्रकार 'रत्नाकर' के चरण चिन्हों का अनुकरण करते हुए 'स्वराध्याय' पूरा कर लिया, आगे जो रागाध्याय प्रत्यक्ष उपयोगी है उसके विषय में क्या किया है यह भी देखो। रागाध्याय में अकारण ही रत्नाकर के वर्णन को धता बताकर महादेव का आह्वान कर लिया और उनके पांच प्रश्नों से पांच रागोंकी सृष्टि करडाली। थोड़ा और आगे बढ़ने पर दर्पणकार ने इन महादेव और इनके रागों को एक तरफ हटाकर हनुमत मत का आश्रय लिया है। इस प्रकार विचित्रता देखते हुए अपने नवीन सीखने वाले को आश्चर्य और रोष होना स्वाभाविक ही है। यहँ गङ्गा-जमनी संगम क्या मतलब रखता है? जब कि शार्ङ्गदेव के स्वराध्याय को अपने ग्रन्थ में सम्पूर्ण रूप से ग्रहण किया है, तब उसके रागाध्याय को क्यों छोड़ दिया? इसका कोई कारण ग्रन्थकर्ता ने कहीं नहीं बताया है। किसी निर्भीक स्पष्टवादी आलोचक के इस कथन का क्या उत्तर दिया जा सकता है कि "दामोदर ने शार्ङ्गदेव

के ग्राम, मूर्छना, जाति प्रकरणों को योग्य स्पष्टता से नहीं समझा था'। दामोदर के ग्रन्थ दर्पण में इस आरोप से उसका बचाव करने के योग्य कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह कोई भी कह देगा कि रत्नाकर के ग्राम रागों के भाग को छोड़ कर हनुमत मत के रागों की उल्टी सीधी तस्वीर खींचने की (राग ध्यान चित्र) कोई खास जरूरत नहीं थी। जबकि उसने मार्ग संगीत की सम्पूर्ण जानकारी सुनी थी, उसके समय में सर्वत्र देशी सङ्गीत प्रचलित था, यह समझते हुए दर्पणकार ने 'रत्नाकर' का रागाध्याय क्यों छोड़ दिया? हम कैसे जान सकते हैं? परन्तु स्वयं पं० दामोदर ने जो राग व्याख्या दी है, उसके अनुसार ही राग गाने वाला कोई हुआ भी है? ऐसा गाने वाला मैंने आज तक नहीं सुना, जो 'दर्पण' के आधार पर राग गाता हो। जो ग्रन्थकार ग्राम की मूर्छना की गड़बड़ छोड़कर प्रचार के अनुसार अपने ग्रन्थ लिखता है, उसकी योग्य तारीफ होनी चाहिए; परन्तु प्रश्न यह है कि शार्ङ्गदेव के रागों का क्या हुआ, वे निरुपयोगी कैसे ठहराये गये? इनका उत्तर भी तो दर्पणकार को देना चाहिए था। साथ ही ये भी प्रश्न है कि क्या दर्पण में हनुमत मत का स्पष्टीकरण मिलता है। इस मत का ग्रन्थ कौनसा है? उसमें शुद्ध विकृत स्वर कौन से हैं? उसकी मूर्छना कैसे छोड़ दी गई? इन सब बातों की स्पष्टता दर्पणकार ने बिलकुल नहीं की। जबकि रत्नाकर का स्वराध्याय दर्पण के रागाध्याय में दर्पणकार ने उपयोगी मानकर ग्रहण किया है, तब दोनों ग्रन्थों के साधारण रागों में समानता होनी चाहिए। परन्तु यह समानता नहीं है। अब प्रश्न है, कि इस समानता न होने का क्या कारण है? आदि, मेरा ख्याल है, कि इन ग्रन्थों को पढ़ते समय इन बातों पर विचार करना अधिक सुविधाजनक होगा। रत्नाकर, दर्पण आदि ग्रन्थों के सङ्गीत के स्पष्ट होने पर प्रचलित सङ्गीत छोड़कर लोग उसे ही ग्रहण करें, ऐसा होना तो सम्भव नहीं है; परन्तु सामवेद के समय से सङ्गीत कैसे-कैसे बदलता आया है, इसे पद्धतिपूर्वक सिद्ध करने के लिए विद्वानों को इस कार्य में हाथ लगाना चाहिए।

प्रश्न—आपने सामवेद का नाम लिया है अतः मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या आपने सामवेद के सङ्गीत के विषय में भी कुछ खोज की है? यदि की हो तो आपको कुछ उपयोगी जानकारी भी प्राप्त हुई है या नहीं?

उत्तर—मुझे खेद है, कि मुझे इस बात की खोज के लिये अभी तक अवसर प्राप्त नहीं हो सका। उत्तरी भाग में प्रवास पर जाते समय मैंने 'साम' के गाने के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न कागज पर लिख लिये थे, वे प्रश्न मैंने उधर के पंडितों से पूछे भी थे, परन्तु उनसे उन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि वे बड़े विद्वान थे, परन्तु उनका विषय 'साम' नहीं था। मुझे यह जानकारी मिली है, कि गोदावरी के किनारे निजाम की सीमा पर इन्दूर नामक एक छोटा सा क्षेत्र है, वहां पर साम के गाने के सम्बन्ध में योग्य बातें मिल सकती हैं। यदि ईश्वर कृपा से मैं वहां जा सका तो वहां से यह जानकारी प्राप्त कर सकूँगा। यदि मैं प्राप्त न कर सकूँ तो तुम करना। 'साम' का अभ्यास एक स्वतन्त्र विषय है। पाश्चात्य पंडितों ने इस विषय पर कुछ-कुछ लिखा है, परन्तु मैं अभी तक उनकी रचनाएँ

भी पर्याप्त रूप से न देख सका। Raja Sahib Tagore की Hindu Music नामक पुस्तक में एक यूरोपियन पंडित का एक निबंध प्राप्त होता है, वह मैंने देखा है। परन्तु उससे भी सम्पूर्ण जानकरी नहीं पाई जाती। तुम्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि तुम्हारे प्रचलित सङ्गीत का 'साम' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न—आपने उत्तर के पंडितों से कौन-कौन से प्रश्न पूछे थे ?

उत्तर—वे बिलकुल साधारण प्रश्न थे। मुझे उस विषय की जानकारी नहीं होने से अधिक मार्मिक प्रश्न पूछना शक्य भी नहीं था, मैंने निम्नलिखित पूछे थे—

[१] सामवेद का गायन उत्तम रूप से सीखने वाले विद्यार्थी को कौन सी पुस्तकें पढ़नी आवश्यक हैं ?

[२] साम की पुस्तक में मंत्रों के अक्षरों पर १, २, ३, ४, ५, ६, ७ ऐसे अङ्क लिखे हुए हैं। इन अङ्कों का सम्बन्ध किन से और कैसा है ?

[३] यदि ये अंक स्वर के द्योतक हैं तो इनका स्पष्ट विवरण किस ग्रन्थ में प्राप्त होगा ? क्या सात से अधिक अंक भी हो सकते हैं ? यदि नहीं तो क्यों ?

[४] संहिता में १, २, ३ अंक ही क्यों हैं ? संहिता केवल उदात्त, अनुदात्त और स्वरीत स्वरों में ही कही जाती है, अर्थात् वह नहीं गाई जाती। क्या यह ठीक कारण है ?

[५] मंत्रों के बीच-बीच में बड़े अंक दिये हुए हैं। क्या उन अंकों और अक्षर के ऊपरी भाग में दिये हुए अंकों का भेद प्रत्यक्ष मन्त्र गाकर समझा सकते हैं ?

[६] क्या 'नारदीय शिक्षा' का उपयोग साम का प्रत्यक्ष गान समझने में हो सकता है ? यदि हाँ तो प्रत्यक्ष कर दिखाइये ?

[७] "प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोथ चतुर्थकः। मंद्रक्रुष्टोह्यतिस्वार एतान कुर्वंति सामगाः ॥" इस श्लोक का उपयोग क्या प्रत्यक्ष मंत्र लेकर प्रत्यक्ष कर दिखा सकते हैं ?

[८] मन्त्र के ऊपर लिखे हुए स्वरों की, प्रचलित सा रे ग म प ध नि स्वरों से समानता या एकता बताई जा सकती है ?

[९] प्रचार में सप्त स्वर एक से दूसरा ऊँचा, इस रीति से रखे गये हैं। क्या साम में भी ऐसे ही है ?

[१०] साम गान सुनने पर उसमें प्रायः तीन और कभी-कभी चार स्वर ही दिखाई पड़ते हैं। क्या इस पर भी आपने लक्ष्य दिया है ? सामवेद के गायन के स्वर क्रमानुसार कह सकेंगे ? यह जानकरी कहाँ प्राप्त होगी ?

[११] 'साम' के स्तोत्र की स्पष्टता किस ग्रन्थ में प्राप्त होगी ? किसी एक ऋचा में भिन्न-भिन्न 'स्तोत्र' का प्रयोग हो सकता है ? भिन्न भिन्न शाखाओं में स्तोत्र बदलते हैं ?

[१२] कुल मिलाकर साम गायन की कितनी पद्धतियाँ हैं ? उनकी कौन-कौन सी पुस्तकें हैं ?

[१३] 'तांड्य लक्षण सूत्र' 'पुष्प सूत्र' 'साम तंत्र' 'धन्वी भाष्य' 'अग्नि भाष्य' आदि ग्रन्थों में कौन-कौन से विषय हैं। इनमें से साम-गान सीखने के लिए कौन सी पुस्तक सर्व प्रथम पढ़नी चाहिए ?

[१४] "वे य, आरण्य, ऊह व ऊह्य" ये गाने भिन्न-रूप से सुनाकर उनका भेद समझा सकेंगे ? एक ऋचा गान और त्रिऋचा गान कैसा होता है ?

[१५] 'र' अक्षर का क्या अर्थ है ? कहीं-कहीं अवग्रह चिन्ह आ जाते हैं वहां क्या किया जाता है ?

[१६] स्वरों का अंगुलियों पर कौनसा स्थान है ? इसका आधार क्या है ? इस स्थान पर कायम किये हुए स्वरों को अलग-अलग क्रमानुसार बताइये ?

[१७] एकदम ३ या ४ अंक देखने पर कौनसा स्वर लगाया जावेगा ? १-ऊँचा २-प्रथम से नीचा ३-दूसरे से नीचा। इतनी जानकारी से ही स्वर स्थान निश्चित हो सकते हैं ? स्वरों में परस्पर क्या सम्बन्ध निश्चित किया गया है ?

[१८] अक्षरों का समय मान किसकी सहायता से लगाया जावे ? अमुक स्वर अमुक सैकन्ड तक गाना चाहिये इस प्रकार के नियम हैं क्या ?

[१९] 'प्राति साख्य' कौन-कौनसी हैं ? और वे वैसी क्यों हैं ?

[२०] शिक्षा कितनी हैं ? आप किनको स्वीकार करते हैं ? शिक्षा के प्रमाण से गायन के कितने भेद होते ? उन्हें मुझे दिखा सकेंगे ?

[२१] क्या भिन्न-भिन्न शिक्षाओं के प्रमाण से स्वरों में परिवर्तन भी होता है ?

[२२] एक ही प्रकार के अंक होने पर भी क्या गायन प्रकार भिन्न हो सकता है ? मैंने इसी तरह भिन्न सुना है।

[२३] गायन में 'हौं' 'हौं' पद के प्रयोग का क्या उद्देश्य है ? इन्हें लगाने के नियम किस पुस्तक में बताये गये हैं ?

[२४] क्या रथन्तर भी साम कहलाता है ? और अन्य कौन कौन से प्रकार हैं और वे कैसे पहिचाने जा सकते हैं ?

[२५] क्या एक ही गायक क्रम-क्रम से वेय आरण्य आदि भेदों को गाता है ?

ऐसे ही कुछ प्रश्न मैंने लिख रखे थे, परन्तु इनकी उत्तम जानकारी प्राप्त नहीं हुई। वास्तव में अभी मैंने इस विषय को हाथ में नहीं लिया है। अस्तु— अभी मुझे दर्पण के विषय में दो शब्द और कहने हैं। फिर हम अपने मुख्य विषय पर आ जावेंगे।

मुसलमान गायकों को अपने से अधिक दर्पण पर अभिमान करते पाया गया है क्योंकि उसमें छः राग भैरव, मालकोष, हिन्दोल, दीपक, श्री व मेघ बताये गये हैं। परन्तु दर्पण के रागों का स्वरूप भी अपने प्रचलित रागों जैसा है या नहीं, इस प्रश्न का उनसे कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। उन बेचारों ने दर्पण की केवल जानकारी मात्र ही सुनी है। मैंने एक नामांकित हिन्दू पण्डित से विनय की थी कि आप मुझे रत्नाकर और दर्पण के रागों की एकरूपता कर दिखाइये। परन्तु उन्होंने इसके उत्तर में एक बड़ी रकम की मांग पेश की। अतः यह बात वहीं रह गई। इस विषय पर मेरे स्वतंत्र विचार किसी अन्य प्रसंग पर बताऊँगा। इस समय तो तुम्हें प्रचलित सङ्गीत ही यथाशक्ति सरल बनाकर समझा देने की मेरी इच्छा है। इस प्रकार के विवादयुक्त विषय में पड़ने की इस समय आवश्यकता नहीं है।

अनेक ग्रन्थकारों ने रागों की पत्नियां, उनके पुत्र आदि उनका परिवार का यथाशक्ति वर्णन कर अपने को धन्य कर लिया है। उन्होंने राग-रागनियों के ध्यानों की रचना कर अपनी उत्तम काव्य प्रतिभा का ही प्रदर्शन किया है। हम यह मानकर चलेंगे कि संभवतः इन राग चित्रों (ध्यानों) का उपयोग रागों की उपासना करने में होता होगा। परन्तु इस बीसवीं सदी के सङ्गीत विद्यार्थियों को रागों का स्वरूप चित्रों द्वारा बताने की अपेक्षा स्पष्ट स्वरों में दिया जाना अधिक अच्छा होगा, यह मेरी धारणा ठीक ही है। यथा योग्य रूप से उपासना करने पर राग स्वरूपों से ज्ञान, प्रेरणा प्राप्त करने का धैर्य इन बेचारों में कैसे पाया जा सकता है? इन रागों के चित्र मेघकर्ण की "रागमाला" में बहुत संख्या में प्राप्त होंगे। यह ग्रन्थ भी तुम्हें आगे बताऊँगा। निजाम हैदराबाद के० बे० शा० सं० आपा साहेब शास्त्री और गायक के पास मुझे राग माला की एक नकल प्राप्त हुई है। उन्हीं सज्जन ने कृपा कर मुझे "सङ्गीत मकरन्द" की भी एक नकल दी है।

प्रश्न--अब कौनसा राग बतायेंगे?

उ०--अब हम बिहाग, शंकरा, बिहागड़ा आदि रागों पर विचार करेंगे। 'बिहाग' को सर्वप्रथम लेते हैं, यह राग शुद्ध स्वरों का है, यह प्रसिद्ध ही है। इसकी जाति प्रचार में गुणियों के द्वारा औड़व सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग का आरोह पांच स्वरों का होता है और अवरोह में सातों स्वर लिये जाते हैं। आरोह में रे व ध स्वर वर्जित किये जाते हैं। यह राग रात्रि गेय है और बिलकुल साधारण राग है।

प्रश्न--तो फिर इस राग में पूर्वाङ्ग का कौनसा स्वर वादी माना गया है?

उत्तर—इस राग का वादी स्वर गांधार और संवादी निषाद है। इस राग का अवरोह सम्पूर्ण है, फिर भी इसमें रे, ध, स्वर बहुत दुर्बल हो जाते हैं। यदि ये दो स्वर योग्य प्रमाण से नहीं लगाये गये तो श्रोताओं को बिलावल का आभास हो जाता है। गायक लोग अवरोह करते हुए "सां नि, ध प, म ग, म प, म ग, रे सा" इस प्रकार निषाद और गांधार पर थोड़ी सी विश्रान्ति लेते हैं, और ऐसा करने से रे, ध स्वर अपने आप दुर्बल हो जाते हैं, मैं तुम्हें प्रत्यक्ष प्रयोग बता देता हूँ।

बिहाग का रूप स्वतंत्र है! यह अन्य रागों से शीघ्र ही पहिचाना जा सकता है। "ग म प, म ग, रे सा" यह स्वर समुदाय इस राग की पकड़ है। ये ही स्वर इस राग में अनेक स्थान पर दिखाई देते हैं। परन्तु "म ग, रे सा" इस प्रकार गांधार पर विश्रान्ति नहीं पाई जाती। अवरोह में 'रे ध' बिलकुल वर्ज्य कर देने से अन्य रागों की छाया होना संभव है। "सां नि, प सां नि, प, ग प ग, सा" यह भाग 'शंकरा' नामक अन्य राग का है। शंकरा और मालश्री में अनेक बार "प ग, प ग, सा" भाग दिखाई देता है। इन दोनों रागों को भी नियमों द्वारा अलग-अलग कर दिया है, परन्तु बिहाग में अवरोह सम्पूर्ण होने के कारण उसी नियम का पालन करना चाहिये। शंकरा में मध्यम वर्ज्य है, और मालश्री में मध्यम तीव्र लगाया जाता है। इस प्रकार ये दोनों राग बिहाग से अलग हो जाते हैं और भ्रान्ति मिट जाती है। "बिहाग" नाम किस भाषा का है, इस पर विचार करते हुए बंगला ग्रन्थकार लिखते हैं कि यह शब्द संस्कृत शब्द "विहग" या "विहंग" का अपभ्रन्श रूप है। हमें इस प्रकार की किसी कल्पना की आवश्यकता भी नहीं है। ग्रन्थों में एक नाम बिहागड़ा भी पाया जाता है। बिहाग का आरोह-अवरोह बहुत सरल है। नि़ सा, ग म प, नि सां। नि, ध प, म ग, रे सा। इस राग का वादी स्वर गांधार है, अतः यह स्वर राग में यत्र-तत्र प्रयुक्त होता पाया जावेगा, परन्तु निषाद का प्रयोग खासकर जमा लेना चाहिये। जब इस निषाद पर बीच-बीच में गायक विश्रान्ति लेने लगते हैं, तब इसकी शोभा कुछ विलक्षण हो जाती है।" 'म ग, सा नि़, प नि़, सा' 'सां नि, प, नि सां नि प, ग म प, ग म ग, रे सा नि' ये स्वर बार-बार प्रयोग कर सीख चुकने पर राग का गाना आजावेगा। बिहाग का समय रात्रि का दूसरा प्रहर माना जाता है। इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हुए गायक तुम्हें दिखाई देंगे। रात्रि कालीन रागों में और उन रागों में जिनमें ग, नि स्वर तीव्र लिये हों, तीव्र मध्यम स्वर कोई बड़ी हानि उत्पन्न नहीं कर सकता। यह प्रत्येक राग में लगाने की अनिवार्यता नहीं है, परन्तु योग्य स्थानों पर विवादी स्वर जैसा प्रयोग करने पर राग हानि उत्पन्न नहीं कर सकता, ऐसा अनुभव भी है।

"बिहागड़ा" नामक एक राग प्रचार में सुना जाता है, उसके अवरोह में कोमल नि स्वर गायकों द्वारा प्रयुक्त होता है। ग्रन्थों में—बिहागड़ा को बिलावल थाट में माना गया है। अतः इसमें कोमल 'नि' को स्थान नहीं मिलना चाहिये। हुआ यह है कि बिहाग एक नवीन राग नाम स्वीकार कर बिलावल थाट में माना गया है, और ग्रन्थों में वर्णित बिहागड़ा में (जो बिलावल थाट में पाया जाता है) कोमल नि स्वर का प्रयोग किया गया है।

कोई-कोई गायक बिहागड़ा को बिहाग से अलग करने के लिए उसका वादी स्वर "मध्यम" बनाने लगे हैं। वे बिहागड़ा में "सा ग, ग म" इस प्रकार का अङ्ग प्रदर्शित करते हैं। मध्यम का इस प्रकर व्यस्त अथवा खुला प्रयोग करने पर शुक्ल-बिलावल की छाया दिखाई देने लगती है। इसे दूर करने के लिए गायक लोग आरोह में रिषभ, धैवत स्वरों का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग स्वरों में बताने पर

तुम्हें अधिक स्पष्ट हो सकेगा। मुझे एक प्रसिद्ध गायक ने एक गीत बिहागड़ा का सिखाया है उसके आधार पर इस राग का स्वर स्वरूप इस प्रकार होता है:—

सा, ग, ग म, म ध, म ध नि, ध प म, प म ग, सा, ग, ग म।

ग, म प, नि सां, नि ध प, म प म ग रे सा, सा ग, ग, म।

प प नि, नि सां, सां, सां रें गं, रें सां, नि ध प, सां गं, रें गं मं, गं रें सां, सां नि-ध प, ध म ग, रे सा ग, ग प म।

यहां पर आरोह में 'रे' स्वर अनेक जगहों पर प्रयोग किया हुआ है। यह तुम्हें दिखाई देगा कि निषाद भी दोनों प्रयुक्त हुए हैं। यह स्वरूप बिहाग से बिलकुल निराला हो जाता है।

प्रश्न—आप 'बिहाग' का स्वर विस्तार और बता दीजिए, जिससे हमें उनकी तुलना करने में सुविधा हो?

उत्तर—यह लो:—

सा, ग, रे सा, नि़ सा, प़, नि़ सा, ग म ग, रे सा।

नि़ सा ग म प, ग म ग, रे सा, नि़ सा प़ नि़ सा, ग नि़ सा, ग म प ग म ग, रे सा।

नि़ सा ग म प, ग म प, ग म ग, प ग म ग, रे सा, नि, प, ग म प ग म ग, रे सा।

ग म प प, नि नि प, सां नि प, ध प, ग म ग, प ग म ग, रे सा, नि़ सा ग रे सा सा नि, प़ नि़ सा, सा ग म प, ग म प, ग म ग, रे सा।

प प नि नि सां, सां, सां गं सां, सां रें सां, नि प, प नि, सां नि, ध प, ग म प नि सां, गं रें सां, सां नि, प, ग म प ध, म ग, रे सा।

तुम्हें स्वरमालिका कंठस्थ है ही, इसलिये और अधिक प्रस्तार नहीं कर रहा हूँ। यह राग सरल रागों में गिना जाता है। अब इस राग के सम्बन्ध में दो चार ग्रन्थों के मतों पर विचार करें। ग्रन्थों में बिहागड़ा या बिहागरा नाम ही अनेक स्थानों पर प्राप्त होगा। 'राग विबोध' में बताया है:—

"हंमीरमेल उज्वलसमपधतीव्रतररिमृदुममृदुसकाः।
हंमीरविहंगडकेदारप्रमुखा अतो मेलात्।
न्यंशग्रहसन्यासोऽल्पधो लसेन्निशि विहंगडः॥"

इस स्थान पर धैवत शुद्ध बताया है, अर्थात् हमारा प्रचलित कोमल धैवत लगाने का उल्लेख है। हमारे गायक इस राग में कोमल धैवत का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। नृत्य निर्णय ग्रन्थ में बिहागड़ा केदारमेल का राग बताया है और उसे सायंकाल गाने का उल्लेख है। "सायं केदारमेले" आदि। हृदय प्रकाश ग्रन्थ में यह राग नहीं पाया जाता। 'सङ्गीत पारिजातकार' अहोबल ने इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है—

"बिहागडे गनी तीव्रावारोहे तु रिवर्जिते।
गांधारोद्ग्राहसंपन्ने न्यासांशो निस्वरो मतः ॥
यद्यस्मिन् पंचमोद्ग्राहः स्यादारोहे गवर्जनम् ।
मूर्छना मध्यमे चापि पराहित्यं सदाभवेत् ॥

इसका थाट तो बिलावल है, परन्तु आरोह में धैवत स्वर वर्ज्य करने का उल्लेख नहीं पाया जाता। दूसरे श्लोक का उपयोग हमारे लिये होना संभव नहीं है। "राग तरङ्गिणी कार" ने इसे थाट केदार में बताकर इसकी उत्पत्ति इस प्रकार बताई है:-

"केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः।
आभीरनाटनामाच गेयो रागस्तथापरः ॥
बिहागराच हंबीरः श्यामः श्रुतिमनोहरः।
सरस्वत्यथ मारुश्च केदारापि मनोहरा।
बिहागरासमुत्पत्तिनिदानं त्रितयं मतम् ॥"

विद्यापति का केदारमेल अपना बिलावल थाट ही है, यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ।

"राग लक्षण" ग्रन्थ में बिहागड़ा का वर्णन इस प्रकार कहा गया है—

"मेलाच्चसंभवो धीरशंकराभरणाच्चवै ।
बिहागडेति रागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे रिधवर्जं चाप्यवरोहे समग्रकम् ।

शंकराभरण मेल अपना बिलावल थाट ही है। यहां आरोह में रे ध वर्ज्य करने को कहा गया है। चतुर्दण्डिप्रकाशिका, सारामृत, स्वरमेल कलानिधि इन ग्रन्थों में यह राग नहीं पाया जाता। प्रसिद्ध बँगला ग्रन्थ, "सङ्गीतसार" में 'बेहाग' 'विहङ्गड़ा' ऐसे प्रकार भिन्न प्रकार बताये हैं। इन रागों की जानकारी टिप्पणी में इस प्रकार दी गई है। "बेहाग" यह राग संस्कृत शास्त्रानुमोदित नहीं है। इसकी उत्पत्ति बिहंगड़ा से हुई है। बेहाग में निषाद मह स्वर है, गांधार वादी है और रिषभ, धैवत विवादी स्वर हैं। तो भी अवरोह में चतुरता से रे ध स्वर लगाने का परिणाम बुरा नहीं दिखाई पड़ता।

बिहाग का संस्कृत नाम "बिहग" या "बिहगरी" है। बहुत से लोग 'बिहाग' को बिहंगड़ा समझ लेते हैं, परन्तु वास्तव में ये दो भिन्न-भिन्न राग हैं। 'बिहग' में दोनों निषाद का प्रयोग किया जाता है। 'बिहंगड़ा' में केवल शुद्ध निषाद लिया जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् कल्लिनाथ और शिल्हन ने बिहाग को सम्पूर्ण जाति का राग माना है।'

प्रश्न—परन्तु ये ग्रन्थकार 'बिहग' के स्वर कौन से बताते हैं ?

उत्तर—यह मैं नहीं बता सकता। उनके ग्रन्थ भी मेरे पास नहीं हैं। बिना स्वर समझे सम्पूर्ण जाति का उपयोग नहीं हो सकता, यह वास्तविक कठिनाई है। खैर आगे चलें:—

" 'बिहग' राग का प्रमाण 'नर्तन निर्णय' और 'राग विबोध' में पाया जाता है। वहां पर इसे शंकराभरण का पुत्र बताया है" 'पुत्र का थाट' राग जनक थाट से शायद मिलता हुआ होगा।

"विहङ्गड़ा—अस्याः जातिः सम्पूर्णा। इति मतंगमुनेर्मतम्"

यहां तुम पूछोगे कि विहंग का थाट मतङ्ग मुनि ने कौनसा बताया है, परन्तु मैं उत्तर नहीं दे सकूँगा। 'सङ्गीतसारकर्त्ता' ने राग विस्तार भी कर दिखाया है उसमें दोनों निषाद लगते हैं व आरोह में धैवत का प्रयोग भी किया है। हमारे गायक इसी प्रकार से 'बिहागड़ा' गाते हैं। 'क्षेत्रमोहन स्वामी' ने अपने ग्रन्थ में 'देव बिहाग' नामक राग बताया है, उसमें रे, ध स्वर आरोह में ग्रहण किये हैं। यह एक नवीन रूप तुम्हें प्राप्त होने पर संग्रह करना चाहिए। 'अधिकस्य अधिकं फलम्'। मेरे ख्याल से अब हमें बिहाग को छोड़ देना चाहिए।

प्रश्न—ठीक है, अब इसके निकट का राग 'शंकरा' समझाइये।

उत्तर—वही मैं तुम्हें बता रहा था। 'शंकरा' राग प्रचार में तीन प्रकार से गाया जाता हुआ तुम्हें दिखाई पड़ेगा।

ये तीन प्रकार औडव, षाड़व और सम्पूर्ण हैं। इस राग का चलन मालश्री और बिहाग से मिलता हुआ कुछ परिमाण में दिखाई देगा। यह हम जानते हैं कि 'बिहाग' के आरोह-अवरोह में शुद्ध मध्यम न लेने पर बिहाग नहीं हो सकता। शंकरा में बहुमत से मध्यम वर्ज्य स्वर माना गया है। इन दोनों रागों में यही एक प्रधान अन्तर हो जाता है। 'मालश्री' में मध्यम तीव्र लिया जाता है और धैवत वर्ज्य किया जाता है और 'शंकरा' में धैवत ग्रहण किया जाता है व मध्यम वर्ज्य किया जाता है। इस प्रकार मालश्री और शंकरा राग भी अलग-अलग किये जाते हैं।

"सा, प प, ग सा, यह भाग मालश्री और शंकरा दोनों में समान है। तो भी कोई-कोई गायक इन दोनों रागों का मिश्रण न हो, इस विचार से शंकरा राग के अवरोह में रिषभ स्वर स्पष्ट रूप से लगाते हैं। जैसे:—'प ग, प ग, रे सा, सा रे सा, ग प ग सा' 'शंकरा' राग का स्वरूप तुम्हें अच्छी तरह याद रखने के लिये यह आवश्यक है कि इस राग में बार-बार आने वाली इस तान को याद रखना चाहिये। 'सां नि, ध प, नि ध सां नि प' यह तान इस राग में बार-बार गायक लेते देखे जावेंगे। बिहाग में भी यह भाग थोड़े रूप में लिया जाता है, परन्तु उसमें आरोह में धैवत वर्ज्य किया जाता है। इतना ही नहीं, परन्तु शंकरा का आभास न होने के लिए अवरोह में

कोमल मध्यम को स्पष्ट रूप से लिया जाता है, जैसे–'सां नि, प, नि, सां नि ध प, म ग, म प म ग, रे सा'। शंकरा के उत्तरांग में बिहाग का आभास हो जाता है तब गायक मध्यम वर्ज्य कर मालश्री का स्वरूप उत्पन्न कर देते हैं, जैसे—'प नि, ध सां नि, प ग, प ग सा।' और फिर मालश्री को हटाने के लिए 'सा रे सा, ग प नि प ग प ग रे सा' का प्रयोग करते हैं। यह प्रयोग मनोरंजक होने के साथ–साथ सरल भी है। मेरे साथ दस–बीस बार गा लेने पर तुम्हें यह आ जावेगा। मैंने तुम्हें यह बताया ही है कि शंकरा तीन प्रकार से गाया जाता है। इनमें पहिला प्रकार औड़व है, जिसमें रे, म स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। दूसरे पाड़व प्रकार में केवल मध्यम स्वर को छोड़ा जाता है और तीसरा प्रकार सम्पूर्ण ,सातों स्वरों का है। यह अन्तिम प्रकार अपने यहां प्रचलित नहीं है। सम्पूर्ण प्रकार के आरोह में तीव्र मध्यम लेते हैं, परन्तु अवरोह में उसे वर्ज्य कर देते हैं। यह रूप बङ्गला ग्रन्थ सङ्गीतसार में बताया है। मालश्री में रे ध वर्ज्य और अवरोह में ही मध्यम लिया जाता है। यह बँगला स्वरूप एक नवीन रूप ही मानना चाहिये, बङ्गाल में यह प्रचलित है।

प्र०—इस राग के लिये कोई आधार भी बताया गया है?

उ०—'राग सर्वस्व' ग्रन्थ में इसकी जाति सम्पूर्ण मानी गई है, परन्तु उस ग्रन्थ में शंकरा राग के स्वर बङ्गला स्वरूप से मिलते हुए हैं या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। हमारे ग्रन्थकारों का यही दृष्टि भ्रम हो जाता है। यद्यपि वे अथक परिश्रम करते हैं, परन्तु कोई महत्वपूर्ण बात ऐसी संदिग्ध छोड़ देते हैं कि पाठकों द्वारा कभी–कभी उनके साथ अन्याय हो जाता है। पाठकों के हृदय में उनके परिश्रम के प्रति जो श्रद्धा होनी चाहिए वह नहीं हो पाती। इसी उदाहरण में यदि 'रागसर्वस्वकार' ने शंकरा का थाट कल्याण नहीं माना हो तो वह बङ्गाली स्वरूप के योग्य आधार ही नही होता। "भिन्न रुचिर्हि लोकः" मानकर हम इसे यहीं छोड़ देते हैं। वहां पर तीव्र मध्यम लगाया हुआ यह स्वरूप बताया है:—

"पसांनि, धप, पनिधसांनि, गप, मंपग, रेंगरेसा, पृनिृपृ, सा, सासा, गप, गरेसा। पनिसांसां, रेंगरें, पंमंपंगं, रेंगरेंसां, सांरेंसां, धनिधप, पनिधसांनि, गपमंपगपग, रेग, रेसा।"

इस स्वरूप में "पनिध, सांनि, पग, रेसा" यह भाग स्पष्टतः रागवाचक है। शंकरा के तीनों प्रकार प्रचार में नहीं दिखाई पड़ते। साधारणतया औड़व और षाड़व स्वरूप ही अधिक दिखाई देते हैं। इन दोनों में प्रायः मध्यम स्वर वर्ज्य ही किया जाता है। शंकरा में यद्यपि धैवत वर्ज्य नहीं हैं, परन्तु बिहाग अङ्ग लेने के कारण अपने आप धैवत स्वर दुर्बल हो जाता है। इस राग की सम्पूर्ण खूबी "नि, ध प, नि ध सां नि" और "ग प ग सा" इन दोनों टुकड़ों में है। इन दोनों टुकड़ों को गायक भिन्न–भिन्न युक्तियों से प्रदर्शित करते हैं। इन दोनों टुकड़ों का इतना अधिक महत्व है कि यदि गायक ने अन्य नियमों की ओर दुर्लक्ष्य करते हुए केवल इन्हीं टुकड़ों को ठीक–ठीक दिखा दिया तो अधिक राग हानि नहीं होती।

बहुमत से शङ्करा राग रात्रिगेय माना गया है। इसका समय बिहाग के समकालीन ही है। कोई-कोई सङ्गीतज्ञ इसके उत्तराङ्ग की विचित्रता देखकर ऐसा सोचते हैं कि बिहाग में गांधार स्वर प्रधान है अतः वह रात्रि गेय है, और शङ्करा में षड्ज वादी मानकर उसे प्रातःकाल गाना चाहिये। यह विचार युक्ति सङ्गत होने पर भी बहुमत के विपरीत है, अतः स्वीकार करने योग्य नहीं है। शङ्करा गाते हुए गायक पंचम स्वर से गांधार पर और गांधार से षड्ज पर बार-बार मींड लेते हैं। यह काम बहुत सुन्दर होता है। मालश्री में भी ये ही मींड बताई गई है, परन्तु शङ्करा और मालश्री की भिन्नता की ओर तुम्हारा ध्यान रहना चाहिये। मींड का अर्थ तुम जानते ही हो। 'गीत सूत्र सार' के लेखक श्री बनर्जी शङ्करा को सम्पूर्ण मानते हैं, और उसमें दोनों मध्यम लेने का आदेश देते हैं। परन्तु मुझे तो मध्यम वर्ज्य करना अधिक उत्तम लगता है, और वही तुम्हें स्वीकार करने की सलाह देता हूँ।

प्रश्नः—'लक्ष्य सङ्गीतकार' का मत भी यही होगा ?

उत्तरः—हां उसका भी यही मत है। 'लक्ष्य सङ्गीत' में इस प्रकार लिखा है—

"शंकरा षाडवा प्रोक्ता मस्वरेणविवर्जिता।
शंकराभरणे मेले रात्र्यां द्वितीययामके ॥
रिमवर्ज्या चौडवापि दृश्यते लक्ष्यवर्त्मनि।
षड्जो गोवा भवेद्वादी विहागांगेन मंडनम् ॥
मध्यमस्य लंघनेन, विहागाद्भितपरिस्फुटा।
गांधारस्यापि वादित्वे गानं रात्र्यां न दूषितम् ॥"

यह वर्णन कितना स्पष्ट रूप से किया गया है!

प्रश्न--जी हां बिलकुल स्पष्ट कहा है, फिर राग का वादी स्वर हमें गांधार ही मानना चाहिये ?

उत्तर—हां, क्योंकि यह रात्रिगेय राग है, अतः गांधार ही वादी स्वर उत्तम होगा। बिहाग को तो तुम अलग पहिचान ही सकते हो ?

प्रश्नः—हां आपने बिहाग के विषय में 'लक्ष्य सङ्गीत' का कथन नहीं बताया ?

उत्तर--खूब याद दिलाई। लो, सुनो—

"वेलावलस्य संमेलाज्जातो रागः सुनामकः।
बिहाग इतिविख्यातो गांधारांशग्रहो मतः ॥
आरोहे रिधवर्जं स्यादवरोहे समग्रकम्।
रात्र्यां द्वितीयके यामे गानं तस्य सुसंमतम् ॥
रिधयोः सति प्राबल्ये स्याद्बिलावलशंकनम्।
अतो गायकोत्तमै स्तौ लंघितौ दुर्बलौ स्वरौ ॥"

बिहाग के विषय में मेरा बताया हुआ वर्णन इन लक्षणों से बिलकुल मिलता है। 'शंकरा' का नाम प्रायः सारे ग्रन्थों में 'शंकराभरण' कहा गया है। शंकराभरण और शंकरा ये दोनों नाम समान लगने के कारण शंकराभरण को शंकरा संक्षिप्त नाम कहने को तैयार होंगे, परन्तु मेरे मत से ये दोनां अलग-अलग राग हैं। ग्रन्थों में केवल 'शंकरा' नाम भी एक-दो जगह प्राप्त होता है 'रागमाला' में मेघ राग का परिवार बताया है, वहां इसे मेघ का पुत्र शंकर माना है—

"मल्लार्यप्यथ सोरटीच सुहवी ह्यासावरी कौंकणी।
कांताः पंच पुरा पुराणविबुधा एता शशंसु स्तथा॥
पुत्रास्तस्य नटोऽथ कानर इतः सारंगकेदारकौ।
गुण्डो गुण्डमलारकौ जलभृतो जालंधरः शंकरः॥"

यहां पर स्पष्ट रूप से शंकर नाम दिया है, परन्तु इस ग्रन्थ से इस राग का स्वरूप समझ नहीं सकते, क्योंकि इसमें केवल निम्नलिखित वर्णन इस राग का किया है:—

"धृतकरतलशस्त्रो धारयन् दिव्यरूपम्।
जलजविपुलनेत्रो हस्ततांबूलधारी॥
मलयजपरिलिप्तः कंकणंधृक्किरीटी।
प्रथमसुरगणेशैः शंकरःस्तूयमानः॥"

सुप्रसिद्ध राजा टैगोर की रचना 'सङ्गीतसार संग्रह' में एक स्थान पर इस राग का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"निषादांशग्रहन्यासा संपूर्णा शंकराभिधा।
निशीथाच्च परंगेया रसे हास्ये प्रयुज्यते॥"

यह वर्णन भी तुम्हारे लिए उपयोगी नहीं हो सकेगा, क्योंकि इस ग्रन्थ में इस राग के थाट का स्पष्ट कथन नहीं पाया जाता। मेरे ख्याल से राजा साहेब ने जिस ग्रन्थ से उद्धरण लिये हैं, यदि वे उसे स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित कराते तो उत्तम होता। क्योंकि केवल वर्णन मात्र का बिना स्वर जाने कुछ उपयोग नहीं किया जा सकता। केवल उस वर्णन को कंठस्थ कर लेने से कोई गायक केवल शास्त्रीय रूप रेखा जान सकता है, परन्तु यह परिणाम सङ्गीत सीखने की दृष्टि से सम्पूर्ण इच्छित नहीं होता है।

प्रश्न—अब हमें शंकरा राग का विस्तार बता दीजिए?

उत्तर—शंकरा का राग विस्तार इस प्रकार होगा—

सा, ग, प ग सा, प ग, प ग, सा ग, प, नि प ग, प ग सा।
प़ नि़ सा, सा ग सा, सा ग प नि प ग, ग प ग सा, नि नि ध प, ग प ग सा।

नि़ सा ग प, नि ध प, ग प नि ध, सां नि ध प, प ग रे, प ग सा ।

सा रे सा, सा ग प ग सा, नि़ सा ग, नि ध सां, नि प ग प ग, रे सा ।

ध नि ध प, सां नि प, सा ग प, नि ध सां नि नि प, प ग, ग प ग, सा ।

सां सां, नि प, प नि ध सां, नि नि प, प, प ग, ग प ग रे सा, सा सा ग ग, प ग, रे सा, सां गं सां, नि प, ग ग, प ग, रे सा ।

प प सां, सां सां रें सां, सां गं पं गं, पं गं सां, पं पं गं पं, गं सां, सां नि प, नि ध, सां नि प, सा ग प प, सां गं सां, नि प, ग ग, प प, ग प ग सा ।

यहां कहीं–कहीं रे, ध स्वर विशेष रूप से लगाये गए हैं। यह इस राग को मालश्री से अलग करने की उत्तम युक्ति है ।

कहीं-कहीं गायकों द्वारा प्रचार में 'शंकरा भरण' 'शंकरा अरन' आदि नाम भी सुने जाते हैं। उनके नियम शायद ही वे बता सकें, परन्तु तुम ध्यानपूर्वक खोज करो तो तुम्हें दिखाई देगा कि वे गायक उत्तरांग में 'सां नि प, नि, सां नि प' तान को सँभालते हैं और पूर्वाङ्ग में रे व कहीं–कहीं एक या दोनों मध्यमों का प्रयोग कर भिन्न–भिन्न प्रकार उत्पन्न कर देते हैं। बिहाग के आरोह में भी 'रे' स्वर नहीं है, अतः इसे ग्रहण करने पर यह निराला प्रकार हो ही जाता है । 'रे' स्वर का प्रयोग करने से जहां कल्याण जैसा रूप दिखाई देने लगा, कि तत्काल शंकरा का ऊपर निश्चित रूप प्रयुक्त कर दिया जाता है । एक गायक ने मुझे पूर्वाङ्ग में कोमल रे लेकर और उत्तरांग में शंकरा का निश्चित रूप लेकर एक अलग प्रकार का 'शंकरा' बताया । वह केवल नाम ही बता सका । संभवतः 'शंकरा अरन', 'शंकरा' और 'अरुण' राग के मिश्रण से उत्पन्न होता होगा ? 'अरुण' नामक राग को सङ्गीत सार ग्रन्थ में मल्हार, कानड़ा और नट के मिश्रण से उत्पन्न बताया है । परन्तु उस अरुण का योग शंकरा से कर लिया जाता है, ऐसा कहना युक्ति–सङ्गत नहीं दिखाई देता । यह स्वरूप विवादग्रस्त है, इतना जान लेना ही पर्याप्त है ।

प्रश्न—जी हां ठीक है । अब हम 'शंकरा' राग अच्छी तरह समझ गये हैं ।

———

बिलावल थाट उत्तरार्ध

प्रश्न—अब इस थाट के किसी अन्य राग का विवरण बताइये ?

उत्तर—अब हम 'ककुभ' या 'कुकुभ' पर विचार करेंगे, कुकुभ नाम अत्यन्त प्राचीन दिखाई देता है। किसी-किसी के मत से ककुभ और कुकुभ भिन्न-भिन्न राग हैं, परन्तु प्रचार में ऐसे भेद कोई नहीं मानते। प्रचार में केवल कुकुभ नाम ही सुनाई देता है। बहुमत से कुकुभ बिलावल का एक प्रकार माना गया है। यद्यपि संस्कृत ग्रन्थों में 'कुकुभ बिलावल' ऐसा संयुक्त नाम नहीं दिखाई देता, परन्तु प्रचार में इसे बिलावल का भेद ही मानते हैं। इस राग में सम्पूर्ण शुद्ध स्वर लगते हैं। जहां-जहां पर गायक को विशेष रूप से अल्हैया का भाग दिखाना हो वहीं पर धैवत की संगति में कोमल निषाद का स्पर्श किया जाता है। इसके बिलावल प्रकार होने के कारण इसमें बिलवल का मुख्य अङ्ग स्वाभाविक रूप से आ ही जाता है। हम यह जानते हैं कि बिलावल उत्तरांग वादी, और अवरोह में स्पष्ट होने वाला राग है। बिलावल का मुख्य अङ्ग "प प, ध नि ध, नि सां, सां रें-सां नि ध, प" प्रसिद्ध ही है। अतः यह भाग कुकुभ में दिखाई पड़ना आश्चर्य की बात नहीं है। इसी प्रकार इसी राग में अल्हैया का भाग "ध नि ध प म, प म ग, म रे सा" भी दिखाई देगा। अब मुख्य प्रश्न रह जाता है कि इस राग के पूर्वांग में किस राग का मिश्रण होता है ? मैं तुम्हें पहिले ही बता चुका हूँ कि बिलावल के अनेक रूप-झिंझोटी, जयजयवंती, बिहाग, गौड आदि रागों का मिश्रण बिलावल में करने से उत्पन्न हो जाते हैं। कुकुभ में किसी के मत से झिंझोटी और किसी-किसी के मत से जयजयवंती का मिश्रण होता है। हम इस राग में जयजयवंती का मिश्रण ही स्वीकार करते हैं। लक्ष्यसंगीतकार ने भी यही माना है। 'राग-तरंगिणी' के मत से केदार पूर्वी, वेलावली के संयोग से ककुभ राग उत्पन्न होता है—"केदारी पौरवी वेलावलीभिः ककुभामता"। प्रायः यह माना गया है कि जयजय-वंती में सोरठ, गौड, और बिलावल का योग होता है। कुकुभ में बीच-बीच में आरोह में गांधार वर्ज्य होने वाले भाग भी आते हैं जैसे—"रे रे प प, म ग रे ग सा रे रे," "रे रे, म म, प प, ध नि ध प, म ग रे ग सा, रे रे" गायकों द्वारा गाये जाने वाले रागों, विशेष कर मिश्र राग के नियम निश्चित करना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है, क्योंकि उसमें भिन्न-भिन्न रागों के टुकड़े अपने-अपने नियमों से मौजूद रहते हैं। Capt. Willard साहब ने अपनी पुस्तक में "बिलावल, पूर्वी, केदार, देवगिरी, मारू" इतने राग कुकुभ के अङ्गभूत बताए हैं। इस जानकारी का उपयोग तुम ठीक रूप से नहीं कर सकोगे क्योंकि इन रागों का मिश्रण कहां और कैसे किया जाये, इस विषय पर कहीं भी कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती। 'कुकुभ' बिलावल का एक प्रकार होने के कारण प्रभात काल में ही गाया जाता है, यह अलग कहने की आवश्यकता नहीं। इस राग में जयजयवंती का मिश्रण हुआ है इसके प्रमाण स्वरूप कहीं तानों में, आरोह में गांधार वर्ज्य किया हुआ तुम्हें दिखाई देगा जैसे "रे रे, म म, प प सां" यह मैं बतला चुका हूँ कि जयजयवंती में सोरठ, गौड और बिलावल राग मिले हुए हैं। कोई-कोई संगीतज्ञ आरोह में बिलकुल गांधार

वर्ज्य करने का मत व्यक्त करते हैं, परन्तु प्रचार में गायकों द्वारा केवल बिलावल के अङ्ग दिखाते समय आरोह में ही गांधार वर्ज्य किया जाता है। राग की सारी पकड़ उस छोटे से जयजयवंती के टुकड़े में सन्निहित है। यह टुकड़ा प्रायः आरम्भ में ही लगाया जाता है। आरोह में कोमल निषाद काफी स्पष्ट रूप से दिखाया जाता है, क्योंकि उससे अल्हैया का अङ्ग स्पष्ट होता है। इस राग में जहां-जहां गांधार का प्रयोग होता है वहां-वहां वह बिलकुल स्पष्ट रूप से प्रयोग किया जाता है, क्योंकि उससे सोरठ राग को अलग किया जाता है।

प्रश्न—इस राग का स्वर विस्तार कैसे होगा ?

उत्तर—इस प्रकार:—

"प प म ग रे ग, सा, रे, सा, प, नि सा, रे रे, म प, म ग रे ग सा।

ध नि ध प, ध म ग, रे ग सा, रे ग म प, म ग म, रे सा, सा रे सा, रे म प, ध म, ग म, रे सा, सां नि ध नि ध प, म ग म रे सा।

नि सा नि ध नि ध प, सा, रे प म प ध म ग रे ग सा, म प ध प ध म ग, म रे सा।

प प, ध नि ध, नि सां, सां, ध नि ध, सां, रें सां ध नि प, ग म रे ग प ध, रें सां, ध नि प, ध प म ग रे ग सा, रे रे, रे ग ग म ग रे सा, सा।"

यह राग गाने में सरल नहीं है, अतः मैं जहाँ-जहाँ विश्रान्ति लेता हूं उसकी ओर अच्छी तरह से ध्यान दो। इस राग का वादी स्वर पंचम और संवादी रिषभ है, जो इस राग में जयजयवंती का अंश है। फिर भी जयजयवंती का मुख्य अंग "रे ग रे सा, नि ध प, प रे" इस राग में नहीं लिया जाता। अर्थात यह राग भिन्न ही है। यहाँ पर कोमल गांधार वर्ज्य करने पर कुकुभ का अंग हो जाता है। कुकुभ में बीच-बीच में रे प स्वरों की संगति बहुत अच्छी प्रतीत होती है:—

प्रश्न—अपने संस्कृत ग्रन्थों में इस राग के विषय में क्या कहा गया है ?

उत्तर—दक्षिण की ओर के किसी भी ग्रन्थ में इस राग का वर्णन नहीं पाया जाता। जिन ग्रन्थों में इसका वर्णन मिलता है उनका कथन निम्न लिखित है:—

परिजाते— पंचमोद्‌ग्राहसम्पन्ने धहीने ककुभे पुनः।
तीव्रगांधारराहित्य मारोहे चावदन् बुधाः ॥

संकीर्णरागाध्याये— देवश्रीमालवः पूर्वा केदारश्चबिलावलः।
अन्योन्ययोगतस्तेषां ककुभाजनिरुच्यते ॥"

संगीतानूपविलासे—पूर्वी शंकरभूषाख्यः केदारश्चबिलावलः।
एतेभ्यः ककुभो रागो जातः शांतिकरो नृणाम् ॥

राग तरंगिणी कार ने ककुभ को 'कर्णाट' मेल में रखा है। इस थाट का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"शुद्धेषु सप्तस्वरेषु गांधारश्चेत् मध्युतिद्वयं गृह्णाति तदा कानराख्यातं संस्थानं भवति" इस कानरा थाट में इसके बताये हुए रागों के नाम निम्नलिखित हैं:—

"षाडव: कानरो रागो देशीविख्यातिमागत: ।
वागीश्वरीकानरश्च खम्माइची तुरागिणी ॥
सोरठ: परजो मारु: जैजयंती तथापरा ।
ककुभापिच कामोद: कामोदी लोकमोदिनी ॥"

लक्ष्यसंगीते—

"स्याच्छुद्धस्वरसंमेलाद्राग: ककुभनामक: ।
वेलावलप्रभेदोऽयं रिपसंवादशोभन: ॥
रिपयो: संगतिश्चित्रा सर्वेषांस्यान्मनोहरा ।
वेलावलावरोहेण भवेद्रागप्रसूचनम् ॥
कंपन मृषभेह्यत्र जयावंतीं प्रदर्शयेत् ।
अभावे तु कोमलस्य गांधारस्य नसाभवेत् ॥"

यही रूप प्रचलित रूप से मिलता है, अत: इसे ही तुम्हें स्वीकार करना चाहिये।

प्रश्न—ठीक है, हम ऐसा ही करेंगे। अब आगे का राग बताइये?

उत्तर—अब मैं तुम्हें 'सरपरदा' राग बताता हूँ। 'सरपरदा' नाम मुसलमानी है। कहा जाता है कि अमीर खुसरो द्वारा प्रसिद्ध किये हुए रागों में से एक राग यह भी है। राग विबोध के कर्नाट गौड़ की टीका में कुछ मुसलमानी रागों के नाम दिये हुए हैं उनमें इस राग का नाम भी दिया हुआ है। 'कर्णाट गौड़' राग में बिलावल मिला देने पर 'सरपरदा' हो जाने का कथन वहां मिलता है। परन्तु इतनी सी जानकारी से राग की सम्पूर्ण कल्पना हम नहीं कर सकते। जब कि इसे मुसलमान गायकों द्वारा-प्रचारित राग माना है तब इसके नियम प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थों में प्राप्त होना भी शक्य नहीं है। "लक्ष्य-सङ्गीत" में इस राग का वर्णन प्राप्त होता है और तुम्हारे लिये वही मत स्वीकार करना सुविधापूर्ण है।

प्रश्न—यह राग बिलावल का प्रकार है, तब उत्तरांग वादी स्वर कौनसा है?

उ०—इस राग का वादी स्वर षड्ज और संवादी स्वर पंचम है। कोई-कोई इसमें वादी गांधर को मानते हैं। परन्तु हम ऐसा नहीं मानेंगे।

प्र०—बिलावल के महत्व वाले धैवत, गांधार इसमें भी वैसे ही बने रहते हैं?

उ०—हां, तुम ठीक समझ गये। यह साधारण धारणा होगई है कि सरपरदा में यमन, अल्हैया और गौड़ का मिश्रण मिलता है।

प्र०—इन तीनों रागों के मुख्य अङ्ग इस प्रकार हमें स्मरण हैं—"निरेग, रेग, रेसा" ध नि ध प, मग, म, रेसा; 'रेगरे, मग' क्या सरपरदा में ये सारे स्वरूप हमें दिखाई पड़ेंगे?

उत्तर—यदि तुम ध्यानपूर्वक देखोगे तो तुम्हें ये भाग अवश्य दिखाई पड़ेंगे। एक विशेष बात और भी है कि इस राग में कहीं-कहीं बिहाग का आभास भी दिखाई देगा।

प्रश्न—बिहाग की पकड़ आपने "ग म प म ग, रे सा" बताई है।

उत्तर—मुझे दिखाई देता है कि मेरी बताई हुई बातों को तुमने बहुत अच्छी तरह स्मरण रखा है। इस तरह से मेरा काफी परिश्रम कम हो जावेगा। थोड़ा सा इशारा करते ही बहुत सी बातें तुम्हारे ध्यान में आने लगी हैं। यह मेरे लिये आनन्द की बात है। अभी कितने ही राग तुम्हें बताने शेष हैं। इन्हें तुम शीघ्र समझ लोगे। मैं अब विशेष रूप से पुनरुक्ति नहीं करूँगा। यद्यपि तुम बुद्धिमान हो परन्तु यह विषय तुम्हारे लिए नवीन है अतः मैं बीच-बीच में विशेष रूप से पिछली बात दुहराता रहता था।

प्रश्न—जी हां, वह हमारे लिये सचमुच ही लाभजनक हुआ है। क्या 'सरपरदा' लोक प्रिय राग है ?

उत्तर—हां, बहुत लोकप्रिय है। यह मुसलमानी प्रकार हम लोगों को बहुत पसंद आया है। हमारे लोग बिलकुल उदार हृदय के हैं। मधुर स्वरूप देखते ही चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, उन्होंने उसे आदर लेकर स्वीकार कर लिया है। देखो इस विषय पर ग्रन्थकार क्या कहता है—

"रंजनाद्रागताप्रोक्ता सर्वेषामितिसंमतम् ।
यद्यत्स्यात्तद्गुणोपेतं मानमप्यर्हयेत् सताम् ॥
कैश्चिद्यावनिकैः प्रचैरुन्नोतमविशंकितम् ।
अस्मत्संगीतभाण्डारमिति मतं न चाद्भुतम् ॥
सर्पर्दातुरुष्कतोडी हिजेजो बाखरेजकः ।
पुष्कईराखजूलूफौ नवरोजी हुसेनिका ॥
उज्वलो मूसली चैव ग्रहपंचसुगादुगाः ।
संतो यावनिका रागाः सोमनाथेन लक्षिताः ॥
नमे दोषास्पदं भाति तत्र किंचिद्धि न्यायतः ।
मते मम भवेन्नूनं संगीतोन्नतिरेव सा ॥"

प्रश्न—हमारा यही मत है। लोकरंजनकारी रूप, राग कहलाने योग्य ही होता है "सरपरदा में" बिहाग की छाया दिखाई पड़ सकती है यह अभी आपने बताया था। मेरे ख्याल से जहां-बिहाग की छाया इस राग में आती होगी, वहां आरोह में रिषभ वर्ज्य कर अवरोह में अल्हैया का भाग प्रबल कर "ध नि ध, प, म ग, म रे सा" बिहाग की छाया सहज ही दूर करदी जाती होगी ?

उत्तर—तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो, गायक ऐसा ही करते हैं।

प्रश्न—अब आप हमें इस राग का विस्तार और लक्ष्यसंगीत कार का मत सुना दीजिये। प्राचीन ग्रन्थों में तो यह मिलेगा ही कैसे!

उत्तर—मैं पहिले तुम्हें 'चतुर पण्डित' का मत सुना देता हूँ—

श्लोक— "शुद्धस्वरसंमेलने सर्पदा रागिणीमता।
बिलावलप्रकारोऽयं प्रातःकालोचितः पुनः॥
सपयोरत्र संवादः स्वीकृतो बहुसंमतः।
अवरोहे सनिश्चयं बिलावलप्रदर्शनम्॥
गांधारस्य केचिदिह वादित्वमादिशंति तत्।
मते तेषां धैवतोऽपि महत्वमाप्नुयाद्भृशम्॥
यद्यप्यत्र बिहागस्य किंचिद्रूपं समुद्भवेत्।
आयतो रिषभो नूनं श्रोतृभ्रांतिं निवारयेत्॥
यमनालायिकागौडा रागिण्यामत्र मिश्रिताः।
इतिकेचित्संगिरंति लक्ष्यसंगीतकोविदाः॥"

इस श्लोक में बताई हुई प्रायः सभी बातें मैं तुम्हें बता चुका हूं। अब इस राग का स्वर-विस्तार बताता हूँ—

सा, रे ग म, ध ध प, प म प, म ग, ग म ग, रे, सा, ग म ध प, ग म रे सा।
ग रे सा, सा रे ग म, रे रे सा, ध प ध म ग, म प म ग, रे रे सा।
सा रे सा, नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, ग रे ग म प, ग म रे, सा, रे ग म ध ध प।

ग म प, ध ध प, म प, ध नि ध प, म ग, रे ग म ग, म प म ग म रे, सा, ध प।

नि ध नि सां, नि ध प, ध प, नि ध प, म प ध नि सां नि ध प, म ग, ग म, ध ध प, म प, म ग, म रे, सा।

म प, ध नि ध, नि सां, सां रें गं मं गं रें सां, सां नि ध प, ग म, ध नि ध, नि प, ध नि सां, सां रें सां, नि ध ध प, ग म रे, सा, सा, रे ग म, ध ध प।

प्रश्न—यह स्वरूप हमें बिलकुल स्वतन्त्र ही समझ में आया है। इस स्वरविस्तार में भिन्न-भिन्न स्थानों पर ठहरने में ही बड़ी खूबी है! इसी से राग पहिचान की जा सकती है?

उत्तर—तुम ठीक कहते हो। अब तुम्हें 'नट बिलावल' राग समझना है, पर इसे कहने के पूर्व हमें 'नट' राग पर विचार करना पड़ेगा।

प्रश्न—जी हां, 'यमनी बिलावल' समझाने के पूर्व आपने बिलावल समझाने की आवश्यकता बताई थी, वह हमें याद है। कोई बात नहीं, आप पहिले नट ही समझा दीजिये, वह भी तो इसी थाट का राग होगा?

उत्तर—हाँ, यह भी इसी थाट का राग है, नट राग को प्रचार में ग्रन्थानुसार 'नाट' भी कहा जाता । अनेक ग्रन्थों में उसे 'शुद्ध नाट' का नाम दिया हुआ है। वहां पर यह शंका होती है कि, नाट और शुद्धनाट दो भिन्न-भिन्न राग तो नहीं हैं ? कई गायक इन्हें भिन्न ही मानते हैं। इसका कारण तुम्हें अभी समझ में आ जावे। उस नाट राग में अनेक अन्य रागों का मिश्रण होकर प्रचार में भिन्न-भिन्न रूप देखे जाते हैं। जैसे कामोद नाट, केदार नाट, हमीरनाट आदि, परन्तु अभी हमें उसके स्वतन्त्र रूप को खोजना है। इस राग का थाट बहुमत से 'शंकरा भरण' है। कोई-कोई इसमें तीव्र मध्यम स्वर पंचम की संगति में आरोह में लगा देते हैं, परन्तु वह स्वर बिलकुल गौण ही रहता है। यह राग रात्रि के दूसरे प्रहर में गाया जाता है। इसका वादी स्वर मध्यम है और इसका प्रयोग व्यस्त अथवा खुले रूप में किया जाता है। यह काम राग के स्वरूप को बिलकुल भिन्न कर देता है।

प्रश्न—तो फिर केदार जैसा थोड़ा सा रूप उत्पन्न हो जाता होगा ?

उत्तर—हां, थोड़ा सा आभास हो जाता है, परन्तु केदार में गांधार स्वर स्पष्ट नहीं, आरोह में रे नहीं, अवरोह में ध वर्जित नहीं आदि भिन्नता होती है। यहाँ रे ग म प, सा रे सा, स्वर समुदाय सदैव दिखाई देगा।

प्रश्न—क्या यह राग 'छायानट' जैसा दिखाई देता है ?

उत्तर—ठीक पहचान की। यह राग उसके समान कुछ अंशों में अवश्य दिखाई देता है, परन्तु छायानट में केदार अंग नहीं है इसीलिये यह भिन्न हो जाता है।

प्रश्न—आपने बताया था कि श्याम राग में केदार का बहुत अंश लिया जाता है, फिर उससे इस राग को कैसे दूर किया जावेगा ?

उत्तर—'श्याम' में तीव्र मध्यम प्रधान और बहुत मधुर स्वर के रूप में आता है, वैसे ही "मरे सा" स्वरों का प्रयोग मींड के रूप में होता है। परन्तु नट में यह प्रकार नहीं है। नट राग का उठाव इस प्रकार से अच्छा दिखाई देता है, देखो "सा, सा, ग म म, प म ग, गम"

प्रश्न—क्या यहाँ पर गौड़सारंग का आभास नहीं हो जाता ?

उत्तर—हो सकता है, परन्तु "रे ग रे ग म, प रे सा," यह तान स्थान स्थान पर लेकर इसे अन्य समस्त रागों से बचाया जाता है।

प्रश्न—जी हाँ ठीक है, मैं भूल गया था। अब आगे बताइये।

उत्तर—इस राग के अवरोह में ध ग स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। यह काम गायक बड़े कलात्मक ढंग से कर दिखाते हैं। 'सां नि ध नि प, म ग म रे सा' इस प्रकार का अवरोह करने पर नियम संभाला जा सकता है।

प्रश्न—दोनों मध्यम के रागों के अवरोह में इसी प्रकार ग वर्ज्य करने के विषय में आपने बताया था।

उत्तर—तुम्हें ठीक याद है। छायानट, कामोद, श्याम आदि रागों में इसी प्रकार का स्वरूप तुम्हारे सामने आचुका है। ऐसी स्थिति देखकर कोई-कोई मार्मिक गायक ऐसा सोचते हैं कि ऐसी जगहों पर उनमें नाट राग का अन्श मिश्रित होता है। यह राग विलंबित रूप में गाते हुए गायक अपने नियमों को ठीक-ठीक संभाल लेता है, परन्तु शीघ्रता पूर्वक गाने से वे नियम वैसे नहीं रह जाते। चतुर गायक ऐसे समयों पर बीच-बीच में राग के निश्चित अङ्गों को श्रोताओं को दिखाते रहते हैं, जिससे कि वे मुख्य राग को भूल न सकें। यह मुख्य भाग मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूँ। इस नाट राग को गाने में तुम्हें छाया (छायानट) कामोद और बिलावल का आभास कहीं-कहीं पर हो सकता है, परन्तु तुम उन रागों को अलग कर सकते हो।

प्रश्न—बिलावल उत्तरांग वादी है, अतः सहज ही भिन्न हो जावेगा। छाया (छायानट) और कामोद में व्यस्त मध्यम नहीं है और अवरोह में धैवत है। इस प्रकार ये राग निराले होजावेंगे।

उत्तर—शाबाश! तुम बहुत अच्छी प्रकार से समझ गए हो। इसी का नाम पद्धति है। इस समय तुम्हें इस राग की अधिक जानकारी नहीं है, अतः एक दो ग्रन्थों का मत भी देखलें।

रागविबोध—श्लोकः—

"मेलेतु शुद्धनाट्याः शुचिसमपास्तीव्रतमरिमृदुमौच ।
तीव्रतमधमृदुसमतो रागाः स्युः शुद्धनाटाद्याः ॥
नाटः शुचिः प्रदोषे सांशन्यासग्रहः पूर्णः ॥"

यह अपना प्रकार नहीं है। इसमें दो गांधार व दो निषाद लिये गये हैं व अपने स्वर रे ध, बिलकुल नहीं हैं।

स्वरमेलकलानिधि—श्लोकः—

"शुद्धस्वरास्तुसमपाः षट्श्रुत्यृषभधैवतौ ।
च्युतमध्यमगांधार श्च्युतषड्जनिषादकः ।
स्वरैरमीभिः संयुक्तः शुद्धनाट्याश्चमेलकः ॥"

यह थाट भी राग विबोध के थाट से ही मिलता है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिका—श्लोकः—

"षड्जः षट्श्रुतिको नाम रिषभोऽतरसंज्ञकः ।
गांधारस्तु मपौशुद्धौ षट्श्रुतिर्धैवतस्वरः ।
काकल्याख्यनिषादश्चे देतावत्स्वरसंभवः ॥

यह थाट भी राग विबोध के थाट से मिलता है।

चन्द्रोदये-श्लोकः—"निगौयदात्रिश्रुतिकौ भवेतां ।
लघ्वादिकौ षड्जकमध्यमौच ॥
तथाविशुद्धाः समपा भवंति ।
विशुद्धनट्टाव्हयकस्य मेलः ॥
सांशग्रहांतः सकलस्वरश्च ।
स्याच्छुद्धनट्टोहनि तूर्ययामे ॥"

यह थाट भी राग विबोध के बताए थाट के अनुसार ही है।

पारिजात-श्लोकः—

"रिस्तुतीव्रतरो यस्मिन् गांधारस्तीव्रसंज्ञकः ।
धस्तुतीव्रतरः प्रोक्तो निषादस्तीव्रनामकः ॥
अवरोहे धगौनस्तो नाटे रिस्वरमूर्छना ॥"

यह वर्णन अपने प्रचार से मिलता हुआ है। बहुत से गायक अवरोह में धैवत वर्ज्य करना पसन्द नहीं करते। इस प्रकार का एक स्वरूप पारिजात में इस प्रकार बताया गया है:—

श्लोक—"वेलावलीसमुद्भूतो मांशो रिन्यासको नटः ।
अवरोहे गहीनः स्यादुगांधारादिकमूर्छना ॥"

इस स्वरूप को 'नट नारायण' नाम दिया हुआ है। यह नाम प्रचलित नहीं है। राग वर्णन अवश्य सुन्दर और प्रचार में लाने के योग्य सरल भी है। अवरोह में धैवत ले लेने से यह प्रकार हो जाता है। मध्यम वादी तो हम मानते ही हैं। राग मंजरी में "नट नारायण" का वर्णन इस प्रकार किया गया है। "नट्टनारायणोरागः काकल्यंतरराजितः"। सम्पूर्णः संततं सत्रिर्वर्षाकालेऽतिवल्लभः ॥" चन्द्रोदय में भी इसी प्रकार का स्वरूप दिया गया है। इस ग्रन्थ में शुद्धनाट और नटनारायण दो अलग-अलग राग माने हैं।

रागतरंगिणीकार ने "नाट" और 'शुद्ध नाट' ये दो प्रकार माने हैं। इन दोनों को उसने मेघ संस्थान में रखा है। मेघ संस्थान के स्वर मैं तुम्हें ऊपर बता चुका हूँ। इस थाट में दोनों मध्यम लिये जाते हैं। यह मत भी हमारे लिये अच्छा है।

राजा साहब टैगोर के "ग्रन्थ संगीत सार संग्रह" में भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के उद्धरण दिये गये हैं। परन्तु उन्होंने राग के स्वरों की स्पष्टता कहीं नहीं की है। अतः तुम्हें उस वर्णन का कोई उपयोगी लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। तुम्हें इन भिन्न-भिन्न ग्रन्थमतों से उकताहट उत्पन्न न होनी चाहिये। प्राचीन जानकारी

तुम्हें जान लेना चाहिये। प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन किये बिना लोग यह नहीं समझेंगे कि तुम्हें संगीत शास्त्र का योग्य ज्ञान हो गया है। ग्रन्थों की जानकारी हो जाने पर प्रचलित किसी भी राग की शास्त्रीयता या अशास्त्रीयता का निश्चय करने का साधन तुम्हें प्राप्त हो जाता है। किसी-किसी प्रसङ्ग पर ऐसे धूर्त गायकों से भी भेंट हो जाती है, जो प्रत्यक्ष सङ्गीत तो मुसलमानी गाते हैं। परन्तु बात भरत, मतंग, नारद, तुम्बरू आदि के समय की करते हैं। इनमें से कुछ बिना संस्कृत सीखे हुए भी होते हैं, ये एक विशेष कुशलता कर दिखाते हैं। जहां इन्हें कोई प्रत्यक्ष उत्तम गायक मिला, वहां ये प्राचीन संस्कृत शास्त्र की बातें आरम्भ कर देते हैं। प्रत्यक्ष सङ्गीत और ग्रन्थ, दोनों की जानकारी हो जाने पर तुम ऐसे गायकों से उत्तम रूप से बातें कर सकोगे।

प्रश्नः—जी हां, परन्तु हमें ग्रन्थमतों से जरा भी उकताहट नहीं होती, बल्कि रुचि होती है। आपने अभी जिन चार प्राचीन ऋषियों के नाम लिये थे, क्या उनके ग्रन्थ हमें देखने को मिल सकते हैं! इन ऋषियों के नाम हमें बार-बार सुनने को मिलते हैं।

उत्तर—मेरे ख्याल से तुम्हें उनके ग्रन्थों का मिल सकना सम्भव नहीं है। इन ऋषियों के विषय में मैं दो शब्द और कहूँगा। 'भरत नाट्य शास्त्र' इस समय छप चुका है। उसमें श्रुति, ग्राम, मूर्छना जाति आदि विषयों का वर्णन है, परन्तु अपने रागों का नहीं है। 'मतंग' के मत का उल्लेख 'रत्नाकर' की टीका में कहीं-कहीं दिखाई पड़ जाता है, परन्तु उनका स्वतन्त्र ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया। 'नारद' के नाम से प्रसिद्ध ग्रन्थ मैंने दो चार देखे हैं। दो तीन तो स्वयं मेरे पास हैं, उनके नामों की चर्चा भी मैं कर चुका हूं। 'नारदीय शिक्षा' में इस समय प्रचलित राग परिवार आदि का उल्लेख नहीं पाया जाता। 'सङ्गीत सार संग्रह' में 'नारद संहिता' की राग रचना दी है। इस राग रचना में केवल रागों के चित्र (ध्यान) बताये गये हैं, स्वरों का खुलासा नहीं है। परन्तु यह नारद कौनसा है? यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है। यह 'नारदीय शिक्षा' का लेखक नारद तो है ही नहीं। रागों के नाम भी "सिन्धुड़ा, कानड़ा, वल्लारी, मालव, गुज्जरी, भूपाली, वराड़ी, कर्नाटी, मारहाटी (मराठी)" इस प्रकार के हैं, यह भी विचारणीय बात है। तम्बरू का लिखित कोई ग्रन्थ मेरे देखने में नहीं आया। अस्तु,

अब हम अपने मूल विषय को ओर बढ़ें। तुम्हें अब नट राग का स्वरूप बताये देता हूँ—

सा, सा, म, म, ग म, म प प, म ग, ग म, म प, ध, नि सां, नि ध, नि प, रे ग, ग म प, सा रे सा।

सा रे सा, ग म, प म, ग म, ध नि प, म प ध नि प, म प म ग म, म प, सां ध नि प, रे ग प म, ग म, सा रे सा।

प म ग म, प मं प, ध नि सां नि ध नि प, सां, रें गं मं, रें रें सां, सां ध नि प, म प सां, ध नि प म प, म ग, म, सा ग, ग म, प, रे ग म प, सा रे सा ।

प प ध सां, नि सां रें रें सां, सां रें गं गं मं, रें रें सां, सां नि ध नि प, म प म ग म, सां ध नि प, ग ग म प, सा रे सा ।

प्रश्न—"नट" का स्वरूप हो गया, अब नट बिलावल समझाइये ?

उत्तर—"नट बिलावल" राग का स्वरूप इस प्रकार कहा जाता है—

सा सा ग, ग म, प म, म प प, म, ग ग, म प ग ध नि सां, सां नि ध, नि प, म ग, म रे रे सा ।

प प ध नि ध नि सां सां, सां नि ध, नि सां, नि ध ध प, म ग म, ध ध नि प प, ध नि सां, प प ध नि प, म प म ग, म रे रे सा, सा सा, ग, ग म ।

यह राग नट और बिलावल के मिश्रण से उत्पन्न होता है, अर्थात् इसमें ये दोनों दिखाये जाते हैं। 'लक्ष्य सङ्गीत' ने इस राग के विषय में कहा है—

"शंकराभरणान्मेलाज्जातो रागः सुनामकः ।
बिलावलो नट्टपूर्वो मध्यमांशो गुणिप्रियः ॥
पूर्वांगे नट्टयोगेन धत्ते गौडस्वरूपकम् ।
बिलावलस्यावरोहे भवेदंगं सुनिश्चितम् ॥
स्यान्मध्यमस्य व्यस्तत्वं प्रसिद्धं नट्टगायने ।
अत्रापितद्योजनीयं यथायोग्यं विचक्षणैः ॥
रिधयोः सङ्गतिश्चापि भवेद्वैचित्र्यकारिणी ।
समीचीनं गानमस्य प्रथमप्रहरेदिने ॥"

भावार्थः—यह राग शुद्ध स्वरों के थाट से उत्पन्न होता है। इसका वादी स्वर मध्यम है। पूर्वाङ्ग में नट राग का भाग जाता है, उसमें श्रोताओं को थोड़ा सा गौड़ का आभास होता है। अवरोह में स्पष्ट बिलावल हो जाता है। नट में मध्यम व्यस्त रूप में लेना प्रसिद्ध ही है, वही इस राग में भी लिया जाता है। इस राग में रे ध स्वरों की संगति उत्तम दिखाई देती है। इसके गाने का समय दिन का प्रथम प्रहर है।

नाट राग के अन्य लक्षणों पर विचार न करते हुए हमें लक्ष्य सङ्गीत के लक्षणों को मानना ही उचित है।

प्रश्न—अच्छी बात है, अब हमें आप किस राग का वर्णन सुनायेंगे ?

उत्तर—अब हम शुक्लबिलावल पर विचार करेंगे। वह भी कुछ अन्शों में नटबिलावल सरीखा दिखाई देता है। इसका मुख्य कारण व्यस्त मध्यम का

प्रयोग है। इस व्यस्त मध्यम का प्रभाव कुछ विचित्र ही होता है। इस राग में "सा, ग, ग म" इस प्रकार का आरम्भ गायक कभी-कभी करते हैं। परन्तु नट-बिलावल में छायानट जैसा जो भाग कहीं-कहीं दिखाई देता है, वह इस राग में वैसा नहीं लिया जाता, नट का मुख्य अङ्ग, अवरोह में ध ग आच्छादित रूप से प्रयोग कर प्राय: गायक सँभालते हैं। वह काम भी इस राग में नहीं होता। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि, राग का आरोह-अवरोह बिलावल थाट जैसा सरल ही है, परन्तु सारे राग की विचित्रता स्वर समुदाय की रचना पर और भिन्न-भिन्न स्थानों की विश्रान्ति पर आश्रित है। दृढ़ नियमों की दृष्टि से ऐसे राग अधिक सन्तोषजनक नहीं होते, क्योंकि इनका विषय प्राय: विकारग्रस्त रहता है। परन्तु हमें प्रचलित सङ्गीत का अनुसरण करते हुए ही आगे बढ़ना है। प्रचार में जो-जो नियम पाये जाते हैं, उन्हें ही स्वीकार करना श्रेयस्कर होगा। ऐसा करने में हमें "लक्ष्य सङ्गीत" से बड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है। लक्ष्यसङ्गीतकार ने बहुत से ग्रन्थ देखे हैं, ऐसा उसके लिखने से पता चलता है।

इस शुक्ल बिलावल राग में बीच-बीच में श्रोताओं के सम्मुख मुक्त या खुला मध्यम प्रयुक्त कर दिखाना पड़ता है। इस थाट के रागों में इस प्रकार मुक्त मध्यम के प्रयोग वाले केवल दो चार राग ही निकल सकते हैं, अत: राग निश्चित करने का कार्य काफी सुविधापूर्ण हो जाता है। इस प्रकार खुला मध्यम देखकर मार्मिक श्रोता उत्तराङ्ग ढूँढ़ने लगते हैं। और उत्तरांग मिलने तथा उसका संयोग बिलावल में देखकर फिर केवल यही जांच करना रह जाता है कि, यह नट-बिलावल है या शुक्लबिलावल है। इस बात के निर्णय के लिये रे, ग, ध, स्वरों की स्थिति की खोज करनी पड़ती है। नट के नियम पालने का थोड़ा बहुत प्रयत्न दिखाई दिया तो सिद्ध होगा कि, राग नटबिलावल है, यदि ऐसा नहीं हुआ तो प्राय: शुक्ल-बिलावल ही निश्चित होता है। प्रचार में इन दोनों रागों को अलग-अलग करने में तुम्हें कठिनाई हो सकती है, परन्तु मेरी बताई हुई कोई-कोई बातें तुम्हें इन रागों की पहिचान करने में कुछ अन्शों में सहायक सिद्ध होंगी। संस्कृत ग्रन्थों में इस राग का स्वतंत्र वर्णन नहीं पाया जाता।

प्रश्न—क्या किसी भी ग्रन्थ में इसका वर्णन नहीं पाया जाता ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर मैं कैसे दे सकता हूँ ? मेरे पास निम्नलिखित ग्रंथ हैं। राग विबोध, स्वरमेलकलानिधि, सारामृत, राग चन्द्रोदय, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, सङ्गीत चिंतामणि, अनूपांकुश, अनूपरत्नाकर, सङ्गीत सार-संग्रह, सङ्गीत सुधाकर, रागमाला, राग तरंगिणी, सङ्गीत पारिजात, सङ्गीत दर्पण, राग मंजरी, सङ्गीत-कलिका, सङ्गीत समय सार, सङ्गीत चन्द्रिका, सङ्गीत मकरंद, सङ्गीत कल्पद्रुम, सङ्गीत-विलास, सङ्गीत शिरोमणि, चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्। ये सभी ग्रन्थ मेरे पास हैं, और इन्हीं सबकी मदद से मैं तुम्हें सङ्गीत पद्धति सिखा रहा हूँ। इन ग्रन्थों में मुझे यह राग नहीं दिखाई दिया, इतना ही मैं कह सकता हूँ ?

प्रश्न—आप हमें ये सभी ग्रन्थ पढ़ायेंगे न ?

उत्तर—अवश्य ! इनमें से कुछ ग्रन्थों के अनुवाद (भाषान्तर) तुम्हारे हित की दृष्टि से संग्रहीत कर दिये हैं। ये सभी ग्रन्थ अपने-अपने प्रमाण से उत्तम हैं, परन्तु आजकल की हमारी सङ्गीत पद्धति को देखते हुए 'लक्ष्य सङ्गीत' जितना उपयोगी ग्रन्थ शायद ही प्राप्त हो सकेगा, ऐसा कहना पड़ता है।

प्रश्न—शुक्लबिलावल का वर्णन लक्ष्यसङ्गीतकार ने किस प्रकार किया है ?

उत्तर—उसका वर्णन इस प्रकार है:—

"या शुद्धस्वरमेलात्सा शुक्लावेलावली मता ।
वेलावल्याः प्रभेदोऽयं प्रातःकालोचितो मतः ॥
शुद्धमोऽत्र भवेद्वादी सम्वादी षड्ज ईरितः ।
आरोहे स्याद्रिदौर्बल्यं न्यासो मध्यम एवच ॥
कोमलस्य निषादस्य स्पर्शो धैवतसंयुतः ।
अवरोहे सुप्रविष्टो नूनं स्याद्रक्तिदः सदा ॥"

इस वर्णन में यह बताया गया है कि आरोह में रिषभ दुर्बल लिया जाया है। इसे ध्यान में रखना चाहिये। इसी रीति से 'नट' का भाग उत्तम रूप से दिखाया जा सकता है। लक्ष्य सङ्गीत के आधार पर मैंने जो लक्षणगीत तैयार किये हैं, उन्हें सीख जाने पर ये सारे राग तुम्हें अच्छी तरह समझ में आ जावेंगे।

प्रश्न—ठीक है ! अब इस राग का विस्तार बताइये ?

उत्तर—स्वर विस्तार सुनो:—

सा, ग, गम, गमपमग, रेग, गम, प, सां, रेंसां, धधप, मग, रेग, मप, मग, म, रेसा।

सा, गग, म, पमग, रेसा, सा, रेगम, गम, पपमपम, ग, पधप, धनिधप, मपमग, रेग, पमग, मरेसा। साग, गम।

गमप, धप, निध, प, सां, रेंसांनिध, निधप, म, पमग, म, रेरेसा।

मगम, निधप, मपम, मगरेग, सा, गम, मगमप, धनिसां, निसां, रेंसांनिधप, निधप, मगमरेसा, साग, गम।

सारेगम, रेगमप, धम, धनिधपम, धमप, गम, रेरेसा, रेगम।

पप, धनिध, निसां, सां, सांरेंगंमं, रेंरेंसां, रेंसांनिधनिसां, निधप, मंमंप, धनिसां, निधप, मपम, ग, रेग, म, पमगम, रेरेसा, सागगम।

एक गायक ने मुझे यह सुझाया था कि इस राग के आरोह में धैवत वर्ज्य करने और अवरोह में स्पष्ट लगाने से अन्य रागों से अलग करने का एक सरल साधन प्राप्त हो जाता है। उन्होंने मुझे इस नियम के अनुकूल एक गीत भी सिखाया है जो मैं तुम्हें आगे सिखाऊँगा। यह नियम यद्यपि सभी गायकों द्वारा नहीं पाला जाता, परन्तु विचारणीय अवश्य है। 'लक्ष्यसङ्गीतकार' आरोह में रिषभ को दुर्बल मानता है अर्थात् इस रिषभ का सम्वादी धैवत भी दुर्बल किया जाना असङ्गत नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न—इस राग की हमें अच्छी तरह कल्पना हो गई। अब आगे चलिये ?

उत्तर—अब हम 'लच्छासाख' राग पर विचार करेंगे । यह नाम कानों को बड़ा ही चमत्कारिक लगता है । यह एक आधुनिक प्रकार है। ऐसा बहुमत पाया जाता है। इसे अप्रसिद्ध रागों में माना जाता है। इस समय इसे बिलावल का एक प्रकार ही समझते हैं।

प्रश्न—तो फिर इस राग के उत्तराङ्ग में अल्हैया का भाग दिखाई देता होगा और पूर्वाङ्ग में कोई दूसरे राग का मिश्रण किया गया होगा ?

उत्तर—बिलकुल ठीक समझ गये। यही बात है।

प्रश्न—आपने बिलावल में मिश्र हो सकने वाले रागों में यमन, झिंझोटी, गौड़, बिहाग, जयजयवन्ती का ही नाम बताया था। यहाँ पर इनमें से कौनसा राग मिश्र होता है ?

उत्तर—यहां पर झिंझोटी का मिश्रण किया जाता है। यह राग प्रभातकाल प्रथम प्रहर में गाया जाता है। इस राग का वादी स्वर धैवत और संवादी स्वर गांधार माना जाता है। बिलावल के प्रत्येक प्रकार में अवरोह में ही उसका प्रमुख अङ्ग प्रदर्शित किया जा सकता है। यह नियम इस राग में भी लगता है। बिलावल का साधारण अवरोह "सां नि ध, नि ध प, म ग, रे सा" तुम जानते ही हो। झिंझोटी का प्रसिद्ध अन्श "सा रे म ग, ग म प, ग म ग, रे सा नि़ ध़, सा" है। इस अन्श में से 'सा नि़ ध़' भाग इस राग में नहीं लेते क्योंकि इसे भी ले लेने से राग रूप इतना अधिक परिवर्तित हो जाता है कि वह राग किसी अलग थाट में अलग ही नाम का राग हो जावेगा। इस राग में गांधार पर आते जाते ठहरना पड़ता है, वहां थोड़ा सा गौड़-सारङ्ग का अभास हो जाता है। इस राग के वर्णन के लिये मैंने ग्रन्थों में खोज की, परन्तु इस नाम का कोई राग मुझे प्राप्त नहीं हुआ, 'सङ्गीत कल्पद्रुम' में एक हिन्दी भाषा का निम्नलिखित दोहा मुझे प्राप्त हुआ है:—

"ककुभ वेलावलकेमिले और देशाखहीठान।
लच्छाशाख ही होत है, एक प्रहर दिन गान" ॥

कल्पद्रुम में तो तुम्हें कहीं-कहीं बड़ी मनोरंजक बातें दिखाई पड़ेंगी जो अपने लिये उपयोगी हैं, उन्हें ग्रहण कर शेष को छोड़ देना ही उत्तम होगा। कल्पद्रुमकार को संस्कृत का अधिक ज्ञान नहीं था, यह उसकी दूसरी रचना से ही ज्ञात हो जाता है। पुराने नये वर्णनों का अनमोल मिश्रण किसी को देखना हो तो इस ग्रन्थ में इसके असंख्य उदाहरण प्राप्त होंगे। सङ्गीत दर्पण, राग माला आदि ग्रन्थों का राग वर्णन उल्टा सीधा उद्धृत कर प्रचलित राग स्वरूपों को, अपनी स्वतः की संस्कृत भाषा के श्लोकों में घोट पीट कर ग्रन्थकार ने अपना 'कल्पद्रुम' खड़ा किया है यद्यपि प्रचार के लिये राग स्वरूपों को बताना बहुत आवश्यक था, परन्तु उन्हें प्राचीन ग्रन्थों के रूपों में जोड़ने की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा करने से जन-

साधारण का उपकार होने की अपेक्षा अपकार ही अधिक होना सम्भव है। मैं अपने कथन के कुछ उदाहरण भी तुम्हें सुनाता, परन्तु यह विषयान्तर हो जावेगा।

प्रश्न—हो जाने दीजिये, आप अवश्य सुनाइये ! हम यह जानना चाहते हैं कि आखिर इस ग्रन्थकार ने किया क्या है ?

उत्तर—अच्छी बात है सुनो ! इस ग्रन्थकार (कल्पद्रुम रचयिता) द्वारा मालश्री का वर्णन उदाहरण स्वरूप देखो:—

"रक्तोत्पलं हस्ततले नियुक्तं विभावयंतितजदेहवल्लि।
रसालवृक्षस्य तलेनिषणस्तोकरिस्मता साकिल मालवश्री ॥
षड्जांशगृहेन्यासा रिवर्ज्या तत्र षाडव।
तृतीय दिवसे जामश्री खाडव परिकीर्तिता ॥
धनाश्री जैतश्रीयुक्ता धवलश्री मिश्रितपुन।
मालश्री जायते विद्वान् संगीत कल्पद्रुमे इमा ॥"

कल्पद्रुमे।

गौड़ सारङ्ग का वर्णन:—

"वीणाविनोदी दृढ़बद्ध वेणी कल्पतरुसंस्थितगौरगात्रतृतीयप्रहरे।
कोकिलनादतुल्या सारंगगौराः कथितो मुनींद्रैः ॥
ऋषभांसगृहंन्यास गौरसारङ्ग एव च। गौरा सारङ्ग संयुक्ता पुरिया
संमिश्रिताशेष दिवसजामेकं गौरसारङ्गीयते ॥"

अब 'राग दर्पण में वर्णित मालश्री को देखो:—

"रक्तोत्पलं हस्ततले दधाना।
विभावयन्ती तनुदेहवल्ली ॥
रसालवृक्षस्य तले निषण्णा।
स्तोकस्मिता साकिल मालवश्रीः ॥
मालवश्रीश्च रागांगा पूर्णा सत्रयभूषिता।
मूर्छनोत्तरमन्द्रा स्याच्छृङ्गाररसमंडिता ॥"

'सङ्गीत दर्पण' में केवल इतना ही वर्णन प्राप्त होता है। उसे कल्पद्रुमकार ने कहीं-कहीं दूसरा कुछ जोड़ तोड़कर रख दिया है। अन्तिम श्लोक कल्पद्रुमकार की रचना दिखाई पड़ती है। इस प्रकार के श्लोकों से यह ग्रन्थ ओत-प्रोत है। मैं तुम्हें एक बार पहिले भी कह चुका हूँ कि यही देखकर सङ्गीत विद्वानों ने इस ग्रन्थ को अल्पमहत्व का समझ लिया है। इस ग्रन्थकार की रचना देख कर कोई भी समझ सकता है कि, इसे प्राचीन ग्रन्थ बिलकुल भी समझ नहीं पड़े थे। ऐसे ग्रंथों से क्या नुकसान होता है, यह भी देखो—अभी उत्तर की ओर 'नाद-विनोद' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में 'कल्पद्रुम' को मुख्य प्राचीन आधार ग्रन्थ माना गया है। 'नाद विनोद' कर्ता को भी संस्कृत नहीं आती,

इसका ज्ञान उसकी रचना पर से हो जाता है। उसने कल्पद्रुम के गलत-सलत श्लोकों को तो उद्धृत किया ही है, उसमें अपनी गलतियां भी शामिल करदी हैं।

प्रश्न—उसका भी आप हमें नमूना दिखाइये ? यह भी एक मनोरंजन ही होगा।

उत्तर—'नाद विनोद' कर्त्ता के मालश्री राग के ही उद्धृत किये हुए श्लोक देखो:—

"रक्तोत्पलं हस्ततले नियुक्तं विभावयंति तजदेहवल्ली ।
रसालवृक्षस्य तले निषण्णास्तोक स्मिता साकिल मालवश्री ॥"

अथ अंशन्यासगृहः ।

"खड्जांशस्य गृहं न्यासां रीवर्जा त्रहिखाडवा ।
तृतीये दिवसे यामे गीयंते विबुधैर्जनैः ॥
धनाश्रीजयतिश्रीयुक्ता धवलश्रीमिश्रितपुनः ।
मालश्री जायते विद्वन् रागकल्पद्रुमें इमां ॥"

इसमें मजा यह कि ये उलटे सीधे उद्धरण प्राचीन ग्रन्थों के और प्रत्यक्ष राग स्वरूप केवल प्रचलित धारणा पर लिखे गये हैं। अब भला इस रचना की कैसे प्रशंसा की जावे ? ग्रन्थों के रागमेल इस बेचारे को स्वप्न में नहीं आये होंगे। मेरा मत है कि प्रत्यक्ष गायक वादकों को बिना उतनी विद्या प्राप्त किए प्राचीन ग्रन्थों के मार्ग पर जाना ही नहीं चाहिए। यदि ये प्रचलित सङ्गीत को ही सीखने योग्य बनाकर उसकी ग्रन्थ रचना करते तो कितना उपकार होता ? ग्रन्थकारों की निन्दा करना ठीक नहीं है। परन्तु मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि जिस-जिस ने अपनी शक्ति के प्रमाण से बोझ उठाया, उन्हीं की शोभा भी हुई। अस्तु, अब हम प्रस्तुत विषय की ओर आगे बढ़ें। 'लच्छासाख' राग का दोहा मैं तुम्हें सुना ही चुका हूं। मुसलमान गायकों के मुँह से हम चार प्रकार के 'साखों' का नाम सुनते हैं। (१) लच्छासाख (२) देवसाख (३) रामसाख (४) भूसाख। इनमें देव साख, देशाक्षी, नाम का अपभ्रंश माना जाता है। अन्य साखों के लिए कल्पद्रुम में ये दोहे कहे गए हैं:—

"गांधारी देशाखमिली रामकली समभाग ।
रामसाख तब होतहै, गावतगुनि अनुराग ॥
भूपाली, देशकारसम, और कान्हरा गान ।
भावसाख तब होत है, गावतगुणी सुजान ॥
पहेले कानरा स्वरभरे, सुघराई सारंग ।
राग देशाख होतहै, गावत उठत तरङ्ग ॥"

'कल्पद्रुम' का संस्कृत शास्त्र भाग निरुपयोगी है। जो भाग प्रचार के अनुरूप जानकारी देने के सम्बन्ध में है, उसका उपयोग हम कर सकते हैं। राम साख और भूसाख प्रचार में नहीं दिखाई देते, परन्तु उनके स्वरूप 'नाद विनोदकार' ने (मेरे ख्याल से ये रूप कल्पित बनाये हैं) अपने ग्रन्थ में रख दिये हैं।

प्रश्न—'लक्ष्य सङ्गीत' का वर्णन भी हमें याद करने के लिए सुना दीजिए ?

उत्तर—वह इस प्रकार है:—

"शंकराभरणे मेले लच्छाशाखो बुधैर्मतः।
बिलावलांगभूतत्वात्प्रातःकालः परिस्फुटः ॥
धगयोश्चैव संवादः संमतो लक्ष्यवेदिनाम्।
यतोऽत्र दृश्यते स्पष्टा झिंझूटीसंगतिर्ध्रुवम् ॥
गांधारस्य प्रयोगे चेद्गौडसारङ्गशंकनम्।
बिलावलस्य प्राधान्यात्स्याच्छंकापरिमार्जनम् ॥
रागोऽयं स्यात्सुसंपूर्णो निषादद्वयमंडितः।
अवरोहे निश्चयेन बिलावलं प्रदर्शयेत् ॥"

यहां पर दोनों निषाद बताए गए हैं, यह ध्यान रखना।

प्रश्न—जी हां, हम समझ गये। यह भाग अल्हैया का है, तभी उसमें अवरोह में कोमल निषाद का प्रयोग किया है। अब इस राग का स्वरूप हमें स्वर विस्तार करते हुए समझा दीजिए ?

उत्तर—मुझे एक प्रसिद्ध गायक के पास से मिली हुई चीज़ (गीत) के आधार पर यह रूप तुम्हें सुनाता हूँ।

"सा, प म ग, म प, ग म रे ग, म ग रे सा, सा सा रे ग म प, ध नि̱ ध प, म प म ग, नि̱ नि̱ ध, रे ग म, प म ग, रे सा।

प प ध नि सां, नि सां, सां नि ध नि सां, सां नि ध ध प, प ध प म ग, ग ग म रे, ग म प, ग म रे, सा, सा, रे ग म प, ध नि सां, रें गं रें सां, सां रें सां नि ध प, ध म ग, म रे रे सा। प प, म ग, रे ग म प, म ग।

ऐसे अप्रसिद्ध रागों में गायक आलाप आदि प्रकार नहीं करते, क्योंकि ये राग अन्य रागों को तोड़-मोड़कर तैयार किए हुए होते हैं। गायक गाते समय ऐसे रागों में मिश्र होने वाले रागों के टुकड़ों के आधार पर 'तान' लेते हैं। मुख्य भाग बिलावल का ही रहेगा, यह न भूलना चाहिए।

प्रश्न—अब आप हमें कौनसा राग बतायेंगे ?

उत्तर—अब तुम्हें 'मलूहा केदार' की ओर ले चलता हूँ। यह राग सभी गायकों को नहीं आता। मैंने तुम्हें केदार राग समझाते हुए उसके चार प्रकारों

का वर्णन किया था। इनमें से शुद्ध केदार और चांदनी केदार पर विचार किया जा चुका है। मलूहा केदार का थाट केदार के थाट से भिन्न मानने का कारण इतना ही है कि, इस राग में तीव्र मध्यम नहीं लिया जाता। यह राग प्राचीन ग्रन्थों में नहीं दिखाई पड़ता। इसके विषय में 'कल्पद्रुम' की व्याख्या इस प्रकार है:—

"धैवतांशगृहंन्यास पंचमपरिवर्जयेत् ।
ओडवसतुविज्ञेया मलोहा रात्रौ गीयते ॥
केदारजलधरयुक्ता मलार स्वरसंयुत ।
गीयते राग पुत्रस्यात् धनीसागमस्वरा ॥"

इस ग्रन्थ के राग वर्णन के विषय में मैं तुम्हें बहुत कुछ कह चुका हूँ। उपरोक्त श्लोकों को शुद्ध कर उनका अर्थ निकाला जावे तो यह अर्थ होगा "मलोहा" राग औडव है। यह रात्रिगेय है, इसमें रे, प स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। इसका ग्रह अन्श व न्यास, स्वर धैवत है। केदार, जलधर और मल्हार राग इसमें मिश्रित हैं। इसे पुत्र रागों में माना जाता है। इसमें 'ध नि सा ग म' ये पांच स्वर लगते हैं। यह मैं बता चुका हूँ कि किसी-किसी मत से एक-एक राग के आठ-आठ पुत्र माने जाते हैं। कोई कहते हैं कि रागों के पुत्र जोड़ने की कल्पना भरत की है, परन्तु यह कौनसा भरत था? इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं प्राप्त होता। बहुत से भरत हो गये हैं, यह कहा जा सकता है। परन्तु हमें इस विषय में वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं है। प्रचार में 'रे प' वर्ज्य कर मलूहा नहीं गाया जाता। इस समय तो आरोह में रे ध दुर्बल बनाकर 'मलूहा' गाने की प्रथा प्रचिलित है। जयपुर के प्रसिद्ध गायक मुहम्मद अली खां ने मुझे इसी प्रकार का स्वरूप बताया है। ये एक बड़े घराने के गायक हैं, अतः इनका मत काफी सम्मान देने योग्य है।

प्रश्न—ये किस घराने के माने जाते हैं?

उत्तर—बादशाही जमाने में 'मनरंग' नामक एक प्रसिद्ध दरबारी गायक हो गया है। उसी के ये वंशज हैं। इन्हीं का मत मैंने अनेकों स्थलों पर स्वीकार किया है। इनका मेरा बहुत परिचय था। प्रचलित अनेक रागों की जानकारी इन्हीं के द्वारा मुझे प्राप्त हुई। इसी प्रकार उन्होंने मुझे अपने गीत भी सिखाये हैं, वे सभी गीत मैंने स्वरलिपि सहित लिख रखे हैं, जो मैं तुम्हें आगे चलकर सिखाऊँगा। 'मोहम्मदअली' जैसे गायक आजकल शायद ही दिखाई पड़ें।

'मलूहा' नाम कानों में विलक्षण सुनाई देता है। कोई-कोई कहते हैं कि यह शब्द 'मल्लरूह' का अपभ्रन्श है। प्रचार में मलूहा या मलोहा नाम प्रचलित है। यह राग केदार का एक प्रकार है। इसमें तुम्हें सा, म, प, ये तीन स्वर प्रबल दिखाई देंगे। यह राग मन्द्र सप्तक में अधिक प्रमाण में गाया जाता है, और वहीं पर सुन्दर लगता है। इसे केदार राग से अलग करने के लिये कामोद का अङ्ग मिश्रित करना पड़ता है। वह अङ्ग "ग म प, ग म सा" है। मन्द्र सप्तक में

"रे सा, प़ म़ म़, प़" इस प्रकार स्वर लेकर गाया जाता है। इसका प्रभाव मन पर स्वतन्त्र ही होता है। इस प्रकार के स्वर लेकर गायक 'पनि़, सा, रे, सा' इस प्रकार आरोह करते हैं। आरोह में रे ध स्वर बिलकुल वर्ज्य नहीं होने पर भी दुर्बल अवश्य ही रखे जाते हैं। किसी-किसी के मत से इस राग में धैवत वर्जित स्वर है। इस राग में श्याम और केदार का मिश्रण मानते हैं। 'श्याम' का मध्यम और नि़, सा, स्वर प्रयोग तुम्हें याद ही होगा। यह भाग इस राग में भी दिखाई देगा। विलम्बित रूप से गाने में बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। जबकि इस राग का ग्रन्थाधार प्राप्त नहीं होता तब इसका स्वरविस्तार बता देना ही अधिक सुविधा-जनक होगा।

प्रश्न—हां, यही हम पूछने वाले थे।

उत्तर—सुनोः—

सा, रे सा, प़, म़, प़, नि़, सा, रे रे, सा, नि़ सा रे सा, नि़ रे सा, प़ नि़ सा, रे रे सा, ग म प, ग म रे, सा।

सा सा ग ग, म रे, ग म प, ग म रे, नि़ सा, रे सा, प़ म़ प़, नि़, सा।

ग म रे सा, प ग म रे सा, नि़ रे सा, प़ म़ म़ प़, नि़ सा, ग म प ग म रे, नि़ सा नि़ सा ग म प, नि प, ग म रे, नि़ रे सा, ग म रे सा, प़, नि़ सा ग म प ग म रे, नि़ सा।

नि़ सा, प़, म़ म़ प़, नि़ प़ म़ प़, नि़ सा, म म रे, नि़ सा, ग म प रे, नि़ सा।

ग म प, सां, सां, रें सां, गं मं पं गं मं रें सां, सां सां रें सां, नि प, ग, म प, ग म रे, नि़ रे नि़ सा।

ग म प सां, सां, रें सां, प नि सां रें, सां नि ध प, ग म प ग म रे नि़ सा, सां, प ग म रे, नि़ रे सा, सा, प़ म़ म़, प़ सा, ग म प ग म रे, सा।

यहां आरोह में रिषभ लेने पर छायानट का आभास होता है और अवरोह में धैवत लेने पर हेमकल्याण का आभास होता है। अतः इन दो स्वरों के प्रयोग पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

प्रश्न—अब हमें इस राग की ठीक कल्पना होगई। अगला राग शुरू कीजिये।

उत्तर—अब 'हेमकल्याण' राग की ओर विचार करें। यह राग बहुत कुछ मलुहा सरीखा ही समझ में आवेगा। गायक लोग बार-बार 'हेमखेम' का संयुक्त नाम व्यवहार में प्रयोग करते हैं। हेम राग बहुत थोड़े गायकों को आता है। Capt. Willard साहब ने अपनी पुस्तक में Khem और Khem Kalian ऐसे दो अलग-अलग राग बताये हैं। इनमें प्रथम खेम राग के अन्तर्गत कानड़ा, सरस्वति, कल्याण, राग बताये हैं और खेमकल्याण के अन्तर्गत केदार और हमीर का मिश्रण बताया है। एक गायक ने मुझे दोनों ग व दोनों नि लिये जाने वाले राग स्वरूप को बताकर कहा था कि इसमें हेम खेम मिला दिये हैं। यह स्वरूप

मुझे थोड़ा सा बागेश्वरी (बागेसरी) जैसा दिखाई दिया, बागेश्वरी राग काफी थाट में है। Capt. Willard साहब खेम राग में कानड़ा का भाग बताते हैं, इस दृष्टि से देखने पर दोनों ग, नि का प्रयोग होना आश्चर्यजनक नहीं है। उस गायक के गाये हुए गीत के स्वर इस प्रकार थे:—

निसारेगम, निसारेगम, पगम, सांनिध, निधपमगम, पमगुरेसा।

सां, निधप, मगम, पधनिसां, सांसांरेंनिसां, गुंमंरेंनिसां, पनिप, मप, मगुमप, म गु म प, मगुरेसा।

यह सब तुम्हें जानकारी के लिये बता रहा हूँ। निस्सन्देह यह राग विवाद-ग्रस्त रागों में से है। Willard साहब ने 'हेम' राग के विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। उनका बताया हुआ 'खेम कल्याण' प्रचलित 'हेम कल्याण' से बहुत अन्शों में समानता प्राप्त करता है। हमें 'लक्ष्यसङ्गीत' का मत ही स्वीकार करना चाहिये। लक्ष्यसङ्गीत में कहा है:—

"शंकराभरणे मेले हेमकल्याणनामकः ।
सायंगेयः सांशकोऽपि लक्ष्यविद्भिः प्रकीर्तितः ॥
षड्जस्वरो भवेद्वादी सम्वादी पंचमो मतः।
मन्द्रमध्यस्वरैरेव सर्वेषां रक्तिदो भवेत् ॥
कल्याणेमिश्रणात्तत्र कामोदस्य समुद्भवेत् ।
रागोऽयमिति केषांचित्संमतं लक्ष्यवेदिनाम् ॥
आरोहणे धहीनः स्यान्मन्द्रपोद्ग्राहकोभवेत् ।
विलम्बितलये गीतो विशिष्टं सुखमावहेत् ॥"

इस मत के अनुसार यह राग रात्रिगेय है। इसका वादी स्वर षड्ज और सम्वादी स्वर पंचम है। इस राग का विस्तार मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही होता है। तार सप्तक के स्वर लिये जाने पर इसका अन्य रागों में चले जाने का भय रहता है, अतः गायक तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग नहीं करते। मैंने इस राग के जो-जो गीत सुने हैं, वे सब मन्द्र और मध्य सप्तक के ही थे। इस राग के आरोह में धैवत स्वर नहीं लिया जाता। मेरे विचार से इस राग में ग, नि स्वर बिलकुल दुर्बल माने गए हैं। मलुहा में हमने रे ध स्वरों को दुर्बल माना था। निषाद स्वर हेमकल्याण में बिलकुल असत्प्राय है, परन्तु इस दृष्टि से गांधार का फिर भी अनेक जगह प्रयोग होता है। इस राग में कामोद और कल्याण का मिश्रण माना जाता है। अनेक बार इस राग में मन्द्र पंचम से गायकों को आलाप करते हुए पाया गया है। मलुहा, हेम, नवरोचिका (नवरोज) आदि राग एक दूसरे के बहुत निकट हैं। अतः इन्हें अलग-अलग बनाए रखने में कुशलता की आवश्यकता होती है। ऐसे राग में कल्याण, हमीर, कामोद या केदार आदि रागों का मिश्रण होने से सदैव मतभेद की गुञ्जाइश हो जाती है। ऐसे स्थानों पर ग्रन्थों का उपयोग शायद ही कहीं हो सके। ऐसे रागों में तो केवल बहुमत को ही प्रधानता दी जाती है।

प्रश्न—यदि आप आज्ञा दें तो हम एक प्रश्न स्पष्ट रूप से पूछना चाहते हैं ?

उत्तर—तुम कौनसा प्रश्न पूछना चाहते हो ? बिलकुल संकोच छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक पूछो !

प्रश्न—आपने अभी तक हमें बीस-पच्चीस रागों का वर्णन समझाया है और उन्हें समझाते हुए अपने भिन्न-भिन्न प्राचीन ग्रन्थों के श्लोक भी सुनाये हैं। परन्तु वास्तविक रूप से क्या उन ग्रन्थोक्तियों का प्रचलित सङ्गीत में कुछ भी उपयोग हो सकता है ? जहां देखते हैं वहां ग्रन्थों में कुछ अलग कहा गया है और प्रचार में कुछ दूसरा ही वर्णन मिलता है। हम यह स्वीकार करते हैं कि 'लक्ष्यसङ्गीत' ग्रन्थ हमारे लिये पद-पद पर उपयोगी सिद्ध होता है। इसके लिये तो आपने बताया है कि यह रचना पारिजात के बाद की है और आधुनिक पद्धति का ही यह ग्रन्थ है। यदि इसको एक ओर उठाकर रखदें, तो बाकी के ग्रन्थों को हमारी पद्धति का समर्थक कैसे कहा जा सकता है ? हमारे कथन पर रुष्ट न होइएगा। हमें जो कुछ ठीक रूप से दिखाई दिया वही हम आपसे कह रहे हैं ?

उत्तर—तुम्हारा ऐसा समझ लेना स्वाभाविक है परन्तु मेरे विचार से अभी इतने शीघ्र ही तुम्हें अपना मत ठहरा कर व्यक्त कर देने की जल्दबाजी नहीं करनी चाहिये। अभी तो तुम्हें सैकड़ों राग सीखने हैं, फिर यह भी तो सोचो कि क्या हम प्राचीन राग रचना के तत्व स्वीकार नहीं करते हैं ? किसी-किसी स्थान पर क्या प्राचीन ग्रन्थों में बताये हुए थाट प्रचलित थाटों से नहीं मिलते ? यदि हमारे प्रचलित राग स्वरूप उन ग्रन्थकारों के समय में इस प्रकार नहीं थे तो फिर उसमें उन ग्रन्थकारों का क्या दोष है ? जब कि हमारे सुशिक्षित लोगों ने जान-बूझकर सङ्गीत विद्या को अल्प महत्व की समझ कर मियां साहबों के अधिकार में चली जाने दी और उनके सहवास से उसका रूपान्तर हो गया, तब फिर इसके दुष्परिणाम का जिम्मेदार कौन हुआ ? अब हम चाहे कितना ही पश्चाताप क्यों न करें, तो भी उसका उपयोग अब होना संभव नहीं दिखाई देता। जिस प्रकार हमारे प्राचीन रिषि मनु महाराज के समय के आचार-विचार इस समय समाज में पुनः प्रचलित करना असम्भव है, इसी प्रकार प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थों को प्रचलित करना अशक्य है। मेरा यह मत नहीं है कि मुसलमान गायकों ने हमारे सङ्गीत की दुर्दशा की है। उनका दोष केवल इतना ही है कि उन्होंने जो-जो परिवर्तन किये उनके नियम पद्धति के अनुसार नहीं लिख छोड़े। परन्तु उनमें अधिकांश लिखने पढ़ने वाले थे भी नहीं। हम लोगों की श्रद्धा और प्रेम मुसलमान गायकों के प्रति कितना बढ़ा-चढ़ा है, यह इसी बात से सिद्ध हो जाता है कि हमारे यहां कोई हिन्दू गवैया कितना ही उत्तम गायक क्यों न हो, परन्तु उसकी गुरु परम्परा किसी खां साहब से सम्बद्ध नहीं है तो वह बेचारा एक मात्र भजन गायक या कथावाचक ही ठहराया जावेगा। और मुसलमान गायकों को हमें अल्प महत्व का समझने का अधिकार ही क्या है ? क्या हम स्वयं प्रचलित दृष्टि से उन्हीं के अनुयायी सिद्ध नहीं होते ? हम तानसेन के गुरु हरिदास स्वामी का नाम बताकर अभिमान करते हैं, परन्तु उनका ग्रन्थ कौनसा है ? ऐसा प्रश्न किसी के द्वारा किया जाने पर हम उसे क्या उत्तर दे सकते हैं ?

यद्यपि ऐसी स्थिति है तो भी तुम्हें प्राचीन ग्रन्थों के प्रति अश्रद्धालु नहीं होना चाहिऐ। ये ग्रन्थ सम्पूर्ण रूप से निरुपयोगी नहीं है। जब तुम इन्हें पढ़ोगे तब शान्त चित्त से विचार करने पर तुम इनका वास्तविक मूल्य निर्धारित कर सकोगे।

प्रश्न--नहीं-नहीं, हम प्राचीन ग्रन्थों को बुरा नहीं बतलाते और हम उनके लिये आज ही अपना मत भी निश्चित नहीं करते। ग्रन्थों के आधार स्वरूप प्रमाण (क्या उन्हें आधार कहा जा सकता है?) आप अवश्य बतलाइये। परन्तु जैसे आपने अभी कहा कि ग्रन्थों के थाट अपने प्रचलित थाटों से मिलते हुए हैं, भला केवल थाट मात्र के मिल जाने से पूर्ण जानकारी कैसे हो सकती है। आरोह, अवरोह, वादी, सम्वादी आदि बातों में जब कि विरोध है, तब तो ग्रन्थों में और प्रचार में परस्पर असम्बद्धता ही रहेगी। परन्तु अभी हम आपके उपदेशानुसार अपना मत निश्चित करना स्थगित किये देते हैं। छोटे मुँह बड़ी बात करना सचमुच शोभनीय नहीं है। आप 'हेम कल्याण' के विषय में बता रहे थे, उसे ही चलने दीजिये।

उत्तर--ठीक है, दक्षिण पद्धति में एक 'हेमवती' नाम का थाट है। इस थाट में कोमल ग, व तीव्र म लिया जाता है। अपना हेम राग इस थाट का नहीं हो सकता। 'रागमाला' नामक 'मेषकर्ण' द्वारा लिखित ग्रन्थ की चर्चा मैंने पहिले भी की है। उसमें 'हेमाल' नामक राग का नाम दिखाई पड़ता है। परन्तु उसमें राग के स्वरों का खुलासा नहीं पाया जाता। उस ग्रन्थ में केवल यह बताया है कि 'हेमाल' दीपक राग का पुत्र है, और साथ में इस राग का ध्यान अर्थात् चित्र बताया गया है।

प्रश्न--हेम कल्याण का स्वरविस्तार कैसे किया जाता है?

उत्तर--मैं एक प्रसिद्ध गीत के आधार पर इसका राग विस्तार तुम्हें सुनाता हूँ।

"प़ प़ ध़ प़, सा, सा रे सा, ग रे सा, ग म प, ग म रे सा।

सा रे सा, ध़ ध़ प़, सा, ग म प, ग म रे सा।

सा सा रे सा, रे रे, प, म ग म रे, सा, ग म प, ग म रे, सा, सा सा, म ग, प, प ध प, प़ प़ सा, रे रे सा, ग म प, ग म रे, सा।

सा रे सा, ग म प, ध प, प ध प, सां, ध प, ग म प, ग म रे सा।

ध़ ध़ प़, ध़ प़ प़, सा, प ग म रे, सा रे सा, ध प, ग म रे सा, रे रे सा।

सा सा, ग ग, प, ध प, ग म प, ग म रे सा, सा म ग प, ध प, प ग म रे, सा, रेसा।

कोई-कोई गायक इस राग में तीव्र मध्यम का प्रयोग करते हुए पाये गये हैं, परन्तु अनेक बार बिना इस स्वर का प्रयोग किये हुए भी यह राग गाते हुए भी सुना गया है। यह राग रात्रिगेय है और कल्याण का अङ्ग इसमें शोभा पाता है,

अतः इसमें तीव्र मध्यम का सीमित प्रयोग करने से राग हानि नहीं हो सकती। कोई-कोई गायक ऐसा भी कहते हैं कि भूपाली राग यदि मन्द्र सप्तक और मध्य सप्तकों में ही गाया जावे तो हेमकल्याण हो जाता है। इन मतभेदों पर ध्यान देना आवश्यक नहीं है।

प्रश्न—अब आगे किसी राग का वर्णन कीजिये?

उत्तर—अब हम 'दुर्गा' राग को लेंगे। यह राग अप्राप्य रागों में से ही एक माना जाता है। इसे गाने के दो प्रकार प्रचलित हैं, एक मल्हार अङ्ग से और दूसरा खमाज अङ्ग से। हम इस समय मल्हार अङ्ग की 'दुर्गा' का विचार करेंगे। खमाज अङ्ग की दुर्गा पर खमाज थाट में विचार किया जावेगा। क्यों कि उसके स्वरों में कोमल नि मुख्य स्वरों में से है। अपने विचारणीय प्रकार (बिलावल थाट मल्हार अङ्ग) की दुर्गा में ग, नि स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। वादी स्वर मध्यम माना गया है। इस राग में शुद्ध मध्यम से रिषभ पर बार-बार मींड ली जाती है, इस प्रकार यह राग 'शुद्ध मल्हार' नामक राग के बहुत निकट आ जाता है। 'श्यामकल्याण' राग में भी तुम्हें इसी प्रकार की मींड लेने को मैंने कहा था। दुर्गा का प्रारम्भ "प, म प ध, म रे, मरे, प" इस प्रकार से तुम्हें अनेक बार दिखाई देगा। इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर हमें मानना चाहिये। इस राग में पूर्वाङ्ग प्रधान होने के कारण इसमें प्रभातकाल का आभास नहीं होता। गांधार स्वर वर्ज्य करने से अन्य कुछ रागों के निकट यह राग चला जाता है। सारङ्ग में भी गांधार नहीं लिया जाता। सोरठ में आरोह में नहीं, परन्तु अवरोह में अल्पप्राय रूप से लिया जाता है।

प्रश्न—तब तो इन रागों में परस्पर गड़बड़ हो जाती होगी?

उत्तर—नहीं-नहीं! इन रागों को अलग करना कठिन नहीं है। यद्यपि सारङ्ग में गांधार नहीं लिया जाता, परन्तु सारङ्ग में धैवत भी नहीं है और निषाद स्वर लिया जाता है। इसी प्रकार सोरठ में भी निषाद वर्जित नहीं है। सोरठ का आरोह "सा रे, म प, नि, सां" बहुत प्रसिद्ध है। 'दुर्गा' में 'रे प' स्वर सङ्गति से कभी-कभी कामोद का आभास हो जाता है। शुद्ध मल्हार में "सा, रे म, म प प, म प ध सां, ध प म, सा रे म," इस प्रकार का भाग तुम्हें अनेक बार दिखाई देगा। वहां पर 'सा, रे, म,' टुकड़े से ही मल्हार का बोध होगा। दुर्गा राग में बीच-बीच में मध्यम को खुला छोड़ दिया जाता है और ऐसा उत्तम दिखाई पड़ता है। दुर्गा राग के लिये तुम्हें ग्रन्थों का आधार प्राप्त नहीं होगा। ग्रन्थों में, शुद्ध थाट के ग नि वर्ज्य राग अन्य नामों से बताये गये हैं। तुम्हारे प्रचलित रागों के नाम ग्रन्थों में निराले ही बताये गए हैं। इस बात पर भी हम कभी आगे विचार करेंगे। Capt. Willard साहब ने मिश्र रागों के कोष्ठक में दुर्गा नामक एक राग बताया है और उसके अन्तर्गत "मालश्री, लीलावती, गौरी और सारङ्ग" रागों का नाम बताया है। इतनी जानकारी से हमारी कुछ सहायता नहीं हो सकती। इन रागों के प्राचीन स्वरूप कौन से थे? और ये राग कैसे मिलाकर दुर्गा बनाई जाती है, आदि प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। पुराने नाम और नवीन राग रूप इनका

मिलान कैसे सुसंगत कहा जा सकता है ? यदि इस समय के इन चारों रागों के प्रचलित रूपों से हम खोज करें तो इनमें परस्पर बड़ा विरोध दिखाई देगा फिर ये कैसे मिल सकते हैं ?

प्रश्न—दुर्गा का राग विस्तार समझा दीजिए ?

उत्तर—सुनो ।

प, म प ध म, म रे, प, प ध म, रे प म, रे, सा रे सा, सां ध, सां रें, प ध म, प, म प ध म ।

म रे सा, सा रे सा, प म रे सा, ध ध म, रे प, ध म, रे प म, सा रे सा, सा ध़ सा, म प ध म, सां ध, म, रे प ध म, प म, रे, ध म, प म रे सा, प, म प ध म ।

म म प, सां, सां, सां रें मं रें, सां, प ध म, म प सां, रें रें ध सां, म प सां, प ध ध म, प म प ध, म, रे म, सा रे म, सा रे सा ।

सां ध, सां रें, सां प, ध म, प म प ध म, म रे प प, ध ध म, प प म, सा रे रे सा, सां रें मं, सां, प ध म, रे प ।

यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि ऐसे अप्रसिद्ध रागों का स्वरविस्तार गीतों की सहायता से ही बताया जा सकता है । मैंने प्रसिद्ध गायकों के निकट से जो-जो गीत प्राप्त किये हैं, वे तुम्हें आगे बताऊँगा । यदि तुम्हें उपरोक्त राग-विस्तार अच्छी तरह तैयार हो गया हो तो तुम्हें वे गीत सरलता से तैयार हो जावेंगे । अब इस दुर्गा राग के सम्बन्ध में तुम्हें लक्ष्यसङ्गीतकार का कथन सुना देता हूँ ।

"द्राक्शुद्धस्वरसंमेलाद्‌दुर्गानाम्नी प्रजायते ।
औडवा गनिहीनासौ मध्यमांशेनमंडिता ॥
अत्रेषद्बिलसेच्छाया शुद्धमल्लारिका पुनः ।
पंडितैर्गानमेतस्या द्वितीयप्रहरे मतम् ॥
गांधारस्य विलुप्तत्वात्प्रतीतः सोरटो भवेत् ।
आरोहे धैवतः स्पष्टस्तद्रूपमपसारयेत् ॥
रिपयोः संगतिश्चात्र मल्लार्यं गं निवारयेत् ।
व्यस्तमध्यमयोगोऽपि श्रोतृचित्तहरो भवेत् ॥
निषादस्य प्रलुप्तत्वे कुतः सारंगसंभवः ।
अवरोहे गसंयोगे सोमरागस्यनोद्भवः ॥
ग्रन्थेषु कथितं रूपं शुद्धसावेरिनामकम् ।
इदमेव कदाचित्स्याद्‌बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥"

ग्रन्थों में शुद्ध स्वरों के थाट में एक 'सोम' राग बताया गया है, परन्तु उसके अवरोह में गांधार लिया जाने से वह स्वरूप दुर्गा से भिन्न हो जाता है । ग्रन्थों में प्रसिद्ध 'शुद्ध सावेरी' राग दक्षिण में प्रसिद्ध है ।

प्रश्न—अब किसी दूसरे राग को बताइये ?

उत्तर—इस शुद्ध थाट के अधिकांश महत्व पूर्ण राग तो तुम्हें बता ही दिये हैं, अब केवल चार राग गुणकली, पहाड़ी, हंसध्वनि, और मांड ही रह गये हैं। हम लक्ष्य-सङ्गीत के अनुसार ही अधिकांश रूप में चल रहे हैं। क्योंकि लक्ष्यसङ्गीतकार ने प्रायः प्रचलित रागों का वर्णन दिया है। उपरोक्त चार रागों में से 'हन्सध्वनि' के विषय में अधिक नहीं कहा जा सकता। यह राग आरोह और अवरोह में ही अपने सभी राग स्वरूपों से भिन्न है। इसके आरोह, अवरोह में म, ध स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। तुमने शंकरा राग में मध्यम वर्ज्य किया था, परन्तु वहां धैवत लिया जाता था। भूपाली में म, नी स्वर वर्ज्य हैं। चन्द्रकान्त के केवल आरोह में 'म' वर्ज्य होता है। शुद्ध कल्याण के केवल आरोह में म, नी वर्ज्य किये जाते हैं। देशकार में म नी वर्ज्य होते हैं। बिलावल के किसी भी प्रकार में म, ध वर्ज्य नहीं होते। बिहाग में मध्यम कभी नहीं छोड़ा जा सकता।

प्रश्न—मैं ठीक तरह समझ गया। इस 'हन्सध्वनि' राग को अपने यहां के गायक किस प्रकार गाते हैं?

उत्तर—हमारे यहां के मुसलमान गायकों को तो यह अभी प्रिय नहीं हो पाया, परन्तु कोई-कोई हिन्दू गायक इसे गाते हुए पाये जाते हैं। यह दक्षिणी पद्धति का राग है। इसका वर्णन दक्षिण के ग्रन्थों में एक दो जगह दिखाई पड़ेगा। 'रागलक्षण' में इसका वर्ण बताया गया है। इस राग में म ध वर्ज्य होने से इसमें शंकरा का आभास हो सकता है। शङ्करा का यह भाग—"सा रे सा, ग प ग सा, सां नि प, नि प, ग प, सां, नि प, ग प, गरेसा", प्रसिद्ध है। परन्तु दक्षिण के लोग इस राग (हन्सध्वनि) को इतने विलक्षण रूप से गाते हैं कि उसमें अपने शंकरा का स्वरूप दिखाई नहीं दे सकता। "सा रे ग सा, सा, ग प ग रे, ग प नि, प नि नि, सां, रें सां, रें गं रें सां नि, प नि रें सां नि, ग रे ग प नि नि, गं रें नि रें सां। सां रें सां नि नि, प नि सां नि प, ग प ग रे, प प, सा रे ग सा। प प नि निसां, सां रें गं सां सां, सां रें गं पं गं रें, नि नि रें सां। सां नि प, ग प नि, सां रें गं रें सां नि, रें रें सां नि प ग, प ग रे सा।" इस प्रकार के स्वर प्रयोग से शंकरा नहीं दिखाई देता, परन्तु हमारे यहां ऐसा स्वरूप उच्च कोटि का नहीं समझा जाता; यह स्वरूप किसी एक Tune जैसा दिखाई देगा। दक्षिण की ओर के एक प्रसिद्ध गायक ने इसी प्रकार गाकर सुनाया था। अपने यहां गायन में मींड का प्रयोग अधिक लोकप्रिय है, या ऐसा कहा जा सकता है कि हमारे यहां मींड प्रणाली का गायन ही अधिक लोकप्रिय होता है। हंसध्वनि का वर्णन लक्ष्य सङ्गीतकार ने इस प्रकार किया है:—

"हंसध्वन्याव्हयो रागः स्याच्छुद्धस्वरमेलनात्।
आरोहेप्यवरोहे च मधहीनो भवेत्सदा ॥
स्वरः षड्जो मतो वादी कैश्चिद्गांधारको ह्यसौ।
गानमस्य समादिष्टं रात्र्यां प्रथमयामके ॥
हिन्दुस्थानीयपद्धत्यां प्राचुर्यं नास्य दृश्यते।
संगीते दाक्षिणात्यानां सतु साधारणो मतः।"

गांधार स्वर को वादी करने पर पांचों स्वरों से कल्याण जैसा एक प्रकार निकल सकता है। जैसे "नि़ रे ग रे, नि़ रे नि़ सा, नि़ प़ नि़ रे सा, सा सा ग रे ग, प ग, नि प, ग प ग रे सा" आदि। इन दोनों प्रकारों पर तुम्हें ध्यान देना चाहिये। जब यह रूप कल्याण जैसा दिखाई दे, तब म ध स्वरों के लोप होने पर उसे कोई भिन्न नाम दिया जाना चाहिये।

प्रश्न—आपने ऊपर गुणकली का नाम लिया था, इस राग के क्या लक्षण हैं?

उत्तर—ग्रन्थों में तुम्हें गुणकली, गुणक्री, गुणकेली, गुंडक्री, आदि नाम दिखाई देंगे। किसी का मत है कि ये सारे रागों के नाम एक ही राग के हैं। मेरे मत से गुणकली व गुणक्री राग भिन्न-भिन्न मानना उत्तम होगा। गुणक्री राग भैरवी थाट में आता है। 'गुणकली' नाम संस्कृत ग्रन्थों में नहीं दिखाई देता। कुछ लोग प्रचार में गुणकली को एक प्रभातकालीन रागों में से मानते हैं। यह राग बिलावल और कल्याण रागों के संयोग से बना हुआ दिखाई पड़ता है। इन दोनों के अङ्ग इस राग में दिखाई पड़ते हैं। इस राग का वादी स्वर षड्ज है। इसके आरोह में कल्याण अङ्ग और अवरोह में बिलावल का अङ्ग प्रयुक्त होता है। प्रातःकालीन राग होने के कारण इसमें उत्तरांग की प्रधानता होनी ही चाहिए। इस राग के आरोह में म नि स्वर बिलकुल दुर्बल माने गये हैं। तुम्हें कुछ ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे जो कि गुणकली में कल्याण अङ्ग देखकर इसे रात्रिगेय रागों में से मानते हैं। मुझे दो प्रसिद्ध गायकों ने दो भिन्न-भिन्न गीत इस राग के बताये हैं। एक गीत में कल्याण जैसा भाग अधिक है, और दूसरे में (अन्तरा में) बिलावल अन्श प्रधान है। ये दोनों गीत मैं तुम्हें बताऊँगा।

प्रश्न—उन गीतों के स्वरूप आप हमें अभी सुना दीजिये जिससे हमारे ध्यान में ये दोनों प्रकार ठीक रूप से जम जावें।

उत्तर—ठीक है, मैं सुनाता हूँ।

१—प प ध नि सां रें सां, (यह एक जलद तान है, इसमें निषाद बहुत थोड़ा लगाया जाता है।)

सां नि ध, नि ध प, प सां सां ध ध प, ध प प, प प ध ध प प, ग म रे रे सा, सा ध़ प़, सा प प म ग, सा रे सा, सा रे ग म, रे रे सा।

प प प, सां ध, सां सां, गं गं, गं रें पं गं, प ग प, सां ध सां, सां ध प, ग, प ग, प, सां ध सां, सां, सां, रें गं सां, सां ध प, प ग, म रे रे सा।

यह एक प्रकार हुआ।

२—ग रे सा नि़ ध़ नि़ ध़ प़, सा, रे सा, ग ग, प रे, सा, सा, ग रे सा, सा नि़ ध़, नि़ ध़ प़, प़ ध़ सा, ग रे सा।

प प ध नि ध सां, सां नि ध, नि ध, सां रें सां नि ध प, प प प ध सां ध ध प, ग प, ग रे सा, नि़ ध़, सा नि़ ध़ प़, सा, ग रे सा।

यह दूसरा प्रकार है।

इन दोनों प्रकारों को तुम्हें ध्यान में रखना , ऐसे अप्रसिद्ध व विवादग्रस्त रागों के मार्ग दर्शक केवल प्रसिद्ध गायकों के गीत ही हो सकते हैं। क्यों कि हमें वर्तमान प्रचलित संगीत पर ही विचार करना है। मेरे स्वरोच्चार और विश्रांति स्थानों को सूक्ष्म रूप से देखकर ध्यान रखना, अन्यथा यह राग रूप तुम भूल जाओगे। हमारे हिन्दुस्तानी सङ्गीत में यह एक विलक्षण प्रथा कायम हो गई है कि इसमें स्वरों का उच्चारण एक में एक थोड़ा बहुत मिलाकर किया जाता है। यदि खुले स्वर (जिन्हें गायक खड़े स्वर कहते हैं) गाये जावें तो श्रोताओं को किसी पाश्चात्य (अंग्रेजी) संगीत जैसा लगने लगता है । कोई-कोई पाश्चात्य सङ्गीतज्ञ अपनी पद्धति में यह एक दोष बताते हैं। परन्तु हमें तो अभी अपने समाज की रुचि के अनुरूप ही चलना है।

'गुणक्री' राग में रे ध स्वर कोमल लगाये जाते हैं। इस राग को हम एक भिन्न राग मानते हैं। 'सङ्गीतसार' के पृष्ठ ३४६ पर क्षेत्रमोहन गोस्वामी ने गुणकिरी या "गुणवेली" नाम देकर राग का विस्तार स्वरों में दिया है। इस विस्तार में रे ध कोमल और मध्यम तीव्र ग्रहण किया है। टिप्पणी में इसके सम्पूर्ण राग होने के लिए 'मतङ्ग' का आधार बताया है। "पूर्णा गुणकिरी प्रोक्ता मतङ्ग मतसंमता" "ध्वनि मंजर्याम्॥" इस प्रकार का उल्लेख मिलता है।

इस राग के विषय में हमें संस्कृत ग्रन्थों में शायद ही जानकारी प्राप्त हो । ग्रन्थों में इसका नाम गुणक्री या गुण्डकी, गौड़क्रिया, गुंडक्रिया, गौड़क्री आदि हैं। परन्तु इन नामों से प्रसिद्ध राग भैरव थाट में है। भैरव थाट के राग सीखते समय गुणकली राग भी तुम्हारे सामने आयेगा। श्री बनर्जी ने अपने ग्रन्थ 'गीतसूत्रसार' में रागों का एक कोष्टक दिया है, उसमें गुणकली को दोनों मध्यम व कोमल रे ध स्वर वाला राग माना है। इसको देखते हुए ऐसा समझ में आता है कि पुराने समय में यह राग पूर्वी थाट में माना जाता होगा।

प्रश्न—अब हमें पहाड़ी राग के विषय में बताइए ?

उत्तर—ठीक है! पहाड़ी राग इस समय शुद्ध स्वरों में गाये जाते हुए सुना जाता है। 'पहाड़ी' नाम सुनते ही यह समझ में आता है कि यह हिन्दी भाषा का शब्द है। हिन्दी भाषा में पहाड़ को पर्वत कहते हैं। इस नाम को सुनते ही यह अनुमान किया जा सकता है कि, यह राग जङ्गली लोगों (जङ्गल में रहने वालों) द्वारा गाया जाने वाला है। यह राग अनेक बार अत्यन्त हलके गाने, गाने वालों के मुँह से सुनाई देता है। डफ (घेरा) पर लावनी गाने वाले लोग भी कभी कभी ऐसा ही राग प्रकार गाते हैं। ग्रन्थों में 'पाड़ी' नाम दिखाई पड़ता है, परन्तु वह प्रचलित पहाड़ी राग से बिलकुल भिन्न रूप है। वह मालव गौड़ अर्थात् भैरव थाट का एक राग है। बहुत से ग्रन्थों में पाड़ी को भैरव थाट में ही बताया है। कोई-कोई कहते हैं कि पाड़ी और पहाड़ी दो भिन्न-भिन्न राग हैं। यदि यह ठीक हो तो मानना पड़ेगा कि, पहाड़ी प्राचीन ग्रन्थ प्रकार नहीं बल्कि आधुनिक प्रकार है। यदि हम 'संगीत पारिजात' को देखें तो हमें पहाड़ी नाम स्पष्ट दिया हुआ मिलेगा। पारिजात में राग वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है—

"गौर्य्युत्पन्नापहाडीस्याद्गांधारस्वरवर्जिता ।
उद्ग्राहे षड्जसंपन्ना न्यासांशयो रिशोभिता ॥"

इस वर्णन में पहाडी की उत्पत्ति गौरी थाटसे बताई गई है। गौरी थाट की व्याख्या इस प्रकार दी गई है:—

"रिस्वरादिस्वरारम्भा रिकोमलधकोमला ।
गतीव्रा सा नितीव्राच गौरी न्यंशस्वरामता ॥"

यह देखते हुये यही कहा जा सकता है कि प्रचलित पहाड़ी का यह स्वरूप नहीं है।

राग विबोध:—

"पाडीसायान्हार्हा गोना सांशग्रहन्यासा ।
मालवगौडमेले ॥"

यहां भी उपरोक्त रूप से कोमल रे ध वाला थाट बताया गया ।

राग लक्षण:—

"मायामालवमेलाश्च जातोरागः सुनामकः ।
पाहाड्याव्हश्चसंप्रोक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे रिधवर्जंच पूर्णवक्रावरोहकम् ॥"

इस मत से भी थाट भैरव ही निश्चित होता है।

चतुर्दण्डिप्रकाशिकायाम्—

"पाडिरागो गौलमेलप्रभूत ष्षाडवो मतः ।"

इस ग्रन्थ का गौडमेल अर्थात् प्रचलित भैरव थाट ही है। 'अनूप विलास' ने 'सङ्गीत–पारिजात' का ही उद्धरण ले लिया है।

राग चन्द्रोदय—इस ग्रन्थ में मालवगौड थाट के स्वर बता कर इस प्रकार कहा है:—

"मेलादतो मालवगौडनामा । गौडक्रिया गुर्जरिकाच टक्कः ॥
पाडी कुरंजी बहुलीचपूर्वा । रामक्रिया द्राविडगौडनामा ॥"

"सङ्गीत सारामृत" में भी पाड़ी राग मालवगौड़ थाट में है। मेरे ख्याल से इस प्रकार अधिक मतों को देने से कोई लाभ नहीं। यह सहज ही निश्चित हो जाता है कि प्रचलित 'पहाड़ी' राग ग्रन्थों में नहीं बताया गया है। अब हमें 'लक्ष्य–सङ्गीत' का ही वर्णन स्वीकार करना होगा, क्यों कि हमें प्रचलित स्वरूप का ही आधार देखना है। लक्ष्य सङ्गीत का वर्णन इस प्रकार है:—

"शंकराभरणे मेले पाहाडिर्गीयतेऽधुना ।
मन्द्रमध्यस्वरैश्चापि संमता सार्वकालिका ॥
षड्जपंचमयोरत्र सम्वादो रुचिरो मतः ।
मन्द्रस्थो धैवतो नूनं वैचित्र्यं प्रतनोति सः ॥

"भूपाल्याः प्रकृतिं धत्ते गानमस्या यतोऽशतः ।
स्पर्शः शुद्धमध्यमस्यानुमतो लच्यवेदिनाम् ॥"

इस मत के अनुसार पहाड़ी में सारे स्वर शुद्ध लगते हैं। यह राग मन्द्र व मध्य सप्तकों में खूब खिलता है। पहाड़ी राग का समय निश्चित नहीं है, अर्थात इसे चाहे जब गाया जा सकता है। इसका वादी स्वर षड्ज और सम्वादी पंचम है। इन दो स्वरों से यह राग बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। इस राग में मन्द्र धैवत की ओर श्रोताओं का लच्य विशेष कर जाता रहता है। इस स्वर के प्रयोग से इस राग का रूप कुछ निराला ही हो जाता है। 'ग, रे सा ध़, ग, रे ग, प, ग, रे सा ध़, प़, ध़ सा' यह स्वर समुदाय एक बार सुनाई देने पर मन पर छा जाता है। मैं इसे किस तरह गाता हूं, इसे ध्यान से देखो। इतने स्वरों को देखकर यह राग पहिचान में भिन्न हो सकता है। पहाड़ी राग में म नि स्वर दुर्बल लेने के कारण उसमें भूपाली स्वरूप काफी प्रमाण में आ जाता है। कुशल गायक इस राग पर से भूपाली का प्रभाव अलग करने के लिये बड़ी सफाई से अवरोह में म, नि स्वरों का स्पर्श कर दिखाते हैं। यह काम बहुत सुन्दर हो जाता है। मन्द्र स्थान के धैवत का प्रभाव इतना स्वतन्त्र है कि भूपाली, शुद्ध कल्याण आदि सम प्राकृतिक रागों में भी यदि भूल से उसी प्रकार लग जावे तो पहाड़ी का आभास स्पष्ट हो जाता है। मेरे ख्याल से तुम्हें यह भाग बहुत अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिये। पहाड़ी में रिषभ स्वर जान बूझकर थोड़ा लिया जाता है। जलद तानों में आते जाते यह प्रयुक्त हो जाता है। गांधार पर आते जाते ठहरते अवश्य हैं, परन्तु उसे वादी स्वर नहीं बनाते। यदि इसे वादी बना दिया जावे तो भूपाली स्पष्ट हो जाता है। इस राग में कभी-कभी तार सप्तक में प्रवेश करते हैं, परन्तु वहां अधिक समय नहीं रुकते। वहां यदि अधिक देर तक ठहर कर काम किया जावे तो यह राग रह नहीं पाता, बल्कि भूपाली या देशकार हो जाता है। पूर्व की ओर अर्थात् बङ्गाल में इस राग को सम्पूर्ण राग माना है और इसमें दोनों निषाद ग्रहण किये गये हैं। सङ्गीतसार में इस राग को सम्पूर्ण सिद्ध करने के लिये 'नारद संहिता' और 'गीत सिद्धान्तभास्कर' आदि को आधार बताया है। राजा साहब Tagore ने नारद संहिता के रागाध्याय को अपने 'सङ्गीतसार-संग्रह' में उद्धृत किया है, वहां पृष्ठ ६२ पर 'पाहिड़ा' रागिनी का वर्णन इस प्रकार किया है:—

"भर्तुर्दधाना चरणारविंदं ।
निषेधयन्ती परदेशयानम् ॥
प्रेमानुरागादतिकातराची ।
सा पाहिडा संकथिता कवींद्रैः ॥"

इन श्लोकों से बिलकुल स्वर-ज्ञान नहीं हो सकता। 'सङ्गीतसार-संग्रह' के संग्रहकर्त्ता की निन्दा करना मैं नहीं चाहता। उन्होंने बहुत परिश्रम व अत्यन्त स्वार्थ-हीन बुद्धि से काम किया है यह नहीं भुलाया जा सकता है। केवल उनके ग्रन्थ में

जिन संस्कृत ग्रन्थों के आधार दिये गये हैं, उनके उपयोग के सम्बन्ध में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। यही मेरे कहने का उद्देश्य है। ग्रन्थों में अपूर्णता होने पर संग्रहकार क्या कर सकता है।

प्रश्न—आपने अभी बताया है कि बंगाल में दोनों निषाद लगाकर 'पहाड़ी' को गाते हैं। क्या आप हमें उधर का राग स्वरूप बतायेंगे ?

उत्तर—संगीतसार में प्रत्येक राग का विस्तार स्वरों में कर दिखाया है। यह राग-विस्तार ग्रन्थकर्त्ता ने ग्रन्थ के आधार पर न करते हुए, अधिकांश रूप में प्रचार के अनुरूप किया दिखाई देता है। स्थान-स्थान पर ग्रन्थों के आधार अवश्य कहे हैं, परन्तु वे राग में लगने वाले स्वरों के विषय में नहीं हैं, ऐसा मेरी समझ में आता है। इसी ग्रंथ में पहाड़ी का स्वरूप इस प्रकार दिया हुआ है:—

"नि़नि़सा, रेगरेममगरे, सा, गगरेसा, नि़ध़, ध़नि़सानि़ध़प़सानि़सा, रेगरेममगरे, सागगरेसासा।

रेरेममपपपधमपध, रेमगरे, म, पमग, रेगरेसा, नि़सा, रेगरेममगरे, गगरेसा, सा।"

मेरे विचार से अब तुम अपने यहां के प्रचलित रूप को भी ध्यान से देखलो। हमारे यहां पहाड़ी का यह रूप प्रचलित है:—

सा, रेग, गरे, सारेगरे, सारेसा, नि़ध़, प़, ध़सारेग, गमगरे, सारेगसा, नि़ध़, ग, रेसा।

गगपप, धधपग, गरेसानि़ध़, प़ध़सा, गपधपग, रेसाध़, प़ध़सा, रेसा, सारेग, साध़, सांधप, ग, रेसाध़, प़ध़सा।

गग, गमगरे, रेगरेसानि़ध़, धधपग, गपग, मगरे, सानि़ध़, प़ध़सा, गगपध, सांध, पधप, गरेसाध़, रेसाध़, प़ध़सा।

सा, रेग, मगरे, सा, रेगरे, सारेसानि़ध़, प़ध़सा, रेगरेसा।

मन्द्र सप्तक में जहां-जहां धैवत का प्रयोग हुआ है, वहां विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है; तभी तुम इस राग को उत्तम रूप से गा सकोगे।

प्रश्न—अब इस राग की हमें पर्याप्त जानकारी हो गई है।

उत्तर—अब मैं तुम्हें कुछ बातें 'मांड़' राग के विषय में और बता दूं। फिर यह शुद्ध स्वरों का थाट पूर्ण हो जावेगा। 'मांड़' राग को कहीं-कहीं मांड भी कहते हैं। इस राग की गायकों द्वारा बहुत कम कीमत समझी जाती है। अक्सर बड़े-बड़े गायक इसे बिलकुल नहीं गाते। सामान्य लोगों की यह धारणा है कि इस राग का स्थान गुजरात प्रान्त है। यह बिलकुल नवीन स्वरूप नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि गुजरात की ओर इस प्रकार को गाने का अधिक रिवाज है। इस राग में ख्याल, ध्रुपद, आदि बड़ी मान्यता के गीत नहीं पाये जाते। गुजरात में इस राग में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'गरभी' (गरबा) कहा जाता है। यद्यपि इन गीतों में मधुरता की कमी नहीं होती, फिर भी ये समाज में निम्न कोटि के गीत माने गये हैं। मांड़ राग में सा, म, प इन तीन स्वरों की विचित्रता ध्यान देने योग्य है। जहां कहीं निषाद का प्रयोग आता है उसे गायक कंपित करते हुए गाते हैं,

इससे राग की शोभा बढ़ जाती है। माड़ चाहे जब गाया जा सकता है। वह सदैव मनोहर लगता है। सूक्ष्म दृष्टि से इस राग का चलन देखने पर दिखाई देगा कि इस राग के आरोह में रे ध स्वर दुर्बल किये जाते हैं। मार्मिक गायकों का कथन है कि इस राग का अवरोह बिलकुल वक्र है। मेरे विचार से उनका मत गलत नहीं है "सां ध, नि प, ध म, प ग, म रे, ग सा" इस प्रकार का अवरोह विलम्बित रूप से किये जाने पर माड़ राग बहुत स्पष्ट दिखाई देगा। कोई कहते हैं कि आरोह में 'सा रे म प ध सां' इस तरह स्वरों का प्रयोग करना चाहिये। दूसरे मत से आरोह में वक्रत्व दे देने से इस राग में अधिक स्पष्टता आ जाती है। जैसे—"सा, ग रे, म, ग प, म ध, प नि ध सां" इन सभी प्रकारों को तुम्हें ध्यान में रखना आवश्यक है। कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले राग बताते हुए मैंने इस प्रकार के वक्र प्रकार भी बताये थे।

यह स्मरण रखना चाहिए कि बिलावल थाट के रागों में माड़ राग ही ऐसा है, जो आरोह और अवरोह में वक्र है। माड़ का स्वरूप बिलकुल स्वतन्त्र है। कुशल गायक इसमें बीच-बीच में मुक्त मध्यम का प्रयोग करते हैं, यह काम बहुत सुन्दर हो जाता है। "सां, नि ध, म" यह भाग तुम्हें बार-बार इस राग में दिखाई देगा। इस राग में वादी स्वर षड्ज और संवादी स्वर 'म' या 'प' माना जाता है। गुजरात में माड़ को भिन्न-भिन्न प्रकार से गाते हैं। कोई-कोई मध्यम स्वर को बढ़ाकर भी गाते हैं, इनके गाने में ग नि. स्वरों का महत्व रे ध, स्वरों की अपेक्षा अपने आप कम हो जाता है। यह राग अत्यन्त सरल और साधारण राग है। जिन्हें गायन का ज्ञान नहीं होता, ऐसे भी लोग केवल सुनकर इसके स्वर अधिक अन्शों में शुद्ध लगा लेते हैं। मुसलमान गायक सदैव इसे राग नाम देने में ही अप्रसन्न होते हैं। वे इसे केवल एक 'धुन' बताते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में माड़ राग का नाम नहीं पाया जाता। लक्ष्यसङ्गीत में यह नाम नहीं है। प्राचीन ग्रन्थों में कहीं-कहीं मारू शब्द या नाम आया है, परन्तु वह अपना माड़ राग नहीं है। 'पारिजात' में मारू राग का वर्णन इस प्रकार दिया हुआ है:—

"शुद्धस्वरसमुद्भूतो गांधारोद्ग्राहसंयुतः।
आरोहे त्यक्तधो ज्ञेयो गांधारच्यवितोदितः॥"

पारिजात के शुद्ध स्वर प्रचलित काफी के स्वर हैं यह प्रसिद्ध ही है। राग तरंगिणी में मारू राग शुद्ध स्वर के थाट में बताया गया है। परन्तु अधिक स्पष्टता उसमें भी प्राप्त नहीं होती। फिर भी यह बात ध्यान रखने योग्य है।

प्रचलित माड़ के लक्षण 'लक्ष्य सङ्गीत' के अनुसार इस प्रकार हैं—

"वेलावलाख्यसंमेलान्माडस्योत्पत्तिरीरिता ।
मारूमेवाडदेशेऽस्य जन्मभूःश्रूयते क्वचित्
प्रावल्यं समपानां स्यान्निषादस्यात्र कंपनम्।
गानमनुमतं तज्ज्ञै रंजकं सार्वकालिकम् ॥

"आरोहे रिधदौर्बल्यं वक्रत्वमवरोहणे ।
मध्यमस्यापि व्यस्तत्वं सर्वत्रातिमनोहरम् ॥
केचिदत्रारोहणेऽपि वक्रत्वमादिशंतितत् ।
मन्ये नूनमुपपन्नं लक्ष्यमार्गविचारतः ॥"

प्रश्न—अब हमें प्रचलित राग का विस्तार स्वरों में बता दीजिये ?

उत्तर—ठीक है ! सुनो:—

सा, ग, रे सा, म, प ग म, रे ग, रे सा, म, प, नि ध म, प ग, रे सा।

सा ग रे म, रे ग रे सा, म प ध म, प, म, ग म, रे ग, रे सा, ध ध नि प, ध म, प ग, रे सा।

म म, रे ग, रे सा, रे म, रे म प, प ध प, नि ध प, सां नि ध म, प ग, रे सा।

म, प, ध नि, प, सां, रें गं, रें सां, सां नि ध, नि प, ध म, प ध सां, गं सां, नि, ध, नि प, ध म, प ग, सां नि ध म, प, ग म, रे ग रे सा।

इस प्रकार हमारा दूसरा थाट पूर्ण हुआ। इसमें मैंने तुम्हें कुल अठारह रागों का वर्णन बताया है। इस थाट में कुछ राग ऐसे हैं, जिनका गाना वास्तव में सरल नहीं है। इन रागों के लक्षणों को पूर्ण रूप से ध्यान में जमा लेने पर उनका उपयोग अनेक स्थानों पर हो जाता है।

प्रश्न—इस थाट के राग हमारे ध्यान में जिस प्रकार आये हैं, उन्हें सुन लीजिये। इन रागों में आठ नौ तो बिलावल के ही भिन्न-भिन्न प्रकार हैं—जैसे शुद्ध बिलावल, अल्हैया, देवगिरी, कुकुभ, सरपरदा, लच्छासाख, यमनी, नटबिलावल आदि। इनमें से यमनी राग, कल्याण थाट का होने पर भी बिलावल का एक प्रकार होने से इस थाट में बताया गया है। बिलावल में ग नि की थोड़ी बहुत वक्रता, ध म की मधुर सङ्गति और धैवत की सङ्गति में आने वाला कोमल निषाद का कण, बहुत ही स्मरणीय बातें हैं। नट बिलावल और शुद्ध बिलावल में मध्यम स्वर मुक्त रूप से (खुला) लगता है, यह बात बहुत ध्यान में रखने का आदेश आपने दिया था। इस प्रकार का खुला मध्यम बिलावल के अन्य किसी प्रकार में नहीं लगाया जाता, अर्थात् यही मध्यम इन रागों की पकड़ है। नट-बिलावल में नट का एक भाग दिखाई देगा ही, अतः इसकी पहिचान करना कठिन नहीं है। बिलावल के अन्य प्रकारों को उनके पूर्वाङ्ग पर से पहिचान लिया जा सकता है। जैसे पूर्वाङ्ग में झिंझोटी या थोड़ा गौड़ सारंग का भाग दिखाई देने पर 'लच्छासाख' हो जाता है। पूर्वाङ्ग में यदि जयजयवन्ती का भाग दिखाई दिया तो कुकुभ हो जावेगा। यह सब हमारे ध्यान में है, इसी प्रकार पूर्वाङ्ग में कल्याण का भाग दिखाई देने पर देवगिरी हो जावेगा। यह सब हमारे ध्यान में ठीक से आगया है। 'सरपरदा' राग में गौड़सारङ्ग की तान "रे ग रे म ग, प रे सा" नहीं आती। यह हमें अच्छी तरह स्मरण है। बिलावल में 'गम, रे, सा' स्वर समुदाय का उत्तम

अभ्यास हो जाना चाहिये, यमन और यमनकल्याण को अलग-अलग गाते हुए जैसे गायकों को असमंजस होता है; उसी प्रकार शुद्ध बिलावल और अल्हैया गाते हुए होता है।

जिस प्रकार नट राग में खुला मध्यम लगता है, वैसा ही प्रयोग दुर्गा में होता है। परन्तु उनके भिन्न-भिन्न लक्षणों की सहायता से अलग-अलग किया जा सकता है। नट में ग ध स्वर केवल अवरोह में वर्ज्य किये जाते हैं, और दुर्गा में ग, नि बिलकुल ही वर्ज्य किये जाते हैं। गांधार व निषाद छूट जाने पर बिलावल का सन्देह भी नहीं रह पाता। मलूहा और हेमकल्याण का चलन और स्वरूप यद्यपि निकट और एक सा ही है। क्योंकि ये दोनों मन्द्र व मध्य सप्तक में गायकों द्वारा गाये जाते हैं, परन्तु मलूहा में रे ध दुर्बल और हेमकल्याण में ग नि स्वर दुर्बल किये जाते हैं। यह उन्हें अलग-अलग करने का लक्षण है।

हम देशकार को भूपाली से अलग तत्काल ही पहिचान सकते हैं। उसे उत्तरांग में सुनते ही (विशेषकर 'सां, ध प' स्वर विभाग) शरीर के रोम-रोम खड़े हो जाते हैं। 'भूपाली' में हम रे ग स्वरों के महत्व को अच्छी तरह समझ चुके हैं। 'हंसध्वनि' राग जो कि अपने यहां अधिकतर नहीं सुनाई पड़ता, तो भी इसे हम पहिचान सकते हैं, क्योंकि इसमें म, ध, स्वर नहीं लिये जाते। इस जगह हमें शंकरा राग से अलग देखने का प्रयत्न करना होगा; परन्तु धैवत स्वर शंकरा राग में वर्ज्य नहीं होता यह एक प्रधान लक्षण मिल जाता है। 'माड़' राग का वक्र स्वरूप हमें तो बहुत पसंद आया है। चाहे लोग उसे अल्प महत्व का क्यों न कहें, परन्तु हमें तो 'सां नि ध, म, प, ध नि, प' आदि उसके प्रकार बहुत पसन्द आये हैं। 'पहाड़ी' राग सारे ग्रन्थों में—भैरव थाट में बताया है और प्रचार में शुद्ध स्वरों में भूपाली जैसा देखकर हमें आश्चर्य ही हुआ। फिर बंगाल का प्रकार तो और भी निराला है। गुणकली के दोनों प्रकार विवादग्रस्त हैं, अतः हमने दोनों स्वरूप कण्ठस्थ कर लिये हैं। भैरव थाट का वर्णन करते हुए आप 'गुणक्री' राग आगे बतायेंगे ही!

उत्तर—शाबास! शाबास!! तुमने इस थाट के सम्पूर्ण रागों को अच्छी तरह से समझ लिया है। यह तुम्हारे ऊपर के वर्णन से मैं समझ गया हूँ। अब तुम्हारा बिलावल विभाग सम्पूर्ण हो गया।

———

खमाज थाट के राग (प्रथमार्ध)

प्रश्न—अब आप अगले थाट के राग बताइये ?

उत्तर—ठीक है, अब हम खमाज थाट के रागों पर विचार करेंगे।

प्रश्न—खमाज थाट में शुद्ध थाट से आपने केवल कोमल निषाद का अन्तर बताया है। आप इस थाट में हमें कौन-कौन से राग बतायेंगे ?

उत्तर—खमाज थाट के रागों के नाम इस प्रकार हैं। (१) झिंझोटी (२) खमाज (३) तिलङ्ग (४) खम्बावती (५) बड़हन्स (६) नारायणी (७) प्रतापवराली (८) नागस्वरावली (९) सोरटी (१०) जयजयवन्ती (११) देश (१२) तिलककामोद (१३) गौड़-मल्हार (१४) दुर्गा (१५) रागेश्वरी (१६) गारा, इसके सिवाय मल्हार के एक दो मिश्र प्रकारों के विषय में भी कुछ शब्द कहूँगा। यह मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ कि ऐसे मिश्रित प्रकारों की खुलासा जानकारी नहीं दी जा सकती। ग्रन्थकार भी ऐसे मिश्र रागों के विषय में केवल नाम बताकर चुप बैठे मिलेंगे। इस प्रकार के ग्रन्थकारों के विषय में 'चतुर' पण्डित ने कहा है:—

"विशिष्टलक्षणान्येषां रागाणां नैवचाब्रवीत्।
ग्रन्थकारो यथायोग्यं विचार्य तद्विचक्षणैः ॥
प्रवचनं पुनस्तेषां क्लिष्टमेव भवेत्सदा।
अतस्तेन धृतं मौनं नमेह्याश्चर्यकारणम् ॥
रागावयवभूतानामुत्तमांशान्विवृत्य ते।
मुख्यरागान् पुरस्कृत्य गायंति लक्ष्यकोविदाः ॥"

अपने प्रचार में भी यही विचारधारा काम करती दिखाई देगी। मल्हार के अनेक मिश्र प्रकारों में मल्हार मुख्य राग तो होती ही है, इसके सिवाय अन्य मिश्रित होने वाले राग के योग्य अन्श को पसन्द कर उसमें मिला लिया जाता है। यह सब तुम्हें आगे आवेगा।

प्रश्न—ठीक है! अब आप हमें इस थाट में सर्व प्रथम कौनसा राग सिखायेंगे ?

उत्तर—मैं यही विचार कर रहा था कि तुम्हें झिंझोटी राग पहिले बताऊँ, या खमाज राग बताऊँ। इस थाट का नाम तो 'खमाज' है परन्तु इसका आश्रय राग झिंझोटी ही है।

प्रश्न—ऐसा क्यों हुआ ? आपने ऊपर जिन दो थाटों का वर्णन बताया है, उनके आश्रय रागों के नाम बिलकुल थाट के ही नाम थे। यदि यहां आश्रय राग झिंझोटी है तो, फिर इसे झिंझोटी थाट क्यों नहीं कहा जाता ?

उत्तर—'खमाज' नाम बहुत प्राचीन है। काम्भोजी थाट प्राचीन ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। उसी के स्वर अपने खमाज थाट में हैं, अतः इसका नाम उसी पर रख लिया गया है। यह भी एक कारण कहा जा सकता है कि 'लक्ष्यसङ्गीत' कार ने इसी प्रकार का नामकरण किया है (अर्थात् थाट का नाम झिंझोटी न रखकर खमाज थाट ही रखा है।

प्रश्न—खैर, कोई हर्ज नहीं। हमें उत्तम रूप से प्रत्येक राग समझ जाने के बाद थाटों की झंझट में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यह ठीक है कि झिंझोटी नाम आधुनिक दिखाई देता है इस कारण गायक इसे प्रतिष्ठित नहीं समझते हैं। आपने पहिले शायद इसीलिये कहा था कि, इस राग में ख्याल-ध्रुपद, उच्चकोटि के गीत नहीं पाये जाते।

उत्तर—तुम ठीक-ठीक समझते हो।

प्रश्न—तो फिर आप झिंझोटी राग ही पहिले बताइये? यह राग आश्रय राग है अतः इसमें विशेष नियमों की उलझन नहीं होगी।

उत्तर—नहीं, कोई उल्लेखनीय उलझनें नहीं हैं। झिंझोटी का वादी स्वर गांधार और इसका संवादी स्वर निषाद होता है।

प्रश्न—तो क्या कोमल निषाद संवादी होता है, यह कैसे संभव है?

उत्तर—इस जगह वादी-संवादी शब्दों के अनुसार हमें चलना पड़ेगा! कोई कहते हैं कि संवादी धैवत लिया जावे। इस थाट के चार पांच ऐसे राग हैं जिनमें गांधार स्वर वादी माना गया है

प्रश्न—तो फिर वे सब अलग-अलग कैसे किये जाते होंगे, इसे अच्छी तरह ध्यान में रखना पड़ेगा। झिंझोटी का मुख्य राग कौन सा है?

उत्तर—"ध़ सा, रे म ग" यह पकड़ तुम्हें कभी नहीं भूलनी चाहिये, यहां आरोह में "रे" स्वर लिया जाता है।' यह ध्यान में रखने की बात है। यदि तुम "नि़ सा रे सा, नि़ ध़ प़, स़ सा रे म ग" इन स्वरों को गाओ तो जानकार लोग कह देंगे कि तुम झिंझोटी राग गा रहे हो।

प्रश्न—"सा रे ग, रे ग, ग रे सा" ये स्वर झिंझोटी के हैं और झिंझोटी में नियमों की उलझन नहीं………।

उत्तर—परन्तु यह भाग यमन, भूप आदि रागों का है। सुनने वालों के मन पर इन रागों की छाया उत्पन्न होना सम्भव है।

प्रश्न—ठीक है शायद इसीलिये इसमें शुद्ध म लिया गया है। आगे बताइये?

उत्तर—झिंझोटी को खमाज राग से बचाने की विशेष सावधानी रखनी पड़ती है। कल्याण अंग के शुद्ध मध्यम और कोमल निषाद नहीं होने से यह राग अलग हो जाता है। खमाज के आरोह में रिषभ वर्ज्य किया जाता है। इस प्रकार झिंझोटी

राग खमाज से भी अलग हो जाता है। यह मैं तुम्हें बता चुका हूँ कि गायक लोग इस राग में 'सा रे ग' इस प्रकार प्रयोग नहीं करते हुए 'सा रे म ग' इस प्रकार प्रयोग करते हैं। जिस प्रकार यह काम पूर्वाङ्ग में किया जाता है, उसी प्रकार उत्तराङ्ग में बीच-बीच में नि स्वर छोड़ा जाता है। परन्तु इस राग के आरोह में ग नि स्वर वर्ज्य नहीं किये जाते। मर्मज्ञ लोगों का मत है कि यह राग खमाज को तोड़-मोड़ कर तैयार किया गया है।

यहां एक महत्वपूर्ण बात और बताना चाहता हूँ कि जिस-जिस राग में नियमों की दृष्टि से कोमल निषाद बताया गया है, उन रागों में प्रचार में गायक लोग प्रायः आरोह में तीव्र निषाद ही लेते देखे जाते हैं।

प्रश्न—क्या जान बूझकर ऐसा करते हैं? ऐसा कैसे होना संभव है?

उत्तर—यद्यपि ऐसा करना शास्त्रीय नियमों की कठोर कसौटी से खरा नहीं उतरता परन्तु मेरे ख्याल से कभी-कभी ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। विलंबित में अत्यन्त दिलचस्पी से गाने पर आरोह में कोमल निषाद लगाया भी जा सकता है, परन्तु जलद तानों में जिस निषाद का प्रयोग अपने आप हमारे द्वारा हो जाता है वह वास्तव में कोमल निषाद से ऊपर का स्वर ही होता है। अभी तुम्हें काफी अनुभव नहीं है, परन्तु अनुभवी मर्मज्ञ लोग जानते हैं कि आरोह में कोमल मानकर लिया हुआ स्वर अवरोह में उस स्वर के कोमल स्थान से किंचित ऊँचा ही लगता है। ऐसा होने का क्या कारण है? यह एक निराला प्रश्न है। तुम्हें प्रत्यक्ष अनुभव बिना प्राप्त किये इस प्रश्न की उलझन में पड़ना ठीक नहीं है। हमारे गायक कितने कुशल हैं, यह विचारने की बात है। उन्होंने यह नियम भी बना दिया है कि जिस राग में तीव्र 'ग' और कोमल 'नि' स्वर नियमित रूप से बताये हों उसके आरोह में निषाद स्वर तीव्र रूप में लेने से राग हानि नहीं होती।

प्रश्न—आपने एक बार पहिले बताया था कि एक श्रुति के चढ़ने उतरने से विशेष हानि नहीं होती। क्या यह नियम इसी धारणा पर बनाया गया है?

उत्तर—हां, यह ठीक है। साथ ही यह नियम सरल और उपयोगी भी है। इस प्रकार के उदाहरण तुम्हें काफी थाट में भी बहुत से प्राप्त होंगे।

हमें इस तरह समझना चाहिये कि खमाज थाट में शंकराभरण राग का योग होने से दोनों निषाद उपयोगी हो जाते हैं। कोई-कोई चतुर गायक शुद्ध स्वर के थाट की उपमा शुद्ध पानी से देते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार शुद्ध जल अपने लिये अनेक मिश्रण तैयार करने में उपयोगी होता है उसी प्रकार शुद्ध स्वरों के थाट के योग से अनेक निराले राग अपने प्रचार में उत्पन्न किये जा सकते हैं। खैर, यह निराला विषय है।

प्रश्न—अब आप हमें झिंझोटी का रूप स्वरों में बताइये?

उत्तर—इस प्रकार इसका रूप होगा:—

सा, रे म ग, म ग प, म ग, सा, रे सा, ऩि ध़, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग, ग म ग रे सा, सा रे ग म ग।

सा रे म ग, ग म प, ग म ग, ध ध प, ग म ग, सा रे ग म ग रे, सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

ध नि ध प, प ध प, ग म ग, सा रे म ग, नि नि ध प, म ग, म प म ग, रे रे प म ग, सा रे ग म ग रे, सा, रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

सां, रें सां नि ध प, नि ध प, म ध प नि ध प, म ग, रे रे प म ग, म ग रे सा, सा रे ग म ग रे सा, रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

सा रे ग म प, ग म प, ग म प ध नि ध प, सां, नि ध प, ग म प ध प म ग, सा रे, म ग, म ग रे सा, रे रे सा ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

ग म प, नि नि ध प, सां नि ध प, गं मं गं रें सां, सां रें सां, नि ध प, म प ध प, म ग, सा, रे ग म ग, प, ग म ग, सा रे ग म ग रे सा, ऩि ध़ प़, ध़ सा, रे म ग।

Capt. Day साहेब ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५६ पर इस राग का आरोहावरोह इस प्रकार दिया है।

"सा रे ग म प ध नि । ध प म ग रे सा"

अनेक बार तुम्हें इस प्रकार दिखाई देगा कि झिंझोटी के गीत मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही गाये जाते हैं। तो भी कहीं-कहीं तुम्हें तार सप्तक का प्रयोग होता हुआ दिखाई पड़ेगा।

प्रश्न—उपरोक्त सज्जन ने अपने सङ्गीत के लिये बहुत ही परिश्रम किया है ऐसा दिखाई देता है। हमने तो अनेकों के मुँह से यह सुना है कि यूरोपियन लोगों को हमारा सङ्गीत जङ्गली (असभ्य) समझ में आता है।

उत्तर—Capt. Day साहब उन लोगों में से नहीं थे। ये बड़े खोजी व्यक्ति थे। इन्होंने अपने सङ्गीत के गुण और दोष काफी मात्रा में स्पष्ट रूप से बता दिये हैं। उनके मत से, अमुक राग को सदा अमुक स्वर में गाना, उसमें कोई नवीन स्वर न लगाना आदि कठोर नियमों से अपना सङ्गीत संकुचित हो गया है। वे कहते हैं:—

"The wide divergence of taste in the matter of music between European and Asiatic nations has doubtless arisen from the fact that while the Western nations gradually discarded the employment of mode, and clothed the melody with harmony, the Eastern nations in this respect made little or no progress; and now, in India, the employment of authentic modes and melody types (or ragas) is still jealously adhered to.

Speaking of this Capt. Willard remarks. "To expect an endless variety in the melody of Hindustan would be an injudicious hope, as their authentic melody is limited to a certain number, said to have been composed by professors universally acknowledged to have possessed not only real merit but also the original genius of composition, beyond the precincts of whose authority it would be criminal to trespass. What the more reputed of the moderns have done is that they have adopted them to their own purposes, and found others by the combination of two or more of them. Thus far they are licensed, but they dare not proceed a step further. Whatever merit an entire modern composition might possess, should it have no resemblance to the established melody of the country, it would be looked upon as spurious. It is implicitly believed that it is impossible to add to the number of these one single melody of equal merit, so tenacious are the natives of Hindustan of the ancient practices."

The continued employment of mode, combined with the almost entire absence of harmony, has prevented Indian music from reaching any higher pitch of development, such as has been attained elsewhere. It stands to reason also that this is the chief cause of the monotony which causes Indian music to be little appreciated by, if not repellent to, European ears.

Since the early periods of Indian history, music would seem to have been cultivated more as a science than an art. More attention seems to have been paid to elaborate and tedious artistic skill than to simple and natural melody. Hence arose technical rules that marred the pristine sweetness of melody—the very life of all real music. To a great extent this must be attributed to the art falling into the hands of illiterate 'virtuosi." Their influence, which caused music to suffer both in purity of style and simplicity is being felt less and less. The great aim of all music–"Rakti," or the power of affecting the heart now asserts itself more and more, and is slowly but surely bringing about a return to the early type of sweet, simple melody."

Capt. Day साहेब का ग्रन्थ दक्षिणी संगीत पर और Capt. Willard साहेब का ग्रन्थ हिन्दुस्तानी संगीत पर है, यह ध्यान देने की बात है। हमारा

संगीत यूरोपियन लोगों को पसंद नहीं आता उसका हमें कोई दुःख नहीं होना चाहिये। क्या उनका संगीत अपने लोगों को आजतक थोड़ा भी अनुकरणीय लगा है ? उन पंडितों (यूरोपियनों) का अभिमान तो यह है कि हमारा संगीत ही नाद शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध और रंजक है।

प्रश्न—चाहे वह नाद शास्त्र की दृष्टि से शुद्ध भी हो, परन्तु हमें तो वह (पश्चिमी संगीत) जरा भी पसन्द नहीं आया, यह स्पष्ट स्वीकार करते हुए हमें कोई झिझक नहीं है। हमने टाउन हाल में Concerts सुने और Victoria Gardens में Bands भी सुने, परन्तु जो आनन्द हमें हमारे संगीत में प्राप्त होता है, वह वहां नहीं आया। किसी-किसी स्थान पर जहां हमारे सङ्गीत जैसे भाग आ जाते थे, वहां तो वे भाग हमें अच्छे लगते थे, परन्तु जहां उन्होंने उनकी Harmony का प्रयोग किया कि हमें एक प्रकार की चीख और चिल्लाहट ही समझ में आती थी।

उत्तर—मेरे ख्याल में यही तुम गलती करते हो। तुम्हें उस सङ्गीत के नियमों की जानकारी नहीं है इसलिये तुम्हें उसका वास्तविक आनन्द प्राप्त नहीं होता। शास्त्रीय दृष्टि से देखने पर उन्होंने इस विषय में हद दर्जे का कमाल कर दिखाया है, ऐसा जानकार लोगों का कथन है। मैं यह तो तुम्हें बता ही चुका हूँ कि मुझे अँग्रेजी सङ्गीत नहीं आता, परन्तु उसमें रंजकता का गुण नहीं है, ऐसा मैं नहीं कह सकता। उन सङ्गीत के सच्चे कुशल लोगों का संगीत हमारे सुनने में नहीं आता है अतः हमें उसकी वास्तविक विशेषताएँ नहीं दिखाई देतीं। अपनी दृष्टि सदैव न्याय की ओर रहनी चाहिये। अपने दक्षिण सङ्गीत के विषय में Day साहब क्या कहते हैं—देखो:—

"Comparatively few Indian airs have found their way to Europe. Those few that have been published are mostly from either Bengal or Northern India, so that there is but small resemblance in them to the national music of the Deccan or the South; for there is a marked difference between the music of the various parts of India, which to even the most casual observer is evident."

मेरे विचार से हमें इस विषयान्तर में अभी जाना अच्छा नहीं है। Capt. willard और और Capt. Day के ग्रन्थों को पढ़ने के लिये मैंने तुम्हें इससे पूर्व ही कहा है। उनके ग्रन्थों को सम्पूर्ण रूप से बिना पढ़े उनके कथन का रहस्य तुम्हें अच्छी तरह समझ में नहीं आ सकता, अस्तु हम झिंझोटी का विचार तो कर चुके हैं।

प्रश्न—अब आप खमाज राग लीजिये ?

उत्तर—ठीक है। खमाज का थाट तो तुम्हें बताने की आवश्यकता है ही नहीं। 'खमाज' नाम प्रचार का नाम है। कोई-कोई कहते हैं कि खमाज शब्द

'कम्भोज' शब्द का अपभ्रन्श रूप है। दूसरा मत है कि खमाज शब्द खम्बावती का अपभ्रन्श रूप है। इस समय प्रचार में ये तीनों खमाज, खम्बावती, और कंभोजी अलग-अलग प्रकार हैं। खमाज राग साधारण रागों में से है। इसे बहुत से छोटे बड़े गायक जानते हैं। इसके गाने का समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग में गायक लोग सदैव गजल, टप्पे, ठुमरी, आदि लोक-प्रिय गीत गाते हैं। इसमें कभी-कभी ध्रुपद भी दिखाई पड़ जाते हैं, परन्तु ख्याल तो शायद ही कहीं दिखाई दें।

प्रश्न—क्यों भला ? जब ध्रुपद गाये जाते हैं, तब ख्याल नहीं ?

उत्तर—मैंने यह नहीं कहा है कि, इसमें ख्याल बिलकुल ही नहीं गाये जाते। हां इसमें बहुत ख्याल नहीं पाए जाते। इसका कारण यही है—यदि गीत सावकाश (विलम्बित) में गाया जावे तो ध्रुपद जैसा दिखाई देता है। द्रुतलय में गाया जाने पर ठुमरी जैसा दिखाई देने लगता है। इस राग में क्षुद्र गीत गाने की प्रथा अधिक है। अमुक राग में अमुक प्रकार के गीत क्यों नहीं हैं, इस विषय पर मैं तुम्हें श्री० बनर्जी का कथन पहिले ही बता चुका हूं। इस पर अधिक विवेचना करने की अभी आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती।

खमाज राग में आरोह में रिषभ स्वर वर्ज्य किया जाता है। पूर्वांग में इस स्वर के वर्ज्य होने से इसके संवादी स्वर धैवत के प्रयोग में भी थोड़े नियम पाए जाते हैं। आरोह में यद्यपि धैवत वर्ज्य नहीं किया जाता, फिर भी गायकों के द्वारा "ग म प, नि सां" या "ग म ध, नि सां" इस प्रकार उत्तरांग में आरोह किया जाता है। इस राग के अन्तर प्रायः उपरोक्त दोनों प्रकार में से किसी एक प्रकार में होते हैं। ये प्रकार भी बहुत सुन्दर लगते हैं। अवरोह में यद्यपि यह राग संपूर्ण है। परन्तु गायकों द्वारा धैवत से पंचम पर न आकर मध्यम में जाने का विचार अधिक है। जैसेः—

"सां नि ध, म म ग," अथवा "सां नि ध प म ग," यह अवरोह गलत नहीं है, परन्तु विलम्बित रूप से गाने में उत्तम नहीं दिखाई देता। इस प्रकार गाने से झिंझोटी का भाग अधिक उत्पन्न हो जाता है। खमाज का यह आरोह अवरोह "सा ग, म प, नि सां" "सां नि ध, म म ग, रे सा" बुरा नहीं दिखाई देता। अन्तरा इस प्रकार लिया जाता है। "ग म, ध नि सां, नि सां" यदि "ग म ध प नि सां" इस प्रकार सरल तान ली गई तो वह झिंझोटी जैसा रूप बता देगी। कोई-कोई इस प्रकार स्थूल नियम बताते हैं कि खमाज के आरोह में धैवत और अवरोह में पंचम को महत्व नहीं दिया जाता। यह ठीक है कि एक ही तान में ध और प दोनों स्वर एक से नहीं बढ़ाये जा सकते।

प्रश्न—इस राग का वादी स्वर तो गांधार ही है न ?

उत्तर—हां ! वही वादी स्वर है। खमाज में आरोह-अवरोह यदि कोई

"सा ग, म प, नि सां",

"सां नि ध प, म ग रे सा" इस प्रकार करदे तो उसकी हँसी उड़ाना ठीक नहीं है। मुख्य नियम केवल रिषभ स्वर वर्ज्य करने का है। अन्य प्रयोग तो इस राग को पहिचानने योग्य भिन्न प्रकार से गाने की युक्तियां मात्र हैं। खमाज के अन्तरे प्रायः "ग म ध नि सां, नि सां, नि नि सां रें, सां नि ध" इस प्रकार शुरू होते हैं। इसे ठीक से याद रखने पर इस राग को समप्राकृतिक रागों से अलग पहिचानना सरल हो जावेगा।

प्रश्न—खमाज के समान दिखाई देने वाला अन्य कौनसा राग है ?

उत्तर—इसी प्रकार दिखाई देने वाला एक राग तो "तिलङ्ग" है। यह राग खमाज के बिलकुल निकट का राग है। इन दोनों को, श्रोताओं को बार-बार पहिचानने में गड़बड़ी हो जाती है।

प्रश्न—क्या 'तिलंग' में वादी स्वर गांधार ही है ?

उत्तर—हाँ, यही तो उलझन है।

प्रश्न—फिर हम तिलङ्ग को अलग कैसे पहिचानेंगे ?

उत्तर—मैं तिलङ्ग के विषय में अलग-बताने वाला था, पर अब ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। तिलङ्ग में रे ध स्वर वर्ज्य होते हैं।

प्रश्न—परन्तु ये स्वर तो खमाज में भी वर्ज्य होते हैं। खमाज का आरोह आपने अभी बताया है। 'ग म प, नि सां'।

उत्तर—तुमने मुझे वाक्य पूरा ही नहीं करने दिया। तिलङ्ग में रे ध स्वर अवरोह में भी वर्जित होते हैं।

प्रश्न—ऐसा है। तब ठीक है। इस नियम से तिलङ्ग का अवरोह 'सां नि प म ग, सा' हुआ। आपने झिंझोटी समझाते समय कहा था कि तीव्र ग और कोमल नि वाले राग में आरोह में निषाद तीव्र लिया जाता है। क्या इसी प्रकार इस राग में भी लिया जावेगा ?

उत्तर—हाँ, खमाज व तिलङ्ग दोनों के आरोह में गायक लोग निषाद तीव्र ही लेते हैं, ऐसा करना गलत नहीं है। तिलङ्ग राग रात्रि के मध्य में गाया जाता है।

झिंझोटी, खमाज और तिलङ्ग निकट के राग हैं, तिलङ्ग का अन्तरा "ग म प, नि नि सां, नि सां" इस प्रकार आरम्भ होता है। और खमाज का अन्तरा 'म ध, नि सां, नि सां' इस प्रकार शुरू होता है। अवरोह में तिलंग का अन्श 'सां नि प, ग म ग' और खमाज का अन्श 'सां नि ध म म ग' आता है। दोनों रागों में 'नि सा, ग म प' ये भाग लिये जाते हैं। क्यों कि दोनों में रिषभ स्वर वर्ज्य है। गायक गण प्रायः इसे मन्द्र-सप्तक में नहीं गाते, क्यों कि इस प्रकार इसमें झिंझोटी का आभास होना संभव हो जाता है। इन तीनों रागों के लक्षण तुम्हें इस प्रकार कंठस्थ कर लेने चाहिये।

"कांभोजीमेलको ग्रन्थे खंमाजीनामकोऽधुना ।
तदुद्भवाश्च ये रागा निकोमलः सुसंमताः ॥
झिंझूटिं प्रथमं वक्ष्ये मेलरागसमाश्रयाम् ।
गांधारांशादिकां पूर्णां सायंगेयां सुशोभनाम् ॥
आरोहे रिस्वरस्पर्शः खंमाजमपसारयेत् ।
सरलारोहणत्वाच्च गौडसारंगकोऽपि नो ॥"

प्रश्न—वास्तव में 'रे ग म' स्वर समुदाय गौड़सारंग में भी आया था, परन्तु यह राग सरल आरोह का है, और गौड़सारंग ऐसा नहीं है। यह इन दोनों की भिन्नता हम अच्छी तरह समझ गये।

उत्तर—अब खमाज के लक्षण सुनो!

"कांभोजीमेलसंजातो रागः खंमाजनामकः ।
आरोहे तु रिवर्ज्यः स्या दवरोहे समग्रकम् ॥
यदा हि धैवतो दीर्घ स्तदा मध्यमसंगतिः ।
आरोहे पंचमाल्पत्वं निषादो रक्तिव्यंजकः ॥
प्रयोगस्तीव्रनेरेव मारोहे सर्वसंमतः ।
दृश्यते नियमोप्येष लक्ष्यज्ञानां विपश्चिताम् ॥"

प्रश्न—यह सब आपके बताये प्रमाण के अनुसार है। सचमुच ये श्लोक कितने उपयोगी हैं।

उत्तर—मैं अपने प्रचलित सङ्गीत के लिये 'लक्ष्य सङ्गीत' को ही आधार ग्रन्थ मानता हूँ। ये श्लोक उसी ग्रन्थ के हैं, इन्हें याद करने पर तुम्हें दूसरे लक्षणों की जरूरत नहीं होगी।

प्रश्न—ठीक है, आगे सुनाइये?

"गांधारः संमतो वादी निषादोऽमात्यसंज्ञितः ।
गानमेतस्य रागस्य रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥
संगति र्धमयोरत्र विशेषेण सुखप्रदा ।
अवसानं गेस्वरेतद्वदेद्रागं परिस्फुटम् ॥"

अब तिलङ्ग के लक्षण सुनो, ये कितने रोचक हैं:—

"जाता कांभोजिमेले या रागिणी सा तिलंगिका ।
आरोहे चावरोहेऽपि रिधहीनैव संमता ॥
गांधारोऽत्र भवेद्वादी निषादोऽमात्यसंनिभः ।
खंमाजीं प्रकृतिं धत्ते नीपयोः संगतिः सदा ॥

धैवतस्य विलुप्तत्वे सिद्धा खंमाजभिन्नता ।
रिधहीना यतो गीता झिंझूटिर्नैव सर्वथा ॥
पंचमेन प्रस्फुटेन दुर्गाया नैवसंभवः ।
गानमस्याः समीचीनं भूयाद्यामे द्वितीयके ॥"

इन सब श्लोकों का भाव मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ, इसलिये इन श्लोकों का भाषान्तर करना भी आवश्यक नहीं है।

प्रश्न--और ये श्लोक भी तो बिलकुल सरल भाषा में हैं, इसलिये इनके भाषान्तर के लिये हमने आपसे आग्रह नहीं किया है। अन्तिम श्लोक में दुर्गा राग का नाम बताया है। यह राग आप आगे बतायेंगे न ?

उत्तर--हां, मैं तुम्हें आगे दुर्गा राग बताऊँगा । इससे पहिले हम एक दो ग्रन्थों के मत और देख लें। झिंझोटी के विषय में तो किसी भी ग्रन्थ में कुछ प्राप्त नहीं होता। "चत्वारिंशाच्छतरागनिरूपणम्" ग्रन्थ में नटनारायण राग का परिवार बताते हुए 'कांभोजी' को नटनारायण की भार्या और त्रैलंगी को नटनारायण की पुत्र-वधू बताया गया है ।

"चतुर्भुजः प्रावृतपीतवस्त्रः
कंठेतुदीर्घा शुभपुष्पमाला ।
श्यामं वपुः सुन्दरतार्क्ष्यवाहः
नारायणोऽयंनटशब्दपूर्वः ॥
बंगाली शुद्धसालंका कांभोजी मधुमाधवी ।
देवक्रीतिचपंचैता नटनारायणांगनाः ॥
शुद्धबंगालको नाटो गारुडो मोहनस्तथा ।
नालीकनयना एते नटनारायणात्मजाः ॥
त्रैलंगी लांगलीचैव सुरटापिचहंवरी ।
इमाः सुवेषा राजन्ति नटनारायणस्नुषाः ॥"

इस ग्रन्थ में नट नारायण के थाट का स्पष्ट वर्णन मिलता है। 'सङ्गीत-सारामृत' में इस राग का थाट खमाज थाट ही बताया है। वहां इसके थाट का नाम काम्भोजी कहा गया है।

'राग लक्षण' में इस प्रकार का स्पष्ट लक्षण बताया गया है:—

"हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्चसुनामकः ।
खमाचराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
संपूर्णं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे तथैवच ॥"

यहां पर आरोह में रिषभ वर्ज्य करना नहीं बताया गया—परन्तु यह अपना ही थाट है। कोई-कोई काम्भोजी को ही खमाज मानने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु कोई-कोई तो एक अलग स्वतंत्र राग मानते हैं। ग्रन्थों में उसका वर्णन इस प्रकार किया गया है:—

"कांबोजी मनिहीनावा सत्रिः सांतरकाकली ॥" मंजर्याम् ॥

रागचन्द्रोदये:—"सांशग्रहा सांतवती मनिभ्यां ।
समुज्झिता वांतरकाकलीष्टा ॥
कांबोजिका सातुविगीयमाना ।
विभातकाले नितरां विभाति ॥"

नृत्यनिर्णये:—"कांबोजी मोहनीया द्विगतिगनिरिधा सत्रिकाद्यानिमावा ।"

कोई-कोई ऐसा भी सोचते हैं कि, जबकि काम्भोजी संपूर्ण और म नि वर्जित ऐसे दो प्रकार की कही गई है, तब संपूर्ण प्रकार अपना खमाज राग मानना चाहिये और म नि हीन प्रकार को भी एक स्वतंत्र राग मान लेना चाहिये। मेरे विचार से यह कल्पना भी विचार करने योग्य है।

पारिजाते:—

"कांबोधी तीव्रगांधारा गांधारादिकमूर्छना ।
आरोहे मनिहीनास्यान्मधांशस्वरभूषिता ।
यदा गांधारहीनास्यान्मूर्छना चोत्तरायता ॥"

अब काम्भोजी राग के लिये अधिक मत एकत्र करने का कोई अर्थ नहीं दिखाई देता।

प्रश्न—हमें अब खमाज और तिलङ्ग रागों के विस्तार समझाइये ?

उत्तर—ठीक है। सुनो:—

खमाज—

सा, ग, मप, नि॒ध, गमग, गमपगमग, रेसा।

नि॒नि॒धप, मप, गमग, धमग, मप, गमग, रेसा। सासा, गमप, गमप, नि॒ध, गमग, गमपधप, गमग, रेसा।

सासागमप, धमप, निसां, सांरेंसांनि॒ध, गमप, निसां, नि॒ध, ममग, गमपगमग, सा।

नि॒सागमप, धप, धनि॒धप, गमग, सां, नि॒ध, पमग, गमपगमग, रेसा, नि॒सागमप, धप, गमग।

ममग, गमपध, ममग, नि॒साग, प, गमग, नि॒धनि॒प, गमग, गमपगमग, रेसा।

गमध, निसां, निसां, निनिसांरें, सांनिध, निध, गमनिध, सांनिधरें सांनिध. निनिप, गमग, गमपधपमग, रेसा, सागम, निध, गमग।

तिलङ्गः—

सा-ग. गमप, निप, गमग, पगमग, सा।

निसा, गमप, गमग, निनिप, सांनिप, गमग, सा। सासागमप, निनिप, सांनिप, निप, गमग, पगम, ग, निसा।

गमपगमग, निसाग, गमप, निनिसां, निनिप, सांनिनिप, गमप, निप, गमग, पगमग, सा।

गमग, निसा, सागमप, निप, सांनिप, गमग, पमग, सा।

गमप, निसां, निसां, सांगंसां, मंगंसां, निनिप, निप, गमप, निसां, गंमंगं, सां, सांनिनिप, गमग, मगसा।

इस स्वरूप में रे ध वर्ज्य होने से किसी-किसी जगह पर श्रोताओं को विहाग का आभास हो सकता है, परन्तु ऐसे ख्यालों पर युक्तिपूर्वक कोमल स्वर का नीचा भाग लाया जाकर तिलङ्ग को अलग किया जा सकता है। कोई-कोई गायक अवरोह में कहीं-कहीं रिषभ का प्रयोग भी करते हैं। ऐसा प्रयोग अवरोह में थोड़ा सा क्षम्य माना जाता है। खमाज और तिलङ्ग के स्वर मिले जुले ही अधिक समय तुम्हें दिखाई देंगे।

प्रश्न—ये राग हम समझ गये। अब आगे किसी राग का वर्णन कीजिये?

उत्तर—अब हम खमाज अङ्ग की 'दुर्गा' को लेते हैं। यह अप्राप्य राग रूपों में से है। मुझे एक प्रसिद्ध गायक ने यह राग बताया है। यह रूप बहुत विचित्र है। दुर्गा राग औडव है और इसका वादी स्वर गांधार है। शुद्ध थाट (बिलावल) में तुम्हें जिस दुर्गा राग का वर्णन बताया था, उसमें ग, नि स्वर वर्जित किये थे। यहां पर रिषभ और पंचम स्वर वर्जित किये गये हैं। शुद्ध थाट में रे प वर्ज्य करने पर भी एक राग स्वरूप उत्पन्न हो जाता है। इसमें यदि धैवत या मध्यम वादी बनाया जावे तो यह स्वरूप प्रभातकालीन राग दिखाई देता है। खुला मध्यम इसमें बहुत ही सुन्दर लगता है। जैसे:—

सां, निध, म, गमग, सा, निसा, गम, सागम, मधम, निसां, गंसां, निसां, निध, निध, म, ग,मग, सा, गम" परन्तु यह याद रखना चाहिये कि हमारे इस विचारणीय राग दुर्गा में इस स्वरूप में निषाद कोमल लिया जाता है।

प्रश्न—यह भी एक मजा ही है। यमन थाट में रे प, वर्ज्य करने पर हिण्डोल हो जाता है। इन दोनों थाटों में भी 'रे प' वर्ज्य करने पर ये दो स्वरूप उत्पन्न हो जाते हैं।

उत्तर—अन्य थाटों में भी 'रे प' वर्ज्य होने वाले स्वरूप आगे चलकर दिखाई देंगे। यह हमारी पद्धति की ही एक विशेषता है। खैर, अपने इस दुर्गा राग में म, ध, इन स्वरों की संगति आरोह-अवरोह में दिखाई पड़ती है। इस

जगह श्रोताओं को थोड़े प्रमाण में बागेश्वरी नामक राग का आभास हो जाता है, परन्तु बागेश्वरी में कोमल गांधार का प्रयोग होता है और रे प स्वर भी वर्ज्य नहीं हैं। मेरे ख्याल से अब तुम दुर्गा राग को झिंझोटी, खमाज वगैरह रागों से सहज में ही अलग कर सकते हो।

प्रश्न—झिंझोटी राग तो आश्रय राग है ही, उसमें रे, प वर्ज्य नहीं होते, अतः उनकी भिन्नता तो स्पष्ट ही है। खमाज में अवरोह संपूर्ण है, तिलंग में धैवत स्वर बिलकुल वर्ज्य है और आते-जाते म, ध की संगति दिखाई देती है। इस प्रकार दुर्गा राग इनसे अलग हो जाता है?

उत्तर—ठीक है! इस स्वरूप की ग्रन्थों में खोज करने पर तुम्हें 'नाटकुरंजिका' नामक एक प्रकार दिखाई देता है। परन्तु इसमें रिषभ स्वर थोड़ा सा लगता है। यह राग 'लक्ष्य-संगीतकार' ने स्पष्ट बताया है। उसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है:—

"कांभोजी मेलकेऽप्यन्या दुर्गास्याल्लक्ष्यवर्त्मनि।
औडवा रिपहीनाऽसौ गांधारांशेन भूषिता॥
मधयोरत्रसंगत्या वागीश्वर्यङ्गसम्भवः।
गांधारः कोमलस्तत्र सचात्रैवास्ति तीव्रकः॥
ऋषभस्य प्रलुप्तत्वे झिंझूटिर्नैव सम्भवेत्।
धसंयोगात्पलुप्तत्वाद्विभिन्नापि तिलंगिका॥
सम्पूर्णेनावरोहेण खम्माजो भिन्नतां भजेत्।
गानमस्या मतं नित्यं रात्र्यां यामे द्वितीयके॥"

प्रश्न—यह राग खमाज का अङ्ग है, अतः इसके गाने का समय रात्रि का दूसरा प्रहर ठीक है। अब इसका स्वरूप बता दीजिए?

उत्तर—सुनो! दुर्गा का स्वर विस्तार इस प्रकार होता है:—

सा, ग, मग, सानि़ध़, सा, मग, गमध, निध, मगसा, नि़ध़, सामग।

मगमध, निधमग, धनिसां, निध, मधनिध, मग, सा, नि़ध़नि़सा, मग।

सागमध, मग, सांनिधनिधमग, धनिसां, गंसां, निध, सांसांनिध, मग, मगसा, ध़नि़सा, मग।

मगमध, निसां, गंगंसां, गं, मंगंसां, सांनिधनिधध, मग, धनिसां, निध, मग, मग, सा, नि़ध़, नि़सा, मग।

इस राग में रे, प स्वर वर्ज्य होने के कारण इसका स्वरूप संकुचित होना स्वाभाविक है। इस राग के विषय में अधिक जानकारी नहीं है।

प्रश्न—ठीक है, आगे का राग बताइए?

उत्तर—अब हम रागेश्वरी राग पर विचार करेंगे। इस राग का नाम सुनते ही हमें यह समझ में आ जाता है कि किसी आधुनिक गायक ने यह राग अपनी कल्पना से खड़ा किया है। परन्तु यह राग संस्कृत ग्रन्थों में भी दिखाई पड़ता है। यद्यपि ग्रन्थों में वर्णित स्वरूप प्रचलित स्वरूप से नहीं मिलता, फिर भी हमें इस कारण आश्चर्य न होना चाहिये। Capt Willard साहेब ने रागेश्वरी में मिश्रण होने वाले रागों के नाम "भैरव, गौरी, केदार, देवगिरी, देवगांधार, सिन्धुरा, धनाश्री, कानड़ा और आसावरी" बताये हैं। इस मिश्रण की कल्पना कैसे की जा सकती है? कोई कहते हैं कि 'रागमाला' या 'राग सागर' नामक गीतों में जब अनेक राग जोड़ दिये जाते हैं, तब इन नौ रागों का मिश्रण होना आश्चर्य की बात नहीं, यदि ये सब राग एक के बाद एक जोड़ देने पर रागेश्वरी के गीत तैयार हो जाते होते तब तो कोई प्रश्न उठता ही नहीं। परन्तु प्रचार में रागेश्वरी (गायक लोग 'राजेश्री' ही उच्चारण करते हैं) एक स्वतन्त्र राग माना गया है, यही एक कठिनाई उपस्थित हो जाती है। इस राग का प्रचलित स्वरूप ही मैं तुम्हें बताने वाला हूँ। 'दुर्गा' राग का स्वरूप तो तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह है ही। 'दुर्गा' राग में जो थोड़ा सा स्वरूप बागेश्वरी का हो जाता है वही इस राग में बढ़ा दिया जाता है। दुर्गा राग में 'रे प' दोनों स्वर वर्ज्य किये जाते हैं, परन्तु इसमें केवल पंचम स्वर ही वर्ज्य किया जाता है। इस राग में रे ध स्वरों को जब लगाया जाता है, तब इस विषय में एक दो नियम ध्यान में रखे जाते हैं। रिषभ स्वर आरोह में नहीं लिया जाता और अवरोह में धैवत स्वर अनेक बार वक्र रूप में प्रयुक्त होता है। जैसे—'सां नि ध नि ध म' यह बात नहीं है कि ध म स्वर का प्रयोग होता ही नहीं है। परन्तु ऊपर बताये हुए बागीश्वरी के अङ्ग को तुम्हें खास तौर पर याद रखना चाहिये। पंचम वर्ज्य करते हुए व तीव्र गांधार लेकर यदि कोई बागीश्वरी गावे तो वह अधिकतर रागेश्वरी ही हो जाती है। इस राग के आरम्भ में—'रे सा, नि़ ध़, नि़ सा, म ग, म ध, नि ध, म ग' इस प्रकार का आरम्भ बड़ा ही सुन्दर दिखाई देगा। यह राग अप्रसिद्ध रागों में से है। यह तुम जान ही गये हो कि इस थाट के पहिले बताये हुए चार रागों से यह भिन्न ही है। झिंझोटी, खमाज और तिलंग में पंचम स्वर वर्ज्य नहीं है अतः यह राग इन रागों से तो अलग हो ही जाता है। दुर्गा में बिलकुल रिषभ नहीं लिया जाता अतः यह भी भिन्न राग हो जाता है। बागेश्वरी का वादी स्वर कोई मध्यम और कोई षड्ज स्वर मानते हैं। ध म स्वरों की संगति बहुत सुन्दर दिखाई देती है। यह संगति तुम्हें दुर्गा और बागीश्वरी रागों में दिखाई देगी। तुम्हें इस स्वर संगति को अच्छी तरह से याद कर लेना चाहिये। दक्षिण की ओर खोज करने पर 'रवि चन्द्रिका' नामक राग इसी स्वरूप का दिखाई देता है। रागेश्वरी राग रात्रि के दूसरे पहर का है। खमाज अङ्ग के सारे राग रात्रि के इसी प्रहर के माने जाते हैं, यह ध्यान में रखना चाहिये। इस राग के लक्षण इस प्रकार हैं:—

"कांभोजीमेलके तत्र रागेश्वरी बुधैर्मता ।
आरोहे चावरोहेऽपि पहीना षाडवा पुनः ॥

"षड्जांशा मध्यमांशा वा गीयते लक्ष्यवर्त्मनि ।
संगतिर्मधयोर्नूनं विशेषेणाऽत्र रक्तिदा ॥
आरोहणे रिवर्जं स्याद्वक्रं चावरोहणे ।
गांधारस्य हि तीव्रत्वाद्रागीश्वर्याः प्रभिन्नता ॥
मते केषांचिदप्येषा खंमाजप्रकृतिर्यतः ।
प्रशस्तं गायनं तस्या नित्यं यामे द्वितीयके ॥"

प्रश्न—ये लक्षण स्पष्ट रूप से समझने योग्य हैं। आगे हमें ऐसे समप्राकृतिक रागों का कोष्टक ही बना लेना पड़ेगा। ऐसा करने से इन रागों का परस्पर अन्तर स्पष्ट रूप से समझ में आ सकेगा। अभी हमारा ज्ञान बिलकुल थोड़ा है। हमारे ख्याल से ऐसे समप्राकृतिक राग बहुत होंगे, अतः उनका कोष्टक तैयार कर लेना योग्य ही होगा।

उत्तर—मैंने प्रवास पर जाते समय एक ऐसा ही समप्राकृतिक रागों का कोष्टक तैयार किया था वह मैं तुम्हें आगे बताऊँगा। उसकी ठीक-ठीक जानकारी अभी तुम नहीं समझ सकोगे।

प्रश्न--ठीक है। अब आप हमें रागेश्वरी का राग विस्तार बता दीजिये ?

उत्तर--इस प्रकार होगाः--

सा, रे सा ऩि ध, ऩि सा, म, म ग, म ग, म ध म ग, म ग रे सा, ग म।

ग म, ध म, ध ऩि ध म, ग म ध, सां ऩि ध, ऩि ध म, ग रे सा। म ग म ध, नि सां, ऩि ध, रें सां ऩि ध, म, ध म, ध ऩि ध म, ग रे सा।

सा ग म, ध म, सां ऩि ध म, ध ऩि ध, म, ग, रे सा, ऩि ध़, नि़ सा, म।

म ध नि सां, नि सां, रें सां, गं म, गं, रें सां, सां ऩि ध म, ग सा, ऩि ध़, ऩि सा, ग म, सां ऩि ध, ऩि ध, म ग, रे सा।

इस प्रकार से दुर्गा व बागेशरी (बागेश्वरी) से इस राग को बचाकर इसका स्वर-विस्तार युक्ति पूर्वक करते जाना चाहिये। मध्यम स्वर को वादी के स्थान पर उत्तम रूप से सँभालने पर यह राग निसंदेह बहुत सुन्दर हो जाता है। यह राग बहुत प्राचीन नहीं कहा जा सकता। "रत्नाकर" में यह नाम नहीं दिखाई पड़ता। नारद संहिता में भी इस राग का नाम नहीं है। इन ग्रन्थों की अपेक्षा प्राचीन ग्रन्थ मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुए। मैं यह तो तुम्हें बता ही चुका हूँ कि 'भरतनाट्यशास्त्र' में रागाध्याय प्राप्त नहीं होता उसमें केवल श्रुति, ग्राम, मूर्छना, तान आदि का वर्णन ही पाया जाता है। भरत के ग्रन्थ में रागों का विचार नहीं किया गया, इस विषय में Capt. Day इस प्रकार कहते हैं।

"The word Rag does not appear to have been used in its present technical sense until a date later than has been generally supposed. It is worthy of note that in the oldest Indian musical treatise, the Bharat Natya Shastra, the word Rag appears hardly at all; and no special Adhyaya is devoted to it, as is invariably the case in all subsequent Sanscrit treatises. The employment of Raga, as understood in the Sangeet-Ratnakar and subsequently, was evidently unknown at the time when Bharat wrote. But in its place there was a system of what are called by Bharat "Jatis." This word, meaning literally genus, would seem to be of kindred meaning to the old Greek musical term (—). Some centuries later, when the Sangeet Ratnakar was written, the term Raga appears to have been substituted for "Jati."

केप्टिन साहेब का यह कथन युक्ति संगत है या नहीं, इस विषय पर हम यहां विचार नहीं करेंगे । हमें यही बात याद रखनी है कि भरत के नाट्यशास्त्र में रागाध्याय नहीं है। यह ग्रन्थ इस समय प्रकाशित हो चुका है। मैं तुम्हें एक ओर भरत का मत बता चुका हूँ, जिसमें राग-रागिनी व उनके पुत्रों के नाम बताये हैं। अधिक गहराई में जाने की जरूरत नहीं। हमें केवल अपने प्रचार की ओर ही ध्यान देना है ।

प्रश्न—जी हां, आप ठीक कह रहे हैं। अब कौनसा राग लेंगे ?

उत्तर—अब हम खंबावती राग पर विचार करेंगे। यह खमाज राग से बिलकुल भिन्न राग है। खम्बावती नाम नवीन नहीं है। कोई कहते हैं कि रत्नाकर में जो "खम्बाइति" नाम पाया जाता है वह खम्बावती का ही पर्यायवाची है। "खम्बाइति" को वहां "स्तम्भतिर्थिका" कहते हैं। हमें इन नामों की ऐतिहासिक उलझनों में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। रत्नाकर में खम्भाइति (खम्बावती) को एक बिलावल का प्रकार कहा है, खम्बावती नाम अन्य ग्रन्थों में भी है। 'रत्नाकर' में जब-जब ग्राम रागों के थाटों की स्पष्टता हो सकेगी, तब तब उसके जन्य रागों की स्पष्टता हो सकती है। ग्राम राग ककुभ की भाषा 'रगंती' और विभाषा 'भोग वर्धिनी' है। इस भोगवर्धिनी से बेलावली की उत्पत्ति बताई गई है, और बेलावली का एक उपांग 'स्तंभतीर्थी' कहा गया है। इस परम्परा से हमें क्या पता लग सकता है ? प्रचार में खम्बावती को इस समय खमाज थाट के रागों में माना गया है। खमाज के मुख्य अङ्ग में आरोह में रिषभ स्वर वर्ज्य और अवरोह में रिषभ स्वर ग्राह्य होता है। खम्बावती में सदैव एक स्वतन्त्र अङ्ग "ग म सा" माना जाता है। "सा, रे म प, ध, प ध सां, नि ध प, ध म, ग, म सा" इस प्रकार के स्वरों को विलम्बित रूप में गाने से खम्बावती का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। खमाज में "रे म प" ऐसे स्वर कभी नहीं लिये जाते। दुर्गा, तिलङ्ग, और

रागेश्वरी में भी यह भाग नहीं आता। सिंधुरा राग सीखते समय कभी-कभी तुम्हारे देखने में 'ध नि ध, प ध सां, नि ध प' स्वर समुदाय दिखाई पड़ेगा। इस राग का प्राण तो 'ग, म सा' स्वर समुदाय है। इसे अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिये। पूर्वांङ्ग में बीच-बीच में इस राग में मांड का आभास हो जाता है। परन्तु उस राग के नियम मैंने तुम्हें स्पष्ट रूप से पहिले बता ही दिये हैं। 'ध नि ध, प ध, म ग' स्वर समुदाय खमाज का है, इसमें आगे "रे सा" अवरोह लेने पर खमाज राग अवश्य ही हो जाता है। इस राग में ऐसा न करते हुए "ग, म सा" का ही प्रयोग करते हैं। इसका छोटा सा टुकड़ा राग के प्रभाव को बिलकुल अलग कर देता है। यह राग बहुत ही मधुर रागों में से है। इस राग के बीच-बीच में से खुला मध्यम प्रयुक्त किया जाता है। इसका परिणाम बहुत ही विचित्र होता है जैसे—'प ध म, ग म सा'। यह राग केवल आरोह-अवरोह में ही दिखाना हो तो ऐसा किया जाता है। 'सा, रे म प, ध सां, नि ध प ध म, ग, म सा'। खमाज में "नि सा, ग म ध नि सां, नि ध, प म ग, रे सा" स्वर समुदाय लिया जाता है। "नि सा, ग म प, नि सां, नि प म ग सा" -स्वर समुदाय से तिलङ्ग हो जाता है। 'सा रे, म ग, प म ग रे सा नि ध प, ध सा, रे, म ग' यह झिंझोटी का अङ्ग तुम पहिचान ही सकोगे। 'सा ग, म ध नि सां, नि ध म ग, सा' स्वर समुदाय दुर्गा की पकड़ है। 'सा ग, म ध नि सां, रें सां नि ध, म, ग रे सा' यह भाग रागेश्वरी का पहचानने योग्य है।

प्रश्न--ये सब स्वर समुदाय हमारे ध्यान में अच्छी तरह आ गये हैं। अब यह बतलाइये कि खम्बावती में वादी स्वर कौनसा लिया जाता है?

उत्तर—इसमें वादी स्वर षड्ज बड़ा अच्छा दिखाई देता है। इस राग में 'म ध' की स्वर सङ्गति बहुत सुन्दर है इसे न भूलना चाहिये। इस राग में खमाज का आभास कम करने के लिये अवरोह में पंचम को वक्र कर देते हैं, जैसे-'प ध म, ग' इस राग के आरोह में तीव्र निषाद बहुत सुन्दर लगता है। उत्तरांग में मुख्य कर अवरोह में वागीश्वरी का आभास होता है। यह रात्रि के मध्य का राग माना गया है। 'लक्ष्यसङ्गीत' में इसके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं:—

"खंमाजीमेलके प्रोक्ता खंबावत्याव्हया शुभा।
खंमाजनियमानां सा भवेन्नूनं विपर्ययात्॥
आरोहे रिषभः स्पृष्टस्त्यक्तोऽसौ चावरोहणे।
मध्यमात्षड्जसंस्पर्शः सर्वथैव मनोहरः॥
मधयोः सङ्गतिः प्रोक्ता ह्यवरोहे पवक्रता।
उत्तरार्धस्वरैः किंचिद्वागीश्वर्यंगमावहेत्॥

प्राचुर्येरिधयोरत्र खमाजांगं कथं भवेत् ।
गानमस्याः समादिष्टं रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥''

राग तरंगिणीकार ने 'खम्बावती' को केदार थाट का राग माना है, यह मैं पहिले ही कह चुका हूं। उसका कथन है:—

''केदारस्वरसंस्थाने श्रुतः केदारनाटकः ।
आभीरनाटनामाच गेयो रागस्तथापरः ॥
खंबावती ततो ज्ञेया शंकराभरणस्तथा ।
× × ×
मालश्रीशुद्धसंयोगा न्मल्लारमिलनादपि ।
खंबावत्याः समुत्पत्तिं वदंति किल गायकाः ॥''

अनूपरत्नाकर में खम्बावती के लक्षण पारिजातकार अहोवल के ही उद्धृत कर दिये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

''खंबावती पहीनास्यात् कोमलीकृतधैवता ।
गांधारमूर्छनायुक्ता रिणा त्यक्तावरोहिका ॥''

—पारिजाते

सङ्गीत दर्पण में इस प्रकार का वर्णन मिलता है। उन्होंने इसे 'कौशिक-रागिनी' मानी है ।

धैवतांशग्रहन्यासा षाडवा त्यक्तपंचमा ।
खंबावतीच विज्ञेया मूर्छना पौरवी मता ॥

"चत्वारिंशाच्छत राग निरूपणम्" में इस प्रकार लिखा है:—

''गौरः सुनेत्रोधृतचापबाण स्तुरंगवाहः सुचरित्रलीलः ।
लोहानलास्त्रो वनसंस्थितोऽपि सपंचमो यः शुभदः सुलीलः ॥''
''त्रिवली वल्लकी खम्बावती च ककुभाहरी ।
प्रियाः पंचमरागस्य पंचैता मुनिना स्मृताः ॥''

यह ग्रन्थ 'नारद' का है, यह मैं तुमसे एक बार पहिले ही कह चुका हूँ। नारद-संहिता में मुख्य छः राग माने गए हैं। इनके नाम ये बताये गये हैं:—

''मालवश्चैव मल्लारः श्रीरागश्च वसंतकः ।
हिन्दोलश्चाथ कर्णाट एते रागः षडीरिताः ॥''

इन रागों को बताकर प्रत्येक की छः-छः पत्नी मानी गई हैं, परन्तु उनमें खम्बावती का नाम नहीं बताया है।

प्रश्न—यह मत तो उससे भिन्न ही दिखाई देता है। ये दो भिन्न नारद हो गये हैं क्या ?

उत्तर—ठहरो! मथुरा के एक प्रसिद्ध पण्डित ने मुझे एक पुस्तक दिखाई थी; उसमें भी एक नारद की रचना पाई जाती है। उस ग्रन्थ का एक उद्धरण देखो:—

"नारदोक्तरागरागिणीसमुदायः"

"भैरवो मेघमल्लार दीपको मालकोशक ।
श्रीरागश्चापि हिंदोलो रागाः षट् संप्रकीर्तिताः ॥
पंचभिश्च प्रियाभिश्च तनुजैरष्टभिः प्रथक् ।
मूर्तिमन्तस्तुते तत्र विचरन्ति नरेश्वर ॥
भैरवो बभ्रुवर्णश्च मालकोशः शुकद्युतिः ॥
मयूरद्युतिसंयुक्तो मेघमल्लार एव हि ॥
सुवर्णाभो दीपकश्च श्रीरागोऽरुणवर्णभाक् ।
हिन्दोलो दिव्यहंसाभो राजते मिथिलेश्वर ॥
कालेन देशभेदेन क्रियया स्वरमिश्रया ।
भेदाश्च षष्ठिपंचाशत् कोट्यो गीतस्य कीर्तिताः ॥
अतो भेदा अनन्ताहि तेषां सन्ति नृपेश्वर ।
विध्येनं रागमानंदं शब्दब्रह्ममयं हरिम् ॥
तस्मान्मुख्याश्च भेदास्ते वदिष्यामि तवाग्रतः ।
भैरवी पिंगला शंकी लीलावत्यागरी तथा ॥
भैरवस्यापि रागस्य रागिण्यः पंच कीर्तिताः ।
महर्षिश्च समृद्धश्च पिङ्गलो मागधस्तथा ॥
बिलावलश्च वैशाखो ललितः पंचमस्तथा ।
भैरवस्याष्टपुत्रास्ते गीयन्ते च पृथक्–पृथक् ॥
चित्रा जयजयावन्ती विचित्रा कथिता पुनः ।
बृजमल्लार्यन्धकारी रागिण्योपि मनोहराः ॥
मेघमल्लाररागस्य कथिताः पंच मैथिल ।
श्यामाकारः सोरठश्च नट्टोऽड्डायन एव च ॥
केदारो व्रजहन्सः स्यात् जलधारस्तथैवच ।
बिहागश्चेत्यष्टपुत्राः कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥
मेघमल्लाररागस्य मैथिलेंद्र मनोहराः ।
कंचुकी मंजरी तोडी गुर्जरी शाबरी तथा ॥

दीपकस्यापिरागस्य रागिण्यः पंच व श्रुताः ।
कल्याणः शुभकामश्च गौडकल्याण एवच ॥
कामरूपः कानरोऽपि रामसंजीवनस्तथा ।
सुखनामा मन्दहासः पुत्राश्चाष्टौ विदेहराट् ॥
रागस्य दीपकस्यापि कथिता रागपंडितैः ।
गांधारी वेदगांधारी धन्याश्रीः स्वर्मखिस्तथा ॥
गुणगिरीति रागिण्यः पंचैता मिथिलेश्वर ।
मालकोशस्य रागस्य कथिता रागमंडले ॥
मेघश्चाप्यचलो मारुः आचारः कौशिकस्तथा ।
चन्द्रहारो घुंघुटश्च बिहारो नन्द एवच ॥
मालकोशस्य रागस्य चाष्टपुत्राः प्रकीर्तिताः ।
वैराटी चैव कर्णाटी गौरी गौरावती तथा ।
चतुश्चन्द्रकलाचैव रागिण्यः पंचविश्रुताः ।
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र कथिताः पूर्वसूरिभिः ॥
सारङ्गः सागरो गौरो मरुत्पंचशरस्तथा ।
गोविंदश्च हमीरश्च भांगीरश्च तथैवच ॥
श्रीरागस्यापि राजेन्द्र अष्टौ पुत्रा मनोहराः ।
वसंती परजी हेरी तैलङ्गी सुन्दरी तथा ॥
हिन्दोलस्यापि रागस्य रागिण्यः पंच विश्रुताः ।
मंगलश्च वसन्तश्च विनोदः कुमुदस्तथा ॥
एवंचविहितो नाम विभासः स्वरमंडले ।
पुत्राश्चाष्टौ समाख्याताः मैथिलेश पृथक्-पृथक् ॥

यह मत शायद ही तुम्हें कहीं दिखाई पड़ता, इसीलिये मैंने तुम्हें बता दिया है। परन्तु फिर यह अन्य कौन नारद था ? यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है। मैंने तुम्हें "सङ्गीत मकरन्द" का नाम बताया है, वह भी नारद की रचना है, क्योंकि प्रत्येक अध्याय के अन्त में "श्री नारद कृते सङ्गीत मकरन्दे" लिखा हुआ मिलता है। इस ग्रन्थ के कुछ श्लोक शब्दशः रत्नाकर, दर्पण और पारिजात के हैं, फिर इसमें प्राचीन आचार्यों के बताये हुए "नारदस्तुम्बुरुस्तथा" भी कह दिये हैं। यह भी विचार करने योग्य बात है। स्वरों के वर्ण, द्वीप, देवता आदि रत्नाकर और दर्पण के प्रमाण के अनुसार हैं।

प्रश्न—इन बातों का उपयोग कहां किया जाता है ?

उत्तर—इन बातों का उपयोग कहां पर और कैसे किया जाता है, इस विषय में बेचारे ग्रन्थकार मौन ही हैं। उन्होंने तो यहां-वहां अपनी बुद्धि खर्च की है।

पुराणों में प्रसिद्ध सप्त दीप जम्बू, शाक, कुश, क्रौंच, शाल्मली, श्वेत व पुष्कर हैं। इसका खुलासा वर्तमान प्रसिद्ध पंडितों ने पत्रों (पंचांगों) में किया ही है। इन सात द्वीपों में सात स्वरों का सम्बन्ध ग्रन्थकारों ने कैसे मिला दिया है, यह एक निराली ही बात है। तुम इस समय प्रचलित सङ्गीत पर विचार कर रहे हो, अतः तुम्हें इन प्रश्नों में जाने की आवश्यकता नहीं है। एक बार पहिले हम प्रचलित सङ्गीत के अपने राग पूरे करलें, फिर इस बात पर विचार करेंगे कि हमारे प्राचीन पण्डितों ने कौन-कौन सी ऐसी बातें की हैं।

प्रश्न—ठीक है ! अब हमें खम्बावती का स्वर विस्तार बताइये ?

उत्तर—वह इस प्रकार होगा:—

सा, रे, मप, ध, पधसां, ऩिध, पधम, ग, मसा।

सा, ग, मगमसा, सापमग, मसा, गम, ऩिधऩिम, गमसा।

सागम, पधम, सांऩिध, सांऩिध, पधम, गमसा।

गम, धम, पधम, निसां, पनिसां, रेंगंसां, सांऩिध, ऩिध, पपधम, गग, मसा। ऩिऩिध, ऩिध, पधम, गग, मसा, पमगम, सा, ऩिसा, गम, रेमप, ध, पधसां, ऩिध, पधम, गग, मसा। मम, प, निनिसां, निनिसां, सां, रें, गुंरेंसां, ऩिधधपध, सांऩिध, पधम, गग, म, ऩिसा।

इसमें एक स्थान पर अवरोह में कोमलता का स्पर्श दिखाया गया है। इस प्रकार शान्त चित्त से उत्तम मिले हुए तम्बूरे पर तुम्हारे द्वारा स्वर कहने पर परिणाम बहुत चमत्कारपूर्ण होगा।

प्रश्न—इस समय तो हारमोनियम वाद्य बहुत लोक-प्रिय होरहा है क्या इसकी संगति से उन स्वरों पर गाने से आनन्द नहीं होगा ? हारमोनियम वाद्य तो हमारे प्रत्येक स्वरों को उत्पन्न कर देता है।

उत्तर—मेरे विचार से उस वाद्य से हमारे उच्चकोटि के सङ्गीत का उत्तम साथ नहीं हो सकता। इस वाद्य के स्वर हमारे स्वरों के बिलकुल निकट हैं यह ठीक है। परन्तु ये स्वर हमारे स्वरों से सूक्ष्म प्रमाण से भिन्न होने के कारण अनेक बार हमारे रागों का साथ उस वाद्य से सुसंगत नहीं हो सकता। तुम्हें जब अधिक अनुभव होगा तब तुम मेरी बातों के तत्व को समझ सकोगे। यूरोप में हारमोनियम वाद्य के स्वर सप्तक को Temperate Scale कहते हैं। इन स्वरों की योग्यता-अयोग्यता के विषय में Prof. Blasserna इस प्रकार कहते हैं:—

"The temperate scale has become generally accepted; it has so come into daily use that, for the most part, our modern executant musicians no longer know that it is an incorrect scale, born of transition in order to avoid the practical difficulties of musical execution. The great progress made in instrumental music is due to this scale, and above all, the ever-increasing importance of the pianoforte in social life is to be attributed to it.

But, no doubt, it does not represent all that can be done in this respect. It would certainly be very desirable to return to the exact scale with a few difficulties smoothed over to meet the requirements of practice; for it cannot be denied that the temperate scale has destroyed many delicacies, and has given to music, founded on simple and exact laws, a character of almost coarse approximation. × × × ×

It follows that music founded on the temperate scale must be considered as imperfect music, and far below our musical sensibility and aspirations. That it is endured, and even thought beautiful, only shows that our ears have been systematically falsified from infancy.

The wish may then be expressed that there may be a new and fruitful era at hand for music, in which we shall abandon the temperate scale and return to the exact scale, and in which a more satisfactory solution of the great difficulties of musical execution will be found than that furnished by the temperate scale, which simple though it may be, is too rude.

But all the Stringed instruments, which are the very soul of the orchestra, and the human voice, which will always be the most satisfactory and most mellow musical sound have their notes perfectly free, and can, therefore, be shifted, at the will of the artist. The return to the exact scale does not present any serious difficulty to them.

प्रश्न--यह सुनकर मुझे आश्चर्य होता है। परन्तु हमारे इधर नाटक-थियेटरों में तो हारमोनियम, संगीत का प्राण ही हो गया है।

उत्तर--परन्तु यह संगीत कौन सा है ?

प्रश्न--ऐसा क्यों कहते हैं ? यह संगीत यूरोपियन तो है ही नहीं।

उत्तर--हां यूरोपियन तो नहीं है, परन्तु तुम जिसे सीखते हो वह भी नहीं है, ऐसा मान सकते हो।

प्रश्न--तो फिर मुझे दिखाई पड़ता है कि, आपके विचार से वर्तमान नाटकों का संगीत उच्च नहीं है।

उत्तर--मेरे ख्याल से अनेक व्यक्तियों का मत मेरे मत से मिलता-जुलता होगा। परन्तु इस समय हमें इस विषय की ओर जाने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—अब आप कौनसा राग बतावेंगे ?

उत्तर—अब मैं नारायणी, प्रतापवराली, और नागस्वरावली के विषय में थोड़ा सा बताऊँगा। ये राग दक्षिण की ओर प्रसिद्ध हैं। कभी-कभी हमारे यहां भी सुनाई दे जाते हैं। दक्षिण पद्धति के ग्रन्थों में इन्हें स्पष्ट रूप से कहा गया है। नारायणी राग का लक्षण इस प्रकार है:--

"कांभोजीमेलसंजाता नारायणी प्रकीर्तिता।
आरोहे गनिहीना सावरोहे गवर्जिता॥
कैश्चित्सैव मनीत्यक्ता शंकराभरणे मता।
मतभेदास्तत्र संतु ग्रन्थेऽत्र प्रथमा मता॥
रिषभं वादिनं मत्वा भवेत्सारंगसंनिभा।
निवर्जत्वे धसंयोगे भवेत्तद्रूपवारणम्॥"

हम भी इसे ही स्वीकार करेंगे। नारायणी राग के आरोह में ग, नि स्वर वर्ज्य किये जाते हैं, और अवरोह में 'ग' स्वर वर्ज्य किया जाता है। तुमने जो-जो राग इस थाट में सीखे हैं, उनमें से किसी में भी ग स्वर संपूर्ण रूप से वर्ज्य नहीं होता। किसी-किसी ग्रन्थ में इस राग को 'म नि' स्वर वर्जित कर शुद्ध स्वरों के थाट में रखा गया है। यह मत हमारे लिये उलझन से भरा है, अतः हम इसे स्वीकार नहीं करेंगे। इस राग में रिषभ स्वर वादी है। सारंग में ग ध स्वर वर्ज्य होता है। और इस राग में धैवत महत्व का स्वर है, यह एक उत्तम स्पष्ट भेद है। यह राग मैंने मुसलमान गायकों के मुँह से नहीं सुना। हां, हिन्दू गायक इसे गाते हुए सुनाई पड़े हैं। दक्षिण की ओर के ग्रन्थों में इस राग का वर्णन इस प्रकार किया गया है:--

राग लक्षण:--

"हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
नारायणीतिरागश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम्॥
आरोहणे गनित्यक्तो गहीनश्चावरोहणे।"

स्वरमेल कलानिधौ:--

"गांशो नारायणी रागो गांधारन्यासकग्रहः।
संपूर्णः प्रातरुद्गेयोऽवरोहे रिच्युतः क्वचित्॥"

यहां पर काम्भोजी थाट होने पर भी राग स्वरूप भिन्न है, अतः हम इस मत को स्वीकार नहीं करेंगे।

पारिजाते:--

"नारायण्यां गनी तीव्रौ गांधारादिकमूर्छना।
आरोहे मनिवर्जा स्यान्न्यासांशधैवता स्मृता॥"

यह रूप 'स्वरमेलकलानिधि' के स्वरूप से मिलता है। 'अहोबल' ने इस राग को प्रभातगेय माना है। Capt. Day. साहेब ने इस राग को कांभोजी थाट में ही माना है। व इसके आरोह में 'ग नी' स्वर वर्ज्य किये हैं। अवरोह में भी 'ग' स्वर वर्ज्य करने को लिखा है, यह रूप चतुर पंडित के वर्णन से मिलता हुआ है।

मद्रास के प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञ श्री० नायडू की पुस्तक "गान विद्यासंजीवनी" में राग-लक्षणकार का ही मत स्वीकार किया गया है। ग्रन्थों में जो राग "नारायणगौड़" नाम से बताया गया है, उसे निराला ही राग मानना चाहिये।

"नारायणी गत्रिकाच संपूर्णा ह्युषसि प्रिया ॥"

राग मंजर्याम् ॥

राग चन्द्रोदय, नृत्यनिर्णय, हृदय प्रकाश आदि में इस राग का वर्णन नहीं पाया जाता। मेरे ख्याल से अधिक मत खोजने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—अब हमें इस राग का स्वर विस्तार समझाइये ?

उत्तर—ठीक है। सुनोः—

सां, नि ध, म प, नि ध प, म प म, रे, सा रे, म रे, ध़ सा।

म़ प़ ध़ सा, रे, म रे, नि ध प, म प ध प, म, रे, म रे सा।

ध ध प, म प, ध प, ध प, सां, ध ध प, नि ध प, म प म रे, सा सा रे, म प, ध सां, नि ध प, म प नि ध प, म रे, रे सा।

म प ध सां, सां, रें रें सां, मं रें सां, सां रें, सां रें सां नि ध प, म प ध सां, ध प, म रे, सा रे म रे, सा, ध़ ध़ सा।

यह रूप मैंने एक गीत के आधार पर बता दिया है, यह सारङ्ग के निकट का राग है।

प्रश्न—अब आप नागस्वरावली और प्रतापवराली राग समझाइये ? ये राग भी दक्षिण के ही आपने बताये हैं ?

उत्तर—ठीक है ! उन्हीं को बताता हूँ। इन रागों को अपने यहां बहुत थोड़े गायकों द्वारा गाते हुए सुना जाता है। नागस्वराली राग का वर्णन चतुर पंडित ने इस प्रकार किया हैः—

"कांभोजीमेलके चापि जाता नागस्वरावली।
आरोहेऽप्यवरोहेच निरिवर्जं तथौडवम् ॥
षड्जांशा मध्यमांशा वा गीतासौ लक्ष्यपंडितैः।
गानं तस्याः समादिष्टं रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥

दाक्षिणात्या मता रागास्त्रयोऽतिमा असंशयम् ।
दृष्टा लक्ष्ये यतोऽस्माभिरत्रग्रन्थे सुलक्षिताः ॥"

नागस्वरावली में निषाद और रिषभ स्वर वर्ज्य किये जाते हैं। यह स्वरूप औड्व है। इस राग में षड्ज अथवा मध्यम स्वर वादी होता है। इस राग को रात्रि के दूसरे पहर में गाने का कथन मिलता है। इस राग का दक्षिणी प्रकार होने से इसके विषय में अधिक कुछ कहना सम्भव भी नहीं है। इसका स्वरूप एक गायक के पास से निम्नलिखित स्वरों जैसा प्राप्त हुआ था:—

"पधसा, गमगसा, गमपग, मगसा ।
गमपध, सांपधम, पगमप, मगसा ।
गमपध, सांगंसां, गंमंपंगं, मंगंसां ।
सांसांधप, धमपग, मसांधप, मगसा ।"

दूसरे एक गायक ने यह राग इस प्रकार से गाकर सुनाया था—

पपगमध, सांसां, धधप, पपधप, गमग, गमपग, मगसा ।
पधसां, सांगंसां, पंमंगंमं, गंगंसां, सां, सां, पधप, गमपग, मगसा ।

उत्तर की ओर के गायक इस राग स्वरूप को उच्चकोटि का नहीं समझते, वे कहते हैं कि यह एक अंग्रेजी गीत जैसा दिखाई देता है। उनके इस कथन पर स्वतन्त्र विचार आगे चलकर तुम्हीं कर लेना। दक्षिण की ओर के गायक जब इधर आते जावेंगे और जब वे यहां आकर इन रागों को सुनायेंगे तब इनकी जानकारी अधिक उत्तम हो सकेगी। 'लक्ष्यसङ्गीत' में यह राग बताया गया है, इसलिये हम इस राग पर विचार कर रहे हैं।

'प्रतापवराली' राग खमाज थाट का है। इसमें 'नागस्वरावली' की तरह आरोह में ग, नि वर्ज्य हैं। परन्तु अवरोह में केवल निषाद स्वर वर्ज्य किया जाता है। जब कि नागस्वरावली के अवरोह में ग वर्ज्य करते हैं। इस राग का वादी स्वर रिषभ माना गया है। इसके गायन का समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। इस राग का लक्षण 'लक्ष्य सङ्गीत' में इस प्रकार बताया है।

"कांभोजीमेलकात्तत्र सञ्जातो राग उत्तमः ।
प्रतापाद्यवराल्याख्यो रिषभांशग्रहो मतः ॥
आरोहणे निगौ नस्तोऽवरोहे स्यान्निवर्जनम् ।
गानमस्य समादिष्टं द्वितीयप्रहरे निशि ॥"

यह वर्णन समझने में सरल है। आगे चतुर पण्डित ने एक मतभेद का वर्णन कर उसे नापसन्द करने का कारण भी बता दिया है। वह कारण अपने उत्तरी सङ्गीत का एक महत्वपूर्ण नियम ही समझना चाहिये।

"केचिदत्र तीव्रमस्य प्रयोगमादिशंत्युत ।
न तद्युक्तमहंमन्ये निषादः कोमलो यतः ॥
मतीव्रेषु तु रागेषु कोमलो निर्नयुज्यते ।
नियमोऽयं मतस्तज्ज्ञै र्व्यवहारे सुसङ्गतः ॥"

मेरे विचार से एक बार मैंने इस नियम की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित किया भी था। तुम्हें इस नियम को पूरी तरह ध्यान में रखना चाहिये। उत्तर की तरफ के रागों में तुम्हें इस नियम का ठीक-ठीक पालन होते हुए दिखाई देगा। तीव्र मध्यम वाले रागों में कोमल नी का प्रयोग वास्तव में शोभनीय नहीं होता किसी-किसी मिश्र राग में दोनों मध्यम और दोनों निषाद दिखाई पड़ सकते हैं। परन्तु अकेला तीव्र म अधिकतर कोमल निषाद की सङ्गति में शोभा प्राप्त नहीं करता।

प्रश्न—इस राग का स्वरूप स्वरों में कैसा होगा ?

उत्तर—इस प्रकार:—

"सा, रेरे, मप, धप, मप, धसां, पधपमगरेगसा। सारेगसा, रेमप, धप, धधपम, गरे, गसा, रेरेमप, धप।

सा, रेरेसा, ममरेसा, रेमपधमप, मगरे, पमगरेसा, धधमप, धसांधप, सांपधप, मगरेसा, रेरे, मप, धधप।

मपधसां, सां, पधसां, सांरेंगंसां, मंमंपंपं, मंगंरेंसां, सांरेंसांध, पधमप, सांधपमगरेगसा, रेरे, मप, धधप।

अपने यहां के 'देस' राग के समान इस राग का स्वरूप बहुत अन्शों में दिखाई पड़ता है। परन्तु देश राग में निषाद लिया जाता है, और इस राग में वह स्वर वर्जित है यह नहीं भूलना चाहिये। 'प्रतापवराली' राग के विषय में दक्षिण के ग्रन्थकारों में भी एक मत नहीं है।
राग लक्षणे —

"हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
स्यात् प्रतापवरालिश्च सन्यासं सांशकं ध्रुवम् ॥
आरोहे गनिवर्जं चाप्यवरोहे निवर्जितम् ॥"

यह रूप हमारे स्वीकृत रूप से मिलता है। Capt. Day. साहेब ने इस राग के आरोह-अवरोह इस प्रकार बताये हैं। 'सा रे म प ध नि ध प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।" मि० नायडू ने 'लक्ष्य सङ्गीत' का ही रूप बताया है, अर्थात् उनका मत 'राग लक्षण' ग्रन्थ के मत से ही मिलता हुआ है।

प्राचीन ग्रन्थों में बराटी के प्रकार (उपांग) अनेक बताये हैं, जैसे—कुंतलवराटी, सैंधवराटी, अपस्थानवराटी, हतस्वरवराटी, प्रतापवराटी, शुद्धवराटी, द्राविडीवराटी, आदि। इनके लक्षण पारिजात में स्पष्ट बताये हैं। ये प्रकार

हमारे यहां प्रचलित नहीं हैं, अतः इनकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। लक्ष्यसङ्गीतकार ने जिन-जिन रागों का उल्लेख किया है, उन्हीं की जानकारी तुम्हें अपनी बुद्धि के अनुसार देने की मेरी अभिलाषा है। उसने जिन-जिन ग्रन्थों के विषय में अपने स्वराध्याय में चर्चा की है मैंने उन सभी ग्रन्थों को संग्रहीत कर और पढ़कर उसके प्रत्यक्ष मत की जांच की है। इसलिये मैंने 'लक्ष्य सङ्गीत' को पसन्द किया है। उससे अधिक उपयोगी ग्रन्थ प्राप्त न होने तक मैं तुम्हें उसी ग्रन्थ की पद्धति के अनुसार चलने का अनुरोध करूँगा।

प्रश्न—हमने तो यह पद्धति से ही निश्चय कर लिया है। अभी हमारे यहां सार्वजनिक रूप से कुटुम्बों में (हिन्दू कुटुम्बों में) सङ्गीत-अभिरुचि की बहुत कमी पाई जाती है। परन्तु इसका यह भी कारण है कि सीखने-सिखाने के योग्य उत्तम पद्धति के न होने के कारण और उत्तम शिक्षकों के अभाव से ही सुशिक्षित लोगों का मन इस ओर नहीं था। अब इस ग्रन्थ (लक्ष्य सङ्गीत) की प्रसिद्धि हो जाने के कारण हमारे ख्याल से ऐसे इच्छुक व्यक्तियों को बड़ी सुविधा हो जावेगी।

उत्तर—तुम ठीक कहते हो। अब हम इस थाट के आगे के राग सोरठ पर विचार करेंगे।

'सोरठ' नाम 'सौराष्ट्र' शब्द का अपभ्रन्श होकर प्रचार में आया है। इस मत को कोई-कोई लोग मानते हैं। बम्बई प्रांत के काठियावाड़ विभाग के एक प्रांत का नाम 'सोरठ' है। संभवतः प्राचीन समय में यह राग इस प्रान्त में बहुत लोकप्रिय रहा होगा। प्रान्तों और प्रदेशों के नामों पर रखे हुए राग नाम हमारे यहां बहुत पाये जाते हैं। अब तक इस थाट के जितने राग तुम्हारे सामने आये हैं उनमें खमाज अङ्ग की ही प्रधानता थी। इन रागों में गांधार स्वर महत्वपूर्ण था और उसके प्रमाण से रिषभ स्वर अल्प महत्व का स्वर था। गांधार स्वर के महत्वपूर्ण होने के कारण निषाद स्वर का वैचित्र्य भी तुम्हारे ध्यान में आया है। अब प्रस्तुत राग 'सोरठ' में गांधार की अपेक्षा रिषभ स्वर की प्रबलता अधिक दिखाई देगी। खमाज थाट के रागों में इस प्रकार के रागों का एक निराला ही वर्ग हो जाता है। इस वर्ग में ही सोरठ राग सम्मिलित होता है। इसका वादी स्वर रिषभ सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस वर्ग के रागों में श्रोताओं को खमाज की भ्रांति नहीं हो सकती। सोरठ, देश, जयजयवन्ती, तिलककामोद आदि रागों में लगने वाले रिषभ स्वर की ओर ध्यानपूर्वक लक्ष्य देने पर तुम्हें इस स्वर का चमत्कारिक माधुर्य इन रागों में दिखाई देगा। इस थाट के राग गाते हुए गायक प्रथम खमाज के अङ्ग को गाकर बाद में सोरठ के अङ्ग को लेते हैं। यह क्रम एक प्रकार से युक्ति सङ्गत ही है। कल्याण थाट में गांधार का प्रमुखत्व अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। इसी प्रकार शुद्ध स्वरों के रागों में भी यह गांधार का प्रभुत्व कायम रखता है। इसके बाद गायक ने खमाज अङ्ग के राग आरम्भ किये तो वे असङ्गत नहीं होंगे। इसके बाद सोरठ अङ्ग के राग गाकर गायक काफी थाट के राग गाने लगते हैं, इस प्रकार रंजकता बनी रहती है। मेरा यह कथन नहीं है कि मूल

थाट व्यवस्था का निर्माण इसी विचार धारा पर हुआ है। परन्तु यह व्यवस्था रागों को ध्यान में रखने के लिये अच्छी होती है। सोरठ अङ्ग के रागों में गारा, जयजयवन्ती के समान दोनों गांधार वाले रागों को गायक अन्त में रखते हैं, इसका कारण 'चतुर' पंडित के मत से ये राग "परमेलप्रवेशक" माने जाते हैं। एक थाट से दूसरे थाट में जाते हुए ऐसे रागों की आवश्यकता होती ही है। जहां दो प्रांतों का संयोग होता है वहां पर के निवासियों की भाषा, सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर दोनों प्रान्तों की भाषा का मिश्रण ही पायी जाती है। यह तत्व हमारे कुशल विद्वानों ने संगीत में भी लगाया है। यमन, बिलावल, खमाज, काफी, आदि थाटों का एक से दूसरे का मिश्रण किस अज्ञात रूप से कर दिया गया है, इसे देखकर मर्मज्ञ लोगों को अपने संगीतज्ञों की कुशलता पर आश्चर्य और आनन्द होता है। कल्याण थाट के दोनों मध्यम वाले रागों को मिलाकर थाट में गायक का प्रवेश करा दिया गया है। इसी प्रकार शुद्ध थाट के रागों में किसी-किसी जगह कोमल निषाद का प्रयोग कर खमाज थाट में प्रवेश करा दिया है। खमाज थाट में आगे के काफी थाट के कानड़ा जैसे राग के लिये जयजयवन्ती जैसे दोनों गांधार वाले राग प्रकार आ जाते हैं। 'लक्ष्यसंगीतकार' जयजयवन्ती के दो गांधारों के विषय में एक जगह लिखते हैं:--

"जयावन्तीहसा नूनं द्विगांधारसुयोगतः।
सूचयेत्परमेलं तं कर्णाटाख्यमसंशयम् ॥"

थाट के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में दूसरे स्थान पर कहा है:—

"प्रतिमेलं केचिद्रागाः परमेलप्रसूचकाः ।
द्विरूपाणां स्वराणांच प्रयोगेण व्यवस्थिताः ॥"

मेरे विचार से अभी इस विषय को यहीं स्थगित कर दें। प्रचलित संगीत की समस्त जानकारी हो जाने पर यह सब बताना सरल होगा।

प्रश्न—ठीक है। अब आप सोरठ के विषय को ही चलने दीजिये।

उत्तर—सोरठ के आरोह में गांधार स्वर बिलकुल दुर्बल और 'असत्प्राय:' ही समझा जाता है। सोरठ का आरोह-अवरोह इस प्रकार है। सा, रे म प, नि, सां। सां नि ध प, म रे सा।

प्रश्न—यहां तो आपने गांधार स्वर को बिलकुल नहीं लिया?

उत्तर—मध्यम में रिषभ स्वर पर मींड लेते समय गांधार का प्रयोग मींड में हो जाता है। इसे यदि ऐसा नहीं लें तो सारंग का आभास हो जाता है। तुम्हें श्याम राग का वर्णन समझाते हुए इस प्रकार के गुप्त गांधार की स्थिति मैंने समझाई भी थी, वह तुम्हें याद ही होगी। इस म रे स्वर प्रयोग का प्रभाव बिलकुल स्वतंत्र है। यह काम करना कठिन नहीं है। थोड़े प्रयत्न से ही यह उत्तम रूप

से ध्यान में आ जाता है। सोरठ राग का संवादी स्वर धैवत माना जावेगा। संस्कृत ग्रन्थों में सोरठ का अवरोह सम्पूर्ण बताया गया है परन्तु अपने यहां के गायक गांधार का प्रयोग ऊपर बताई हुई युक्ति से ही करते हैं। कोई-कोई गायक गांधार को बिलकुल स्पष्ट लगाते है और राग का नाम 'देश सोरठ' बताते हैं। यह नाम देना ठीक है। सोरठ के गीतों में अनेक बार अधिकांश रूप में मारवाड़ी या गुजराती भाषा के शब्द अपनी दृष्टि में पड़ते हैं। यह भी विचारणीय बात है। संस्कृत ग्रन्थों में सौराष्ट्र नामक एक दूसरा राग भी है अतः इस राग को उसमें नहीं मिला देना चाहिये। वह राग (सौराष्ट्र) मालव गौड़ थाट का राग है।

प्रश्न—उसे तो आप भैरव थाट का वर्णन करते हुए बतायेंगे ही। मालव गौड़ थाट तो आपने प्राचीन संगीत का अत्यन्त प्रसिद्ध थाट बताया है।

उत्तर—हां, यह थाट बहुत प्रसिद्ध है। दक्षिण पद्धति में इसके बराबर प्रसिद्ध थाट आज भी दूसरा नहीं माना जाता। 'रत्नाकर' ग्रन्थ में, ग्रन्थकार शार्ङ्गदेव ने 'वाद्याध्याय' में इस थाट के विषय में लिखा है:—

"तुरुष्कगौडः मालवगौड इति लोके"

प्रश्न—तब तो फिर नवीन प्राचीन ग्रन्थों में एकीकरण के लिये इस प्रकार के कुछ साधन भी उपलब्ध हो जाते हैं ?

उत्तर—रत्नाकर में अन्य भी कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:—

"देशवालगौड़ एव केदारगौड़ इति जनैरुच्यते" (कल्लिनाथ)

"द्राविडगौडो लोके सालगगौड़" डोंबक्री राग के विषय में इस प्रकार कहा गया है। "सा भूपाली श्रुतालोके" आदि। बिना इन ग्रन्थों को अच्छी तरह देखे इनकी एकवाक्यता कहां और कितनी की जावे यह नहीं समझा जा सकता। मैं यह दावा तो नहीं कर सकता कि मैं इस कार्य को सन्तोषजनक रूप से कर सकता हूँ, परन्तु इस विषय में मैंने जो कुछ भी परिश्रम और तर्क किये हैं उनके बारे में तुम्हें किसी अन्य प्रसङ्ग पर बताऊँगा। इस समय अपना विषय 'लक्ष्य संगीत' या प्रचलित संगीत है। 'ग्रन्थ सङ्गीत' का विषय हमने निराला ही माना है।

अब मैं तुम्हारा ध्यान एक और बात की ओर खींचता हूँ। प्रचार में एक राग देस है। उसमें और सोरठ में बड़ी गड़बड़ हो जाती है। कोई-कोई तो इन दोनों को एक ही राग मानते हैं।

परन्तु देस (कोई-कोई इसे 'देश' भी कहते हैं) राग सोरठ से बिलकुल भिन्न राग है। सोरठ के नियम बदलने पर ही देश हो जाता है। कोई-कोई गायक देश राग में वादी स्वर रिषभ के बजाय पंचम मानने के पक्ष में हैं। अन्य कुछ गायकों का मत है कि गांधार का प्रयोग आरोह-अवरोह में करने से सोरठ से देश राग भिन्न हो जाता है। जो तन्तुवाद्य वादक हैं वे इसी प्रकार देश राग बजाते हैं। गायक लोगों

में "रेरे, मप, निधप, पधपमगरेगसा" देस राग की यह पकड़ प्रसिद्ध ही है। रेरे, मप, निधप, इस टुकड़े से कभी भी सोरठ राग नहीं हो सकता। रिषभ स्वर को वादी मानकर यदि इसी रीति से गाया जावे तो वह देस राग ही दिखाई देगा। जो गायक इसमें वादी स्वर पंचम मानते हैं, वे भी इसी टुकड़े में पंचम का ऐसा ही न्यास होना मानते हैं। अनेक बार देस राग का आरोह सोरठ जैसा किया हुआ तुम्हें दिखाई देगा, परन्तु दोनों के अवरोह में बिलकुल भिन्नता है। जैसे सोरठ में:—

"सा, रे रे, म प, नि, सां, नि ध, प, म, रे, सा" स्वर हैं और देस में "सा रे रे, म प नि ध प, नि, सां–सां नि ध प, म ग रे, ग सा। निम्न दो टुकड़ों को अच्छी तरह तैयार करने पर तुम्हें देस राग पूरी तरह ध्यान में आ जावेगा ... ...

१—"रे रे म प नि ध प" और रे–ध प म, ग रे ग सा"। देश की अपेक्षा सोरठ की प्रकृति अधिक गंभीर है। सोरठ का गायन सावकाश (विलंबित) में गाने पर अधिक उत्तम लगता है। सोरठ में 'म रे' स्वरों की मींड बहुत आकर्षक होती है। कोई–कोई मर्मज्ञ यह कहते हैं कि सोरठ में निषाद स्वर (आरोह में) अति तीव्र होता है, परन्तु हमें इसके विवाद में जाने की आवश्यकता नहीं है। सोरठ गाने का समय रात्रि के दूसरे प्रहर के अन्त में माना गया है।

खमाज थाट के किसी–किसी राग में तार सप्तक के रिषभ की सङ्गति में अवरोह करते हुए अन्य रीति से गायकों द्वारा कभी–कभी कोमल गांधार का कण भी प्रयुक्त किया जाता है। यह निसंदेह विवादी स्वर है, परन्तु "अवरोहे द्रुतगीतो न रक्तिहृत्" इस नियम के अनुसार यह चल भी जाता है। इसके सुन्दर लगने का कारण हम इस समय केवल यही बता सकते हैं कि गांधार और निषाद स्वरों का सम्बाद होने के कारण मैत्री प्रसिद्ध ही है। उनमें से एक की भी (निषाद की) विकृति हो जाने से दूसरे को भी वैसा ही विकृत होना मैत्री धर्म के कारण कठिन नहीं है। सोरठ के विषय में जो–जो बातें मैंने तुम्हें बताई हैं, उन्हें लक्ष्यसङ्गीत में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार कह दिया गया है।

"कांभोजीमेलकोत्पन्ना सोरटीनामिका पुनः।
आरोहे रिधवर्जं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥
रिषभोऽत्र मतो वादी सर्ववैचित्र्यकारणम्।
संवादी धैवतो मान्यो रक्तिनिर्वाहकस्तः ॥
केचिद्वदंति सोरट्यां गस्पर्शाद्देशिका भवेत्।
लक्षणं तत्समीचीनं देशीभिन्नत्वसूचकम् ॥
अवरोहे गस्वरस्य प्रयोगो घर्षणान्वितः।
कार्यो यस्माद्भवेद्व्यक्ता सारंगस्य प्रभिन्नता ॥
मध्यमादृषभे पातः सोरट्यां जीवभूतकः।
तत्रैवहि निर्णयंति श्रोतारो रागिणीमिमाम् ॥

केचित्पंचमके न्यासं कृत्वा देशीं परिस्फुटाम् ।
दर्शयंति न तन्मन्ये दोषार्हमिह सर्वथा ॥"

मेरे बताये हुये सभी नियम इन श्लोकों में तुम्हें दिखाई पड़ेंगे ।

प्रश्न—जी हां, बिलकुल स्पष्ट रूप से हैं। यदि हमारे गायक इस प्रकार के वर्णन कंठस्थ कर लें, और इनके अनुसार ही शिक्षण देने का निश्चय करलें तो कितना अच्छा हो । इस समय इस विषय में जो "हम करें सो कायदा" चल रहा है, वह इस प्रकार करने से बन्द हो सकता है । हमारे मत से तो सङ्गीत के लिये यह एक उत्तम व्यवस्था है, परन्तु अपने गायक इसे पसंद करें तभी इसका लाभ हो सकता है ।

उत्तर—तुम्हारा कथन निसंदेह ठीक है। मुझे दिखाई देता है कि शीघ्र ही सङ्गीत के अच्छे दिन आने वाले हैं। हमारे शहर के ही किसी गायक ने स्वर-मालिका लक्षण गीत आदि कंठस्थ करने का काम आरंभ कर दिया है, ऐसा मैंने सुना है । थोड़े दिनों में ही तुम देखोगे कि जिन गायकों को यह स्वर मालिका या ये गीत बिलकुल नहीं आते, ऐसा कोई संगीत व्यवसायी मनुष्य ही नहीं प्राप्त होगा । हमारे विद्वान लोगों के मन में जब ऐसे गीतों को महत्वपूर्ण मान कर प्रचार में उत्तेजना देने का संकल्प हो जावेगा, तब गायकों को इन्हें सीखना आवश्यक हो जावेगा। वैसे ही इन लक्षणगीत और स्वर-मालिकाओं को निराधार नहीं कहा जा सकता । इन्हें "लक्ष्य-सङ्गीत" का उत्तम आधार प्राप्त है। और लक्ष्य सङ्गीत भी प्रकाशित हो गया है। हां, यह ग्रन्थ बिलकुल नये सीखने वाले के समझने योग्य नहीं है। सङ्गीत के हमारे प्रायः सभी ग्रन्थ इसी प्रकार संस्कृत के हैं। मैं तुम्हें इसी ग्रन्थ की बातें बताता जा रहा हूँ, अब तुम खुद ही समझ लो कि वह तुम्हें कितना पसन्द आता है । इस ग्रन्थ के विषय में स्वयं ग्रन्थकार ही कहता है कि बिलकुल नवीन सीखने वालों के लिये यह ग्रन्थ नहीं है।

"नूत्नशिष्यापेक्षयादौ स्युरिष्टा योग्यशिक्षकाः ।
अध्यापयिष्यंति तेऽमुं विषयं सम्यगेवहि ॥
ग्रन्थस्योद्देश आदौ स्यादस्य शिक्षकनिर्मितिः ।
शिष्यानध्यापयिष्यंति तादृशाः शिक्षकास्ततः ॥"

भावार्थ-"नवीन शिष्यों की अपेक्षा योग्य शिक्षकों की आवश्यकता अधिक है, यह विषय उत्तम (पद्धति के अनुरूप) रूप से जो सीख सकें । इस ग्रन्थ का उद्देश्य मुख्यकर ऐसे शिक्षकों को ही तैयार करना है। ऐसे शिक्षक एक बार तैयार हो जाने पर वे आगे अपने शिष्यों को सहज में ही तैयार कर सकते हैं।" अस्तु······ मेरे विचार से हमें अब 'सोरठ' का अधूरा प्रसङ्ग पूरा कर देना चाहिये। अब हम भिन्न-भिन्न ग्रन्थों के मतों पर थोड़ा सा विचार करेंगे।

"राग लक्षण" में इस प्रकार कथन है:—

"हरिकांबोधिमेलाच संजातश्च सुनामकः ।
खरटीराग इत्युक्तो निन्यासं न्यंशकग्रहम् ॥
आरोहे गधवर्जं चा प्यवरोहे गवर्जितम्" ॥

यह मत हमारे प्रचलित स्वरूप का बहुत अधिक रूप में समर्थन करता है।

"रागचन्द्रोदयकार"—ने "सौराष्ट्री" को केदार मेल का राग बताया है। उसका वर्णन इस प्रकार है:—

"सांशग्रहा सांतयुताच्च पूर्णा ।
सौराष्ट्रिका सायमियंविगेया ॥"

अनूप सङ्गीत विलासः—

"सत्रिः सायं च सौराष्ट्री पूर्णा श्रृङ्गारवल्लभा"

नृत्य निर्णयः—

"सावेरीमेलरक्ता स्वरसकलयुता सत्रिका स्वैरिणीया ।
× × × ×
"सायं श्रृङ्गारपूर्णा मदनसहचरी भाति सौराष्ट्रिका सा" ॥

हृदय प्रकाशः—

"ऋषभादि स्तुसौराष्ट्री कंपांदोलनशोभिता ।"

सङ्गीत पारिजातः—

"श्रीरागमेलसंभूता सोरठी रिस्वरोद्ग्रहा ।
पंचमाद्धुंफितोपेता रिपर्यंतं पुनस्तथा ॥
सहुंफिता मपर्यंतमग्रस्वस्थानषड्जका ।
तथैव पंचमोपेता रिस्वरच्यवितोदिता ॥"

इस श्लोक में "हुंफित" और "अग्रस्वस्थान" नाम एक प्रकार की "गमक" के हैं। श्रीराग (जिसके थाट में सोरठी बताई है) का थाट पारिजात में इस प्रकार बताया है—

"रित्रयोद्ग्राहसंयुक्तः षड्जोद्ग्राहोऽथवामतः ।
श्रीरागस्तीव्रगांधार आरोहे गधवर्जितः ॥"

पारिजात का शुद्ध थाट काफी का है, इसमें केवल गांधार स्वर ही तीव्र करने से इस ग्रन्थ का श्रीराग कैसा हो जाता है, यह विचारणीय बात है। जब हम श्रीराग पर विचार करेंगे तब इस बात को सोचेंगे। इस वर्णन में केवल सोरठ का थाट खमाज ही मिल जाता है। अनूपसंगीतरत्नाकर में चन्द्रोदय, मंजरी, नृत्यनिर्णय, हृदयप्रकाश आदि ग्रन्थों के उद्धरण ही लिये जाते हैं।

रागविबोधकार ने सौराष्ट्री को मल्लारी मेल में रखा है। इसका मल्लारी मेल अपना शुद्ध स्वरों का थाट समझना चाहिये।

भैरव थाट में जो एक राग सौराष्ट्र अथवा सौराष्ट्री नामक है वह बिलकुल भिन्न राग है। यह तुम जानते ही हो।

"चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्" में सौराष्ट्र को दीपक राग का पुत्र माना है।

अब अधिक ग्रन्थों के मतों के सुनाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न—इस राग का विस्तार स्वरों में बताइये?

उत्तर—वह इस प्रकार होगा:—

सा, रे रे, म प, म रे, रे सा, नि़ रे सा, म रे, सा। नि़ सा रे, म रे, प म रे, म प ध म रे, रे प म रे सा, नि़ रे सा। नि़ सा रे, सा, रे सा, नि़ ध़ प़, नि़ सा, म रे, म प ध म रे सा। रे रे म प, नि ध प, ध म रे, प म रे, सा, नि़ सा रे रे सा। नि नि ध प, नि ध प, म प नि सां, नि ध प, म प ध प, ध म रे, सा। सा रे म रे, म प नि सां, रें सां, नि ध प ध म, रे, प म रे, सा।

सा रे म प, रे म प, नि सां, नि सां, रें रें सां, रें सां, नि ध प, मं रें सां, नि नि ध प, रे म प, नि नि सां, नि ध म प, सां नि ध प, ध म रे, सा।

म म प, नि नि, सां, सां, नि सां सां, नि सां रें, मं मं रें, सां, नि सां रें मं रें रें नि सां, नि सां रें, सां नि ध प, ध ध प, म प ध, ध प, ध म रे, रें मं रें सां, नि सां, म प नि सां, रें नि ध प, ध म रे, रे, सा।

देस राग का स्वरूप इस प्रकार होगा:—

सा, रे रे, म प, नि ध प, प ध प म, ग रे ग सा, रे रे म प, नि ध प। नि सां, नि ध प, ध नि ध प, म प ध ध, प म ग रे ग सा, रे, म प ध नि ध प।

ग म ग रे, ग सा, रे रे, ग सा, ग म प ध प म ग, रे ग सा, रे रे म प, नि ध प।

ध ध नि प, सां, नि ध नि प, रें सां नि ध नि प, प ध प म ग रे ग सा, रे, म प नि ध प।

म म, प प, नि, सां, नि सां, रें सां, नि ध प, प सां, नि सां, नि ध प, गं मं गं रें गं सां, नि सां, रें रें, सां सां, नि ध प, सां नि ध प, ध म, ग रे ग सा, रे रे, म प सां नि ध प, प ध प म ग रे ग सा, रे म प नि ध प।

प्रश्न—अब हम सब समझ गये।

खमाज थाट के राग (उत्तरार्ध)

प्रश्न—अब हमें इस थाट के शेष राग समझाइये ?

उत्तर—इस थाट के शेष रागों में से अब हम 'तिलक कामोद' पर विचार करेंगे। यह राग इस थाट के सोरठ अङ्ग के रागों में से है। सोरठ, देस, जयजयवंती तिलककामोद आदि राग प्रायः रात्रि के ११ बजे के उपरान्त गाये जाते हैं। कानड़ा राग और उसके प्रकार आरम्भ होने के पूर्व इनके गाने की मान्यता है। ये सभी राग सोरठ अङ्ग के राग हैं। इस राग में गांधार का प्रयोग देखकर कोई-कोई इसे देस राग के अङ्ग का भी मानते हैं। तिलककामोद में वादी स्वर षड्ज माना जाता है। यह सम्पूर्ण राग है। इसके गाने का समय उपरोक्त कथन के अनुसार रात्रि का दूसरा प्रहर माना गया है। मर्मज्ञ लोगों द्वारा इस राग का लक्षण इस प्रकार बताया जाता है कि आरोह करते समय धैवत का प्रयोग न करना चाहिए और अवरोह करते हुए रिषभ स्वर को वक्र रूप में लेना चाहिये। 'प़ नि़ सा रे, नि़ सा, रे ग सा, प म ग, सा, नि़' यह स्वर समुदाय जब अच्छी तरह गाया जावेगा तभी इस राग का स्वरूप स्पष्ट हो जावेगा। इस राग में निषाद स्वर की विचित्रता इतनी चमत्कारपूर्ण है कि प्रायः सभी लोग इस राग की पहिचान इस स्वर के प्रयोग से ही करते हैं।

गायक गाते हुए अपने गीत का एक टुकड़ा इस निषाद पर लाकर छोड़ देता है। 'लक्ष्य सङ्गीत कार' ने इस निषाद का महत्व इसी प्रकार बताया है। सोरठ के आरोह में भी धैवत नहीं लिया जाता है, परन्तु इसमें गांधार भी वर्ज्य किया जाता है। 'देस में सभी स्वर लिये जाते हैं परन्तु निषाद का प्रयोग वहां भी नहीं किया जाता है। 'तिलककामोद' में देस के स्वर समुदाय 'ग रे सा' में एक निषाद स्वर मिलाने से कितनी अद्भुत प्रबलता आजाती है। 'ग रे ग, सा, नि़' स्वरों का प्रयोग होते ही यह राग स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार निषाद का प्रयोग मैंने तुम्हें बिहाग में भी बताया था, परन्तु वहां अवरोह में रिषभ स्वर वर्ज्य करने को भी कहा था। निषाद का यह विशिष्ट प्रयोग तुम्हें बहुत थोड़े रागों में किया हुआ दिखाई देगा, इसे अच्छी तरह तैयार कर लेना चाहिये।

खंबावती की पकड़ 'ग म. सा' है व आरोह में धैवत वर्जित नहीं है। रागेश्वरी में पंचम वर्ज्य है। दुर्गा में रिषभ पंचम और तिलङ्ग में रे, ध, स्वर नहीं लिये जाते। ये सभी राग 'तिलक कामोद' से अलग हो जाते हैं। यदि किसी ने तुम्हें 'तिलक कामोद' गाने के लिये कहा तो तुम्हें 'प़ नि़ सा रे ग, सा, रे प, म ग, सा रे ग, सा, नि़' इस प्रकार के स्वरों से आरम्भ करना चाहिये। इतने स्वरों से यह राग बिलकुल स्पष्ट हो जाता है। 'तिलककामोद' का स्वरूप यदि नियम भ्रष्ट हो जावे तो वह 'बिहारी' नामक राग हो जाता है। प्रचार में गायक लोग जलद तान लेते हुए सारे नियमों को गड़बड़ करके मिलाजुला कर केवल निषाद के नियम को संभालते हुए अनेक बार देखे जा सकते हैं। यह मैं तुम्हें एक बार और कह चुका हूँ कि इस समय इस तानबाजी के शैतान ने हमारे संगीत में प्रविष्ट होकर बहुत

कुछ नाश कर दिया है। यद्यपि मैं स्वीकार करता हूँ कि हमारे देशी सङ्गीत का लक्षण 'कामाचार प्रवर्तित्वम' भी है, परन्तु हमें इसका अर्थ यही करना चाहिये कि प्राचीन ग्रन्थों में बताये हुए नियम समाज की रुचि के अनुरूप कुशल गायकों द्वारा बदले जाकर जिस सङ्गीत में नये नियम सम्मिलित हुए हों, वह सङ्गीत ही देशी संगीत है।

इस समय धीरे-धीरे हमारे यहां सङ्गीत की उन्नति होने के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। निरक्षर और जड़ बुद्धि के गायकों की दया पर निर्भर रहना हमारे सुशिक्षित वर्ग को अब पसन्द नहीं है। केवल Musical gymnastics (तानों की कवायद) देखकर अब हम आश्चर्यान्वित होना छोड़ चुके हैं। अब तो हमें प्रत्येक राग के नियम जानने की उत्कण्ठा उत्पन्न हो जाती है। यह सोचना स्वाभाविक ही है कि यदि प्राचीन सङ्गीत इस समय प्रचार में नहीं है तो चाहे न हो, परन्तु अर्वाचीन सङ्गीत भी तो नियम बद्ध होना चाहिये। 'लक्ष्य संगीतकार' ने जो भी प्राचीन सङ्गीत ग्रन्थों का अनुशीलन किया होगा, परन्तु अर्वाचीन सङ्गीत के प्रति भी उसका प्रेम अतिशय रहा होगा, ऐसा दिखाई देता है। हालाँकि मुसलमान गायकों ने ग्रन्थोक्त रूपों में बहुत हेरफेर किए हैं तो भी चतुर पण्डित ने उनकी निन्दा करना पसन्द नहीं किया है। चतुर पंडित का मत है कि देशकाल की प्रवृत्तियों के अनुसार सङ्गीत में परिवर्तन होता ही है। चतुर पण्डित ने यह विचार भी व्यक्त किया है कि जिस राग का स्वरूप ग्रन्थों को छोड़कर बहुत दूर नहीं गया है, जिस राग को सरलता से नियम बद्ध किया जा सकता है और जिस राग में गायकों के अज्ञान से या दृष्टि भ्रम से भ्रष्टता आगई है, इस प्रकार के रागों को सुधारने का कर्तव्य सुशिक्षित लोगों का है। चतुर पण्डित का कथन है:—

"अस्मदीयेच सङ्गीते यवनैरप्यसंशयम् ।
नानाविधतया सद्यो विहितं परिवर्तनम् ॥
प्रमादादपि संमोहाद्ये रागा भ्रष्टतांगताः ।
लक्ष्ये स्युस्ते सुनियताः कर्तव्याः शास्त्रकोविदैः ।"

इस काम को किस प्रकार करना चाहिए, इसका नमूना कुछ प्रमाण में स्वतः चतुर पण्डित ने कर दिखाया है। उसके ग्रन्थ में अनेक मुसलमानी राग स्पष्ट देखे जा सकते हैं, परन्तु उन रागों को उसने कैसा सुन्दर और नियम बद्ध बना कर अपनी पद्धति में सम्मिलित कर लिया है, यह हम देखते ही हैं। मैं सदैव अपने शिष्यों और मित्रों को चतुर पण्डित की पद्धति ही स्वीकार करने की राय देता हूँ क्योंकि कैसी ही क्यों न हो, यह अपने प्रचलित सङ्गीत की ही एक पद्धति है। अपने वर्तमान सङ्गीत की स्थिति के विषय पर और उसे सिखाने वाले किन्हीं-किन्हीं सङ्गीत व्यवसायी लोगों के विषय में मेरे एक मित्र (जो स्वतः हिन्दुस्तान के एक प्रसिद्ध गायक हो गये हैं) ने एक दिन कुछ ऐसी बातें सुनाईं, जिन्हें सुनकर तुम्हें हँसी आये बिना न रहेगी।

प्रश्न—आप हमें उनकी बातें अवश्य सुनाइये। हम सुनना चाहते हैं कि उनके विचार इस विषय में क्या थे ?

उत्तर—उन्होंने मुझसे कहा:—"पंडित जी ! मैं स्वतः एक गायक हूँ और मुझे अधिक लिखना पढ़ना भी नहीं आता, फिर भी कुछ लोगों के वर्षों तक सहवास के कारण अच्छे और बुरे की परख, मैं थोड़ी बहुत जानता ही हूँ। अपने गायकों की निन्दा मैं नहीं करना चाहता हूँ, परन्तु अपना स्वयं का मत मैं आपको प्रमाणिक रूप से कह रहा हूँ।

हमारे वर्तमान गायकों में से कई लोगों ने सच्चे सङ्गीत की बड़ी मिट्टी खराब करदी है। अभी भी कहीं-कहीं उच्चश्रेणी के गुणी लोग पाये जाते हैं। परन्तु यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि वैसे लोगों की संख्या अधिक नहीं है और न सदैव ऐसे लोग दिखाई ही पड़ सकते हैं। कुछ अन्शों में इस अभाव का कारण हम लोग ही कहे जा सकते हैं। जब हम अपने शिष्यों को मुक्त हृदय से नहीं सिखायेंगे तब ये बेचारे गायेंगे ही क्या ? समाज के पास वह साधन ही नहीं रहे कि वह उच्चश्रेणी और निम्नश्रेणी के सङ्गीत की परख कर सके। प्राचीन गीतों की भाषा उनका रस, भाव, स्वर रचना आदि बातों को देखते हुए इस समय प्रचलित रूप को देखकर हार्दिक खेद उत्पन्न होता है। इस समय तो चाहे जो खड़ा हुआ और लगा गला फिराने। अजी साहेब ! हमारे यहां के चिलम हुक्का भरने वाले, तम्बूरे साफ करने वाले लोग ही, जिन्हें हमने दस पांच चीजें बताई हों या नहीं बताईं, ऐसे लोग भी इधर उधर से टुकड़े बटड़े इकट्ठे कर खां साहब बनकर बैठे हुए हैं। इतना ही नहीं, परन्तु वे इतने तालीमी (शिक्षण कुशल) हैं कि उन्हें भोजन करने का भी वक्त नहीं मिलता। मैं सभी गायकों के विषय में ऐसा नहीं कहता। कुछ गायक अच्छे भी हैं, और उनकी सभी ओर प्रसिद्धि भी है; परन्तु केवल गले की तैयारी पर बने हुए गायक ही अधिक मात्रा में दिखाई पड़ते हैं। कभी-कभी ऐसे ऐसे गायकों के मुँह से मेरे स्वतः के बनाये हुए गीत मुझे ही पहिचान में नहीं आते। केवल स्थाई का थोड़ा भाग मेरा और आगे फिरत उनके द्वारा रचित !! कहां मूल राग और कहां उनकी वह फिरत !! परन्तु धन्य हैं वे श्रोतागण ! बेचारे गायक की निरी तानबाजी पर व गायक की धूमधाम पर आश्चर्यान्वित होकर "सुभान अल्लाः माशा अल्ला" की झड़ी लगा देते हैं। अनेक बार ऐसा देखा जा सकता है कि गायक का राग और गीत के शब्द समझने वाले श्रोता बहुत ही थोड़े होते हैं। आपने ऐसे उदाहरण भी सुने होंगे कि गाते-गाते अमुक गायक ने अपनी जगह से उठकर अगल—बगल के लोगों पर उछलना कूदना शुरू कर दिया।

पंडित जी ! गला तैयार करना एक अलग चीज है, परन्तु उसका 'इल्म' (विद्या-कला) प्राप्त करना एक अलग ही चीज है। श्रोताओं को भी संपूर्ण रूप से दोषी नहीं कहा जा सकता। जब तक उन्हें उच्चश्रेणी का गायन सुनने का अवसर बार-बार नहीं आता, तब तक वे यह कैसे जान सकते हैं कि उत्तम श्रेणी के

गायन में क्या-क्या होना चाहिये ? किसी-किसी गायक की एक ही फिरत (तान बाजी) चाहे जिस राग में लगी हुई चलती है। यदि यहां स्पष्ट पहिचानने योग्य स्वर या नियम दिखाई भी दिये तो यह तान बाजी किस राग की है, यह प्रश्न हो जाता है। जब गायक राग के नियम सीखा हुआ होगा, तभी वह श्रोताओं को दिखा सकेगा ? इसी प्रकार के किसी स्वयं सिद्ध गायक से यदि आप प्रश्न करें, कि "खां साहब ! शुद्ध-कल्याण, भूपाली, देशकार, जैत, विभास आदि रागों के अन्तर क्या मुझे स्पष्ट रूप से समझा देंगे ? तब वह क्या कहेगा, यह भी सुन लीजिये। यदि वह असली धूर्त होगा तो तुम्हारी और तुम्हारे प्रश्न की तारीफ कर छुट्टी पालेगा।" अहा, हा ! क्या ही मार्मिक सवाल है। आप तो स्वयं सङ्गीत के अवतार हैं, ऐसी कौन सी बात है जिसकी आपको जानकारी नहीं है ? यह बात आपके जैसे कद्रदान लोगों के ही योग्य है। परन्तु ऐसे उत्तर से आपको क्या सन्तोष हो सकता है ? जो यदि उत्तरदाता कोई मूर्ख भांडखोर होगा तो वह कहेगा कि, "ऐसी बातें अपने शागिर्दों के सिवाय अन्य किसी को हम नहीं बताया करते।" ऐसे लोगों से अधिक वाद-विवाद करने से झगड़ा होने की आशङ्का हो जाती है। आपने हमारे गवैयों के खास जलसे देखे ही होंगे। वहां अनेक बार मार-पीट तक के प्रसंग आगये, यह भी आपने सुना होगा।

इन बातों का मुख्य कारण क्या है ? बस यही कि उन गायकों को उत्तम पद्धति-बद्ध तालीम (शिक्षा) नहीं मिली है। उत्तम रूप से सीखा हुआ गायक होगा तो उसको ऐसे प्रश्न सुनकर आनन्द ही होगा। वह अपने शिक्षण के अनुसार उन रागों के थाट, आरोह-अवरोह, वादी-सम्वादी आदि बताकर, बाद में उदाहरण स्वरूप एक-एक राग की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध गायकों की दस-दस पांच-पांच चीजें सुनावेगा। ऐसों का नाम है 'सच्चा गायक'। मुझे ऐसा दिखाई देता है कि आपके शहर के विद्वान लोगों ने यह विषय अपने हाथ में लिया है, वे इस विषय में बड़ी पूछताछ (अन्वेषण) भी करते हैं। यह एक प्रकार से बहुत अच्छा है। आप शिक्षित लोग एक वर्ष में जितना सीख सकते हैं, उतना हमारे निरक्षर गायकों को बारह वर्ष में भी नहीं आ सकता।"

ऐसे ही उद्‌गार एक वृद्ध गायक ने भी प्रगट किये थे, वे हैदराबाद के प्रसिद्ध गायक थे। उन्होंने और भी एक दो मनोरंजक बातें सुनाईं। उन्होंने कहा:—

"पण्डित जी ! आपको आश्चर्य होगा, परन्तु किसी-किसी समय मेरे शागिर्द कहलाने वाले गायक मुझे ऐसा विलक्षण गायन सुनाते हैं कि मैं स्वयं भ्रम में पड़ जाता हूँ कि यह गायन प्रकार मैंने इन्हें कब और कैसे सिखा दिया है ? यदि वे मेरे शागिर्द नहीं कहलाते तो उनकी प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है और यदि मैं उन्हें मानने लगूँ तो मुझे कहीं प्रत्यक्ष गायन गाकर सुनाने को कोई न कहदे, यह उलझन सदैव हो जाती है। परन्तु "मेरी भी चुप और तेरी भी चुप" यह मार्ग स्वीकार कर मैं रह जाता हूँ। अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, अतः मुझमें पहिले जैसी ताकत और उत्साह भी कहां हो सकता है ? इस विषय में वाद-विवाद करने के दिन ही अब

नहीं रहे ! अच्छा कौन है और बुरा कौन है ? इसका निर्णय तो इस समय इस बात पर ही हो गया है कि किसकी मोटर अधिक भागती है ? और इस वाद-विवाद में न्यायकर्ता कौन ? आप विद्वान लोगों ने इतने दिनों तक इस विषय पर लक्ष्य नहीं किया यह बुरा किया । "अब कुछ-कुछ आपके प्रयत्नों से आशा हो जाती है, वैसे पुराने प्रसिद्ध लोग समाप्त होते जा रहे हैं । तो भी मुझे विश्वास है कि थोड़े दिनों में यह विषय आप विद्वानों के हाथ में पुनः चला जावेगा और हमारी अगली पीढ़ी के गायक यह शास्त्र फिर आप लोगों से ही सीखेंगे । मैं उस आगामी दिवस को बहुत सुदिन समझता हूँ ।"

प्रश्न—आपने उत्तर की ओर प्रवास किया है । वहां के किस शहर के गायक आपको अधिक पसन्द आये हैं ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देना कठिन है । मैंने अनेक जगहों पर जाकर अनेक प्रकार के गायकों को सुना है, वे सभी अच्छे थे । परन्तु मेरे विचार से उदयपुर के गायकों के गायन में मुझे रंजकता अधिक प्राप्त हुई । मेरे मत से उनकी गायकी (गायन शैली) हमारे गायकों के लिये अनुकरणीय है । उधर के प्रान्त में वे गायक प्रसिद्ध हैं और उनकी प्रसिद्धि वास्तव में योग्य ही है । यद्यपि उन्होंने मुझे प्रसिद्ध रागों की ही चीजें सुनाईं, परन्तु रागों का प्रारम्भिक विस्तार और क्रमानुसार तीनों लयों का काम (द्रुत, मध्य और विलम्बित) उत्तम रूप से कर दिखाया था । अस्तु, अब हमें तिलककामोद का अधूरा विषय पूरा कर लेना चाहिये ।

प्रश्न—जी हां ! अभी हमें तिलककामोद को पूरा करना है !

उत्तर—तुम्हें याद ही होगा कि कामोद के मिश्र प्रकार बतलाते हुए मैंने तुम्हें तिलककामोद का नाम भी बताया था । यदि तुम तिलककामोद में कामोद का अङ्ग खोजने लगो तो वह तुम्हें नहीं मिल सकेगा । इस बात को सुनकर तुम्हें आश्चर्य नहीं होना चाहिये, इसी प्रकार गौडसारङ्ग में सारङ्ग का अन्श तुम्हें नहीं दिखाई दिया होगा ? मैंने पहिले तुम्हें कामोद के भेद "संकीर्ण रागाध्याय" ग्रन्थ से बताये थे । इस ग्रन्थ में तिलककामोद के लिये कहा है कि यह राग "कामोद और 'खट' राग के मिश्रण से बनता है । खट राग के विषय में यह कहा जाता है कि यह राग ६ रागों का मिश्रित रूप है । ऐसी दशा में तिलककामोद का रूप ग्रन्थों की दृष्टि से कैसा निश्चित किया जा सकता है ?

प्रश्न—खट राग में कौन-कौन से ६ राग मिले हुए बताये जाते हैं ?

उत्तर—Capt. Willard साहेब ने अपने ग्रन्थ में इन ६ रागों का नाम बताया है (१) वराटी (२) आसावरी (३) तोड़ी (४) श्याम (५) बहुली (६) गांधार परन्तु इन ६ रागों की सहायता से राग रूप सिद्ध करने का झंझट तुम्हें नहीं करना चाहिये क्योंकि यह तो 'अव्यापारेषु व्यापारः' होगा । अपने ग्रन्थकारों ने भी इस प्रकार के झंझट उठाना पसन्द नहीं किया है । तिलककामोद का विस्तृत वर्णन तुम्हें प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हो सकेगा । दक्षिण की ओर के ग्रन्थों में भी कहीं यह दिया हुआ नहीं है ।

प्रश्न—चतुर पण्डित ने इसका कैसा वर्णन किया है ?

उत्तर—उनका वर्णन इस प्रकार है:—

"खम्माजीमेलके प्रोक्तः कामोदस्तिलकान्वितः ।
सम्पूर्णः सांशको गीतो रात्र्यां यामे द्वितीयके ॥
आरोहे धैवतस्त्यक्तो रिवक्रमवरोहणे ।
सोरटीदेशिकांगेन गायना उद्धरंत्यमुम् ॥
गांधारात्षड्जसंस्पर्शो नूनं स्यादतिरक्तिदः ।
अपन्यासो निषादेऽसौ सर्वदा भ्रान्तिहारकः ॥

इसमें बताई हुई बातें मैं तुम्हें पहिले ही सुना चुका हूँ।

प्रश्न—आपने अभी कहा कि यह राग दक्षिण के ग्रन्थों में नहीं बताया गया है। फिर भला यह उत्तर के ग्रन्थों में क्या मिल सकेगा ?

उत्तर—नहीं-नहीं, मेरे कहने का यह उद्देश्य नहीं था । जो ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं, उनमें वर्णित बहुत से राग दक्षिण पद्धति में प्राप्त हो जाते हैं, और इनके स्वरों के नाम भी दक्षिण पद्धति के ही हैं, इसलिये मैंने ऊपर की बात कही है। यह तो तुम जानते ही हो कि अन्तर, काकली, कैशिक आदि स्वर नाम हमारी उत्तरी पद्धति में नहीं हैं।

प्रश्न—जी हां, उत्तर की ओर तो कोमल, तीव्र ही स्वरों के नाम पाये जाते हैं। क्या अपने यहां तीव्र, कोमल आदि स्वरों का प्रचार बहुत पुराने समय से है।

उत्तर—यह महत्व की बात है । ये शब्द 'राग तरंगिणी' ग्रन्थ में भी प्राप्त होते हैं, यह ग्रन्थ "भुजवसुदशमितशाके" के मान से (१०८२ शाके) कितना प्राचीन निश्चित होता है ? इस पर किसी के तर्क से उत्तर सङ्गीत का दक्षिणी ग्रन्थों से न मिलने का कारण यह बताया जाता है कि उत्तर सङ्गीत के ग्रन्थ दक्षिणी संगीत से भिन्न ही हैं ।

राग तरंगिणी, पारिजात, आदि इसी प्रकार के भिन्न ग्रन्थ हैं । मेरे विचार से इस बात के लिये प्रत्यक्ष प्रमाण अधिक मिलना चाहिये। 'सङ्गीत दर्पण' में राग अधिकांश अपने ही हैं, परन्तु स्वरों के नाम दक्षिण के हैं। ग्रन्थ सङ्गीत पर विचार करने वाले को इन प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

प्रश्न—राग तरंगिणी में शुद्ध और विकृत स्वरों का वर्णन किस प्रकार किया गया है ?

उत्तर—इस ग्रन्थ का शुद्ध थाट तो काफी का ही है। अब इसके विकृत स्वरों को देखो:—

"स्वस्वशेषश्रुतिं त्यक्त्वा यदा रिषभधैवतौ ।
गीयेते गुणिभिः सर्वैं स्तदा तौ कोमलौ मतौ ॥
गृह्णाति मध्यमस्यापि गांधारः प्रथमां श्रुतिम् ।
यदा तदा जनैरेष तीव्र इत्यभिधीयते ॥
द्वितीयामपिचेदेवं तदा तीव्रतरः स्मृतः ।
चतुर्थीमपिचेदेव मतितीव्रतमः स्मृतः ॥
अतितीव्रतमो गस्तु सारंगे परिगोयते ।
षड्जस्यच निषादश्चेद्गृह्णाति प्रथमांश्रुतिम् ॥
तदासंगीत विद्भिः सः तीव्र इत्यभिधीयते ।
द्वितीयामपिचेदेवं तदा तीव्रतमः स्मृतः ।
षड्जस्य द्वेश्रुती गृह्णन् निषादः काकली मतः ॥
तीव्रतमे निषादे च गेया सैव विचक्षणैः ॥

मेरे विचार से अब हमें इस विषयान्तर की ओर नहीं बढ़ना चाहिये । उत्तर के सङ्गीत के यदि अन्य ग्रन्थ आगे मिलें भी, तो भी अपने प्रचलित सङ्गीत पर उसका प्रभाव बहुत अल्प प्रमाण में ही पड़ना सम्भव है । इस प्रचलित सङ्गीत को हमारे 'चतुर पण्डित' ने उत्तम रीति से व्यवस्थित कर ही दिया है ।

प्रश्न—आपके कथन का तात्पर्य हम समझ गये । आपके मत से इस समय प्राचीन ग्रन्थों का महत्व केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण को समझने मात्र का ही है । उसका प्रत्यक्ष उपयोग शायद ही हो ?

उत्तर—हां, ऐसा मानने में कोई हर्ज नहीं ।

प्रश्न—ठीक है, अब आप तिलककामोद का स्वरविस्तार समझा दीजिये ?

उत्तर—इस प्रकार होगा:—

सा, निसा, पनिसा, रेरे, पमग, सारेमग, सानि, पनिसा, रेगसा ।
पनिसारेनिसा, गरेपमगग, सारेगग, सा, नि, पनिसा, रेगसा ।
रेगमप, गमप, धमग, रेरे, पमग, सारेगग, सानि, पपनिसा, रेसा ।
धम, पग, मरे, रेगरे, पमग, सारेगमग, सानि, पनिसारेनिसा ।
ममग, पमग, रेग, रेगमप, गमप, धमग, सारेग, सानि, पनिसा ।
निसा, रेरेनिसा, पनिसा, निसा, गसा, ममगगसा, सारेगमगग, सानि, पनिसारेगसा ।
रेरे, मम, पप, निनिसां, निनिसां, निसां, रेंरेंसां, निध, मप, धध, मग, रेपमग, सा, नि, पनिसारेगसा ।
निसारेगसा, मगसा, रेप, मग, सा, धमगसा, रेरेपमग, सानि, पनिसा ।

मेरे ख्याल से इतना ही विस्तार तुम्हारे जैसों के लिये काफी होगा। यद्यपि मैंने तुम्हें इतनी तानें बताई हैं, परन्तु तुम्हें आवश्यक रूप से ध्यान में रखने योग्य इनमें दो-तीन ही हैं। वे इस प्रकार हैं—"प़ नि़ सा रे ग सा, रे प म ग, सा रे ग ग, सा नि़" केवल इतना मधुर स्वरसमुदाय गा देने पर मार्मिक श्रोता तिलककामोद को पहिचान लेंगे। इस राग के आरोह में धैवत और अवरोह में रिषभ स्वर विद्वानों द्वारा दुर्बल माने गये हैं। हमें इस राग का यह साधारण नियम मान लेना चाहिये। दुर्बल स्वर सदैव वर्ज्य नहीं होता, यह अवश्य ध्यान में रखने की बात है।

प्रश्न--अब आगे का राग आरम्भ कीजिये?

उत्तर--अब हम 'जयजयवन्ती' राग को लेते हैं। जयजयवन्ती को कोई-कोई जयावन्ती, जयजयन्ती, जयन्ती, वैजयन्ती आदि नाम भी देते हैं। यह बहुत पुराना राग है और ग्रन्थों में इसका वर्णन भी प्राप्त होता है।

प्रचार में इसे सोरठ अङ्ग का राग मानते हैं। यह मिश्र राग है। इसमें गौड़, बिलावल और सोरठ ये तीन राग मिले हुए दिखाई पड़ेंगे। सोरठ के अनुसार इसके गाने का समय भी मध्यरात्रि का निश्चित किया गया है। इस राग में ध्यान देने लायक महत्वपूर्ण बात दोनों गांधारों का भी विचित्र प्रयोग है। इस राग में दोनों गांधार और दोनों निषादों का प्रयोग होता है। आरोह करते हुए तीव्र ग, नि और अवरोह करते हुए कोमल ग नि का प्रयोग किया जाता है। अवरोह में कोमल गांधार का प्रयोग विशेष नियमित रूप से ही किया जाता है। यह बात नहीं है कि जयजयवन्ती के अवरोह में तीव्र गांधार बिलकुल नहीं लिया जाता। इस तीव्र गांधार का प्रयोग अवरोह में भी होता है क्योंकि इस राग में गौड़ और बिलावल राग मिले हुए हैं। हां, यह कहा जा सकता है कि जब हमें कोमल गांधार का प्रयोग करना हो, तब केवल अवरोह में ही लिया जा सकेगा। जयजयवन्ती का प्रधान अङ्ग जिसके संयोग से यह राग पहिचाना जा सकता है, यह है:—"रे रे, रेग॒ रेसा, नि़॒ ध़ प़, प़ प़, रे" इसी प्रकार की पंचम और रिषभ की संगति तुम्हें छायानट में भी दिखाई गई थी। 'गौड़' की पकड़ 'रे ग, रे म ग' है। पूर्वाङ्ग में बिलावल का भाग 'ग म रे रे सा' इस राग में दिखाई भी पड़ता है। जयजयवन्ती के अवरोह में बिलावल के दोनों अङ्ग दिखाई देते हैं, परन्तु जो कोमल निषाद बिलावल का नियमित स्वर नहीं है, वह जयजयवन्ती के मुख्य स्वरों में से है। जयजयवन्ती में सोरठ का अङ्ग प्रधान है क्योंकि वह आरोह और अवरोह दोनों में स्पष्ट रूप से लगाया जाता है। जिन्हें इस राग की जानकारी नहीं होती, वे प्रायः इसे सोरठ ही समझ लेते हैं। सोरठ में 'रे ग॒ रे सा नि़॒ ध़ प़' यह भाग नहीं होता और पूर्वाङ्ग में बिलावल का भाग भी नहीं होता। देश राग में भी इस प्रकार दोनों गांधार और 'प़ रे' की संगति कभी भी दिखाई नहीं देगी। यह राग अवरोह में रिषभ की वक्रता और निषाद का अपन्यास (लक्षण रूप से) नहीं होने से तिलककामोद से भी भिन्न हो जाता है।

जयजयवन्ती के गीत रिषभ स्वर से आरम्भ किये हुए कई बार पाये जावेंगे। 'रिषभ' पर गायकों द्वारा एक प्रकार का विशिष्ट आन्दोलन दिया जाता है। इसी प्रकार का रूप थोड़ा-थोड़ा कुकुभ में भी बताया जाता है। इस राग का अन्तरा तिलककामोद व सोरठ जैसा ही 'म म प, नि नि सां. सां, नि नि सां' शुरू होता है। गांधार स्वर की गौणता के कारण खमाज, तिलङ्ग व दुर्गा आदि रागों का सन्देह हो ही नहीं सकता। छायानट में 'प् रे' स्वर सङ्गति का रूप मध्य सप्तक में 'प रे' भी हो जाता है, परन्तु इस राग में ऐसा कभी नहीं हो सकेगा। छायानट में 'रे, ग म प, म, ग, म रे, सा' अङ्ग स्वतन्त्र ही है। जयजयवन्ती राग श्रोताओं को खमाज थाट से आगे काफी थाट में ले जाने का काम करता है, यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ।

अब हम इस राग के विषय में कुछ ग्रन्थों की सम्मतियां देखें। राग तरंगिणीकार ने 'जैजयन्ती' राग को कर्णाट थाट में बताया है। इस थाट में दोनों गांधारों का प्रयोग होता है।

उसका कथन है:--

"षाडवः कानरो रागो देशीविख्यातिमागतः।
वागीश्वरी कानरश्च खंबाइची तु रागिणी॥
सोरटः परजो मारु जैंजयन्ती तथापरा॥"

"सङ्गीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी" नामक जिस ग्रन्थ को दक्षिण की ओर के पण्डित सुब्बा दीक्षित ने प्रसिद्ध किया है, उसमें चतुर्दण्डीकार पं० व्यंकटमखी के नाम से उन्होंने इस राग के लक्षण निम्नलिखित बताये हैं:—

"जयजयवंत्याख्यरागश्च सम्पूर्णः सग्रहान्वितः।
लक्ष्यमार्गानुसारेण गीयते गानकोविदैः॥"

पहिले चरण में 'जयावंत्याख्यरागश्च' इस प्रकार होना चाहिये। इस ग्रन्थ (सङ्गीत सम्प्रदाय प्रदर्शिनी) में अनेक स्थलों में अशुद्ध संस्कृत श्लोक दिखाई पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो यह भ्रम होता है कि यह व्यंकटमखी ग्रन्थकार चतुर्दण्डीकार व्यंकटमखी नहीं हो सकता। चतुर्दण्डीकार बहुत विद्वान था, उसकी पद्धति अभी भी दक्षिण की ओर प्रचलित है। 'स्वरमेलकलानिधिकार' ने किसी-किसी थाट के विषय में टीका करते हुए जिस भाषा का प्रयोग किया है, उससे प्रकट हो जाता है कि ग्रन्थकार कितने पानी में है। इस दृष्टि से देखने पर प्रदर्शिनी ग्रन्थ के श्लोक अनेक स्थलों में भ्रष्ट दिखाई देते हैं। 'स्वरमेल' ग्रन्थ पढ़ने पर तुम्हें पं० व्यंकटमखी की टीका का मर्म समझ में आ सकेगा। जयजयवन्ती राग बहुत थोड़े ग्रन्थों में बताया गया है। इस राग में ग, नी स्वरों की ओर तुम्हें सदैव लक्ष्य देना पड़ेगा। कोमल गांधार का प्रयोग तो इसमें बहुत ही अद्भुत रूप से होता है। जहां-जहां कोमल गांधार लिया जाता है, वहां वह अधिकतर रिषभ स्वर से लगा हुआ ही रहता है। कोमल गंधार को लेने के पहिले गायक रिषभ को लेगा और फिर कोमल ग का

कण लेकर अवरोह करेगा। आरोह में कोमल ग का प्रयोग कभी नहीं किया जावेगा। अवरोह में भी 'प म ग॒ रे' इस प्रकार का प्रयोग बहुधा नहीं होता। जैसे यमन राग में कोमल म, बिलावल में कोमल नी दिखाये जाते हैं इसी प्रकार इस राग में कोमल ग को मान लेने में कोई हानि नहीं। 'रे ग॒ रे सा, नि॒ ध़ प़' स्वर-समुदाय जयजयवन्ती की एक निश्चित पकड़ है। Capt. Willard. साहेब ने अपने ग्रन्थ में इस राग को सोरठ, धवलश्री, व बिलावल का मिश्रण बताया है। एक अन्य मत के अनुसार इस राग में "गौरी, बिहागड़ा व नट राग का मिश्रण किया गया है।" तुम्हें अभी जिस नारद मत का विवरण बताया था, उस मत के अनुसार जयजयवन्ती मेघ राग की रागिनी बताई गई है। इस ग्रन्थ में स्वरों की स्पष्टता बिलकुल नहीं है।

प्रश्न—अब इस राग का स्वरूप स्वरों में समझाइये ?

उत्तर—इसका राग विस्तार इस प्रकार होगा:—

सा, रेरे, रेगग, मग, रेरेसा, नि़सा, रेरेसा, सानि़ध़प़, प़प़, रेरे, ग, मग, मरेसा।

नि़सारेसा, रेग॒रेसा, रेनि़सा, रेरे, गमप, गम, रेरेसा, नि़सारेग॒रेसा, नि़नि़ध़प़, रे, गमरेरेसा।

नि़सारेग॒रे, रेग॒रे, पधमगम, रेग॒रे, नि़सारेग॒रेसा, नि़ध़प़, रे, गमरेरेसा।

प़प़रे, ग॒रे, मपधम, रेग॒रे, मप, निसां, नि॒धप, धम, पगमग, मरेरेसा।

मम, प, नि, नि, सां, सांनिसां, निसां, रेंग॒ंरेंसां, रेंसांनि॒धप, मपधनि॒धप, मपधम, गमप, गम, रेग॒रे, नि़सा, रेग॒रेसा, नि़ध़प़, रे, गम, रेरेसा।

रेरे, रेगसा, रेगमप, धमरे, नि॒नि॒धप, मपमरेग॒रे, सां, रेंसांनि॒धप, नि॒धप, धम, पगमप, रेग॒रे, नि़सारेग॒रे, सानि़ध़प़, रेसा।

प्रश्न—इस राग का वर्णन चतुर पण्डित ने किस प्रकार किया है ?

उत्तर—इस प्रकार:—

"कांभोजीमेलकेजाता जयावन्ती सुखप्रदा ।
ऋषभांशा सुसम्पूर्णा सोरट्यंगेन मण्डिता ॥
तीव्रगस्य प्रयोगोऽत्र सोरटीमपसारयेत् ।
अवरोहे रिसंलग्नं कोमलं गं बुधः स्पृशेत् ॥
मन्द्रस्थस्य पंचमस्य रिस्वरेण सुसंगतिः ।
छायानट्टस्वरूपस्य क्वचित्सन्देहकारिणी ॥
छायानटे मतः पातः पंचमादृषभे शुभः ।
मध्यस्थानगतस्तज्ज्ञैरवश्यं रागव्यंजकः ॥"

प्रश्न--यह वर्णन बहुत स्पष्ट और स्मरणीय है। क्या अब आप गौड़मल्हार का वर्णन सुनायेंगे ?

उत्तर—अच्छा, उसे ही लें। गौड़मल्हार सरल रागों में गिना जाता है। इस संयुक्त नाम से ही दिखाई देता है कि इस राग में गौड़ और मल्हार का योग हुआ है। वास्तव में इस राग में उपरोक्त दोनोंरागों का योग हुआ भी है।

प्रश्न—आपने हमें गौड़ का अङ्ग "रे ग रे म ग" बताया था ?

उत्तर—ठीक है ! यह अङ्ग तुम्हें इस राग में बीच-बीच में दिखाई पड़ेगा। इस राग में नवीन विद्यार्थियों को 'रे ग रे म ग, रे सा सा, रे ग रे ग म प म ग' इस प्रकार स्वरों से आरम्भ होने वाली एक 'सरगम' सदैव सीख लेनी चाहिये।

प्रश्न—हमारी स्वरमालिका में एक इसी प्रकार की 'सरगम' है। इसमें 'रे ग रे म ग' स्वर तो 'गौड़' का अङ्ग है, परन्तु क्या आगे के स्वर 'रे रे म म, प प म प, ध सां ध प म प म' का अङ्ग मल्हार का कहलायेगा ?

उत्तर—बिलकुल ठीक कहते हो ! यह अङ्ग शुद्ध मल्हार का है। शुद्ध मल्हार में ग, नि स्वर नहीं लिये जाते। मल्हार की मुख्य पकड़ "म प, ध सां ध प म" स्वर-समुदाय मानी जाती है। इस स्वर समुदाय में यही विलक्षणता है कि इसका प्रयोग जिस-जिस राग के साथ किया जावे उसमें थोड़े बहुत प्रमाण में मल्हार का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। गौड़ मल्हार के अन्तरे को ही देखो, इसमें "प प, ध नि ध, नि सां, सां रें सां, सां नि ध, सां रें सां, नि ध प" स्वर समुदाय बिलावल का 'रे रे म म, प प ध सां, ध प म' भाग मल्हार का और अन्त का 'मप् म ग, रे ग रे म ग' भाग गौड़ का है। ये भाग कितनी खूबी से लिये गये हैं। इन्हें ठीक से बताना ही बड़ी कुशलता है।

प्रचार में गायकों ने मल्हार के अनेक प्रकार उत्पन्न किये हैं। इनमें से कुछ प्रकार तो स्पष्ट रूप से संयुक्त राग दिखाई देते हैं और कुछ ऐसे नहीं हैं। इन सबमें गायक कहीं पर भी और कैसे भी मल्हार का प्रमुख अङ्ग जिससे मल्हार की पहिचान हो सके अपने गायन में ले ही आते हैं। मल्हार के १५-१६ प्रकार कहे जाते हैं। इनमें से वे प्रकार जो बहुत प्रसिद्ध और अच्छी तरह से अलग पहिचाने जा सकते हैं, तुम्हें मैं बताऊंगा ! जिन प्रकारों में कोमल गांधार का प्रयोग किया जाता है वे अपनी पद्धति में काफी थाट में माने जाते हैं।

प्रश्न—मल्हार के कौन-कौन से भेद प्रचार में हैं ?

उत्तर—(१) शुद्ध मल्हार	(७) नायकी मल्हार
(२) गौड़ मल्हार	(८) अरुण मल्हार
(३) नट मल्हार	(९) जयावन्ती मल्हार
(४) सूर मल्हार	(१०) मेघ मल्हार
(५) रामदासी मल्हार	(११) देस मल्हार
(६) धूंडिया मल्हार	(१२) सोरठ मल्हार, इत्यादि।

कोई-कोई मीराबाई की मल्हार, झांझ मल्हार आदि प्रकार और भी बताते हैं। उनके सम्बन्ध में विवाद करने की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि ये सभी राग मिश्र-राग हैं। हमारे देशी सङ्गीत का पेट बड़ा भारी है। उसमें सभी के लिये स्थान है। 'तत्तद्देशजनमनोरजनैकफलत्वेन कामचारप्रवर्तित्वम देशीत्वम्' इस सिद्धान्त को सदैव ध्यान में रखते हुए हमने अपना हृदय सदैव उदार रखा है। पसन्द आने योग्य कोई नया प्रकार यदि किसी ने बताया तो उसे सम्मान देते हुए उसके नियम उत्तम रूप से सीखने चाहिये।

प्रश्न—आपका कथन यथार्थ है। जबकि रामदास, सूरदास, तानसेन आदि गायकों के भेद आदरणीय हैं, तो फिर यदि एक भेद मीराबाई का भी हो गया तो उसे भी सम्मान देना चाहिये। चतुर पंडित ने मल्हार के कौन-कौन से भेद बतलाये हैं?

उत्तर—चतुर पंडित द्वारा बताये हुए मल्हार के निम्नलिखित भेद हैं:—

"मेघसोरटदेशाख्या जयावन्ती तथैवच।
स्याधुदुण्डिया सूरदासी नायकीनटशुद्धकाः॥
तानसेनी तथा गौंडो ह्रुरुणी झांझनामिका।
इतिमल्लारिकाभेदा व्यवहारे बुधैर्मताः॥"

गौड़ मल्हार को किसी-किसी ग्रन्थकार ने शंकराभरण थाट में बताया है, ऐसा मान लेने में भी कोई आपत्ति नहीं है। हम देखते हैं कि इस राग में कोमल निषाद को विशेष महत्व नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि खमाज थाट के रागों में प्रायः आरोह में तीव्र निषाद ही लिया जाता है। गौड़ मल्हार के आरोह में भी यही नियम लगता है। अवरोह में बिलावल जैसा किंचित कोमल निषाद का प्रयोग होता है। यह देखकर ही किसी-किसी पंडित ने इसे शंकराभरण थाट का राग कहा है। यह बहुमत है कि गौड़मल्लार के आरोह में निषाद स्वर दुर्बल है। इसमें मध्यम स्वर वादी है। मल्हार राग वर्षा ऋतु में गाया जाता है ऐसा विद्वानों का कथन है। यह राग अन्य ऋतुओं में गाया ही नहीं जाता अथवा अन्य रितुओं में गाने से इसका आनन्द ही नहीं आता, ऐसी कोई बात नहीं है। केवल इस राग के गीतों में वर्षा रितु का वर्णन प्रायः पाया जाता है, अतः अन्य रितुओं में यह वर्णन असमय का दिखाई पड़ता है।

प्रश्न—शुद्ध मल्हार का कैसा स्वरूप ध्यान में रखें?

उत्तर—शुद्ध मल्हार का स्वरूप यह है:—

"सारेम, ममपप, मप, धसां, धपम, सारेम, सारेम। ममपपधसां, सां, रेंसां, सांध, सां, रें, मरें, सांसांधप, मरेपप, मपधसां, धप, ममरेसा, सारेम"। इसी में योग्य स्थलों पर ग और नि स्वरों को लगा देने से गौड़मल्हार हो जाता है। तुमने गौड़-मल्हार की स्वर मालिका सीखी ही है, अतः अन्य उदाहरण देने की आवश्यकता

नहीं है। उस स्वर मालिका से यह राग अच्छी प्रकार समझा जा सकता है। मल्हार के साथ थोड़ा सा छायानट का भाग मिलाने पर नटमल्हार हो जाता है। नट मल्हार में कोई-कोई कोमल गांधार का प्रयोग किये जाने का भी कथन करते हैं। रामदासी-मल्हार में दोनों गांधार का प्रयोग मानने वाले पंडित भी मुझे मिले हैं। मुझे लखनऊ के एक प्रसिद्ध हिन्दू सङ्गीतज्ञ ने बताया है कि मल्हार और सुघराई मिलकर रामदासी-मल्हार व सिंधुरा मिलकर सूरदासीमल्हार और सोरठ मिलकर धूंडियामल्हार व कानड़ा मिलकर मियां की मल्हार व मल्हार और अड़ाना मिलकर मीरा की मल्हार हो जाते हैं।

देसमल्हार, सोरठमल्हार, जयावन्तीमल्हार, इनके स्वरूप सहज ही ध्यान में आ जाते हैं।

प्रश्न—सम्भवतः इन राग रूपों में देस, सोरठ, जयजयवन्ती राग स्पष्ट दिखाई देते होंगे ?

उत्तर—तुम्हारा तर्क ठीक है! केवल इन रागों के आरम्भ में सभी में मल्हार का अन्श ही प्रयुक्त होता है। अब 'गौड़मल्हार' के विषय में ग्रन्थकारों के कथन पर विचार करें। किसी-किसी ग्रन्थ में मल्हार नाम का एक राग भैरव थाट में दिया है। वह बिलकुल भिन्न राग है।

पारिजाते:—

"तीव्रगांधारसंयुक्त आरोहे वर्जितौ गनी ।
षड्जोद्ग्राहेण संपन्ने गौंड आम्रेडितस्वरैः ॥"

यह रूप अपने शुद्ध मल्हार जैसा ही है।

रागमंजरी:—

"धत्रिः सपभ्यांहीनोऽयं मल्लारोत्युषसि प्रियः ॥"

यह स्वरूप अपने यहां प्रचलित नहीं है। इस रूप को 'रागमंजरी' में केदार थाट में बताया है।

राग चन्द्रोदय—(थाट केदार ही बताया है)

"केदारनारायणगौडकाख्यौ वेलावली शंकरभूषणाख्यः ।
स्यान्नट्टनारायणमध्यमादी मल्लारको गौडकनामधेयः ॥
धांशग्रहो धांतयुतोऽसपश्च मल्लारनामोषसि गीयतेऽसौ ।
धांशांतको धग्रहकश्चपूर्णो विभातकाले सच गौंडरागः ॥"

हृदयप्रकाशः—

"गनिहीनस्तुमल्हारः सादिरौडवईरितः ।"

नृत्य निर्णयः—

"सावेरीमेलजातः सपपरिरहितो धग्रहन्यासकांश ।
× × उषसिमलहरोभाति मन्हारगगः ॥"

राग विबोधः—

"मल्लारिर्नटयुगपि स धांशांतादिरगनिश्च संगवभाः ॥"

टीका—"मल्लारिः अगनिः गांधारनिषादरहितः धांशांतादिः धैवतग्रहांशन्यासः संगवभाः संगवे शोभितगानः ।" इस ग्रन्थ का 'मल्लारि' थाट अपना शुद्ध थाट ही है । इस ग्रन्थ में "गौड़" राग का स्वरूप इस प्रकार मल्लारि थाट में कहा गया है:—

"न्यल्पो मध्यान्हार्हो धांशन्यासग्रहो गौंडः ॥"

'स्वरमेल कलानिध' में 'मलहरी' नामक एक राग का वर्णन पाया जाता है, परन्तु वहराग भैरव थाट में बताया गया है।

सङ्गीत सारामृतः—

"गौंडमल्लाररागश्च शंकराभरणोद्भवः ।
संपूर्णः सग्रहन्यासौ वर्षास्वेषः प्रगीयते ॥"

प्रश्न—अब 'लक्ष्यसङ्गीत' का मत कह सुनाइये ?

उत्तर—सुनो !

"खम्माजीमेलकेख्यातो गौंडमल्लारनामकः ।
शंकराभरणेऽप्येनं केचिदाहुर्विपश्चितः ॥
संपूर्णोऽयं मध्यमांशो गीयते लक्ष्यवर्त्मनि ।
आरोहणे निदुर्बलो वर्षासु सुखदायकः ॥
गन्योरत्र परित्यागा च्छुद्धमल्लारसम्भवः ।
मध्यमादृषभे पातो विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥"

इसके आगे ग्रन्थकार ने मल्लार के अन्य प्रकारों का विवेचन किया है । उसका सारांश मैं तुम्हें ऊपर बता ही चुका हूँ ।

प्रश्न—यह राग अब हमें अच्छी तरह समझ में आगया । अब आगे का राग बताइये ?

उत्तर—अब हम 'गारा' राग पर विचार करें । यह एक आधुनिक राग रूप है । कोई-कोई इसे धुन भी कहते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में यह स्वरूप प्राप्त नहीं हो सकता, यह स्पष्ट ही है । 'गारा' दो तीन रागों के मिश्रण से उत्पन्न किया हुआ राग है । यह एक सम्पूर्ण जाति का राग है और इसका वादी स्वर षड्ज माना जाता है । अधिकांश रूप में गायक इसे मन्द्र और मध्य सप्तकों में ही गाते हैं और वहीं पर यह सुन्दर लगता भी है । यह राग चाहे जिस समय गाया जाता है । इस राग में दोनों गांधार और दोनों निषादों का प्रयोग किया जाता है । यह नियम तो

तुम जानते ही हो कि जहां एक स्वर के दोनों रूपों का प्रयोग एक ही राग स्वरूप में होता है वहां आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल रूप लिया जाता है।

'गारा' राग में 'पीलू' और 'झिंझोटी' का मिश्रण दिखाई पड़ता है। इस राग के गीतों की प्रकृति क्षुद्र मानी जाती है, क्योंकि इसमें साधारण गीतों का प्रयोग होता है। यदि यह राग सावकाश (विलम्बित) रूप से गाया जावे तो उच्चकोटि के गीतों में भी अच्छा लग सकता है, परन्तु यह नवीन उत्पन्न राग है अतः गायक लोग इसे कम कीमत का ही समझते हैं। अनेक बार हमारे गायकों द्वारा इस राग को मन्द्र मध्यम से लेकर मध्य पंचम तक ही गाते हुए देखा गया है। लक्ष्य संगीत में इस राग को स्मरण रखने की एक उत्तम रीति बताई है। चतुर पंडित का कथन है कि मन्द्र मध्यम से मध्य मध्यम तक के क्षेत्र में मन्द्र म को षड्ज मानकर आरोह यमन के स्वरों में और अवरोह झिंझोटी के स्वरों में करने से 'गारा' राग दिखाई देने लगता है। ऐसा करने से दोनों निषाद दोनों मध्यम दिखाई देंगे। यह भी एक मनोरंजक कल्पना है, और मेरे विचार से भी ऐसा करने से 'गारा' का स्वरूप दिखाई देने लगेगा। चाहे यह राग रूप इसी प्रकार उत्पन्न किया हो या नहीं किया हो, परन्तु यह इस राग रूप को स्मरण रखने की उत्तम युक्ति निसंदेह है।

"राग तरंगिणी" ग्रन्थ में एक राग 'गौर' नामक कर्नाट थाट में बताया है। वह राग "गारा" ही है या नहीं, यह विवादग्रस्त विषय है। कर्नाट थाट में भी दोनों गांधार व दोनों निषाद लिये गये हैं, यह निश्चित् है। दूसरी मनोरंजक बात यह भी है कि "राग तरंगिणी' में "गौर कानरः" नामक एक राग कर्णाट थाट में बताया है, और प्रचलित संगीत में भी गायक एक "गारा कानड़ा" नामक राग गाते हैं। तुम बुद्धिमान हो, अतः "गौर" राग क्या अपना "गारा" हो गया है, इसका निर्णय धीरे-धीरे करना। मेरे विचार से तो गौर और 'गारा' एक ही है। प्रचार में संधिप्रकाश (सायंकाल) के समय में गाया जाने वाला "गौरा" अथवा "मालीगौरा" एक अलग ही राग है, इसमें रिषभ कोमल व गांधार सदैव तीव्र ही रहता है। Capt. Willard. साहब ने अपने राग-रागिनी के कोष्टक में 'गारा' राग में "गौरी, नट, त्रिवण' रागों का संमिश्रण बताया है। यह वर्णन संभवतः सायंकाल की गारा (माली गौरा) के लिये अधिक ठीक दिखाई देता है।

प्रश्न—यह राग प्राचीन ग्रन्थों में तो प्राप्त ही नहीं होता, अतः इसका राग विस्तार और समझा दीजिये, तब इसका वर्णन समाप्त होगा।

उत्तर—हां, इसका राग विस्तार इस प्रकार होगा:—

सा, गम, रेगरेसा, निसारेसा, धनिध, ममधनिसा, रेनिसा।

निसारेनिसा, गमप, गम, रेगरे, निसा, रेगरे, निसा, निध, निपम, मनिधनिसा।

निसा, धनिध, निसा, गमप, गम, गरे, निसा, गरे, निसानिधपम, मधनिसा।

गम, गम, रेगुरे, पम, रेगुरे, निसारेगुरे, धनि, पध, मप, गम, रेगुरे, निसाधनि, पध, निसा।

धनिधपम, निधपम, धपम, मधनिसा, धनिसा, गमपगम, रेगुरेसा।

पपध, मपगम, रेगुरे, निसा, गुरे, मपधनि धप, गमपगमरेगुरेनिसा, रेगुरेसा, निसा, पधनिनिसा।

इस राग का स्वरूप बहुत ही लोकप्रिय है। इस राग में झिंझोटी, खमाज, पीलू, आदि रागों की छाया किस–किस प्रकार से दिखाई देती है, यह ध्यान रखने की बात है। इन भागों को अलग–अलग दिखाने के लिये मैं ऊपर के स्वरविस्तार में कहां–कहां रुकता गया हूँ, इसे स्मरण रखना आवश्यक है। इस राग में यह सावधानी रखना आवश्यक है कि कहीं यह 'जय–जयवन्ती' में प्रवेश न करले। यद्यपि जयजयवन्ती में सोरठ अङ्ग स्पष्ट है, और इस राग में नहीं है। यह स्पष्ट भेद है, परन्तु रिषभ की संगति में कोमल गांधार का प्रयोग अधिकतर जयजयवन्ती के परिमाण से ही किया जाता है। अतः किसी–किसी समय श्रोताओं को भ्रम होना संभव है।

प्रश्न—इस राग के लक्षण चतुर पंडित ने किस प्रकार बताये हैं ?

उत्तर—इस प्रकारः—

"हरिकांभोजिमेलेऽपि गारानाम्नी सुरागिणी।
प्रकीर्तिता लक्ष्यविद्भिः संपूर्णा सांशिका सदा॥
मंद्रमध्यस्वरै गीता सदैवस्यात् सुखप्रदा।
गानमस्याः समीचीनं सुमतं सार्वकालिकम्॥
गांधारौ द्वौ तथैवात्र निषादौ द्वौ समीरितौ।
अवरोहे कोमलौ तौ रोहणे तीव्रकौ निगौ॥
कल्याणी झिंझुटीयोगः कौशल्येन सुसाधितः।
आरोहे प्रथमा व्यक्ता द्वितीया चावरोहणे॥
क्षुद्रगीतार्हताप्यस्य सर्वेषामस्ति सम्मता।
अतः साधारणं रूपमिदं तज्ज्ञैः सुनिश्चितम्॥
मंद्रमे षड्जमारोप्य प्रायशो गायका अमुम्।
आमध्यमध्यमं नूनं गायंति भूरिरक्तिदम्॥

इन श्लोकों में बताई हुई सारी बातें मैं तुम्हें सुना ही चुका हूँ, फिर भी सारांश मैं पुनः सुना देता हूँ। "गारा" रागिनी का थाट हरि–काम्भोजी अर्थात् खमाज है। इसकी जाति सम्पूर्ण है और वादी स्वर षड्ज है। इसे गायक प्रायः मन्द्र और मध्य सप्तक में सुन्दर रूप से गाते हैं। इसे चाहे जब गाया जा सकता है।

इस राग में दोनों गांधार व दोनों निषाद लगाये जाते हैं। ये दोनों स्वर आरोह में तीव्र और अवरोह में कोमल बनाकर लिये जाते हैं। इस राग में कल्याण और झिंझोटी को बड़ी युक्ति से जोड़ दिया गया है। मर्मज्ञ लोगों को इस राग के आरोह में कल्याण और अवरोह में झिंझोटी का भाग दिखाई पड़ेगा। इस में क्षुद्र प्रकृति के गीत गाने की प्रथा है। यह राग साधारण माना गया है। मन्द्र स्थान के मध्यम को षड्ज मानकर मध्य सप्तक के मध्यम तक का क्षेत्र इस राग के विस्तार के लिये उपयोग में आता है।

प्रश्न—अब आगे किसी राग का वर्णन सुनाइये ?

उत्तर—मेरे ख्याल से इस थाट का अब केवल एक राग 'बड़हंस' ही बताना रह गया है। प्रचार में 'बड़हंस' राग सारंग का एक प्रकार माना जाता है। इसे काफी थाट के वर्णन में आगे सारंग राग के साथ ही बताना चाहिये था, परन्तु इसे लक्ष्य संगीतकार ने इसी थाट में माना है और प्राचीन ग्रन्थों में भी यह राग इसी थाट में पाया जाता है अतः मैं तुम्हें इसको खमाज थाट के रागों के साथ ही बता रहा हूँ। फिर भी सारंग के भेद समझाते समय आगे और भी इस राग के सम्बन्ध में हम विचार करेंगे।

'बड़हंस' नाम हमारे कानों को विचित्र लगता है। किसी-किसी संस्कृत ग्रन्थ में 'बलहंस' 'वृद्धहंस' आदि नाम भी मुझे दिखाई दिये हैं। 'सङ्गीतसार' में 'पठहंसिका' नाम भी दिया हुआ है। हमारे सङ्गीत में इस प्रकार के उलटे सीधे बिगड़े हुए नाम अन्य और भी हैं, अतः हमें इस नाम के लिये आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। हम प्रचार की दृष्टि से 'बड़हंस' नाम ही स्वीकार करेंगे। यह राग सारंग का एक प्रकार है अतः इसमें सारंग का भाग होना स्वाभाविक ही है। यह गाने में भी सारंग जैसा ही दिखाई पड़ता है यह स्वीकार करना पड़ेगा। हमारे यहां सारंग का मुख्य अङ्ग गांधार और धैवत का लोप करना माना गया है। तुम्हें यह सामान्य नियम ही मान लेना चाहिये। जितना अधिक गांधार दिखाई देगा उतना ही सारंग लुप्त होता जावेगा। जब तुम आगे काफी थाट के अन्तर्गत सारंग और उसके प्रकारों को सीखोगे तब तुम्हें यह पता लगेगा कि इस राग के अनेक प्रकारों में इस विवादी स्वर का (गांधार का) प्रयोग किया जाता है। प्रायः गायक लोग किसी एक टुकड़े में विवादी स्वर का स्पष्ट प्रयोग कर दिखाते हैं और फिर बाद में विवादी को छोड़कर मुख्य राग के नियमित स्वरों पर ही विस्तार करने लगते हैं। वे गायक यह जानते हैं कि विवादी स्वर का अल्प मात्रा में उपयोग यदि अवरोह में किया जावे तो राग हानि नहीं होती, और राग का नाम ही बदल जावे इतना फेरफार भी नहीं होता। अतः वे ऐसे टुकड़े ही इस प्रयोग के लिये पसन्द करते हैं जिनमें विवादी स्वर स्पष्ट रूप से कभी-कभी आरोह में दिखाया जा सके। यह मूर्खता नहीं बल्कि कुशलता है, इसे ध्यान में रखना चाहिये, परन्तु इसे जान-बूझकर राग की रंजकता बनाये रखते हुए प्रयोग करने में ही कुशलता है।

सारंग के भेद धैवत और गांधार की सहायता से कैसे और कितने ही क्यों न होते हों, परन्तु सदैव श्रोताओं के सम्मुख प्रत्येक भेद में "रे म प म रे, सा" स्वरसमूह गायकों को दिखाना ही पड़ता है । क्योंकि इसी स्वरसमूह से सारंग की पहिचान होती है। रिषभ स्वर ही सारंग का प्राण है । उसे महत्व देने पर गांधार को कभी महत्व प्राप्त नहीं हो पाता। जो लोग 'बड़हंस' में ध ग स्वर वर्ज्य करते हैं वे उसमें कोमल निषाद को वादी बनाते हैं। तो भी उन्हें उपरोक्त सारंग का स्वरसमुदाय दिखाना ही पड़ता है । कोई-कोई गायक बड़हंस में स्पष्ट रूप से धैवत स्वर लेते हैं। इस राग के विषय में बहुत मतभेद हैं । कोई आरोह में धैवत का प्रयोग "ध नि प" इस प्रकार लेते हैं, कोई केवल अवरोह में ही धैवत के प्रयोग को स्वीकार करते हैं । मैंने यह राग दो प्रकार से सुना है। पहिले प्रकार में आरोह–अवरोह दोनों में धैवत का प्रयोग होता है और दूसरे प्रकार में धैवत बिल्कुल 'अस्तप्राय' होता है । यदि लिया भी तो कोमल निषाद की संगति में ही लिया जाता है। चतुर पंडित ने केवल गांधार का लोप होना ही माना है, परन्तु यह भी स्वीकार किया है कि प्रचार में अनेक बार गायक लोग गांधार और धैवत दोनों को वर्ज्य करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आरोह–अवरोह में धैवत का प्रयोग करने से एक अलग स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । परन्तु "म प ध नि सां" जैसा सरल अवरोह सारंग में अच्छा नहीं दिखाई दे सकता। मेरे विचार से धैवत का प्रयोग "ध नि प, म प नि प, ध नि, म प, ध प, नि सां' इस प्रकार किया जाना चाहिये। जिस गायक ने मुझे ग, ध, दोनों स्वर वर्ज्य कर यह राग सुनाया था उसने बीच–बीच में मध्यम स्वर व्यस्त (खुला) लगाया था। इस प्रकार के प्रयोग से उसके राग में बड़ी विलक्षणता उत्पन्न हो गई थी। मैंने तुम्हें जो मतभेद सुनाये हैं, उनसे तुम्हें कुछ उलझन तो नहीं होगई ?

प्रश्न—जी हाँ, थोड़ी सी उलझन इस धैवत के कारण हो गई है !

उत्तर—अच्छा, मैं वह राग फिर से समझाता हूं। सुनो प्रचार में सारंग एक प्रसिद्ध राग है। इसकी स्वरमालिका तुमने तैयार की ही है। 'सारंग' के अनेक प्रकार प्रचार में हैं। सारंग का प्रधान लक्षण इसमें सदैव गांधार और धैवत का पूर्ण रूप से वर्ज्य करना माना गया है। सारंग "रे, म, प नि प म रे, सा" स्वरों के प्रयोग करने पर तत्काल स्पष्ट हो जाता है। अब यदि सारंग का नवीन प्रकार तैयार करना हो तो क्या किया जावेगा ? उसके प्रधान लक्षण में थोड़ा सा परिवर्तन कर देने पर दूसरे प्रकार उत्पन्न हो सकते हैं। यदि बिलकुल सारंग का भाग न रह पाया तो नया राग अवश्य हो जावेगा, परन्तु वह सारंग का प्रकार नहीं हो सकेगा। हमें अब सारंग का एक उपांग (भेद या प्रकार) उत्पन्न करना है। अर्थात् हमें सारंग के मुख्य अङ्ग को यथावत् कायम रखते हुए कुछ अन्य परिवर्तन या घुमाव करना चाहिये। यह तुम्हें समझ में आ गया है न ?

प्रश्न—जी हां, यहां तक हम ठीक–ठीक समझ गये।

उत्तर—अब आगे सुनो–'बड़हंस' को हमें सारङ्ग का एक प्रकार न मानकर उसे एक स्वतन्त्र राग मानना है, अतः इसमें सारंग के नियम जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

प्रश्न—तो क्या कोई इसे सारंग का प्रकार मानते हैं ?

उत्तर—हां, प्रचार में तो इसे लोग सारंग का प्रकार ही मानते हैं, परन्तु ग्रन्थों में इस राग में तीव्र गांधार का प्रयोग कर यदि कोई गाने लगे तब हमारा प्रचलित सारंग किस प्रकार दिखाई दे सकता है । हमें तो इस राग को "बड़हंस सारंग" ही मान-कर आगे बढ़ने में सरलता होगी। जबकि हमने इसे 'बड़हंस सारंग' मान लिया तब हमें कोई ऐसी युक्ति करनी चाहिये कि सारंग का थोड़ा अङ्ग बना रहे और सारंग के नियम में परिवर्तन भी हो जावे । इसी विचार से जानकार लोगों ने इस राग में सारंग का प्रधान अंश "रे म प म, रे सा" को कायम रखते हुए, इस राग के विवादी स्वर धैवत का प्रयोग युक्तिपूर्वक राग में करने की कल्पना निकाल ली। विवादी की व्याख्या तो तुम्हें याद होगी ही। किसी ने धैवत का प्रयोग केवल अवरोह में ही थोड़ा सा किया । किसी ने इसे आरोह में "मनाक स्पर्श" रूप से प्रयुक्त किया और किसी ने इसी स्वर को अवरोह में मींड के रूप में प्रयोग करना स्वीकार किया। आरोह में धैवत का प्रयोग करना कठिन होने के कारण कुशलता-पूर्ण कार्य है। सरल तान "प ध नि सां" कानों को बिल्कुल बुरी लगती है, अतः "निनिप, धनिप, मप, सां, निप, धप, धमप, रेरेमप, धनिप, मरे" इस प्रकार प्रयोग किया गया। इस प्रयोग में तुम यह जान ही लोगे कि धैवत स्वर बिल्कुल दुर्बल या गौड़ अथवा अनभ्यस्त रूप से प्रयुक्त हुआ है। इसकी ओर श्रोताओं का लक्ष्य नहीं होता ।" निनिपमरे, सा" भाग सुनते ही श्रोतागण समझ लेते हैं कि सारंग राग गाया जा रहा है। राग का मुख्य नाम निश्चित करने के बाद ही वे उत्तराङ्ग में क्या है, इसे देखते हैं।

प्रश्न—आपने एक प्रकार ध, ग, स्वर वर्ज्य कर गाने का भी बताया है । इस प्रकार को प्रत्यक्ष स्वर विस्तार द्वारा समझाइये ?

उत्तर—वह इस प्रकार है:—

"निनिप, मपनिप, म, रेसा, रेम, मप, निनिपमरे, सा, म, मप, रेसा, पम, मप, नि, सां, सांरेंसां, नि, मप, निनिपमरेसा, सारेसानि़, नि़सा, रेमपमरेसा।

मप, पनिप, नि, नि, सांसां, सां, रेंरेंसां, नि, रेंसांनि, पपम, निनिप, म,रेसा, सारेनि़, सारेमप निप, निनि ।

इस प्रकार में बीच-बीच में खुला मध्यम कितना अच्छा दिखाई देता है। इसी प्रकार कोमल निषाद पर रुक जाने से राग में कितनी विचित्रता आ जाती है। "सङ्गीतसार कर्त्ता" ने बड़हंस का स्वरूप इस प्रकार माना है:—

"नि़सानि़सा, रेमपम, पनिधनिप, मपमप, रेम, गमरे, सा, नि़सानि़सा, रेमप, रेमप, निधनि, मपमप, रेम, गम, रेसारे, सा, मप, धनिसां, सां, निसांरेंसां, पनिधनि मपमप, रेमगमरे, सारेसा इत्यादि ।"

इसमें तीव्र गांधार अत्यन्त अल्प अर्थात् Grace Note जैसा आया है। ऐसा लेखक के लिखने से पता चलता है, क्योंकि उसने इस स्वर को लिखकर कालवाचक (समय विश्रांति सूचक) कोई चिन्ह नहीं लगाया है। ऐसा विश्रांति चिन्ह मध्यम स्वर पर लगाया गया है। अर्थात् मध्यम स्वर लेते हुये गांधार का थोड़ा सा कण लेने का भाव ग्रन्थकार का है।

'नाद विनोद' में बड़हंस का उदाहरण इस प्रकार दिया गया है:—

'रेरेसारेममम, पपनिनिपपमम, रेरेरेम, रेमपधपमरेसा (अस्ताई)

मममपपपनिनिनिसांसांनिसांरेंरेंसांधधप, मममपपधप, धपप, मरे, निनिपमरेऽ, मरेमप, निपमरेसा (अन्तरा)

इस ग्रन्थकार ने केवल अवरोह में ही धैवत लेना स्वीकार किया है। अन्तरे में एक जगह पर 'निनिपमरेऽ' स्वर लेते हुये रिषभ पर आन्दोलन लेना बताया है। अर्थात् यहाँ पर थोड़ा सा गांधार लेने का इशारा किया है। तुम्हें तो ध, ग वर्ज्य प्रकार मानकर चलना ही अच्छा है। बड़हंस का नियम यदि कोई पूछे तो 'गांधार लंघनम्' कहना ही पर्याप्त है।

बड़हंस का वादी स्वर पंचम है। यह सारंग प्रकार है, अतः इसका गायन समय दिन का दोपहर का समय ही माना जाता है। सारंग में मध्यम अधिक प्रयुक्त होने के कारण 'सूहा' राग का आभास होना संभव हो जाता है, परन्तु 'सूहा' में थोड़ा सा कोमल गांधार भी लिया जाता है, अतः वह इससे अलग हो जाता है।

अब हम कुछ ग्रन्थों की इस राग के विषय में सम्मति देखें।

सङ्गीत सारामृतः—

"बडहंसः सग्रहांशः कांभोजीमेलसंभवः।
संपूर्णः सायमेवैष गेयः संगीतकोविदैः॥

इस ग्रन्थ में इस राग का उदाहरण इस प्रकार दिया है:—

'पमरे, गमपमरे, मगरे, सा, रेगरे, सारेसानिधप, धसा, रेमगरे; ममधप, सांसां, निधप, धपमग, पमग, मगरे, सारेसा, निप, धसा, रेरेसा।'

इस प्रकार से 'बड़हंस' गाने का आजकल प्रचार नहीं है।

राग लक्षणः—

"हरिकांबोधिमेलाच्च संजातश्च सुनामकः।
बलहंस इति प्रोक्तः सन्यासं सांशकं ध्रुवम्॥
आरोहे गनिवर्जं च पूर्णवक्रावरोहकम्।"

इस ग्रन्थ में आरोह-अवरोह निम्नलिखित रूप से दिये हुये हैं।

'सारेमपधसां'। सानिधपधमगरेसा।'

सङ्गीत पारिजात—

"बडहंसः सदागेयः शंकराभरणस्वरैः ।
षड्जादिः पंचमांशः स्यान्न्यासोऽपि पंचमस्वरः ॥
अवरोहे गहीनः स्यादारोहे तु धवर्जितः ॥"

एक प्रसिद्ध गायक ने मुझे बताया कि मधुमाध और मेघ राग के मिश्रण से 'बड़हंस' हो जाता है। ऐसा भी हो सकता है।

"चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्"--

"बलहंसश्चगांधारः देवहिन्दोलपावकौ ।
पंचमस्य कुमाराः स्युश्चत्वारः प्रथिताव्हयाः ॥"

इस ग्रन्थ में स्वर विवरण न होने से स्पष्ट राग स्वरूप नहीं समझा जा सकता। कोई-कोई इस प्रकार का निर्णय कर देते हैं कि शुद्ध स्वर के थाट में सिर्फ गांधार वर्ज्य करने से इस राग की उत्पत्ति होती है। इस रीति से बड़हंस का आरोह-अवरोह "सारेमपधनिसां। सांनिधपमरेसा" होगा। 'राग तरंगिणी' में यह राग सारङ्ग थाट में बताया है।

प्रश्न--आपने बताया ही है कि 'रागतरंगिणी' का शुद्ध थाट काफी है। इस ग्रन्थ के शुद्ध और विकृत स्वरों की जानकारी तो हमें हो गई है, अब इस ग्रन्थ के राग जनक (थाट) और बता दीजिये ?

उत्तर--इस प्रकार के राग जनक 'राग तरंगिणी' में ऐसे माने हैं:—

"तास्तु संस्थितयः प्राच्यो रागाणां द्वादश स्मृताः ।
याभी रागाः प्रगीयंते प्राचीना रागपारगैः ॥
भैरवी टोडिका तद्वद्गौरी कर्णाट एवच ।
केदार इमनस्तद्वत् सारंगो मेघरागकः ॥
धनाश्री पूरवी किंच मुखारी दीपक स्तथा ।
एतेषामेव संस्थाने येये रागा व्यवस्थिताः ॥
यथा यद्रागसंस्थानं तत्तथैव वदाम्यहम् ।"

यह मैंने तुम्हें कई बार बताया है कि इस ग्रंथ का केदार थाट हमारा शुद्ध स्वर थाट (बिलावल थाट) है। इसमें 'ईमन थाट' इस प्रकार ग्रंथकार ने उत्पन्न किया है:—

"एवं सति च संस्थाने मध्यमः पंचमस्य चेत् ।
गृह्णाति द्वे श्रुती राग ईमनो जायते तदा ॥"

सब थाटों के स्वर बताने से कोई लाभ नहीं; क्योंकि उनका उपयोग तुम इस समय नहीं कर सकोगे। 'बड़हंस' राग का सारंग थाट प्रचलित खमाज थाट को ही समझना चाहिये। इस थाट में ग्रंथकार ने इस प्रकार के राग उत्पन्न किये हैं।

"सारङ्गस्वरसंस्थाने प्रथमा पटमंजरी ।
वृन्दावनी तथाज्ञेया सामन्तो बड़हंसकः ॥"

Capt. Willard. साहेब ने 'बड़हंस' के अन्तर्गत "मारवा, रौराणी, चैती, दुर्गा व धनाश्री" रागों के नाम बताये हैं। इनके ग्रन्थों में प्रत्यक्ष सङ्गीत में उपयोगी सिद्ध होने वाली अधिक जानकारी मुझे नहीं दिखाई दी। हां, ऐतिहासिक जानकारी की दृष्टि से इनके ग्रन्थ बहुत मनोरंजक हैं।

Capt. Day. साहेब ने दक्षिण पद्धति के अनुसार 'बड़हंस' का आरोह-अवरोह इस प्रकार बताया है। सा रे म प ध सां। सां नि ध प म रे म ग सा।

अब तुम्हें चतुर पंडित द्वारा बताये हुए इस राग के लक्षण, जिन्हें तुम्हें विशेष रूप से याद रखना चाहिये, बताता हूँ।

"कांभोजीमेलकेऽप्यत्र बड़हंसो मतो बुधैः ।
कैश्चिदन्यैर्वर्णितोऽसौ शंकराभरणे पुनः ॥
वादित्वं पंचमे प्रोक्तममात्यत्वं तु षड्जके ।
गानमस्य समीचीनं द्वितीयप्रहरे दिने ॥
सारंगस्य विशेषोयं संमतः सर्वतोऽधुना ।
गांधारस्यैव लोपोऽत्र स्वीकृत स्तेन हेतुना ॥
ग्रन्थेषु धगलोप्यत्वे मतैक्यं नोपलभ्यते ।
लंघनं तु तयो र्लक्ष्ये सुमतं तद्विदां ध्रुवम् ॥
स्याद्बहुत्वं मध्यमे तन्नूनं रक्तिप्रदायकम् ।
गलुप्तत्वाद्भवेत्सद्यः सहायाः प्रस्फुटा भिदा ॥
सारंगस्य विभेदास्ते मेलेऽस्मिन् कैश्चिदीरिताः ।
अस्माभिस्तु मता एते हरप्रियाख्यमेलने ॥"

मैंने तुम्हें जिस गांधार धैवत वर्ज्य स्वरूप को गाकर दिखाया था वही तुम्हें इस समय स्वीकार कर चलना है। काफी थाट के अन्तर्गत सारंग के भेद बताते हुए इस राग के विषय में तुम्हें और भी कुछ कह सुनाऊँगा।

प्रिय मित्रो ! मैंने इस समय सङ्गीत के उपयोग की साधारण जानकारी के साथ-साथ प्रथम तीन थाटों के रागों का वर्णन यथासम्भव सरल भाषा में अपने निश्चय के अनुसार सुना दिया है। अब हम यहां पर विश्रान्ति लेंगे। अगले समय मैं तुम्हें शेष राग भी समझा दूंगा। इस बीच में तुम्हें मेरी बताई हुई बातों पर अच्छी तरह विचार करने का समय भी प्राप्त हो जावेगा।

मैंने तुम लोगों से 'लक्ष्य सङ्गीत' ग्रन्थ की पद्धति को स्वीकार करने का बार-बार आग्रह किया है, इसका यह अर्थ नहीं है कि चतुर पण्डित (लक्ष्य सङ्गीतकार)

कोई अलौकिक बुद्धि का व्यक्ति था, अतः उसका मत सर्वमान्य होना ही चाहिये। मेरे कथन का उद्देश्य इतना ही है कि इस समय हम लोग अन्य विद्या कला कौशल में प्रवीणता प्राप्त कर चुकने पर भी इस विषय के लिये केवल निरक्षर गायकों की दया पर आश्रित रह कर अँधेरे में ठोकरें खाते रहते हैं, उसकी अपेक्षा यदि चतुर पंडित द्वारा तैयार की हुई सुव्यवस्थित और सुसंगत पद्धति को अपनाने लगें तो कोई नुकसान नहीं होगा।

खमाज थाट में संस्कृत ग्रंथकारों ने अन्य और कई रागों के नाम बताये हैं, परन्तु वे प्रचार में नहीं हैं, अतः मैंने तुम्हें नहीं बताये हैं। जो-जो राग बताये हैं उनके लक्षण उत्तम तैयार करना ही पर्याप्त हो जावेगा।

प्रश्न—इस थाट के सारे राग ध्यान में रखने की यदि कोई युक्ति हो तो हमें बता दीजिये, जिसमें हमें सरलता हो?

उत्तर—इस थाट के रागों के नाम बताते हुए चतुर पंडित ने इस प्रकार कहा है:—

"कांभोजीमेलजारागा विभक्तास्ते द्विधा बुधैः
गांशका-यन्शकाश्चेति रहस्यं गुणिसंमतम् ॥
खम्माज्यंगा मता गांशाः सोरठ्यङ्गास्तु-यंशकाः।
तत्वं त्विद स्मरेन्नित्यं लक्ष्यमार्गविशारदः ॥
खम्माजी रागश्रीदुर्गा खम्बावती तिलङ्गिका।
गांधारांशे मता वर्गे मर्मज्ञै गीतवेदिभिः ॥
सोरटी देशिका चैव कामोदस्तिलकान्वितः।
जयावन्त्यादिका वर्गे द्वितीये लक्षिताः पुनः ॥"

इस श्लोक का भावार्थ इस प्रकार होगा:—

खमाज थाट के अन्तर्गत रागों के दो वर्ग किये जा सकते हैं। पहिले वर्ग में 'गांधारांश' राग (जिन रागों में वादी स्वर गांधार लिया जाता हो) आते हैं, और दूसरे वर्ग में 'ऋषभांश' राग लिये जाते हैं। खमाज, झिंझोटी, रागेश्वरी, खंबावती, तिलंग आदि राग पहिले वर्ग में और सोरठ, देश, तिलककामोद, जयजयवन्ती, नारायणी, प्रतापवराली आदि राग दूसरे वर्ग में आ जाते हैं। झिंझोटी राग इस थाट का आश्रय राग है। यह सहज ही ध्यान में रखा जा सकता है।

आरोह अवरोह में रे ध स्वर न लिए जाने वाला राग केवल तिलंग ही है। और इसी प्रकार आरोह अवरोह में रिषभ व निषाद वर्ज्य करने वाला राग "नाग-स्वरावली" है। इन दो रागों का अन्य रागों में मिलने का भय ही नहीं होता। नारायणी और प्रतापवराली में आरोह में ग नि वर्ज्य किये जाते हैं, परन्तु दोनों के अवरोह भिन्न हैं। नारायणी के अवरोह में गांधार नहीं है और प्रतापवराली के अवरोह में निषाद नहीं है। नारायणी में गांधार सदैव न लेने से उसमें सारङ्ग का

आभास हो जाता है। सारङ्ग के अवरोह में निषाद स्वर बहुत महत्व का और विचित्रता उत्पादक स्वर है। यह स्वर 'प्रतापवराली' में सदैव नहीं लिया जाता, अवरोह में ही प्रयुक्त होता है। खम्बावती के आरोह में रिषभ स्वर लिया जाता है और अवरोह में 'ग म सा' प्रयोग करते हुए अनेक बार षड्ज से मिलाया जाता है। ऐसा न करने पर 'खम्बावती नहीं दिखाई दे सकती।

प्रश्न—यह तो खम्बावती की एक प्रधान पकड़ ही आपने बताई है?

उत्तर—ठीक है! यह स्थान ऐसा ही महत्व का है। 'दुर्गा' राग में रिषभ, पंचम दोनों स्वर नहीं लिए जाते, 'रागेश्वरी' में केवल पंचम नहीं लेते, यही भेद ध्यान में रखना चाहिये। यह न भूलना चाहिए कि बिलावल थाट की दुर्गा से इस दुर्गा का कोई सम्बन्ध नहीं है। ये दोनों अलग-अलग राग हैं।

प्रश्न—नहीं, नहीं! उस दुर्गा में तो ग, नि स्वर वर्ज्य हैं और इस दुर्गा में 'ग' स्वर वादी है?

उत्तर—तुम्हें ठीक याद है। दुर्गा और रागेश्वरी का उत्तरांग प्रायः एकसा ही दिखाई देता है।

प्रश्न—जी हां, क्योंकि दोनों में बागेश्वरी का अङ्ग दिखाया जाता है। यही कारण है न?

उत्तर—हां, यही बात है! सोरठ अङ्ग के राग बहुत हैं, जैसे सोरठ, तिलककामोद, देस, जयजयवन्ती आदि, परन्तु इन्हें अलग-अलग करना कठिन नहीं है।

प्रश्न—सोरठ के आरोह में ग, ध वर्ज्य हैं, अवरोह में म रे स्वर का प्रयोग इसकी प्रधान पहिचान है, यही आपने बताया है। देस के आरोह में गांधार लिया जा सकता है और उसकी पहिचान के योग्य न्यास 'नि ध प' स्वर समुदाय है, अतः ये दोनों राग अलग-अलग पहिचाने जा सकते हैं?

उत्तर—तुम ठीक कह रहे हो। तिलककामोद में यद्यपि अन्तरा सोरठ जैसा ही आरम्भ होता है तो भी ....।

प्रश्न—परन्तु वहां पर सोरठ का 'म रे' अङ्ग कहां है? और तिलक में तो मन्द्र निषाद का अपन्यास बहुत चमत्कारपूर्ण और स्वतन्त्र है ही?

उत्तर—ठीक है। जयजयवन्ती में दोनों गांधार लिये जाते हैं। वहां मन्द्र पंचम से मध्यम रिषभ पर गायक मींड लेकर जाते हैं, यह ध्यान देने की बात है।

प्रश्न—जी हां, यह भी हमारे ध्यान में है कि छायानट में यही मींड होने पर इसको कैसे अलग किया जाता है।

उत्तर—शाबाश! जयजयवन्ती का अन्तरा अनेक बार सोरठ के अन्तरे जैसा आरोह में होता है परन्तु अवरोह में इन दोनों रागों का भेद आगे जाकर स्पष्ट हो जाता है। हां, 'गारा' राग में भी दोनों गांधार लगाये जाते हैं, इसे कहीं 'जयजयवन्ती' न समझ लेना।

प्रश्न--नहीं, नहीं ! हम यह भूल नहीं कर सकते। 'गारा' में रिषभ वादी नहीं, सोरठ का अङ्ग नहीं, ये सब बातें हमारे ध्यान में हैं। हमें यह अच्छी तरह याद है कि 'गारा' में यमन और झिंझोटी का मिश्रण अत्यन्त कुशलता पूर्वक अज्ञात रूप से किया हुआ है ?

उत्तर--ठीक है ! तुम्हें यह तो याद ही होगा कि 'गौड़ मल्हार' में गौड़ और मल्हार का मधुर योग किया गया है।

प्रश्न--गौड़ का भाग 'रे ग रे म ग' और मल्हार का भाग 'रे रे म म प प, म प, ध सां, ध प म' है। इन्हीं का योग इसमें किया गया है ?

उत्तर--हां, इसके सिवाय अन्तरे में बिलावल का थोड़ा सा भाग भी आ मिलता है और इसके मिलने से राग वैचित्र्य भी बढ़ जाता है।

प्रश्न—शुद्ध थाट को आपने शुद्ध पानी के समान बताया है न ? केवल मिलाने की कुशलता आवश्यक है अन्यथा राग वैचित्र्य कैसे दिखाई दिया जा सकता है ?

उत्तर—बिलकुल ठीक कहते हो। 'बड़हंस' को हमने एक सारङ्ग प्रकार माना है। इसे नारायणी से अलग मानना चाहिये।

प्रश्न—वह सहज ही किया जा सकता है। नारायणी में 'म प ध सां' प्रयोग किया जा सकता है, परंतु यह प्रयोग बड़हंस में घातक हो जाता है। बड़हंस में गांधार और धैवत वर्ज्य करने को ही हम आजकल मान्यता देते हैं। धैवत वर्ज्य न मानकर अल्पत्व भी माना जा सकता है ?

उत्तर—शाबाश ! शाबाश !! तुमने इस विषय को बहुत अच्छी तरह समझ लिया है, यह देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। मुझे यह भी दिखाई देता है कि आगामी प्रसङ्ग में यदि मैंने तुम्हें रागों की जानकारी व्याख्यान के रूप में बताई तो भी तुम सहज ही उत्तम रूप से समझ सकोगे। तुम्हें इस प्रकार से प्रश्न विचारने का प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा। खैर, अब तुम्हें छुट्टी देता हूं।



संगीत सम्बन्धी प्रकाशन

१—संगीत सागर-सङ्गीत का विशाल ग्रन्थ, हर प्रकार के बाजों को बजाने की विधि तथा ५०४० स्वर विस्तार दिये हैं। मूल्य ६)

२—फ़िल्म संगीत-(२५ भागों में) फ़िल्मी गायनों की पूरी-पूरी स्वरलिपियां दी गई हैं, २१ भाग तक प्रत्येक भाग का मूल्य २) भाग २२, २३, २४, २५ का मूल्य ४) प्रति भाग।

३—संगीत सोपान-हाईस्कूल की १२ वर्ष की सङ्गीत परीक्षाओं के प्रश्नोत्तर मू० ३)

४—संगीत पारिजात-पं० अहोबल कृत प्राचीन संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद। मू० ४)

५—सङ्गीत विशारद-प्रथम वर्ष से पंचम वर्ष तक की थ्योरी। मू० सजिल्द ५)

६—म्यूजिक मास्टर-बिना मास्टर के हारमोनियम, तबला और बांसुरी बजाना सिखाने वाली पुस्तक, जिसके १३ संस्करण हो चुके हैं। मू० २)

७—स्वरमेलकलानिधि-श्री रामामात्य लिखित संस्कृत ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद। मूल्य १)

८—सङ्गीत दर्पण-श्री दामोदर पंडित लिखित संस्कृत ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद। मूल्य २)

९—ताल अङ्क-घर बैठे तबला बजाना सीखिये। सचित्र, मूल्य ४)

१०-बाल सङ्गीत शिक्षा-(तीन भागों में) हाईस्कूल पाठ्यक्रम के अनुसार चौथी से आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिये। मू० २।)

११-सङ्गीत किशोर-हाईस्कूल की ९-१० वीं कक्षाओं के लिये। मू० १॥)

१२-सङ्गीत शास्त्र-इन्टरमीडियेट, हाईस्कूल, विदुषी, विद्याविनोदिनी और प्रवेशिका परीक्षाओं के लिये (सङ्गीत की थ्योरी) मू० १)

१३-सङ्गीत सीकर-भातखण्डे यूनिवर्सिटी तथा माधव सङ्गीत महाविद्यालय की थर्डईअर परीक्षाओं (१९२९ से ५२ तक) के प्रश्न और उत्तर। मू० ५)

१४-सङ्गीत अर्चना-"भातखण्डे यूनिवर्सिटी आफ़ इन्डियन म्यूजिक" की थर्डईअर (इन्टरमीडियेट) परीक्षा में आने वाले १५ रागों के तान आलाप इत्यादि। मू० ५)

१५-कलावन्तों की गायकी-ग्रामोफोन के शास्त्रीय सङ्गीत के रेकार्डों की स्वरलिपियां। मू० ३)

१६-सङ्गीत कादम्बिनी-"भातखण्डे यूनिवर्सिटी आफ़ इण्डियन म्यूजिक" की बी. ए. की परीक्षा में आने वाले २० रागों के तान आलाप इत्यादि। मू० ५)

१७-भातखण्डे सङ्गीतशास्त्र-(सङ्गीत की थ्योरी के अपूर्व ग्रन्थ) भातखंडे लिखित हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति मराठी का हिन्दी अनुवाद। भाग १ मू० ५), भाग २-३ मू० ६) प्रति भाग

१८-मारिफ़ुन्नग़मात-(दोनों भाग) राजा नवाबअली लिखित उर्दू पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद। प्रथम भाग में सङ्गीत की थ्योरी गणित के अकाट्य उदाहरण देकर समझाई है तथा १५२ रागों की स्वरलिपियां, चलन, स्वर विस्तार और लक्षण गीत दिये गये हैं। दूसरे भाग में भी २२३ प्राचीन गुप्त चीजों की स्वरलिपियां दी गई हैं। यह पुस्तकें इन्टरमीडियेट तथा विशारद के कोर्स में भी हैं। मू० प्रति भाग ६)

१९-सूरसङ्गीत-प्रत्येक भाग में मनोहर बन्दिशों में सूरदास रचित ६० पदों की स्वरलिपियां उनके भावार्थ सहित दी गई हैं। मू० प्रथम भाग १॥) दूसरा भाग १॥)

२०-बेला विज्ञान-बेला सिखाने वाली सचित्र पुस्तक, इसमें ६० गतें भी हैं। मू० ४)

२१-नृत्यअङ्क-सचित्र नृत्य शिक्षक। मू० ३)

२२-सितार शिक्षा—सचित्र सितार शिक्षक मू० २॥)

२३-क्रमिक पुस्तकें—(भातखण्डे लिखित) हिन्दी में—पहिली १) दूसरी ८) तीसरी ८) चौथी ८) पांचवीं ८) और छटवीं ८)

[उपरोक्त सब पुस्तकों पर डाक व्यय अलग लगेगा—सूचीपत्र मुफ्त मंगायें]

'सङ्गीत' (मासिक पत्र) गत २१ वर्षों से बराबर निकल रहा है, वार्षिक मू० ४॥)

पता—संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)